U.P. Series

सामाजिक विज्ञान

पाठ्यपुस्तक का सम्पूर्ण हल

कक्षा– 9

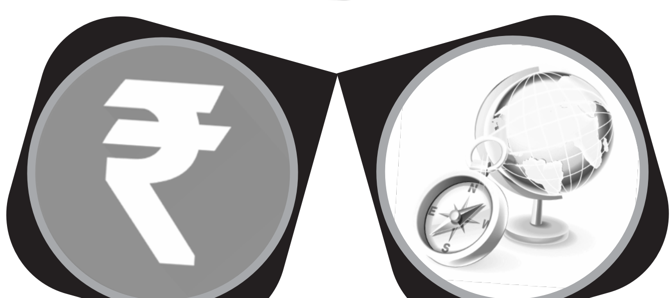

सामाजिक विज्ञान-9

अनुभाग-एक : ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक विरासत

इकाई-1 (क) : भारत में प्रारम्भिक सभ्यता का विकास

1 खाद्य संग्रहण एवं पशुचारण से कृषि तक

अभ्यास

❖ **बहुविकल्पीय प्रश्न**

उ०– बहुविकल्पीय प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्य—पुस्तक के पृष्ठ संख्या—16 का अवलोकन कीजिए।

❖ **अतिलघु उत्तरीय प्रश्न**

उ०– अतिलघु उत्तरीय प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्य—पुस्तक के पृष्ठ संख्या—16 व 17 को अवलोकन कीजिए।

❖ **लघु उत्तरीय प्रश्न**

1. मनुष्य के विकास की प्रक्रिया संक्षेप में बताइए।

उ०– आरम्भिक समय में मनुष्य का रहन—सहन लगभग पशुओं की भाँति ही था। वह पशुओं का कच्चा मांस व कन्दमूल खाकर अपना जीवनयापन करता था। अपने तन को ढकने के लिए भी वह पशुओं की खाल का प्रयोग करता था। अपनी सुरक्षा के लिए आदिमानव ने पत्थर के औजार बनाए व अपने रहने के लिए वह गुफाओं को प्रयोग में लाता था। इसका कारण यह था कि उस समय इन्हें घर बनाने व कृषि करने का कोई ज्ञान नहीं था। जैसे—जैसे समय बीतता गया आदिमानव ने अपने जीवन में अनेक चमत्कारी परिवर्तन किए। उसने अपना स्थायी निवास बनाना आरम्भ कर दिया। इसके साथ—साथ उसने पशुपालन और खेती भी आरम्भ कर दी। धीरे—धीरे समय बीतता गया और आदिमानव अन्धकार को पीछे छोड़कर प्रकाशयुक्त जीवन की ओर अग्रसर हो गया।

2. प्रागैतिहासिक काल किसे कहते हैं?

उ०– **प्रागैतिहासिक काल–** प्रागैतिहासिक काल को प्राक इतिहास के नाम से भी जाना जाता है। इस काल में घटित हुई घटनाओं का कोई लिखित विवरण उपलब्ध नहीं है। पाषाण के उपकरण, मिट्टी के बर्तन, खिलौने इत्यादि इस काल की जानकारी के कुछ आधार हैं। इस काल की सभ्यता को 'आदिम सभ्यता' कहा जाता है।

3. पुरातत्व को स्पष्ट करते हुए इसका योगदान बताइए।

उ०– **पुरातत्व–** प्राचीन काल के लोग अपने पीछे विभिन्न प्रकार के औजार, दैनिक उपयोग में लाई जाने वाली वस्तुएँ, समाधियाँ, मनुष्यों व पशुओं के जीवाश्म आदि छोड़ गए हैं। मानव द्वारा छोड़े गए ये अवशेष ही पुरातत्व या पुरावशेष कहलाते हैं।

पुरातत्व का योगदान– मानव विकास की सभ्यता के सप्रमाण प्रकाश में लाने में पुरातत्व का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। पृथ्वी की आयु का निर्धारण, जीवों की उत्पत्ति एवं विकास, प्राचीन मिस्र का वैभव, मेसोपोटामिया की उपलब्धियाँ, पाषाण युग में मानव—जीवन, भारत की नगरीय सभ्यता, चीन के आदिम आविष्कार आदि का ज्ञान पुरातत्व द्वारा ही किया गया। पुरातत्व द्वारा ही हम अपने पूर्वजों के बारे में जान पाए हैं।

4. आदिम की किन्हीं तीन प्रजातियों को परिभाषित कीजिए।

उ०– आदिम की तीन प्रजातियाँ निम्नलिखित हैं—

(i) **होमिनिड्स–** भारत में शिवालिक पहाड़ियों में ऐसे वानरों के जीवाश्मों के अवशेष मिले हैं जो लगभग 80 लाख वर्ष पुराने हैं। जिनसे मानव तथा वर्तमान वानरों का विकास हुआ है। होमिनिड्स आदिमानव की एक ऐसी जाति का नाम है जो कि अभिनूतन काल में उत्पन्न हुई। आज के समय में यह जाति पूर्णतया: लुप्त हो चुकी है।

(ii) **ऑस्ट्रेलोपिथेकस–** आदिमानव की यह जाति मूलत: ऑस्ट्रेलिया, मलाया तथा दक्षिणी अफ्रीका मे पायी जाती थी। इनका कद छोटा, रंग काला, सिर लम्बा व बाल घुँघराले थे।

(iii) **पिथेकांथ्रोपस इरेक्टस–** जावा में मिले होमिनिड्स के अवशेषों को पिथेकांथ्रोपस इरेक्टस की संज्ञा दी गयी है। साधारण भाषा में इन्हें सीधा खड़ा वानर—मानव कहते हैं। इनके अवशेष एशिया में पाए गए हैं।

5. आदिमानव खाद्य संग्रहण किस प्रकार करता था?

उ०– आदिमानव अपना भरण—पोषण खाद्य संग्रहण व शिकार के माध्यम से करते थे। आदिमानव के खाद्य संग्रहण में यह अनुमान लगाया जाता है कि वह पेड़ पौधों से मिलने वाले खाद्य—पदार्थों जैसै—बीज, गुठलियाँ, बेर फल एवं कंदमूल आदि एकत्र करके अपनी गुफाओं में उनका संग्रहण करता था।

6. पुरापाषाण काल को स्पष्ट कीजिए।

उ०– मानव सभ्यता के विकास के प्रथम चरण को पुरापाषाण काल कहते हैं। इस काल का आरम्भ आज से लगभग 26 लाख वर्ष पूर्व हुआ था। इस काल के अफ्रीका, एशिया तथा यूरोप में पत्थर के अनेक औजार मिले हैं, जो स्पष्टतया मानव उपस्थिति का संकेत देते हैं।

7. मध्य पाषाण काल का समय बताते हुए इसका भौगोलिक विस्तार समझाइए।

उ०– विद्वानों के अनुसार पुरापाषाण काल तथा नवपाषाण काल के बीच का काल मध्य पाषाण काल कहलाता है। इस काल का समय 1,00,000 वर्ष ई० पू० से 50,000 वर्ष ई० पू० तक माना जाता है। भारत के लगभग सभी भागों में इस काल का मानव निवास करता था। प्रमुख स्थानों में बाणभट्ट (उडीसा), राँची, संथाल परगना (बिहार), वीरभानपुर, देजुरी (पश्चिम बँगाल), आजमगढ़, सरायनाहरराय, लेखटिया, चोपनी माकोंट (उत्तरप्रदेश), भीमबेटका (मध्यप्रदेश) भीमवाड़ा, बागोर (राजस्थान), लंघनाज एवं तरसंग (गुजरात), खण्डिवली, नासिक (महाराष्ट्र) नागार्जुन कोण्डा, रेणीगुण्टा (आन्ध्रप्रदेश), गुलबर्गा (कर्नाटक), मेगनापुरम (तमिलनाडु) आदि का नाम लिया जा सकता है।

8. पहिए के आविष्कार ने मानव जीवन में क्या-क्या परिवर्तन किए।

उ०– नवपाषाण काल में पहिए का आविष्कार मानव सभ्यता के इतिहास की एक महत्वपूर्ण घटना थी। मनुष्य ने पहिए की सहायता से रथ, गाड़ी, और कुम्हार के चाक द्वारा बर्तन बनाना आरम्भ कर दिया था। पहिए की सहायता से ही उसने सामान सुमता से एक—स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाने तथा कताई व बुनाई में प्रवीणता हासिल कर ली थी और निरन्तर उन्नति करके सभ्यता के शिखर पर चढ़ने लगा था।

9. नवपाषाण काल में मृतक संस्कार को समझाइए।

उ०– नवपाषाण काल में मृतकों को दफनाने के साथ—साथ जलाने की परम्परा भी आरम्भ हो गई थी। मृतकों के शवों के साथ—साथ हथियार, वस्त्र, बर्तन तथा भोजन सामग्री भी दफनाई जाती थी। जिन शवों को जलाया जाता था, उनकी राख को मिट्टी के घड़ों में भरकर सम्मान के साथ जमीन में गाड़ दिया जाता था।

❖ विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

1. पृथ्वी की उत्पत्ति एवं विकास को समझाते हुए हिमयुग को स्पष्ट कीजिए।

उ०– **पृथ्वी की उत्पत्ति एवं विकास–** पृथ्वी सौरमण्डल के आठ ग्रहों में से एक है। सौरमण्डल के सभी ग्रहों में से पृथ्वी ही एक ऐसा ग्रह है जहाँ पर जीवन पाया जाता है। यह कहना अत्यन्त कठिन है कि पृथ्वी की उत्पत्ति कैसे हुई। नि:सन्देह पृथ्वी की उत्पत्ति का रहस्य बड़ा ही गूढ़ है, जो अभी भी विवाद का विषय बना हुआ है। फिर भी अधिकांश विद्वानों का मत है कि अन्य ग्रहों की भाँति पृथ्वी की उत्पत्ति भी सूर्य से हुई है। पृथ्वी पहले सूर्य का ही भाग थी जो आज से लगभग ६ अरब वर्ष पूर्व एक दहकते हुए अंगारे की भाँति किसी ब्रह्मांडीय घटना के कारण सूर्य से टूटकर अलग हो गई। करोड़ों वर्षों तक पृथ्वी एक विशाल आग के गोले के रूप में सूर्य के ईर्द—गिर्द चक्कर काटती रही। इस बीच लाखों वर्षों तक तूफानों, भारी वर्षा, वाष्पन तथा संघनन की निरन्तर क्रिया आदि के मध्य यह ठण्ड़ी होती रही और इसका धरातल अस्तित्व में आया। तत्पश्चात् पृथ्वी के धरातल में हुए परिवर्तनों के परिणामस्वरूप पहाड़ों, समुद्रों, महाद्वीपों तथा वायुमण्डल का निर्माण हुआ।

हिमयुग– हिमयुग का आरम्भ पृथ्वी के ठण्डे होने के करोड़ों वर्षो के बाद हुआ। जिस प्रकार आज अन्टार्कटिका और ग्रीनलैण्ड पर बर्फ है उसी प्रकार करोड़ों वर्षों तक महाद्वीपों पर ऐसे ही बर्फ जमी हुई थी। हिमयुग के अन्तर्गत आज से लगभग 6 लाख वर्ष से लेकर 10 लाख वर्ष पूर्व के मध्य का वह काल आता है जिसमें विश्व का एक बड़ा भाग हिम आवरण से ढ़का रहता था। पृथ्वी के इतिहास में चार हिमयुगों का वर्णन मिलता है। प्रत्येक दो हिमयुगों के बीच तीन अन्तर्हिम युग का काल होता है। अन्तिम हिमयुग आज से लगभग 50 हजार वर्ष पहले आया था।

2. पृथ्वी पर जीव के जन्म और विकास को स्पष्ट कीजिए।

उ०– **पृथ्वी पर जीव का जन्म और विकास—** पृथ्वी पर जीव का जन्म समय और उसका विकास कब और कैसे हुआ है? यह निश्चितता के साथ सिद्ध कर पाना तो अत्यन्त कठिन है या फिर यह कहना गलत न होगा कि नामुमकिन है। वैज्ञानिकों ने पृथ्वी की अनुमानित आयु लगभग 4 अरब 50 करोड़ वर्ष बताई है। जब सृष्टि का प्रारम्भ हुआ तो उसके कई करोड़ वर्षों के बाद भी किसी जीव अथवा वनस्पति की उत्पत्ति नहीं हुई थी। वैज्ञानिकों ने पृथ्वी पर जीवन के विकास की प्रक्रिया को एक क्रमबद्ध रूप से अग्रलिखित प्रकार से स्पष्ट किया है—

(i) **सूक्ष्म प्राणी–** सर्वप्रथम पृथ्वी पर लगभग 3 अरब 65 करोड़ वर्ष पहले छिछले जल में कुछ सूक्ष्म जीवों का विकास हुआ था। इन जीवों में खाल या हड्डी नहीं थी। इनकी संरचना एक लसलसी झिल्ली के समान थी।

(ii) **जल-स्थलचर जीव–** सूक्ष्म जीवों के बाद कुछ ऐसे जीवों की उत्पत्ति हुई, जिनके शरीर पर खाल या आवरण था। इन जीवों की श्रेणी में जलबिच्छु, केकड़े, घोंघे तथा मछलियाँ आदि सम्मिलित थीं। कुछ जीव जैसे—केकड़े, साँप, मेंढक आदि दलदलों में वास करते थे। इसी कारण इन्हें जल—स्थलचर जीव कहा गया।

(iii) **अंडज जीव–** जलवायु में परिवर्तन होने के कारण कुछ अंडज प्राणियों का जन्म हुआ। इनमें मगरमच्छ तथा बड़े—बड़े साँप आदि प्रमुख थे।

(iv) **नभचर तथा स्तनपायी जीव–** इस युग में अनेक प्रकार के पशुओं, आकाशीय पक्षी व स्तनपायी जीवों का जन्म हुआ। स्तनपायी प्राणियों में वानर प्रमुख थे, जिन्हें प्राइमेट्स भी कहते हैं। लंगूर, बंदर, चिम्पैंजी इसी श्रेणी के जीव हैं।

(v) **मानव का विकास–** आज से लगभग 5 लाख वर्ष पहले 'मानव सम प्राणी' का जन्म हुआ। बाद में ये प्राणी वृक्षों से नीचे आकर पृथ्वी पर रहने लगे और विकास की क्रमिक प्रक्रिया में दो पैरों पर खड़े होकर चलने की क्षमता आ गयी और इन्होंने हाथों से वस्तुओं को उठाना सीख लिया। जैसे—जैसे इन्होंने हाथ—पैरों का प्रयोग अधिक करना आरम्भ किया, वैसे—वैसे ही मानव में दो पैरों पर खड़े होकर चलने की कुशलता बढ़ती गई। अब मानव खतरनाक जीवों से अपनी रक्षा करने में सक्षम था। इसी क्रम में मानव ने पत्थर के हथियार बनाना भी सीख लिया।

आदिमानव का खड़ा होना व चलना मानव विकास के इतिहास में एक महत्वपूर्ण उपलब्धि थी। इस परिवर्तन से आदिमानव को निम्नलिखित लाभ हुए—

(क) आदिमानव अपने हाथों का स्वतन्त्रतापूर्वक प्रयोग करने लगा।
(ख) वह शत्रुओं से अपनी रक्षा करने में भी समर्थ था।
(ग) आदिमानव अपने हाथों का प्रयोग करके औजार बनाने व खेती करने में भी समर्थ हो गया।

3. पाषाण युग को स्पष्ट कीजिए।

उ०– प्रारम्भ में जब मानव पृथ्वी पर प्रकट हुआ उसका जीवन पशुओं के समान था। वह अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु पूर्णतया प्रकृति पर निर्भर था। किन्तु पशुओं की तुलना में मानव का मस्तिष्क अधिक विकसित था। बुद्धि के प्रयोग के फलस्वरूप ही मानव—सभ्यता का उदय तथा विकास हुआ। सर्वप्रथम वह पत्थर के टुकड़ों की सहायता से जंगली पशुओं का शिकार करने लगा। कुछ समय बाद वह पत्थरों को काट—छाँट कर उपयोगी औजार बनाने लगा पत्थरों के औजारों के आधार पर ही इस काल के मानव—जीवन की जानकारी प्राप्त हुई जिस कारण इतिहासकारों ने मानव—जीवन के प्रारम्भिक काल को पाषाण युग का नाम दे दिया। विद्वानों के मतानुसार, मानव के सांस्कृतिक विकास की प्रक्रिया उस समय प्रारम्भ हुई जब मानव पत्थर के खुरदरे औजार बनाने का कौशल आ गया।

पाषाण काल का विभाजन–पाषाण काल को तीन भागों में विभक्त किया जाता है—(i) पुरापाषाण काल अथवा पूर्व पाषाण काल, (ii) मध्य पाषाण काल तथा (iii) नवपाषाण काल या उत्तरपाषाण काल।

पाषाण काल

4. मध्य पाषाण काल के मुख्य तथ्यों को स्पष्ट कीजिए।

उ०– मध्य पाषाण काल– मध्य पाषाण काल का कोई अस्तित्व नहीं है, ऐसा कुछ विद्वानों का मानना है। विद्वानों ने मध्य पाषाण काल की अवधि 1,00,000 वर्ष ई०पू० से 50,000 वर्ष ई०पू० तक मानी है। भारत के सन्दर्भ में इस काल का अत्यधिक महत्व है क्योंकि भारत में इस काल के प्रमाण तथा सामग्री उपलब्ध हुई है।

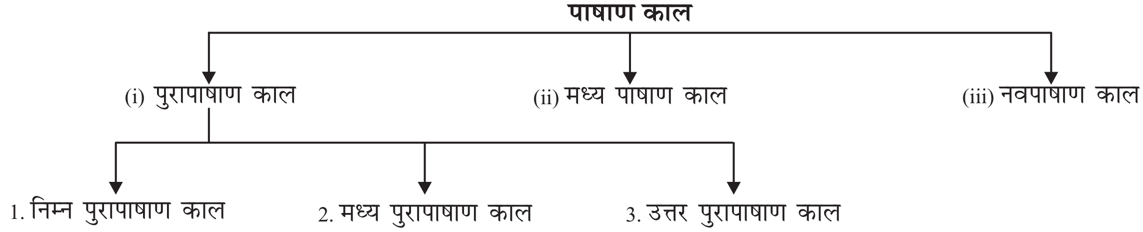

भारत में **डॉ० संकालिया, सुब्बाराव, ए०आर०कैनेडी** आदि विद्वानों ने नागार्जुन कोंडा, गिददलूर, एनगुण्टा (आन्ध्र प्रदेश), सांगन कतापू (बेल्लारी, कर्नाटक), आदमगढ़ (होशंगाबाद, मध्यप्रदेश), भीमबेटका (रायसेन), राँची, पालमू, (झारखण्ड), चकिया (वाराणसी), मिर्जापुर (उत्तर प्रदेश), आदि स्थलों से मध्य पाषाणकाल की सामग्री प्राप्त की है। इस काल में मानव

कृषि कार्य तथा पशुपालन से अनभिज्ञ था। इस काल के मानव की जीवन सम्बन्धी जानकारी अधिक उपलब्ध नहीं हुई है। इस काल के हथियार व औजार तथा अन्य सामग्री ब्रह्मगिरी (कर्नाटक), सरायकला (बिहार), उचाली (पंजाब), कुसूर, लाँचनाज, हीरपुरा, अखज (दक्षिण भारत) आदि स्थानों से भी प्राप्त हुई है। इस काल के मुख्य तथ्य निम्नलिखित हैं—

(i) समय एवं भौगोलिक विस्तार– भारत में मध्य पाषाण काल का समय 1,00,000 ई०पू० से 50,000 ई०पू० तक माना जा सकता है। भारत के लगभग सभी भागों में इस काल का मानव निवास करता था। प्रमुख स्थानों में बाणभट्ट (उड़ीसा), राँची, संथाल परगना (बिहार), वीरभानपुर, देजुरी (पश्चिम बंगाल), आजमगढ़, सरायनाहरराय, लेखटिया, चोपनीमाकोट (उत्तर प्रदेश), भीमबेटका (मध्य प्रदेश)भीमवाड़ा, बागोर (राजस्थान), लंघनाज एवं तरसंग (गुजरात), खण्डिवली, नासिक (महाराष्ट्र), नागार्जुन कोंडा, रेणीगुण्टा (आन्ध्र प्रदेश), संगनकल्लु, गुलबर्गा (कर्नाटक), टेरी, मेगनानपुरम् (तमिलनाडु) आदि का नाम लिया जा सकता है।

(ii) औजार एवं हथियार– इस काल के सबसे अधिक औजार एवं हथियार फ्रांस तथा जर्मनी में प्राप्त हुए हैं। इस काल में हथियार लकड़ी या हड्डी के हत्थों से तैयार होते थे। इस काल के प्रमुख औजारों में ब्लेड, छिद्रक, खुरचनी, ब्यूरिन, बेधक, चान्द्रिक, पाइंट, त्रिकोण, अर्द्धचंद्राकार, समलम्बाकार सुइयाँ तथा बाणाग्र आदि प्रमुख हैं। भारत में राजस्थान के बागोर तथा गुजरात के तरसंग नामक पुरास्थल से बड़ी संख्या में हड्डी के उपकरण प्राप्त हुए हैं।

(iii) आवास व भोजन– कन्दराओं, शिलाश्रयों तथा नदी के अनुभागों में रहने के अतिरिक्त शीत से बचने के लिए मानव ने जमीन में गड्ढे खोदकर भी रहना आरम्भ कर दिया। भारत के विन्ध्य क्षेत्र में स्थित चोपानी माण्डों एवं राजस्थान के बागोर से बाँस—बल्ली और घास—फूस के छप्पर से तैयार झोपड़ों के प्रमाण भी प्राप्त हुए हैं। इस काल में मनुष्य पशुओं का मांस खाकर अपना पेट भरता था। फल—फूल भी उसका भाजन थे। गुजरात एवं राजस्थान से प्राप्त अवशेषों के आधार पर कहा जा सकता है कि मानव ने थोड़ा बहुत कृषि करना भी सीख लिया था।

(iv) धार्मिक विश्वास– मध्य पाषाण काल की खुदाई में प्राप्त अवशेषों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि मानव ने शवों को विधिपूर्वक दफनाना आरम्भ कर दिया था। कुछ शवों के पास औजार भी प्राप्त हुए हैं जो कि लोकोत्तर जीवन में विश्वास का सूचक है।

(v) कला– इस काल में मानव ने चट्टानों पर चित्रकारी करना आरम्भ कर दिया। मध्य प्रदेश के रायसेन जिले में स्थित भीमबेटका सबसे प्रसिद्ध स्थल है, जिसमें 133 चित्रकारी युक्त शिलाश्रय हैं। ये चित्र मध्य पाषाणकालीन सामाजिक एवं धार्मिक रीति—रिवाजों से मिलते हैं।

5. नवपाषाण काल को समझइए।

उ०– नवपाषाण काल– विद्वानों के अनुसार नवपाषाण काल की अवधि 50 हजार ई०पू० से 10 हजार ई०पू० तक है। यह काल प्रागैतिहासिक सभ्यता का अन्तिम चरण था। इस काल में मानव—जीवन में अनेक क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए और वह बड़ी तेजी के साथ जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में उन्नति करने लगा। इस युग के मानव के केन्द्र मुख्यतया यूरोप तथा एशिया थे। इस काल के मुख्य तथ्य निम्नलिखित हैं—

(i) कृषि– इस काल की सबसे बड़ी उपलब्धि यह थी कि मानव को कृषि का ज्ञान प्राप्त हो गया था। उसने अब मक्का, जौ, कपास, गेहूँ, बाजरा आदि फसलों को उगाना आरम्भ कर दिया। इसके साथ—साथ वह सब्जियों की भी खेती करने लगा।

(ii) भोजन– नवपाषाण काल में मानव ने भोजन में गेहूँ, ज्वार तथा मक्के की रोटी खाना आरम्भ कर दिया। इसके साथ—साथ वह फल, मछली, दूध, मक्खन आदि का भी प्रयोग करता था।

(iii) आवास– कृषि तथा पशुपालन के विकास से मानव ने खानाबदोशी जीवन समाप्त कर दिया। अब वह एक ही स्थान पर लकड़ी के मकान बनाकर रहने लगा जिसकी छतें घास—फूस, वृक्षों की छाल आदि से पटी होती थीं। ये लोग बस्तियाँ बनाकर रहते थे।

(iv) वस्त्र तथा आभूषण– नवपाषाण युग में मनुष्य ने अपने वस्त्र सन, कपास, ऊन तथा चमड़े से बनाना आरम्भ कर दिया। स्त्रियाँ सीप, हड्डी, पत्थर आदि के आभूषण तैयार करने लगीं।

(v) औजार– इस काल में मनुष्य ने अपने कौशल का प्रयोग करके पत्थरों के चिकने, नुकीले, सुडौल, मजबूत, चमकदार और पॉलिशदार औजार बनाना आरम्भ कर दिया। शिकार के हथियारों में हथौड़ा, धनुष—बाण, बरछी, कुल्हाड़ी आदि प्रमुख थे। इनके अतिरिक्त हसियाँ, हल, तकली आदि दैनिक उपयोग के उपकरण थे।

(vi) पहिए का आविष्कार– इस काल में क्रान्ति लाने वाली महत्वपूर्ण उपलब्धि मानव द्वारा पहिए का आविष्कार था। पहिए के आविष्कार से सबसे पहले कुम्हार के चाक का आविष्कार हुआ। उसके बाद मनुष्य ने पहियों की सहायता से गाड़ियों का निर्माण आरम्भ कर दिया, जिससे उसने सुगमता से सामान को एक—स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाना आरम्भ कर दिया।

(vii) मिट्टी के बर्तन– नवपाषाण काल में मानव ने खान—पान की वस्तुओं को रखने, भोजन पकाने व उसे सुरक्षित रखने के

लिए मिट्टी के सुन्दर बर्तन बनाना भी आरम्भ कर दिया था। इनको बनाने के बाद आग में पका लिया जाता था तथा इन पर सुन्दर चित्रकारी भी की जाने लगी।

(viii) कला– नवपाषाण युग में मानव ने पशुओं, स्त्री—पुरुषों तथा देवी—देवताओं के चित्र बनाने भी आरम्भ कर दिए। इसके साथ—साथ वह हाथी दाँत और पत्थरों की मूर्तियाँ भी बनाने लगा। इस युग के मनुष्यों ने ढोल व बाँसुरी जैसे संगीत यन्त्रों का भी आविष्कार कर लिया था।

(ix) धार्मिक विश्वास– नवपाषाण युग में भारत के लोगों ने जल, वायु, सूर्य, पृथ्वी आदि प्राकृतिक शक्तियों की आराधना भी आरम्भ कर दी। इस युग में भारतवासी मातृ देवी की पूजा भी करने लगे। धीरे—धीरे इनकी पूजा में जादू—टोना, कर्मकांड व तंत्र—मंत्र भी शामिल हो गए।

मृतक संस्कार– इस युग में मृतकों को दफनाने के साथ—साथ जलाने की परम्परा भी आरम्भ हो गई। मृतक के शवों के साथ—साथ हथियार, वस्त्र, बर्तन तथा भोजन सामग्री भी दफनाई जाती थी। जिन शवों को जलाया जाता था, उनकी राख को मिट्टी के घड़ों में भरकर सम्मान के साथ जमीन में गाड़ दिया जाता था।

भाषा– नवपाषाण काल से पहले मानव इशारों में बातें किया करता था। इस काल में मनुष्य ने बोलना आरम्भ कर दिया था। धीरे—धीरे मनुष्य ने अपनी भाषा को विकसित कर लिया।

सामुदायिक जीवन का प्रारम्भ– विभिन्न व्यवसायों कृषि तथा पशुपालन के विकास के बाद अब मनुष्य समूहों में रहने लगे थे। एक समूह में कई—कई परिवार रहते थे। परिवार का वयोवृद्ध व्यक्ति मुखिया होता था, जबकि ताकतवर व्यक्ति समूह का नेता होता था।

6. पुरापाषाण काल तथा नवपाषाण काल में अन्तर स्पष्ट कीजिए।

उ०– पुरापाषाण काल तथा नवपाषाण काल में अन्तर–

पुरापाषाण काल	नवपाषाण काल
(i) इस काल में पत्थर के भद्दे, खुरदरे तथा बेडौल औजार बनाए जाते थे।	1. इस युग में मानव ने पत्थर के चिकने, चमकदार, सुडौल तथा पॉलिशदार औजार व हथियार बनाना सीख लिया था।
(ii) इस काल के प्रारम्भ में कुल्हाड़ी, गंडासा, शल्कल आदि औजार बनाए गए। युग के अन्तिम चरण में धनुष, भाला, छेदनी, सुई आदि का भी निर्माण किया जाने लगा था।	2. इस काल के औजारों में हल, हँसिया तथा तकली जैसे औजार थे जो पुरापाषाण युग में नहीं मिलते थे।
(iii) इस काल में औजारों का प्रयोग रक्षा तथा जीवन-निर्वाह के लिए किया जाता था।	3. इस काल में औजारों का प्रयोग मुख्यतया जीवनयापन के उपकरणों के रूप में किया जाता था।
(iv) इस काल में विभिन्न स्थानों पर औजारों की बनावट लगभग समान थी।	4. इस काल में विभिन्न स्थानों पर बनाए गए औजारों की बनावट भिन्न-भिन्न थी।
(v) कृषि तथा पशुपालन के ज्ञान के अभाव में इस काल का मानव जंगली फल-फूल, कन्दमूल, कच्चा माँस, मछली आदि से अपना पेट भरता था।	5. इस काल में कृषि का ज्ञान होने से मानव गेहूँ, जौ, मक्का, मटर, साग-सब्जी आदि उगाकर उनसे अपना भोजन तैयार करने लगा था।
(vi) मानव भोजन के लिए प्रकृति पर आश्रित था।	6. इस काल में मानव कृषि व पशुपालन द्वारा अपना भोजन स्वयं उत्पन्न करने लगा था।
(vii) इस काल के मानव का भोजन कच्चा तथा बेस्वाद होता था।	7. इस काल में मानव का भोजन पकाया हुआ तथा उत्तम स्वाद वाला होता था।
(viii) मानव अपने भोजन में फल, मांस, मछली आदि का प्रयोग करता था।	8. इस काल का मानव, रोटी, साग-सब्जी, दूध, घी आदि का अधिक प्रयोग करता था।
(ix) इस काल में मानव ने बोलना नहीं सीखा था।	9. इस काल में मानव ने बोलना सीख लिया था।
(x) मानव भाषा से पूर्णतया अनभिज्ञ था।	10. इस काल में मानव ने धीरे-धीरे भाषा का भी विकास कर लिया था।
(xi) कृषि की खोज न होने के कारण कपास का उत्पादन	11. इस काल में कपास का उत्पादन किया जाने लगा

नहीं होता था।	था तथा उससे वस्त्र बनाए जाने लगे थे।
(xii) कताई-बुनाई कला से लोग अनभिज्ञ थे।	12. इस काल के मानव को कताई-बुनाई का ज्ञान हो गया था।
(xiii) इस काल में मनुष्य बर्तन व टोकरियाँ बनाना नहीं जानता था।	13. इस काल का मानव मिट्टी के बत्रन तथा सींकों व तिनकों से टोकरियाँ बनाने लगा था।
(xiv) इस काल में मानव ने साथियों के साथ टोलियाँ बनाकर रहना सीख लिया था।	14. इस काल में मानव का व्यवस्थित सामुदायिक जीवन प्रारम्भ हो गया था।

❖ **मानचित्र सम्बन्धी अभ्यास कार्य**

अध्यापक की सहायता से विद्यार्थी स्वयं करें।

❖ **प्रोजेक्ट कार्य**

अध्यापक की सहायता से विद्यार्थी स्वयं करें।

2 विश्व की नदी घाटी की सभ्यताओं का सामान्य परिचय

(मेसोपोटामिया की सभ्यता, मिस्त्र की सभ्यता तथा चीन की सभ्यता)

अभ्यास

❖ **बहुविकल्पीय प्रश्न**

उ०– बहुविकल्पीय प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्य—पुस्तक के पृष्ठ संख्या—25 व 26 का अवलोकन कीजिए।

❖ **अतिलघु उत्तरीय प्रश्न**

उ०– अतिलघु उत्तरीय प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्य—पुस्तक के पृष्ठ संख्या—26 का अवलोकन कीजिए।

❖ **लघु उत्तरीय प्रश्न**

1. नदी घाटी सभ्यताओं के मुख्य केंद्र कौन-से हैं?

उ०– नदी—घाटी सभ्यताओं के चार मुख्य केन्द्र थे, जो निम्नलिखित हैं—

(i) सिन्धु नदी—घाटी में सैन्धव या हड़प्पा की सभ्यता

(ii) नील नदी घाटी में मिस्त्र की सभ्यता

(iii) दजला—फरात की घाटियों में मेसोपोटामिया की सभ्यता

(iv) ह्वांग—हो, यांगटिसी और सिकियांग घाटियों में चीन की सभ्यता

2. प्राचीन सभ्यताओं में धात्विक खोज पर एक संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

उ०– धातुओं की खोज के कारण मानव जाति का सभ्यता की ओर संक्रमण प्रारम्भ हुआ। मनुष्य द्वारा ताँबा धातु की खोज सर्वप्रथम की गई। काफी समय तक विश्व के अनेक भागों में ताँबे से बने औजारों व हथियारों का प्रयोग होता रहा। इस युग को **ताम्र पाषाणिक काल** के नाम से जाना जाता है।

ताँबे की खोज के बाद अगले चरण में ताँबा तथा जस्ता को मिलाकर एक नई धातु का निर्माण किया जिसे कांसा नाम दिया गया। कांसा ताँबे से अधिक उपयोगी सिद्ध हुआ। इसके प्रयोग से हथियार और औजार और मजबूत बनने लगे।

आरम्भिक सभ्यता के विकास में कांसे के महत्वपूर्ण योगदान के कारण इस काल को कांस्य युग तथा इस युग की सभ्यता को **कांस्ययुगीन सभ्यता** कहा जाता है।

3. कांस्ययुगीन सभ्यताओं को बताते हुए इनमें समानताँए बताइए।

उ०– कांस्ययुगीन सभ्यताँए-कास्य युग में मुख्यतया निम्नलिखित सभ्यताओं का विकास हुआ—

(i) मेसोपोटामिया की सभ्यता- यह 3000 ई०पू० के लगभग दजला—फरात नदी—घाटियों (आधुनिक इराक में) विकसित हुई।

(ii) मिस्त्र की सभ्यता- इसका उदय एवं विकास 3000 ई०पू० के आस—पास मिस्त्र देश की नील नदी—घाटी में हुआ।

(iii) हड़प्पा संस्कृति- यह सिन्धु घाटी में 2500 ई०पू० के आस—पास विकसित हुई थी।

(iv) चीन की सभ्यता– इस सभ्यता का विकास चीन में 1765 ई०पू० के आस–पास हांग–हो यांगटिसी और सिकियांग नदी–घाटियों में हुआ।

कांस्ययुगीन सभ्यताओं में समानताएँ–

(i) नदी–घाटियों में विकसित होने के कारण सभी कांस्ययुगीन सभ्यताओं के लोगों का व्यवसाय कृषि तथा पशुपालन था। सिंचाई की सुविधा हेतु इस युग के लोगों ने नहरों तथा बाँधों का निर्माण किया। इन सभ्यताओं के मानवों में आपसी व्यापार भी होता था। प्रारम्भ में वस्तु–विनिमय (barter) का प्रचलन था, किन्तु बाद में मुद्रा का प्रयोग किया जाने लगा।

(ii) कांस्ययुगीन सभी सभ्यताएँ नगरीय सभ्यताएँ थी। इन सभी में बड़े–बड़े नगरों का विकास हुआ। नगरों के उदय के कारण सभी सभ्यताओं में अनेक दूरगामी परिवर्तन हुए।

(iii) कांस्य युग की प्रत्येक सभ्यता का समाज विभिन्न वर्गों में बँटा हुआ था तथा लोग संगठित सामाजिक जीवन व्यतीत करते थे। लोग ऊनी तथा सूती वस्त्र पहनते थे। उन्हें आभूषण पहनने का भी शौक था। मनोरंजन के साधनों में विविध खेल–कूद, शिकार करना, संगीत व नृत्य आदि प्रमुख थे।

(iv) नगरवासी अनाज का उत्पादन नहीं करते थे बल्कि उनकी इस कमी को गाँववासी पूरा करते थे। नगर के लोगों ने विभिन्न व्यवसायों तथा शिल्पों में निपुणता प्राप्त कर ली थी। विभिन्न लोगों द्वारा भिन्न–भिन्न पेशों में दक्षता प्राप्त कर लेने के फलस्वरुप श्रम विभाजन का प्रारम्भ हुआ।

4. मेसोपोटामिया के इतिहास की प्रमुख घटना बताइए।

उ०– **मेसोपोटामिया के इतिहास की एक प्रमुख घटना–** बेबीलोन में एक नए राजवंश के शासन की स्थापना। बेबीलोन के महान शासक **हम्मूराबी** (1810–1750 ई०पू०) ने इराक को एक राज्य के रूप में सूत्रबद्ध करके एक महान कार्य किया था। किन्तु 1600 ई०पू० तक यह राज्य भी नष्ट हो गया। **एशिया** माइनर (वर्तमान में तुर्की) से आए **हिटाइट्स** नामक आक्रमणकारियों ने इस पर भारी हमला करके इसे नष्ट–भ्रष्ट कर दिया।

5. हम्मूराबी की विधि-संहिता पर एक संक्षिप्त लेख लिखिए।

उ०– **हम्मूराबी की विधि–संहिता–** बेबीलोन पर शासन करने वाले ग्यारह राजवंशों में से हम्मूराबी सर्वाधिक प्रसिद्ध शासक था। हम्मूराबी एक कुशल प्रशासक, विजेता, राजनीतिज्ञ और महान कानूनविद् था। हम्मूराबी के शासन काल में स्थापत्य कला की उन्नति और कानून की दिशा में अनेकों महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए। हम्मूराबी ने प्रसिद्ध कानूनों को संकलित करके तथा स्वयं अनेक कानून बनाकर उन्हें 244 मीटर ऊँचाई के पत्थर के स्तम्भ पर खुदवाया। कानूनों के इस संकलन को ही 'हम्मूराबी की विधि–संहिता' के नाम से जानते हैं। इस संहिता में विवाह, चोरी, हत्या, सम्पत्ति, कृषि, व्यापार आदि से सम्बन्धित 282 कानून थे। इस विधि–संहिता में समाज को धनी, निर्धन और दास इन तीन वर्गों में बाँटा गया था तथा एक ही अपराध के लिए तीनों वर्गों के लिए दण्ड अलग–अलग थे। उच्च वर्ग के व्यक्तियों के प्रति किए गए अपराध के लिए अधिक कठोर दण्ड तथा निम्न वर्ग के व्यक्तियों या दासों के प्रति अपराध के लिए कम सजा दी जाती थी। दण्ड अत्यन्त कठोर थे। इसमें नागरिकों के अधिकार तथा कर्तव्य दोनों का उल्लेख था। हम्मूराबी की विधि–संहिता को विश्व का प्रथम लिखित कानून–संग्रह तथा हम्मूराबी को विश्व का प्रथम कानून–निर्माता माना जाता है।

6. मिस्त्र की भौगोलिक स्थिति स्पष्ट कीजिए।

उ०– **मिस्त्र की भौगोलिक स्थिति–** मिस्त्र देश अफ्रीका महाद्वीप के उत्तर–पूर्व में स्थित है। यह नील नदी की घाटी में स्थित है। मिस्त्र के उत्तर में भूमध्य सागर, पश्चिम में सहारा मरुस्थल, दक्षिण में घने जंगल तथा पूर्व में लाल सागर है। नील नदी मिस्त्र के पूर्वी भाग में बहती है और 50 किमी चौड़ी तथा 800 किमी लम्बी भूमि को उपजाऊ बनाती है। नील नदी की तीन सहायक नदियाँ नीली नील, अतबारा और श्वेत–नील हैं।

7. चीन की भौगोलिक स्थिति को स्पष्ट कीजिए।

उ०– **चीन की भौगोलिक स्थिति–** चीन एशिया महाद्वीप के मध्य भाग में स्थित है। चीन क्षेत्रफल की दृष्टि से एशिया महाद्वीप का सबसे बड़ा राष्ट्र है। इसकी उत्तरी–पूर्वी सीमा पर उत्तरी कोरिया तथा उत्तर में मंगोलिया स्थित है। चीन के दक्षिण में भारत, नेपाल, म्यामांर, पाकिस्तान तथा अफगानिस्तान देश स्थित हैं। इसके पूर्व में प्रशान्त महासागर है, दक्षिण में विशाल हिमालय तथा पश्चिम में विस्तृत मरुस्थल है। चीन की सभ्यता सबसे पहले 2,700 मील लम्बी ह्वांगहो नदी के क्षेत्र में विकसित हुई। इस नदी में प्राय: बाढ़ आती थी। जिसके कारण आस–पास के घरों को भारी क्षति होती थी व चीनवासियों को घोर कष्ट उठाने पड़ते थे।

❖ **विस्तृत उत्तरीय प्रश्न**

5. प्राचीन सभ्यताओं में नदी घाटी सभ्यताओं के विकास को स्पष्ट कीजिए।

उ०– प्राचीन सभ्यताओं का विकास नदी–घाटियों में हुआ, क्योंकि यहाँ पर मानव जीवनयापन की लगभग सभी आवश्यकताओं की पूर्ति सरलता से हो जाती थी। नदी–घाटियों में विकसित होने के कारण इन्हें नदी–घाटी सभ्यताएँ कहा गया है।

नदी घाटी सभ्यताओं के चार प्रमुख केन्द्र थे, जो निम्नलिखित हैं—

(i) सिन्धु नदी घाटी में सैन्धव या हड़प्पा सभ्यता

(ii) नील नदी घाटी में मिस्र की सभ्यता

(iii) दजला—फरात की घाटियों में मेसोपोटामिया की सभ्यता

(iv) ह्वांग हो, यांगटिसी और सिकियांग घाटियों में चीन की सभ्यता

विश्व की प्राचीन सभ्यताओं का जन्म नदियों की घाटियों में ही हुआ, क्योंकि इन सभ्यताओं के फलने—फूलने के सभी साधन सर्वप्रथम नदियों की घाटियों में ही उपलब्ध थे। नदी—घाटियों में सभ्यताओं विकसित होने के निम्नलिखित प्रमुख कारण थे—

(i) पर्याप्त मात्रा में जल की प्राप्ति– नदी—घाटियों में प्रचुर मात्रा में जल उपलब्ध था, जो कृषि—कार्यो, सिचाई तथा घरेलू कार्यों में प्रयुक्त होता था। पशुओ के लिए भी चरागाह तथा पेयजल की सुविधा उपलब्ध थी।

(ii) उर्वर भूमि–नदी—घाटियों की भूमि उपजाऊ होने के कारण खेती के लिए उत्तम थी। नदियों द्वारा लायी गयी जलोढ़ मिट्टियों में कृषि का भरपूर विकास हुआ। फलतः नदी—घाटियों में ही आरम्भिक सभ्यताएँ जन्मीं व फली—फूलीं।

(iii) जलोढ़ मिट्टियाँ– नदियाँ प्रतिवर्ष बाढ़ के समय उपजाऊ जलोढ़ मिट्टियाँ बहाकर लाती है। इनमें उर्वर मिट्टियों का विकास होता रहता है। यही कारण है कि शताब्दियों से खेती होते रहने के बावजूद नदी—घाटियों की मिट्टियाँ आज भी उर्वर हैं। सभ्यता की स्थापना तथा विकास में इन मिट्टियों का अपूर्व योगदान है।

(iv) आवागमन के साधन– नदी—घाटियों की समतल भूमि में आवागमन के साधनों की सुलभता होती है। नदियाँ स्वयं भी जल—परिवहन का उत्तम साधन हैं। नदी को 'प्रकृति की सड़क' कहा जाता है।

(v) निवास की सुविधा– नदियों के किनारों पर मनुष्य को मकान बनाने के भी साधन सरलता से प्राप्त हो गये और उसने पहले कच्चे फिर पक्के मकान बनाकर रहना शुरू कर दिया।

(vi) भोजन की सुलभता– नदी—घाटियों में मनुष्यों के लिए पर्याप्त भोजन तथा पशुओं के लिए हरा—भरा चारा सुगमता से उपलब्ध था।

नदियों की घाटियों की जीवन—अनुकूल परिस्थितियों के परिणामस्वरूप ही विश्व की प्राचीन सभ्यताएँ इन्ही स्थानों पर फली—फूलीं।

2. मेसोपोटामिया की सभ्यता की विशेषताएँ बताइए।

उ०– **मेसोपोटामिया सभ्यता की विशेषताएँ–** मेसोपोटामिया सभ्यता की निम्नलिखित विशेषताएँ थीं—

(i) मेसोपोटामिया के लोग देवी—देवताओं को प्रसन्न करने के लिए पशुओं की बलि चढ़ाते थे।

(ii) मेसोपोटामिया सभ्यता के लोग अन्धविश्वासी होते थे। वे पुरोहितों, ज्योतिषियों, जादू—टोना तथा भूत—प्रेत पर बहुत अधिक विश्वास करते थे। उनका मानना था कि अकाल, बाढ़ तथा महामारी देवी—देवताओं का प्रकोप है।

(iii) मेसोपोटामिया सभ्यता के शिल्पकार निपुण तथा परिश्रमी थे। मिट्टी तथा धातुओं के बर्तन बनाने में वे बहुत निपुण थे। शीशे के बर्तन भी सबसे पहले मेसोपोटामिया के लोगों ने ही बनाए थे।

(iv) मेसोपोटामिया के विदेशों से व्यापारिक सम्बन्ध थे। इस सभ्यता के लोग सोना, चाँदी, ताँबा तथा कीमती लकड़ी आदि का आयात करते थे। इनका व्यापार जल तथा थल दोनों मार्गों से होता था। उस समय बाबुल(बेबीलोन) एक विशाल व्यापारिक केन्द्र था।

(v) मेसोपोटामिया सभ्यता के लोग परलोक के स्थान पर इहलोक की चिन्ता अधिक करते थे। उनका विश्वास था कि परलोक अन्धकार और कष्टों का डेरा है।

(vi) मेसोपोटामिया की सभ्यता की सबसे आश्चर्यजनक उपलब्धि तथा देन वहाँ की लिपि है। एक व्यवस्थित लेखन—कला का विकास सर्वप्रथम लगभग 3000 ई०पू० में सुमेर के निवासियों ने किया जिसे **'कीलाकार लिपि'**(cuneiform script) कहते हैं। उस लिपि में लगभग 250 अक्षर तथा शब्द थे जिन्हें चिह्नों, चित्रों तथा संकेतों द्वारा व्यक्त किया जाता था। बाद में यह लिपि चित्र प्रधान लिपि से बदलकर रेखा प्रधान लिपि के साथ ध्वनि बोधक लिपि बन गई। इसे चिकनी मिट्टी की गीली पट्टियों के चिकने धरातल पर नहन्नी जैसे तेज औजार से लिखा जाता था। पट्टियों को बाद में आग में पका लिया जाता था। सुमेरिया की खुदाई में एक ऐसा पुस्तकालय मिला है जिसमें लगभग 30 हजार पट्टियाँ रखी थीं। इन पट्टियों पर कहानियाँ, महाकाव्य, गीत काव्य, धार्मिक उपदेश आदि मिले हैं। इससे स्पष्ट है कि मेसोपोटामिया के निवासी साहित्य प्रेमी थे। इस लिपि के अनेक नमूने बेबीलोन में भी मिले हैं।

(vii) मेसोपोटामिया के लोगों ने गणित, विशेषकर अंकगणित तथा रेखागणित में महत्वपूर्ण प्रगति की। उन्होंने 1, 10, तथा 100 के चिह्नों की खोज की। उन्होंने ही पूरे दिन को 24 घण्टों में, वर्ष को 12 महीनों में, एक घण्टे को 60 मिनट में, 1 मिनट को 60 सेकण्ड में तथा वृत्त को 360 अंशों में विभक्त किया था। उनकी गिनती में 60 के अंक के विशेष महत्व के कारण

उनकी गणना प्रणाली **'षट् दाशमिक प्रणाली'** कहलाती है।

रेखागणित के क्षेत्र में उन्होंने उस सिद्धान्त को जान लिया था जिसे बाद में **पाइथागोरस के प्रमेय** का नाम दिया गया। भवन—निर्माण तथा दूरी का अनुमान लगाने में यह सिद्धान्त इनके लिए अत्यंत सहायक सिद्ध हुआ।

(viii) मेसोपोटामिया के प्रत्येक नगर में एक प्रधान मन्दिर होता था। इस मन्दिर का देवता नगर का संरक्षक देवता माना जाता था। नगर के संरक्षक देवता के लिए नगर के 'पवित्र क्षेत्र' में किसी पहाड़ी या ईंटों के बने चबूतरे पर मन्दिर बनवाया जाता था, इस मन्दिर को 'जिगुरात' कहते थे।

(ix) खगोल विद्या या ज्योतिषशास्त्र के क्षेत्र में भी इन लोगों ने विशेष उन्नति की थी। वे दिन व रात की अवधि का हिसाब लगा सकते थे। वे सूर्योदय, सूर्यास्त तथा चंद्रोदय व चंद्रास्त का ठीक समय बता सकते थे। उन्होंने सूर्यग्रहण तथा चन्द्रग्रहण के कारणों की खोज की। सूर्य घड़ी तथा धूप घड़ी का आविष्कार भी इसी सभ्यता के लोगों ने किया था।

(x) मेसोपोटामिया के निवासियों ने चन्द्रमा की गति पर आधारित 'चन्द्र पंचांग' का भी आविष्कार किया था। उनका पंचांग अशुद्ध था, क्योंकि 'चाँद वर्ष' 'सौर वर्ष' से 11 दिन कम होता है। इस अशुद्धि के होते हुए भी यह मेसोपोटामिया के लोगों की एक महान उपलब्धि थी।

3. मिस्र की सभ्यता को स्पष्ट करते हुए उसकी विशेषताएँ बताइए।

उ०- **मिस्र की सभ्यता–** मिस्र के बारे में प्रसिद्ध इतिहासकार प्रो० मायर्स का कहना है कि ''मिस्र नील नदी का वरदान है और नील नदी की बराबरी पृथ्वी पर कोई नदी नहीं कर सकती।

मिस्र की भौगोलिक स्थिति– मिस्र देश अफ्रीका महाद्वीप के उत्तर—पूर्व में स्थित है। यह नील नदी की घाटी में स्थित है। मिस्र के उत्तर में भूमध्य सागर, पश्चिम में सहारा मरुस्थल, दक्षिण में घने जंगल तथा पूर्व में लाल सागर है। नील नदी मिस्र के पूर्वी भाग में बहती है और 50 किमी चौड़ी तथा 800 किमी लम्बी भूमि को उपजाऊ बनाती है। नील नदी की तीन सहायक नदियाँ नीली नील, अतबारा और श्वेत—नील हैं।

मिस्र सभ्यता की खोज– फ्रांस के नेपोलियन बोनापार्ट ने सन् 1798 में मिस्र पर आक्रमण किया था। इस आक्रमण के समय उसे नील नदी के मुहाने पर 'रोजीटा' नामक स्थान पर एक पत्थर का शिलालेख मिला, जिसकी लम्बाई 1.12 मीटर तथा चौड़ाई 70 सेमी० थी इस शिलालेख पर मिस्री लिपि में लिखे लेख को **शाम्पोल्यो** ने सन् 1818 में पढ़कर इस सभ्यता का रहस्य खोज निकाला। इस शिलालेख पर लेख यूनानी भाषा, मिस्र की साम्राज्य भाषा और चित्रलिपि में खुदे हुए थे। यह शिलालेख पेरिस के संग्रहालय में आज भी सुरक्षित है। इसके बाद सन् 1922 में अंग्रेज पुरातत्ववेत्ता **हार्वड कार्टर ने** प्राचीन मिस्री सम्राट **तूतेनखामेन** के पिरामिड के गुप्त द्वार की खोज करके मिस्र की प्राचीन सभ्यता एवं संस्कृति को प्रकाश में लाने का सफल कार्य किया।

मिस्र सभ्यता की विशेषताएँ– मिस्र सभ्यता की विशेषताएँ निम्नलिखित थीं—

(i) मिस्र की शासन—व्यवस्था धर्म पर आधारित थी। यहाँ की शासन व्यवस्था का प्रधान अधिकारी सम्राट ही होता था जो फराओ कहलाता था। देशवासी उसकी देवता की तरह पूजा करते थे। मिस्र में राजा का पद वंशानुगत था।

(ii) मिस्र का समाज तीन वर्गों—उच्च, मध्यम और निम्न वर्ग में विभाजित था। उच्च वर्ग में फराओ, सामन्त, पुरोहित, दरबारी, अमीर व उच्च पदाधिकारी सम्मिलित थे। इस वर्ग के लोगों का जीवन वैभवपूर्ण एवं विलासमय था। मध्यम वर्ग में व्यापारी, बुद्धिजीवी, शिल्पकार और लिपिक आते थे। इस वर्ग के लोगों की दशा भी बहुत अच्छी थी। तीसरा वर्ग निम्न वर्ग था, जिसमें किसान, मजदूर तथा दास सम्मिलित थे। इस वर्ग के लोगों की दशा शोचनीय थी।

(iii) मिस्र में मकान चूने तथा पत्थर से बनाए जाते थे। मकानों की दीवारों पर आकर्षक चित्रकारी की जाती थी। इस सभ्यता में मकान प्राय: एक पंक्ति में और कई मंजिलों के बने होते थे। फराओ के राजप्रसाद बहुत ही विशाल, भव्य तथा कलात्मक होते थे।

(iv) मिस्र के लोग फैशन से भरपूर जीवनयापन करते थे। यहाँ के लोग धोती पहनते थे और स्त्रियाँ कटिवस्त्र पहनती थीं। अमीर लोग सुन्दर वस्त्र तथा सोने के आभूषण पहनते थे।

(v) मिस्रवासी त्योहारों को बहुत धूमधाम से मनाते थे। प्राचीन मिस्र में **नील देवता**, **ईश देवी**, **सत्य की देवी** तथा **दीपों का त्योहार** पूर्ण हर्षोल्लास के साथ मनाए जाते थे। पक्षियों का युद्ध, मछली पकड़ना, मुक्केबाजी, कुश्ती, नटबाजी, नाच—गाना आदि मिस्रवासियों के मनोरंजन के प्रमुख साधन थे।

(vi) मिस्री समाज में महिलाओं को सम्मान की दृष्टि से देखा जाता था। उन्हें पुरुषों के समान सामाजिक और राजनीतिक अधिकार प्राप्त थे। मिस्र में बहुविवाह, तलाक प्रथा, दहेज प्रथा आदि का प्रचलन था। **नफरतीती** एक गौरवपूर्ण महिला थी जो **इख्नातन** की महारानी थी। मिस्र की स्त्रियाँ सौन्दर्य और कला की विशेष प्रेमी थी। मिस्र की रानी **क्लियोपेट्रा** का नाम आज भी विख्यात है।

(vii) मिस्रवासी अनेक प्रकार के उद्योग—धन्धों में निपुण थे। वे पत्थर काटने, आभूषण बनाने, भवन बनाने, बर्तन बनाने तथा

कपड़ा बुनने की कला में बहुत निपुण थे। तूतेनखामेन की समाधि से मिली असंख्य वस्तुएँ इस काल के उद्योग धन्धों पर प्रकाश डालती हैं।

4. मिस्र के पिरामिडों पर एक लेख लिखिए।

उ०– **मिस्र के पिरामिडों की विशेषताएँ–** मिस्र के पिरामिडों की विशेषताएँ निम्नलिखित हैं—

(i) ये पिरामिड त्रिभुजाकार विशालकाय भवन है जिनमें मिस्र के शासकों के शव अब भी सुरक्षित रखे हुए हैं।

(ii) मिस्र के फराओ (शासकों) ने लगभग 70 पिरामिडों का निर्माण कराया था जिनमें 30 बड़े पिरामिड हैं।

(iii) इन पिरामिडों में सबसे बड़ा तथा सबसे अधिक प्रसिद्ध काहिरा के निकट गीजा का पिरामिड है जो 13 एकड़ भूमि पर बना हुआ है। इसे 2650 ई०पू० के आस—पास मिस्र के सम्राट खुफु ने बनवाया था। इसकी लम्बाई 755 फुट तथा ऊँचाई 484 फुट है। इसमें ढाई—ढाई टन के 23 लाख पत्थर (शिलाखण्ड) लगे हैं। इन पत्थरों के जोड़ने में एक बाल की भी जगह नहीं छोड़ी गई है। इस पिरामिड के निर्माण में लगभग एक लाख व्यक्तियों को 20 वर्ष का समय लगा था। इस विशालकाय पिरामिड की अद्‌भुत निर्माण—कला को देखते हुए इसे विश्व का पहला आश्चर्य माना जाता है।

(iv) इन पिरामिडों में बनी सुरंगे, फर्श तथा अन्य कलात्मक कारीगरी भी लोगों को आश्चर्यचकित कर देती हैं।

(v) इन पिरामिडों के अन्दर मिस्र के बादशाहों की ममियाँ (सुरक्षित शव) तथा उनके साथ वस्त्र, भोजन—सामग्री, आभूषण, फर्नीचर आदि वस्तुएँ दफन हैं।

(vi) इन पिरामिडों की दीवारों पर युद्ध, शिकार, जुलूस आदि के चित्र बने हैं जिनसे तत्कालीन मिस्रवासियों की जीवन सम्बन्धी महत्वपूर्ण जानकारी प्राप्त होती है।

(vii) पिरामिड मिस्र की स्थापत्यकला के अद्‌भुत नमूने हैं। लोग यह सोचकर दंग हैं कि इतनी बड़ी मात्रा में पत्थरों को इतनी ऊँचाई तक ले जाकर उन्हें किस प्रकार एक—दूसरे के साथ जोड़ा गया होगा। लोग यह देखकर भी हैरान है कि हजारों वर्ष बीत जाने के बाद भी ये पिरामिड आँधी, वर्षा और तूफान को सहन करके आज भी ज्यों—के—त्यों खड़े हैं।

मिस्र के पिरामिड–

मिस्रवासी पारलौकिक जीवन के प्रति आस्था रखते थे। मिस्रवासियों का यह दृढ़ विश्वास था कि मृत्यु के बाद भी आत्मा एवं शरीर दोनों जीवित रहते हैं। मिस्रवासी ममी बनाने या मृतक के शरीर को दीर्घकाल तक सुरक्षित रखने की कला में निपुण थे। वे मृत्यु के पश्चात्‌ शवों में एक प्रकार के रसायन का लेप लगाकर उसे अच्छे वस्त्र में लपेटकर लकड़ी के सन्दूक में बन्द करके एक कक्ष में दफना देते थे। इस प्रकार से सुरक्षित रखे गए शवों को 'ममी' कहते हैं। सम्राटों एवं साम्राज्ञियों की समाधियों पर विशाल स्मारकों का निर्माण भी किया जाता था जिन्हें मिस्र के पिरामिड कहते हैं।

5. हेरोग्लिफिक लिपि को स्पष्ट कीजिए।

उ०– **हेरोग्लिफिक लिपि–**

मिस्र की लिपि हेरोग्लिफिक लिपि (Hieroglyphic Script) कहलाती है, जिसका अर्थ है— पवित्र लिपि। पहले मिस्रवासियों ने **चित्र–लिपि** का प्रयोग किया, किन्तु बाद में उन्होंने 24 अक्षरों की वर्णमाला तैयार की। इस लिपि में केवल व्यंजन थे, स्वर वर्ण नहीं लिखे जाते थे। बाद में विचारों को व्यक्त करने के लिए चिह्नों (संकेतों) का प्रयोग प्रारम्भ कर दिया। चिन्हों की संख्या बढ़ते—बढ़ते 500 हो गई। कुछ ही समय बाद मिस्र में लेखन कला का विकास हुआ। मिस्रवासी पेपिरस (Papyrus) नामक पेड़ के पत्तों पर सरकंडे की कलम से लिखते थे।

हेरोग्लिफिक लिपि के पढ़े जाने की कहानी भी बड़ी रोचक है। 1798 ई० में फ्रांसीसी विजेता नेपोलियन ने मिस्र पर आक्रमण किया। उसके साथ गए शैम्पोल्पी नामक फ्रांसीसी विद्वान को एक पत्थर मिला, जिस पर तीन लिपियों (हेरोग्लिफिक, डिमोटिक (अन्य मिस्री लिपि) तथा यूनानी) में एक अभिलेख उत्कीर्ण था। यूनानी लिपि की सहायता से वह हेरोग्लिफिक लिपि को पढ़ने में सफल हो गया। बाद में यह पत्थर 'रोसेटटा पत्थर' के नाम से विख्यात हुआ। इस लिपि को पढ़े जाने के बाद प्राचीन मिस्रवासियों के जीवन के अनेक पहलुओं को समझना सुगम हो गया।

6. चीन की सभ्यता की विशेषताएँ बताइए।

उ०– **चीन की सभ्यता की विशेषताएँ–** चीन की सभ्यता की निम्नलिखित विशेषताएँ हैं—

(i) चीन की सभ्यता में समाज का विभाजन अनेक वर्गों में हुआ था। चीनी समाज में साहित्यकारों और बुद्धिजीवियों को आदर और सम्मान की दृष्टि देखा जाता था।

(ii) चीन में संयुक्त परिवार प्रथा प्रचलित थी। पिता ही परिवार का मुखिया होता था। पिता की मृत्यु के बाद ज्येष्ठ (बड़ा) पुत्र उत्तराधिकारी होता था। चीन में पर्दा—प्रथा तथा दास—प्रथा दोनों प्रचलित थीं।

(iii) चीनी समाज में नैतिकता को विशेष महत्व दिया जाता था। चीनी समाज में अमीर व गरीब का बड़ा अंतर था। अमीर लोग मांस, मछली तथा अन्य पदार्थों का उपयोग करते थे, जबकि गरीबों को भोजन में मोटा अनाज जैसे बाजरा, ज्वार इत्यादि

मिलता था।

(iv) चीनी सभ्यता के लोग साधारण वस्त्र धारण करते थे। आरम्भिक समय में वे जूट से बने कपड़े पहनते थे। चीनी महिलाएँ कन्धे से एड़ी तक का एक चोगानुमा वस्त्र पहनती थीं और फूलों तथा पंखों से अपने बालों को सजाती थीं।

(v) चीनी सभ्यता के लोगों की आय का मुख्य स्रोत कृषि थी। उपजाऊ भूमि तथा सिंचाई की सुविधाओं ने कृषि के विकास में अभूतपूर्व योगदान दिया। यहाँ पर चाय, बाजरा, ज्वार, मक्का, गेहूँ, चावल आदि फसलें उगायी जाती थीं। कच्चा रेशम उत्पादन के लिए यह क्षेत्र प्रसिद्ध था।

(vi) चीनी सभ्यता के लोग मिट्टी के कलात्मक बर्तन, लकड़ी की उपयोगी वस्तुएँ व हाथी दाँत की कलात्मक वस्तुएँ बनाने का व्यवसाय करते थे। ये लोग सोने—चाँदी के आभूषण बनाने में भी कुशल थे।

(vii) चीन का व्यापार भी उन्नत दशा में था। चीनी सभ्यता के लोग स्थल और जलमार्गों से व्यापार करते थे। चीन से रेशम, बर्तन, कागज, चीनी मिट्टी की बनी वस्तुएँ, लकड़ी की वस्तुएँ तथा सोने—चाँदी के आभूषण निर्यात किए जाते थे। इस समय वस्तु—विनिमय का प्रचलन भी था।

(viii) पाँचवी शताब्दी में चीन में सोने, चाँदी, ताँबे आदि के सिक्के बनने लगे थे।

(xi) चीन की लिपि बहुत पुरानी है। इस लिपि के 1400 ई०पू० के नमूने हड्डियों पर अंकित मिले हैं। चीन की लिपि में लगभग 40 हजार संकेत बिंदु हैं। चीन की लिपि ने देश में सांस्कृतिक एकता स्थापित करने में महत्वपूर्ण योगदान दिया। जापान, कोरिया तथा वियतनाम की लिपियाँ चीन की लिपि व भाषा से प्रभावित हैं।

(x) चीन में कागज के प्रचलन के बाद उच्च कोटि के साहित्य की रचना हुई। चीन में अब इतिहास लेखन का कार्य भी प्रारम्भ हो गया था। स्यु—मा—च्येन चीन का प्रथम इतिहासकार था।

(xi) प्राचीनकाल में चीन के लोग मूर्तिकला में भी काफी निपुण थे। मिट्टी, पत्थर, हाथी दाँत तथा कांसे की बनी अनेक मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं। ये समस्त मूर्तिया शिकार, रथ, सवार, युद्ध, पशुओं आदि से सम्बन्धित हैं।

(xii) खुदाई में बर्तनों तथा मन्दिरों की दीवारों पर चित्रकारी के सुन्दर नमूने मिले हैं। चीन निवासी प्राकृतिक दृश्यों तथा ऐतिहासिक घटनाओं का चित्रण करने में बहुत कुशल थे।

(xiii) चीन के निवासियों ने विज्ञान के क्षेत्र में भी अभूतपूर्व उन्नति की। चीन के निवासी मानव शरीर के विभिन्न रोगों तथा उनके उपचार के सम्बन्ध में विशेष जानकारी रखते थे। चीनवासियों को अपने देश चीन के साथ—साथ अन्य देशों के भौगोलिक विस्तार का भी अच्छा ज्ञान था। भूकम्प विज्ञान की खोज भी चीन के निवासियों द्वारा ही की गई।

7. कन्फ्यूशियस का परिचय देते हुए उसके उपदेशों की विवेचना कीजिए।

उ०– कन्फ्यूशियस का परिचय– कन्फ्यूशियस (551–479 ई०पू०) चीन के एक महान दार्शनिक, समाज—सुधारक तथा धर्म नेता थे। वे महावीर तथा गौतम के समकालीन थे। उनका जन्म चीन के 'लू' प्रान्त में एक अभिजात कुल में हुआ था। उन्होंने सामाजिक जीवन के उत्थान तथा शासन—व्यवस्था में सुधार की दृष्टि से उपदेश दिए। चीन की जनता ने उनके उपदेशों को ग्रहण किया। चीन के तत्कालीन हान शासकों ने उनका स्वागत किया। कन्फ्यूशियस के उपदेश उनकी पाँच धर्म—पुस्तकों में संकलित हैं जिन्हें **पाँच कालजयी ग्रन्थ** कहते हैं।

कन्फ्यूशियस के उपदेश–

(i) परोपकार– कन्फ्यूशियस ने परोपकार पर अधिक बल दिया। परोपकार को उन्होंने **जेन** कहा।

(ii) सद्व्यवहार– उन्होंने शिष्टाचार पर बल दिया। उनका कहना था— जैसा व्यवहार तुम अपने लिए चाहते हो, वैसा ही व्यवहार तुम दूसरों के साथ करो।

(iii) सदाचरण पर बल– कन्फ्यूशियस का उपदेश है— सभी का सम्मान करो, अपनी प्रतिष्ठा की भाँति दूसरों की प्रतिष्ठा की भी रक्षा करो, ईमानदार बनों, दयावान बनकर दूसरों के दु:ख का अनुभव करो। मनुष्य को न्याय, ईमानदारी, सच्चाई, कर्तव्य—पालन आदि नैतिक गुणों पर दृढ़ रहना चाहिए।

(iv) बड़ों का सम्मान– हमें माता—पिता, गुरुजनों तथा पूर्वजों का पूर्ण सम्मान करना चाहिए।

(v) गलती मानना– गलती मान लेना मनुष्य का एक बड़ा गुण है। उसके अनुसार, '' एक व्यक्ति जो गलती करता है और अपनी गलती को ठीक नहीं करता वह एक और गलती करता है।''

(vi) मानव जाति की उन्नति– आदर्श मनुष्य वह है जो अपनी उन्नति के साथ—साथ समस्त मानव जाति की उन्नति की कामना करे। इसके लिए उसमें तीन गुण होने चाहिए— (क) बुद्धिमत्ता, (ख) साहस तथा (ग) परोपकार की भावना।

(vii) सम्बन्धों का महत्व– कन्फ्यूशियस के अनुसार व्यक्तिगत तथा सामाजिक सम्पन्नता के लिए इन पाँच सम्बन्धों का पालन आवश्यक है— (क) शासक और प्रजा, (ख) पिता और पुत्र, (ग) पति और पत्नी, (घ) बड़ा और छोटा भाई तथा (ड) मित्र और अमित्र।

कन्फ्यूशियस के उपर्युक्त उपदेशों से स्पष्ट है कि उन्होंने किसी नए धर्म की स्थापना नहीं की बल्कि वे तो मानव—आचरण में नैतिकता लाकर सम्पूर्ण राष्ट्र तथा मानव जाति का उत्थान तथा कल्याण चाहते थे। अत: कन्फ्यूशियस धार्मिक नेता होने की अपेक्षा समाज—सुधारक अधिक थे।

❖ **मानचित्र सम्बन्धी अभ्यास कार्य**

अध्यापक की सहायता से विद्यार्थी स्वयं करें।

❖ **प्रोजेक्ट कार्य**

अध्यापक की सहायता से विद्यार्थी स्वयं करें।

3

हड़प्पा सभ्यता
(सिन्धु घाटी की सभ्यता)

अभ्यास

❖ **बहुविकल्पीय प्रश्न**

उ०– बहुविकल्पीय प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्य—पुस्तक के पृष्ठ संख्या—32 का अवलोकन कीजिए।

❖ **अतिलघु उत्तरीय प्रश्न**

उ०– अतिलघु उत्तरीय प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्य—पुस्तक के पृष्ठ संख्या—32 का अवलोकन कीजिए।

❖ **लघु उत्तरीय प्रश्न**

1. हड़प्पा सभ्यता की खोज किस प्रकार हुई ?

उ०– **हड़प्पा सभ्यता की खोज–** इस सभ्यता की जानकारी सर्वप्रथम पंजाब के हड़प्पा नामक स्थान पर खुदाई से प्राप्त हुई, इसलिए इसे हड़प्पा सभ्यता कहा जाता है। इस सभ्यता का जन्म तथा विकास सिन्धु नदी की घाटी में हुआ इसलिए यह सिन्धु घाटी की सभ्यता के नाम से विख्यात है।

सन् 1921 ई० में भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण विभाग के महानिदेशक जॉन मार्शल के निर्देश पर दयाराम साहनी ने पंजाब (पाकिस्तान) के मॉण्टगोमरी जिले में रावी नदी के तट पर स्थित हड़प्पा के टीले का उत्खनन किया, जिससे ज्ञात हुआ कि एक अत्यन्त प्राचीन सभ्यता के पुरावशेष हड़प्पा के इन टीलों में छिपे हुए हैं। अगले वर्ष 1922 ई० में **आर० डी० बैनर्जी ने** सिन्ध प्रान्त के लरकाना जिले में सिन्धु नदी के किनारे पर स्थित मोहनजोदड़ो के टीले से हड़प्पा के टीले से मिलते—जुलते पुरावशेष प्राप्त किए। 1931ई० तक इस सभ्यता से सम्बन्धित अनेक स्थानों का पता चल गया था। भारत की स्वतन्त्रता—प्राप्ति के बाद भारतीय पुरातत्व विभाग ने पंजाब, हरियाणा, राजस्थान, जम्मू—कश्मीर, गुजरात, तथा उत्तर प्रदेश के अनेक स्थानों पर खुदाई का कार्य आरम्भ किया तथा वहाँ भी इस सम्यता के अवशेष प्राप्त हुए।

2. हड़प्पा सभ्यता के स्त्रोत बताइए।

उ०– हड़प्पा सभ्यता के स्त्रोत, हड़प्पा तथा मोहन जोदड़ो नामक स्थानों की खुदाई से प्राप्त अनेक मकानों, सड़कों, कुओं, नालियों, बर्तनों, मूर्तियों, वस्त्रों, आभूषणों आदि के अवशेष हैं।

3. हड़प्पा सभ्यता के निर्माताओं की अवधारणा स्पष्ट कीजिए।

उ०– **हड़प्पा सभ्यता के निर्माता–** हड़प्पा सभ्यता के निर्माताओं को लेकर विद्वानों में अभी तक मतभेद हैं। कुछ विद्वानों का मानना है कि हड़प्पा सभ्यता के निर्माता वे असुर थे, जिन्हें बाद में आर्यो ने पराजित करके इस क्षेत्र से निकाल दिया था। कुछ इतिहासकारों का मानना है कि इस सभ्यता के निर्माण में द्रविड़ और आर्य दोनों ही जातियों के लोग थे। कुछ विद्वान भारत के मूल निवासी द्रविड़ों को इस सभ्यता का जन्मदाता मानते हैं। कुछ विद्वानों का मत है कि आर्यो ने इस सभ्यता के निर्माण में सहयोग दिया था। संक्षेप में यही कहना उचित है कि हड़प्पा सभ्यता के निर्माताओं को लेकर अब भी मतभेद की स्थिति बनी हुई हैं।

4. हड़प्पा सभ्यता की दो विशेषताएँ बताइए।

उ०– **हड़प्पा सभ्यता की दो विशेषताएँ निम्नलिखित है–**

(i) हड़प्पा सभ्यता की विशेषताओं में उसके नगरों की योजना आकर्षक थी। हड़प्पा सभ्यता के नगरों की अपेक्षा आधुनिक भारत के नगर चण्डीगढ़ और इंग्लैंड के प्रसिद्ध नगर लंकाशायर जैसे नियोजित नगरों के साथ की जाती है। इन नगरों की

सड़कें बहुत चौड़ी थीं, कुछ सड़कों की चौड़ाई 20 फुट तक थी। ये सड़कें एक–दूसरे को समकोण पर काटती थीं।

(ii) हड़प्पावासी भवन निर्माण कला में बहुत निपुण थे। इस सभ्यता में एक कमरे के मकान से लेकर बड़े–बड़े भवन बनाए जाते थे। इस काल के भवनों को तीन प्रकार की श्रेणियों में विभाजित किया जाता था– (क) रहने के आवास, (ख) पूजागृह या सार्वजनिक भवन तथा (ग) विशाल स्नानागार।

5. हड़प्पा सभ्यता की की मूर्ति कला को समझइए।

उ०– हड़प्पा घाटी की खुदाई में मनुष्यों तथा पशुओं की अनेक मूर्तिया मिली हैं, जिनसे स्पष्ट होता है कि हड़प्पावासी मूर्ति बनाने की कला में दक्ष थे। ये मूर्तिया मिट्टी, पत्थर तथा कांसे से बनाई जाती थीं और उन्हें रँगा भी जाता था। कांसे की बनी नर्तकी की मूर्ति मोहनजोदड़ो से प्राप्त हुई है। हड़प्पा घाटी में पशु–पक्षियों की आकृतियों के, बच्चों के बहुत–से खिलौने भी मिले हैं। इन मूर्तियों में सजीवता दिखाई देती है और इनमें शरीर के विभिन्न अंगों को स्पष्ट तथा वास्तविक रूप में दर्शाया गया है। जॉन मार्शल का कहना है, ''ये मूर्तियाँ इतनी सुन्दर हैं कि कोई भी यूनानी कलाकार इनको अपनी कृति (रचना) कहने में गर्व का अनुभव करेगा।''

6. हड़प्पा सभ्यता का अन्त किस प्रकार हुआ?

उ०– **हड़प्पा सभ्यता या हड़प्पा संस्कृति का अन्त–** हड़प्पा घाटी की सभ्यता का अन्त क्यों, कब और कैसे हुआ? इसका कोई ठोस प्रमाण हमें उपलब्ध नहीं होता। अनेक विद्वानों ने अनुमान के आधार पर इस सभ्यता के विनाश के कई कारण बताए हैं, जिनमें भूकम्प, बाढ़, अकाल, विघटन तथा बाह्य आक्रमण प्रमुख हैं। वास्तव में हड़प्पा सभ्यता के विनाश का कारण जलवायु की बढ़ती हुई विषमता थी, जिससे संघर्ष करते–करते हड़प्पा घाटी का मानव हार गया और एक दैदीप्यमान सभ्यता इतिहास के पन्नों में विलीन हो गई।

❖ विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

1. हड़प्पा सभ्यता का विस्तार स्पष्ट कीजिए।

उ०– **हड़प्पा सभ्यता का विस्तार–** हड़प्पा सभ्यता का क्षेत्र बहुत व्यापक है। इस सभ्यता के प्रमुख नगर हड़प्पा, मोहनजोदड़ो, चन्हूदड़ों (पाकिस्तान); रोपड़, संघोल, चण्डीगढ़ (पंजाब); राखीगढ़ी, बनवाली, मीताथल (हरियाणा); आलमगीरपुर (उत्तर प्रदेश); कालीबागान (राजस्थान); लोथल और रंगपुरी (गुजरात) हैं। कुछ इतिहासकारों के अनुसार हड़प्पा सभ्यता दक्षिण में हैदराबाद, कर्नाटक तथा नीलगिरी की पहाड़ियों तक विस्तारित है, परन्तु इसके पक्ष में अब तक कोई ठोस प्रमाण नहीं मिले हैं। इस सभ्यता का ज्ञान केवल खुदाई में प्राप्त संकेतों के आधार पर ही किया गया है। जो लिखित प्रमाण मिले भी हैं, उन्हें अभी तक इतिहासकार समझ ही नहीं पाए हैं। यह सभ्यता उत्तरी तथा दक्षिणी भारत के एक बहुत बड़े भाग में फैली हुई थी। **प्रो० चाइल्ड** के अनुसार, ''उत्तर में मांडो (जम्मू–कश्मीर) से लेकर दक्षिण में दाइमाबाद (उत्तरी महाराष्ट्र) तथा पश्चिम में सुतकंगदोर (बलूचिस्तान) से लेकर पूर्व मेरठ (उत्तर प्रदेश) के आलमगीरपुर तक इस सभ्यता का विस्तार था।'' **सर जॉन मार्शल** के अनुसार, ''यह सभ्यता मिस्र, मेसोपोटामिया आदि की सभ्यताओं के समान विकसित एवं प्राचीन थी तथा कुछ क्षेत्रों में तो उनसे भी अधिक विशिष्ट थी।''

2. हड़प्पा सभ्यता का उद्भव को स्पस्ट कीजिए।

उ०– **हड़प्पा सभ्यता का उद्भव–** हड़प्पा सभ्यता का उद्भव ताम्र पाषाण युग में भारतीय उपमहाद्वीप के उत्तर पश्चिम में 2500 ई० पू० से 1700 ई० पू० के मध्य हुआ। हड़प्पा सभ्यता के मूल निवासियों और निर्माताओं के सम्बन्ध में विद्वानों में मतैक्य नहीं। कुछ विद्वान भारत के मूल निवासियों प्रविडो को इस सभ्यता का जन्मदाता मानते हैं जबकि कुछ विद्वानों का मत है कि आर्यो ने इस सभ्यता के निर्माण में सहयोग दिया है, कुछ विद्वानों का मानना है कि इस सभ्यता के निर्माता वे असुर लोग थे, जिन्हे बाद में आर्यो ने पराजित करके इस क्षेत्र से निकाल दिया था। मेसोपोटामिया और मिस्त्र में हड़प्पा सभ्यता के अवशेष मिले हैं। मेसोपोटामिया सभ्यता का काल 3,200 ई० पू० से 2,700 ई० पू० माना जाता है। इससे यह अनुमान लगाया जाता है कि हड़प्पा सभ्यता भी आज से लगभग 5,000 वर्ष पुरानी है।

हड़प्पा सभ्यता भारत की सबसे पहली ज्ञात सभ्यता है। इस सभ्यता के प्रमुख स्थल के नाम पर ही इसे **हड़प्पा संस्कृति** के नाम से जाना जाता है। यह सभ्यता मेसोपोटामिया तथा मिस्त्र की सभ्यता से काफी मिलती–जुलती है। हड़प्पा सभ्यता के जिन कुछ महत्वपूर्ण स्थलों की पहले खुदाई की गई, वे सभी सिन्धु नदी की घाटी में स्थित थे। यही कारण है कि इसको **सिन्धु घाटी की सभ्यता** के नाम से भी पुकारा जाता है। इसको एक अन्य नाम 'सैन्धव सभ्यता' से भी जाना जाता है।

बीसवीं शताब्दी के दो दशकों तक संसार को इस बात का ज्ञान था कि भारत में भी हजारों वर्ष पूर्व एक उन्नत सभ्यता विद्यमान

थी। इस सभ्यता का आभास सर्वप्रथम उन्नीसवीं शताब्दी में पुरातत्ववेत्ता **कनिंघम** को हुआ, जिन्होंने पाषाण काल की सामग्री में अनेक मोहरें प्राप्त की थीं। उस समय इन मोहरों का गहन अध्ययन नहीं हो पाया था। सन् 1920 ई० में श्री **राखालदास बनर्जी** ने हड़प्पा में कुषाणकालीन बौद्ध स्तूप की खोज करते—करते भारत की प्राचीनतम सभ्यता की खोज कर डाली।

हमारे देश की प्राचीन सभ्यता के दर्शन सिन्धु नदी की तलहटी में हुए हैं। सिन्धु घाटी की सभ्यता भारत की प्राचीन और विकसित नगरीय सभ्यता थी। सैन्धव सभ्यता या हड़प्पा संस्कृति सिन्धु नदी की घाटी में फैली हुई थी। इसके चिह्न पंजाब, गुजरात, राजस्थान और उत्तर प्रदेश के कुछ भागों में भी मिले हैं। यहाँ से प्राप्त अवशेषों से सिद्ध होता है कि यह विश्व की पुरातन यूनान, रोम, मेसोपोटामिया और मिस्र आदि की सभ्यताओं की तुलना में बहुत उच्च कोटि की थी।

सर जॉन मार्शल के निरीक्षण में सन् 1921 ई० में **दयाराम साहनी** व **माधोराम वत्स** ने हड़प्पा में तथा सन् 1922 ई० में **राखालदास बनर्जी** ने मोहनजोदड़ो में खुदाई कराई। खुदाई में पूरे नगर के भवनों तथा अन्य सामग्री के अवशेष प्राप्त हुए। इनसे पता चलता है कि उस समय के लोग आज के नगरीय लोगों से भी अधिक सभ्य और सुसंस्कृत जीवन व्यतीत कर रहे थे। अन्य स्थानों से भी सिन्धु घाटी की सभ्यता के अवशेष और चिह्न प्राप्त हुए हैं। ऐसा माना जाता है कि इस विशाल क्षेत्र में सिन्धु सभ्यता के 700 से भी अधिक स्थल मौजूद हैं।

3. हड़प्पा सभ्यता की विशेषताएँ निम्नलिखित शीर्षकों के अंतर्गत बताइए।

(i) भोजन (ii) वस्त्र (iii) व्यापार (iv) लिपि (v) शासन

उ०– दिए गए शीर्षकों के अंतर्गत हड़प्पा सभ्यता की विशेषताएँ निम्नलिखित हैं—

(i) भोजन– हड़प्पावासी शाकाहारी व मांसाहारी दोनों ही प्रकार का भोजन करते थे। यहाँ के लोगों का मुख्य भोजन चावल, गेहूँ, जौ, दूध तथा सब्जियाँ था। ये लोग अपने भोजन में दूध—दही तथा मिष्ठान का प्रयोग भी करते थे। इनके घरों के पास से पशुओं की हाड्डयाँ, कछुओं की खोपड़ी तथा मछली पकड़ने के काँटे भी मिले है, जिनसे यह पता चलता है कि ये लोग मांसाहारी भी थे।

(ii) वस्त्र– खुदाई के दौरान प्राप्त कपड़ों से ज्ञात होता है कि ये लोग ऊनी, सूती व रेशमी कपड़े, मौसम के अनुसार पहनते थे। उनके वस्त्र आज—कल के वस्त्रों के सामान ही थे। खुदाई से प्राप्त बटन व सुई इस बात का प्रमाण है कि ये लोग सिलाई का ज्ञान भी रखते थे। इस सभ्यता के पुरुष धोती पहनते थे और कन्धे पर शाल या चादर डालते थे। स्त्रियाँ बेलबूटों वाला रंगीन घाघरा व धोती पहनती थीं। वे अपने सिर पर एक विशेष प्रकार का वस्त्र धारण करती थीं जो पीछे की ओर उठा होता था।

(iii) व्यापार– हड़प्पा सभ्यता में व्यापार की दशा भी बहुत अच्छी थी। ये लोग विदेशों से भी व्यापार करते थे। व्यापार के लिए जल व थल मार्गो का प्रयोग किया जाता था। हड़प्पा सभ्यता के मिस्र और मोसोपोटामिया के निवासियों के साथ व्यापारिक सम्बन्ध थे। सोना, चाँदी, शीशा आदि अफगानिस्तान से मँगवाया जाता था। खुदाई के दौरान एक कांसे की घड़ी भी प्राप्त हुई है। ऐसा अनुमान लगाया गया है कि इस घड़ी का प्रयोग किसी पैमाने के लिए किया जाता था। व्यापार सिक्कों के माध्यम से होता था। पशुओं का प्रयोग माल ढोने के लिए किया जाता था।

(iv) लिपि– हड़प्पा सभ्यता की लिपि चित्रात्मक थी। इस लिपि में लगभग 400 अक्षर चित्र तथा 60 के आस—पास मूल अक्षर प्राप्त हुए हैं। यह लिपि दाईं से बाईं ओर लिखी गई हैं। हाल ही में समुद्र के नीचे चल रहे खोज अभियान में सत्रह शब्दों का एक अभिलेख प्राप्त हुआ है। इस सभ्यता के क्षेत्रों की खुदाई से लाख, पत्थर, चमड़े आदि पर बनी लगभग 5,000 मुहरें मिली हैं। बहुत सी मुहरों पर हाथी, साँड, बारहसिंगा आदि पशुओं के चित्र तथा अन्य प्रकार के चित्र बने हुए हैं।

(v) शासन– हड़प्पा सभ्यता में लोकतान्त्रिक शासन—व्यवस्था प्रचलित थी ऐसा **हण्टर** का मत है, जबकि **मैके** का कहना है कि हड़प्पा में एक व्यक्ति का शासन था। खुदाई में मिले सामान, नाप—तौल के साधन, मूर्तिया, समान लिपि आदि के आधार पर विद्वानों का यह अनुमान है कि हड़प्पावासियों का राजनीतिक संगठन बहुत विकसित था। इस सभ्यता के शासन का संचालन उत्तर में हड़प्पा तथा दक्षिण में मोहनजोदड़ो नामक राजधानियों से होता था।

❖ **मानचित्र सम्बन्धी अभ्यास कार्य**

अध्यापक की सहायता से विद्यार्थी स्वयं करें।

❖ **प्रोजेक्ट कार्य**

अध्यापक की सहायता से विद्यार्थी स्वयं करें।

4 वैदिक समाज एवं संस्कृति

अभ्यास

❖ **बहुविकल्पीय प्रश्न**

उ०– बहुविकल्पीय प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्य—पुस्तक के पृष्ठ संख्या—40 का अवलोकन कीजिए।

❖ **अतिलघु उत्तरीय प्रश्न**

उ०– अतिलघु उत्तरीय प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्य—पुस्तक के पृष्ठ संख्या—41 का अवलोकन कीजिए।

❖ **लघु उत्तरीय प्रश्न**

1. आर्यों का संक्षिप्त परिचय दीजिए।

उ०– **आर्यों का परिचय–** विश्व की सबसे प्राचीन जाति का नाम आर्य है। इस जाति की एक शाखा प्राचीनकाल में भारत में आकर बस गई थी, इस जाति को भारतीय आर्य का नाम दिया गया। आर्य शब्द का अर्थ है— श्रेष्ठ। अन्य शब्दों में कहा जा सकता है कि ''आर्य शब्द उस जन—समूह या जाति को सम्बोधित करता है जिसका शारीरिक गठन एक विशेष प्रकार का होता है।'' आर्य जाति के लोग लम्बे कद और सुडौल काठी के होते थे, इनकी नाक लम्बी और रंग गोरा होता था। 'आर्य' शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम वेदों को लिखने वालों ने किया था। आर्य जाति की गणना आज भी विश्व की सबसे सभ्य एवं सभ्रांत जाति में की जाती है।

2. भारत में आर्यों के आगमन को संक्षेप में स्पष्ट कीजिए।

उ०– **आर्यों का भारत में आगमन–** आर्यों के भारत में आगमन को लेकर अभी तक भी इतिहासकार एक मत नहीं है। **बालगंगाधर तिलक** के अनुसार आर्य 6000 ई०पू० में भारत आए, जबकि **जैकोबी** और **विण्टरनिट्ज** यह अवधि क्रमश: 8000 ई०पू० से 3000 ई०पू० बताते हैं। **मैक्समूलर** आर्यों का प्रसार काल 2000 ई०पू० से 1000 ई०पू० के बीच मानते हैं। अधिकांश विद्वानों का मत है कि आर्य 2000 ई०पू० में ईरान से भारत आए थे। **'ऋग्वेद'** (ऋग्वेद की रचना 1500 ई०पू० के आस—पास हुई थी) में कुर्रम, गोमल तथा स्वात आदि ईरानी नदियों का उल्लेख मिलता है। आर्य पहले पंजाब में, फिर गंगा नदी की घाटी में और धीरे—धीरे सारे भारत में फैल गए। आर्यों को भारत की प्राचीन जाति द्रविड़ से युद्ध करना पड़ा, जिन्हें हराकर इन्होंने उत्तर भारत में अपनी राजनीतिक सत्ता स्थापित की। आर्यों का देश भारत के इतिहास में 'आर्यावर्त'के नाम से विख्यात है। आर्य आरम्भ में सप्त सिन्धु प्रदेश में आकर बसे थे। यह नाम इसलिए पड़ा, क्योंकि यहाँ सात नदियाँ बहती थी। ये सात नदियाँ हैं— सतलुज, व्यास, रावी, चिनाब, झेलम, सिन्धु तथा सरस्वती। आर्यों के अनुसार सरस्वती नदी सबसे पवित्र नदी थी। यही कारण था कि आर्यों ने इसी नदी के तट पर बैठकर ऋग्वेद के अनेक मन्त्रों की रचना की थी। ऋग्वेद की रचना के कारण आर्यों ने सप्त—सिन्धु प्रदेश का नाम ब्रह्मवर्त रख दिया।

3. पूर्व वैदिक काल के आर्थिक जीवन को समझाइए।

उ०– **पूर्व वैदिक काल का आर्थिक जीवन–** कृषि आर्य लोगों का प्रमुख व्यवसाय था। ये लोग जौ, गेहूँ, चावल, कपास आदि की खेती करते थे। खेती में बैलों व हलों का प्रयोग किया जाता था। सिंचाई हेतु जल की पूर्ति नदी और नालों से की जाती थी। आर्य लोग पशुओं को सबसे बड़ा धन मानते थे। ये लोग गाय, बैल, कुत्ता, घोड़ा, भेड़, बकरी आदि पशु पालते थे। ये लोग गाय को अपनी माता के समान समझते थे। आर्य लोग व्यापार भी करते थे। व्यापार की शुरूआत आर्यों ने अनाज बेचने से की। धीरे—धीरे व्यापारी वर्ग का जन्म हुआ। व्यापार के लिए भूमि और नदियों के मार्ग का प्रयोग होता था। वस्तुओं के बदले वस्तुएँ ही ली जाती थीं। इस युग में व्यापार पूरी सत्यनिष्ठा से होता था। बड़ी वस्तुओं का मूल्य गाय देकर चुकाया जाता था। कृषि के अतिरिक्त बढ़ईगिरी भी आर्यों का व्यवसाय हुआ करता था। बढ़ई रथ एवं हल बनाता था। इस युग में प्रत्येक गाँव में कुम्हार, सुनार, लुहार, जुलाहें आदि होते थे। वैद्य लोग जड़ी—बूटियों एवं वेद—मन्त्रों की सहायता से लोगों का इलाज करते थे। किसी भी कार्य के करने वाले को हीन दृष्टि से नहीं देखा जाता था।

4. उत्तर वैदिक कालीन सभ्यता को स्पष्ट कीजिए।

उ०– **उत्तर वैदिककालीन सभ्यता–** ऋग्वैदिककाल के अन्त से लेकर बौद्ध धर्म के उदय तक (1000 ई०पू० से 600 ई०पू० तक) का काल उत्तर वैदिककाल कहलाता है। सबसे पहले ऋग्वेद की रचना हुई। इसके बाद सामवेद, यजुर्वेद व अथर्ववेद आदि वेद लिखे गए। पहले की अपेक्षा आर्यों की सभ्यता बहुत भिन्न हो चुकी थी। ऋग्वैदिक काल की सभ्यता का विस्तार पंजाब तक ही था, किन्तु उत्तर वैदिककाल में आर्य सभ्यता का विस्तार पांचाल (उत्तर दोआब), कौशल (अवध), विदेह (उत्तर बिहार), जैसे प्रदेशों तक हो गया था।

वैदिक साहित्य के बाद ब्राह्मण—ग्रंथों की रचना हुई। इनमें वैदिक अनुष्ठान की विधियाँ संग्रहीत हैं। समस्त उत्तर वैदिककालीन साहित्य उत्तरी गंगा के मैदान में 1000 ई०पू० से 600 ई०पू० के आस—पास रचा गया। इस काल के उत्तर वैदिक साहित्य तथा चित्रित धूसर मृद्भांड लौह अवस्था के आधार पर हमें ईसा पूर्व प्रथम सहस्राब्दी में पश्चिमी उत्तर प्रदेश, पंजाब, राजस्थान तथा हरियाणा और उनके आस—पास वाले क्षेत्रों के लोगों के जीवन की जानकारी मिलती है।

इन ग्रन्थों से पता चलता है कि पंजाब के बाद आर्य गंगा—यमुना दोआब के सम्पूर्ण क्षेत्र (पश्चिमी—उत्तर प्रदेश) में फैल गए। यहाँ के दो प्रमुख कबीले भरत और कुरु मिलकर एक हो गए। आगे चलकर कुरु तथा पांचाल मिल गए। उन्होंने हस्तिनापुर को अपनी राजधानी बनाया। कुरु—काल का इतिहास भारत—युद्ध या महाभारत के नाम से विख्यात है। यह युद्ध कौरवों और पांडवों के बीच हुआ, जिसमें कुरु वंश का नाश हो गया।

हस्तिनापुर के विनाश के बाद बचे—कुचे कुरु इलाहाबाद के पास कौशाम्बी में जाकर बस गए। आज के बरेली, बदायूँ और फरुखाबाद जिले में फैला पांचाल राज्य अपने दार्शनिक राजाओं और तत्वज्ञानी ब्राह्मणों के लिए विख्यात था।

लगभग 600 ई०पू० के आस—पास ये वैदिक—जन दोआब से पूर्व की ओर पूर्वी—उत्तर प्रदेश के कौशल और उत्तरी बिहार के विदेह क्षेत्र में फैले। यहाँ पर उन्हें सम्भवत: ऐसे लोगों से संघर्ष करना पड़ा होगा, जो ताँबे के औजारों का प्रयोग करते थे। अपने विस्तार के इस दूसरे दौर में ये वैदिक—जन इसलिए सफल हुए, क्योंकि उनके पास लोहे के हथियार तथा अश्व शक्ति रथ थे।

5. जाबालोपनिषद् में आर्यों के प्रमुख आश्रमों को बताइए।

उ०– जाबालोपनिषद् में आर्यों के चार प्रमुख आश्रमों का उल्लेख किया गया है। इसके अनुसार मनुष्य की आयु औसत रूप में 100 वर्ष मानकर उसे चार वर्गों जिन्हें आश्रम कहा जाता है में विभक्त कर दिया गया है। ये चारों आश्रम निम्नवत् हैं—

(i) ब्रह्मचर्य– इस वर्ग में लोग 25 वर्ष की आयु तक ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए विद्याध्ययन करते थे।

(ii) गृहस्थ– इस वर्ग में लोग 26 वर्ष से 50 वर्ष की आयु तक धनोपार्जन करते थे तथा गृहस्थ जीवन व्यतीत करते थे।

(iii) वानप्रस्थ– इस वर्ग में लोग 50 वर्ष की आयु से 75 वर्ष की आयु तक परिवार का मोह छोड़कर वनों में रहते थे तथा तीर्थ—यात्रा करते थे।

(iv) सन्यास– इस वर्ग में 75 वर्ष की आयु के बाद मनुष्य सब कुछ त्याग कर मोक्ष—साधना में लग जाता था।

6. वेदों को समझाइए।

उ०– काल क्रम के अनुसार वैदिक साहित्यों को दो प्रमुख स्तरों में बाँटा गया है पहला पूर्ववैदिक साहित्य (1500–1000 ई०पू०)। इसके अन्तर्गत ऋग्वेद के अधिकाशत: मन्त्रों की रचना हुई और दूसरा उत्तर—वैदिक साहित्य (1000–600 ई०पू०) जिसमें अन्य तीनों वेद, ब्राह्मण ग्रन्थ, आरण्यक, उपनिषद् एवं वेदागों की रचना हुई—

ऋग्वेद भारत—यूरोपीय भाषाओं में से एक संस्कृत का प्राचीनतम ग्रन्थ है। यह अग्नि, इन्द्र, वरुण, मित्र, सोम तथा अन्य देवताओं की स्तुति में अनेक ऋषियों द्वारा लिखा गया मन्त्रों का समूह है। इसमें 10 मण्डल एवं 1028 सूक्त हैं। प्रत्येक मण्डल अलग—अलग देवताओं को समर्पित है। सामवेद के अधिकतर मंत्र ऋग्वेद से ही लिए गए हैं। 'साम' का अर्थ होता है 'गान' अर्थात् यज्ञों के अवसर पर जिन मंत्रों का गायन किया जाता था, वे सामवेद में संकलित किए गए। यजुर्वेद में 40 अध्याय हैं। प्रत्येक का सम्बन्ध किसी न किसी यज्ञ सम्बन्धी अनुष्ठान से है। अथर्ववेद में अन्धविश्वास, सम्मोहन, भूत—प्रेत एवं औषधियों की जानकारी मिलती है। वेदों की गद्य में व्याख्या करने के लिए ब्राह्मण ग्रंथ लिखे गए जैसे— ऋग्वेद के लिए ऐतरेय एवं कौषीतकि, युजर्वेद का शतपथ एवं तैत्तरीय, सामवेद का पंचविश तथा अथर्ववेद का गोपथ।

❖ विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

1. आर्यों के मूल स्थान के बारे में विचार धारा को स्पष्ट कीजिए।

उ०– आर्यों मूल निवास—स्थान सम्बन्धी अनक तर्क दिए गए हैं, परन्तु कोई भी सिद्धान्त प्रमाणिकता की कसौटी पर शत—प्रतिशत खरा नहीं उतरता है। आर्यों को केवल भारत क्षेत्र का निवासी मानना देशभक्ति और स्वराष्ट्र प्रेम की भावना का स्वभाविक उद्गार हैं। इन्हे मध्य एशिया के किसी क्षेत्र का निवासी मानने में भी अनेक सिद्धातो की दृढ़ धारणाएँ हैं। आर्यों के मूल निवास—स्थान के बारे में प्रचलित मुख्य विचारधाराओं का संक्षिप्त विवरण निम्न प्रकार है—

(i) सप्त सिन्धु सिद्धान्त– डॉ० सम्पूर्णानन्द तथा डॉ ए० सी० दास के मतानुसार आर्य सप्त सिन्धु प्रदेश (पंजाब तथा उत्तर पश्चिमी सीमा प्रान्त,कश्मीर, काबुल, कन्धार) के मूल निवासी थे।

(ii) उत्तरी ध्रुव का सिद्धान्त– बाल गंगाधर तिलक के विचार में आर्य उत्तरी ध्रुव प्रदेश के रहने वाले थे।

(iii) तिब्बत का सिद्धान्त– आर्य समाज के संस्थापक स्वामी दयानन्द ने आर्यों का मूल स्थान तिब्बत बताया है।

(iv) ऑस्ट्रिया हंगरी का सिद्धान्त– डॉ०पी० गाइल्स तथा मैकडोनल के विचारानुसार आर्यों का मूल निवास—स्थान ऑस्ट्रिया हंगरी था। इन प्रदेशों की भाषाओं का संस्कृत भाषा के साथ गहरा सम्बन्ध था।

(v) मध्य एशिया का सिद्धान्त– जर्मन विद्वान मैक्समूलर के मतानुसार भारतीय, ईरानी, लातीनी, यूनानी, रोमन, जर्मन तथा

अंग्रेज आदि जातियों के पूर्वज किसी समय मध्य एशिया में एक ही स्थान पर रहते थे। जनसंख्या में वृद्धि तथा खाद्य–सामग्री की कमी के कारण जब उनका एक साथ रहना कठिन हो गया तो उनकी टोलियाँ इधर–उधर जाने लगीं। जो टोलियाँ सुदूर पश्चिम की ओर गई उनके वंशज आजकल यूरोपियन राष्ट्र हैं। जो लोग ईरान की और भारत की ओर आए उनकी सन्तान ईरानी और भारतीय हैं। अतः भारतीय, यूनानी, जर्मन आदि एक ही वंश से उत्पन्न हुए हैं।

(vi) सर्वमान्य सिद्धान्त– अधिकांश इतिहासकार मध्य एशिया के सिद्धान्त से सहमत हैं।

2. उत्तर वैदिककाल की सामाजिक, आर्थिक, और धार्मिक स्थिति को स्पष्ट कीजिए।

उ०– उत्तर वैदिक काल की धार्मिक, आर्थिक और सामाजिक स्थिति निम्नलिखित हैं–

(i) धार्मिक जीवन– इस युग में धर्म के रूप में निखार आने लगा था। इस युग में कुछ देवताओं का सम्मान कम हो गया था, तो कुछ देवताओं के सम्मान में वृद्धि हो गई थी। इस सभ्यता में विष्णु और रुद्र अधिक प्रिय हो गए थे। स्वतन्त्र रूप से विष्णु की पूजा आरम्भ हो गई थी। इस काल में रुद्र को महादेव की उपाधि दी गई। शिव जी को आज भी यह स्थान प्राप्त है। इस काल में धर्म जटिल होने लगा था। इस काल में अनेक प्रकार के यज्ञ होने लगे थे। यज्ञ करने के लिए 17 ब्राह्मणों की आवश्यकता होती थी। ब्राह्मणों को पृथ्वी का देवता माना जाने लगा। इस युग के लोग कर्म के सिद्धान्त पर विश्वास करने लगे थे। उनका मानना था कि इच्छा–रहित कर्म करने से मोक्ष मिल सकता है ऐसी मान्यता थी कि दुष्ट व्यक्ति अगले जन्म में पशु बनता है। इस प्रकार दार्शनिक विचारों का विकास हुआ। इस काल की सभ्यता निरन्तर विकास की ओर अग्रसर थी।

ऋग्वेद में मन्दिर या मूर्तिपूजा का उल्लेख नहीं है। स्तुति और यजन ही देव–पूजा थी। स्तुति विधि अत्यन्त सरल थी। प्रत्येक देवता के लिए अलग–अलग मंत्र या ऋचाएँ थी। उन्हीं से देव स्तुति की जाती थी। यजनविधि भी अति सरल थी। प्रत्येक गृहस्थ मंत्रों की सहायता से स्वयं यज्ञ करता था। बाद में द्रव्यों द्वारा यज्ञ होने लगे। अब यज्ञाग्नि में घी, दूध, धान्य एवं मांस की आहुति दी जाने लगी। उत्तर–वैदिककाल तक आते–आते यज्ञ जटिल, कर्मकाण्डीय एवं खर्चीले होते गए। जिसके फलस्वरूप यज्ञ को सम्पादित कराने वाले विशेषज्ञ 'पुरोहित वर्ग' का जन्म हुआ। उनकी महत्ता इतनी बढ़ गई कि वे मनुष्य एवं देवता के बीच मध्यस्थ के रूप में देवतुल्य माने जाने लगे। धीरे–धीरे यज्ञों में पशुबलि को प्राथमिकता दी जाने लगी। राजसूय, बाजपेय तथा अश्वमेध जैसे विशाल यज्ञों का अनुष्ठान होने लगा। राजसूय यज्ञ राजा अपने अभिषेक के अवसर पर करता था। अश्वमेध उसकी सार्वभौम सत्ता का प्रतीक था।

600 ई०पू० के लगभग उपनिषदों की रचना के साथ पुरोहितों के बढ़ते प्रभाव, यज्ञीय कर्मकाण्ड तथा अनुष्ठानों के विरूद्ध सबल प्रतिक्रिया प्रारम्भ हुई। जिसके फलस्वरूप तप, त्याग एवं सन्यास पर विशेष बल दिया जाने लगा तथा काया–क्लेश एवं संन्यास मोक्ष प्राप्ति के लिए आवश्यक माने गए। व्यवस्थाकारों एवं चिन्तकों द्वारा इसे महत्ता दिये जाने के कारण 'ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ एवं संन्यास के 'चतुराश्रमों' का सिद्धान्त प्रतिपादित किया गया। इस आश्रम व्यवस्था का मनोवैज्ञानिक–नैतिक आधार 'पुरुषार्थ' था। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष ये चारों पुरुषार्थ मनुष्य तथा समाज की उन्नति के लिए बनाये गए आदर्श थे। आश्रमों के माध्यम से पुरुषार्थों को जोड़ने के पीछे प्रमुख उद्देश्य मनुष्य के भौतिक एवं आध्यात्मिक सुखों के बीच सामांजस्य स्थापित करना तथा व्यक्ति एवं समाज के पारस्परिक सम्बन्धों को नियन्त्रित कर सामाजिक व्यवस्था के संचालन में सहायता प्रदान करना था।

छठी शती ई०पू० तक आते–आते वैदिक परम्परा की धार्मिक एवं सामाजिक मान्यताओं के विरुद्ध आन्दोलन उठ खड़े हुए। यज्ञ एवं कर्मकाण्डों की निन्दा करते हुए धर्म के नैतिक पक्ष पर बल दिया गया तथा नवीन विचारधाराओं का आविर्भाव हुआ। इन अनेक मतों एवं सम्प्रदायों में महावीर एवं गौतम के सम्प्रदाय ही चिरस्थायी सिद्ध हुए।

(ii) आर्थिक जीवन– इस युग में सिंचाई के साधनों के विकास के कारण मुख्य आजीविका 'कृषि' में सुधार हो गया। उन्नत हलों तथा गोबर की खाद के प्रयोग से भूमि की उर्वरता तथा उत्पादकता में वृद्धि हुई। व्यापार दूसरा प्रमुख व्यवसाय था। निष्क, सातमान, कृष्णमान के रूप में सिक्के का प्रचलन हुआ। इस युग में व्यापार बहुत अच्छा हो गया था। इस काल में अयोध्या, काशी, कौशाम्बी आदि नगरों का उदय हो चुका था। इस युग में व्यापार संघों की स्थापना भी हो चुकी थी। इस संघ के अध्यक्ष को श्रेष्ठि कहा जाता था। समुद्री मार्गो द्वारा विदेशों में माल भेजा जाता था। पहाड़ी क्षेत्रों से जड़ी–बूटियाँ ली जाती थी, तथा बदले में उन्हें वस्त्र और खालें दी जाती थी। आवश्यकताओं के अनुसार इस युग में हस्तशिल्प उद्योगों का विकास हुआ। इस काल में रस्सी बटना, वैद्यगिरी, स्वर्णकारी, रंगसाजी आदि उद्योग अस्तित्व में आ चुके थे। स्त्रियाँ कपड़ा बुनने व रंगने, कुम्भकारी उद्योग आदि में विशेष रुचि लेती थीं। इस युग में लोगों को धातुओं की पर्याप्त जानकारी थी जिसका प्रयोग वे औजार, हथियार व आभूषण आदि बनाने में करते थे।

(iii) सामाजिक जीवन– उत्तर वैदिककाल में नारी का सम्मान पहले की अपेक्षा बहुत कम हो गया था। इस काल में पुत्री का जन्म दु:ख का कारण माना जाने लगा। पैतृक सम्पत्ति पर से पुत्री का अधिकार समाप्त हो गया था। वह किसी भी सभा में भाग नहीं ले सकती थी। स्त्रियों की शिक्षा पर ध्यान नहीं दिया जाता था। वस्त्र और भोजन के विषय में कोई विशेष अन्तर

नहीं आया था। सत्तू खाने का आम रिवाज था। गेहूँ, चावल, जौ, दूध, दही और घी का प्रयोग अधिक होता था। अथर्ववेद में मांसाहारी भोजन करना पाप बताया गया है। इस युग में लोग सूती और ऊनी वस्त्र पहनते थे। पुरुष और महिलाएँ दोनों ही आभूषण धारण करते थे। इस युग में 'ललाटिका' और 'कर्णिक' प्रसिद्ध आभूषण थे। इस काल में समाज को चार वर्णों में बाँटा गया था– ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। विद्याध्ययन, शिक्षण, चिंतन तथा समाज का उचित मार्गदर्शन ब्राह्मणों के प्रमुख कार्य थे। आन्तरिक तथा बाह्य संकटों से समाज की रक्षा का उत्तरदायित्व क्षत्रियों का था। धनोपार्जन, उत्पादन, उद्योग, कृषि तथा व्यापार करना वैश्यों के कार्य थे। उपरोक्त तीनों वर्गो की सेवा करने का कार्य शूद्रों का था।

जाबालोपनिषद् में आर्यो के चार प्रमुख आश्रमों का उल्लेख किया गया है। इसके अनुसार मनुष्य की आयु औसत रूप में 100 वर्ष मानकर उसे चार वर्गो जिन्हें आश्रम कहा जाता है में विभक्त कर दिया गया है। ये चारों आश्रम निम्नवत् हैं–

(क) ब्रह्मचर्य– इस वर्ग में लोग 25 वर्ष की आयु तक ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए विद्याध्ययन करते थे।

(ख) गृहस्थ– इस वर्ग में लोग 26 वर्ष से 50 वर्ष की आयु तक धनोपार्जन करते थे तथा गृहस्थ जीवन व्यतीत करते थे।

(ग) वानप्रस्थ– इस वर्ग में लोग 50 वर्ष की आयु से 75 वर्ष की आयु तक परिवार का मोह छोड़कर वनों में रहते थे तथा तीर्थ–यात्रा करते थे।

(घ) सन्यास– इस वर्ग में 75 वर्ष की आयु के बाद मनुष्य सब कुछ त्याग कर मोक्ष–साधना में लग जाता था।

इस काल में विवाह को महत्वपूर्ण संस्कार मानते थे। लोग अपने गोत्र में विवाह नहीं कर सकते थे। अन्तर्जातीय विवाह प्रथा प्रचलित थी। अविवाहित पुरुष को यज्ञ करने की अनुमति नहीं थी। विवाह शर्तो के अनुसार होते थे, शर्त पूरी न होने पर विवाह सम्बन्ध समाप्त हो जाते थे। इस काल में शिक्षा का उचित प्रबन्ध था। विद्यार्थियों को बाल बड़े–बड़े रखने पड़ते थे। विद्यार्थी गुरु की सेवा करते थे। शिक्षा नि:शुल्क थी विद्यार्थी केवल गुरू–दक्षिणा देते थे। शिक्षा का स्वरूप मौखिक था। सैनिक–शिक्षा, इतिहास, गणित, नक्षत्र–विद्या, ज्योतिष आदि विषयों की शिक्षा दी जाती थी। इस युग के लोग नाटक के शौकीन थे। संगीत और नृत्य को भी लोग पसन्द करते थे। ढोल, शततन्तु, शंख आदि उनके प्रमुख वाद्य–यन्त्र थे। रथदौड़, जुआ, शिकार व घुड़सवारी आदि मनोरंजन के साधन थे।

3. निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

(i) ब्राह्मण ग्रन्थ (ii) उपनिषद् (iii) वेदांग (iv) सूत्र (v) षट्दर्शन

उ०– **(i) ब्राह्मण ग्रन्थ–** ब्राह्मण–ग्रन्थ में वेदों के मन्त्रों की सरल व्याख्या की गई है। ये वेदों की गद्य रूप में व्याख्या करते हैं। ऋग्वेद के मन्त्रों का अनुवाद 'ऐतरेय ब्राह्मण' और 'कौषीतिकी ब्राह्मण' नामक ग्रन्थों में दिया गया है। 'जैमनीय ब्राह्मण'सामवेद के मन्त्रों की व्याख्या करता है। यजुर्वेद के मन्त्रों का अर्थ 'शतपथ ब्राह्मण' तथा 'तैत्तरीय ब्राह्मण' और अथर्ववेद के मन्त्रों का अर्थ समझने के लिए 'गोपथ ब्राह्मण' बहुत ही उपयोगी ग्रन्थ हैं। ये ग्रन्थ आर्यो के सामाजिक, धार्मिक तथा राजनीतिक जीवन का अत्यन्त सुन्दर चित्र प्रस्तुत करते हैं।

(ii) उपनिषद्– ब्राह्मण–ग्रन्थों का अन्तिम भाग 'उपनिषद्' कहलाता है। इसे 'वेदान्त' भी कहा जाता है। ये ग्रन्थ ब्रह्म ज्ञान के भण्डार हैं। इनकी संख्या 108 हैं। इनमें ईश, मुण्डक, कठ, केन, तैत्तरीय, ऐतरेय, कौषीतिकी आदि उपनिषद् बहुत ही महत्वपूर्ण हैं। इनकी रचना भिन्न–भिन्न ऋषियों द्वारा 1000 ई०पू० से 500 ई०पू० के बीच की गई। इन ग्रन्थों में प्राचीन आर्यो के आध्यात्मिक विचारों का सार दिया गया है। इनमें कर्मकाण्ड और आडम्बरों को धर्म के विरूद्ध बताया गया है। 'उपनिषद्' ग्रन्थों में आत्मा और परमात्मा की विवेचना की गई है। इनमें कर्म, मुक्ति और माया का भी उल्लेख किया गया है। इन्हीं के कारण भारतीय दर्शन विश्व के साहित्य में सर्वश्रेष्ठ माना जाता है।

(iii) वेदांग– वेदांग वेदों का ही अंग हैं। इनकी संख्या 6 है । इनके नाम हैं– शिक्षा, छन्द, कल्प, व्याकरण, निरुक्त तथा ज्योतिष। इनमें शिक्षा उच्चारण से, छन्द लय से, कल्प धार्मिक रीति–रिवाजों से, व्याकरण भाषा विज्ञान से, निरुक्त शब्द व्युत्पत्ति से तथा ज्योतिष नक्षत्र विद्या से सम्बन्धित है।

(iv) सूत्र– सूत्रों में अधिक–से अधिक बात कम–से–कम शब्दों में व्यक्त की गई है। इनकी रचना सम्भवत: 700 ई०पू० से 200 ई०पू० के मध्य हुई। प्रसिद्ध सूत्रों का वर्णन निम्न प्रकार है–

(क) गृह्य सूत्र– यह सबसे महत्वपूर्ण सूत्र है। इसमें मनुष्य के जन्म से लेकर मृत्यु तक के कर्त्तव्यों का वर्णन किया गया है। यह सूत्र आर्यो के गृहस्थ जीवन पर भी काफी प्रकाश डालता है।

(ख) श्रोत सूत्र– श्रोत सूत्र में यज्ञ तथा बलि की विधि समझाई गई है। इसमें सोमरस का भी विस्तृत वर्णन आता है।

(ग) धर्म सूत्र– इसमें सामाजिक रीतियों तथा कुछ कानूनों का उल्लेख किया गया है।

(v) षट्दर्शन– इसमें बड़े गूढ़ आध्यात्मिक विचारों का वर्णन किया गया है। ये संख्या में 6 हैं। इसी कारण इन्हें षट्दर्शन कहते हैं।

(क) कपिल का सांख्य दर्शन– इनके अनुसार प्रकृति और आत्मा अमर हैं।

(ख) पतंजलि का योग दर्शन– पतंजलि के विचार में आत्मा और प्रकृति के साथ–साथ परमात्मा भी अमर है।

(ग) **गौतम का न्याय दर्शन–** इस दर्शन के अनुसार मनुष्य ज्ञान द्वारा परमात्मा को पा सकता है।

(घ) **कणाद का वैशेषिक दर्शन–** इसमें कणाद लिखता है कि संसार की रचना अदृश्य अणु शक्तियों के मेल से हुई है।

(ड) **जैमिनी का पूर्व मीमांसा दर्शन–** इस दर्शन में वेदों में बताई गई धार्मिक क्रियाओं को अपनाने पर बल दिया गया है।

(च) **व्यास का उत्तर मीमांसा दर्शन–** व्यास के अनुसार प्रकृति की प्रत्येक वस्तु में परमात्मा का हाथ है। ईश्वर को छोड़कर शेष सब कुछ मिथ्या है।

4. सिन्धु सभ्यता और वैदिक सभ्यता में अन्तर स्पष्ट कीजिए।

उ०– **सिन्धु सभ्यता और वैदिक सभ्यता में अन्तर–** इन सभ्यताओं में निम्नलिखित अन्तर पाए गए हैं—

सिन्धु सभ्यता	वैदिक सभ्यता
(i) सिन्धु घाटी सभ्यता में **गणतन्त्रात्मक शासन व्यवस्था** थी। शासक का चुनाव जनता द्वारा किया जाता था।	(i) इस सभ्यता में **राजतन्त्रात्मक शासन व्यवस्था** थी। राजा शासन का प्रधान था। शासक वंशानुगत होता था।
(ii) सिन्धुवासी मातृ देवी, शिव, योनि, पशु, पीपल आदि की पूजा करते थे।	(ii) ये विभिन्न प्राकृतिक शक्तियों की देवी-देवताओं के रूप में उपासना करते थे।
(iii) इस सभ्यता के लोग **मूर्तिपूजक** थे। खुदाई में अनेक मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं।	(iii) आर्य प्रकृति के उपासक थे। आर्यों के जीवन में **हवन**, **यज्ञ** तथा **अग्नि** का विशेष महत्व था।
(iv) सिन्धु घाटी के निवासियों की कोई साहित्यिक रचना प्राप्त नहीं हुई है।	(iv) आर्यों ने अनेक साहित्यिक ग्रन्थों की रचना की।
(v) ये लोग वस्तुओं को तोलने के लिए **बाटों का प्रयोग** करते थे।	(v) ये लोग बाटों के प्रयोग से **अनभिज्ञ** थे।
(vi) ये लोग **लोहे** के प्रयोग से अपरिचित थे। ये पत्थर का अधिक प्रयोग करते थे।	(vi) आर्य लोग **लोहे** का प्रयोग करना जानते थे।
(vii) सिन्धुवासी **शान्ति** के पुजारी थे। ये युद्ध में काम आने वाले अस्त्र- शस्त्रों से अनभिज्ञ थे।	(vii) वैदिक सभ्यता के लोग **युद्ध प्रेमी** थे। ये लोहे के अस्त्र-शस्त्र बनाते थे।
(viii) सिन्धु घाटी के लोगों का महत्वपूर्ण पशु **साँड** था। वे घोड़े के महत्व से अपरिचित थे।	(viii) वैदिक आर्यों का महत्वपूर्ण पशु **गाय** थी। उनके जीवन में घोड़े का विशेष महत्व था।

❖ **मानचित्र सम्बन्धी अभ्यास कार्य**

अध्यापक की सहायता से विद्यार्थी स्वयं करें।

❖ **प्रोजेक्ट कार्य**

अध्यापक की सहायता से विद्यार्थी स्वयं करें।

5 जैन धर्म तथा बौद्ध धर्म का प्रभाव

अभ्यास

❖ **बहुविकल्पीय प्रश्न**

उ०– बहुविकल्पीय प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्य—पुस्तक के पृष्ठ संख्या—49 व 50 का अवलोकन कीजिए।

❖ **अतिलघु उत्तरीय प्रश्न**

उ०– अतिलघु उत्तरीय प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्य—पुस्तक के पृष्ठ संख्या—50 का अवलोकन कीजिए।

❖ **लघु उत्तरीय प्रश्न**

1. जैन धर्म के सभी तीर्थंकरों के नाम लिखिए।

उ०– जैन धर्म के 24 तीर्थंकर हुए, जिनके नाम क्रमानुसार निम्न हैं—

1. ऋषभदेव	2. अजितनाथ	3. सम्भवनाथ	4. अभिनन्दननाथ
5. सुमतिनाथ	6. पद्मप्रभु	7. सुपार्श्वनाथ	8. चन्द्रप्रभु
9. सुविधिनाथ	10. शीतलनाथ	11. श्रेयांसनाथ	12. वासुपूज्य
13. विमलनाथ	14. अनन्तनाथ	15. धर्मनाथ	16. शान्तिनाथ
17. कुन्थुनाथ	18. अरहनाथ	19. मल्लिनाथ	20. मुनिसुव्रतनाथ
21. नमिनाथ	22. अरिष्टनेमि	23. पार्श्वनाथ	24. महावीर स्वामी

2. जैन धर्म के पंच महाव्रतों का विवरण दीजिए।

उ०– जैन धर्म के अनुसार मोक्ष–प्राप्ति के लिए पाँच नियमों का पालन आवश्यक है। ये पाँच नियम पंच महाव्रत कहलाते हैं। जिनका विवरण निम्नलिखित है–

अहिंसा– मन, वचन और कर्म से किसी भी जीव को कष्ट नहीं पहुँचाना चाहिए।

सत्य– मन, वचन और कर्म द्वारा सत्य का आचरण करना चाहिए।

अस्तेय– किसी भी प्रकार की चोरी नहीं करनी चाहिए।

अपरिग्रह– आवश्यकता से अधिक वस्तुओं का संग्रह नहीं करना चाहिए।

ब्रह्मचर्य– सभी प्रकार की वासनाओं को त्यागकर संयमित जीवन व्यतीत करना चाहिए।

3. श्वेताम्बर और दिगम्बर सम्प्रदाय को परिभाषित कीजिए।

उ०– (i) **दिगम्बर सम्प्रदाय–** यह जैन धर्म का एक प्रमुख सम्प्रदाय है। इस शाखा के अनुयायी नग्न अवस्था में रहते हैं और दिशाओं को ही अपना वस्त्र मानते हैं। यह लोग अपने को सच्चा जैन–धर्मावलम्बी समझते हैं एवं महावीर स्वामी द्वारा प्रतिपादित जैन धर्म के प्राचीन ओर कठोर नियमों का पालन करते हैं।

(ii) **श्वेताम्बर सम्प्रदाय–** यह जैन धर्म का दूसरा प्रमुख सम्प्रदाय है। इस सम्प्रदाय के अनुयायी श्वेत वस्त्र धारण करते हैं और जैन धर्म की कठोरता व जटिलता को कम करने के पक्षपाती हैं।

4. जैन ग्रन्थों की रूपरेखा को स्पष्ट कीजिए।

उ०– जैन विद्वानों ने भारत की अनेक भाषाओं जैसे–प्राकृत, संस्कृत, गुजराती, हिन्दी, मराठी, कन्नड, तमिल आदि में अनेक ग्रन्थों की रचना की। ये ग्रन्थ व्याकरण, काव्य, कोष, छन्दशास्त्र, योगशास्त्र, कथाओं तथा चरित्र काव्यों आदि विभिन्न विषयों से सम्बन्धित थे। जैन ग्रन्थों में 12 अंग, 12 उपांग, 6 प्रकीर्णक, 6 वेद सूत्र 4 मूलसूत्र आदि को प्रमुख स्थान प्राप्त हैं। इन जैन ग्रन्थों ने सांस्कृतिक क्षेत्र में प्रशंसनीय योगदान दिया तथा इनसे साहित्य का भी पर्याप्त विकास हुआ।

5. बौद्ध धर्म के उदय के दो कारण बताइए।

उ०– बौद्ध धर्म के उदय के दो कारण निम्नलिखित हैं–

(i) **जाति प्रथा का विकास–** भारत में जाति प्रथा तथा अस्पृश्यता चरम सीमा पर विस्तारित हो चुकी थी। उच्च जाति वाले लोग निम्न जाति के लोगों (शूद्रों)को घृणा की दृष्टि से देखते थे। समाज में लोगों को प्रताड़ित किया जाता था। इससे त्रस्त होकर लोग एक ऐसे धर्म की तलाश करने लगे जिसमें ऊँच–नीच का भेदभाव न हो।

(ii) **सरल धर्म की खोज–** छठी शताब्दी ई०पू० हिन्दू धर्म बहुत ही जटिल हो गया था। उपनिषदों के गूढ़ दर्शनों की रचना संस्कृत भाषा में थी। संस्कृत भाषा का ज्ञान प्रत्येक व्यक्ति को नहीं था। जनता एक सरल धर्म की खोज चाहती थी। इसके कारण भी बौद्ध धर्म का प्रसार तीव्रता से हुआ।

6. बौद्ध धर्म की चारों महासभाओं का संक्षिप्त विवरण दीजिए।

उ०– **बौद्ध धर्म की चार महासभाएँ–** बौद्ध धर्म की चारों महासभाओं का संक्षिप्त विवरण निम्नलिखित है–

महासभा	समय	स्थल	शासक	महासभा अध्यक्ष
(i) प्रथम बौद्ध महासभा	483 ई०पू०	सप्तपर्णि गुफा (राजगृह, बिहार)	अजातशत्रु (हर्यंक वंश) के शासनकाल में	महाकश्यप
(ii)द्वितीय बौद्ध महासभा	383 ई०पू०	चुल्लबग्ग (वैशाली, बिहार)	कालाशोक (शिशु नाग वंश) के शासनकाल में	साबकमीर
(iii)तृतीय बौद्ध महासभा	251 ई०पू०	पाटलिपुत्र (मगध की राजधानी)	अशोक (मौर्यवंश) के शासनकाल में	मोग्गलिपुत्त तिस्स
(iv)चतुर्थ बौद्ध महासभा	प्रथम शताब्दी ई०	कुण्डलवन (कश्मीर)	कनिष्क (कुषाण वंश) के शासनकाल में	वसुमित्र

❖ **विस्तृत उत्तरीय प्रश्न**

1. जैन धर्म के सिद्धन्तों को स्पष्ट कीजिए।

उ०– **जैन धर्म के सिद्धान्त–** जैन धर्म के प्रमुख सिद्धान्त निम्नलिखित हैं—

(i) **ईश्वर की सत्ता में अविश्वास–** जैन धर्म ईश्वर का अस्तित्व तो मानता है किन्तु यह ईश्वर को संसार का निर्माता नहीं मानता। महावीर के अनुसार, ईश्वर नाम की कोई ऐसी सत्ता नहीं है, जो जीव—जन्तुओं के सुख व दु:ख की निर्धारक हो, लोगों को स्वकर्मों से ही सुख—दु:ख मिलता है।

(ii) **वेदों में अविश्वास–** जैन धर्म के अनुयायी वेदों में विश्वास नहीं करते। वे केवल महावीर स्वामी के वचनों में विश्वास करते हैं।

(iii) **त्रिरत्नों द्वारा मोक्ष–प्राप्ति–** जैन धर्म में मोक्ष—प्राप्ति को मानव—जीवन का सर्वोच्च ध्येय माना गया है। मोक्ष—प्राप्ति के लिए मनुष्य को त्रिरत्न को अपनाना चाहिए। ये त्रिरत्न हैं— (क) सम्यक् ज्ञान (ख) सम्यक् दर्शन और (ग) सम्यक् चरित्र।

सम्यक् ज्ञान से तात्पर्य है– हर प्रकार के अन्धविश्वास व पाखण्ड से बचना तथा जाति, शारीरिक व मानसिक शक्ति, तप—योग, सौन्दर्य आदि से सम्बन्धित घमण्ड को त्यागकर विनयशीलता को अपनाना।

सम्यक् दर्शन से अभिप्राय है– चौबीस तीर्थंकरों में विश्वास रखना तथा

सम्यक् आचरण का अर्थ है– अपनी इन्द्रियों पर पूरा नियन्त्रण रखना। जैन धर्म के अनुसार, तीर्थंकरों द्वारा निर्दिष्ट मार्ग पर चलकर इन तीनों रत्नों की प्राप्ति से कर्मों के बन्धन से मुक्ति पाकर आत्मा जन्म—मरण से छुटकारा पाकर मोक्ष प्राप्त कर लेती है।

(iv) **मोक्ष–** प्राप्ति के लिए प्रथम सीढ़ी: पंच महाव्रत— जैन धर्म के अनुसार मोक्ष—प्राप्ति के लिए पाँच अन्य नियमों का पालन करना भी आवश्यक है। ये पाँच नियम या महाव्रत निम्नलिखित हैं—

अहिंसा– मन, वचन और कर्म से किसी भी जीव को कष्ट नहीं पहुँचाना चाहिए।

सत्य– मन, वचन और कर्म द्वारा सत्य का आचरण करना चाहिए।

अस्तेय– किसी भी प्रकार की चोरी नहीं करनी चाहिए।

अपरिग्रह– आवश्यकता से अधिक वस्तुओं का संग्रह नहीं करना चाहिए।

ब्रह्मचर्य– सभी प्रकार की वासनाओं को त्यागकर संयमित जीवन व्यतीत करना चाहिए।

(v) **कर्म की प्रधानता में विश्वास–** जैन धर्म में कर्म के अनुसार फल तथा पुनर्जन्म होता है। कर्म के आधार पर ही जीव को योनि एवं सुख—दु:ख की प्राप्ति होती है।

(vi) **पुनर्जन्म–** पुनर्जन्म से छुटकारा तथा निर्वाण प्राप्त करना ही जैन धर्म का एकमात्र लक्ष्य है। परम—ज्ञान व कैवल्य की प्राप्ति द्वारा निर्वाण की अवस्था प्राप्त होती है, जिसे मोक्ष की प्राप्ति भी कहते है।

(vii) **आत्मा में विश्वास–** जैन धर्म के अनुसार, प्रत्येक जीव में एक स्थायी, अजर—अमर आत्मा निवास करती है तथा जीव की मृत्यु हो जाने पर आत्मा नए शरीर में चली जाती है।

(viii) **अनेकान्तवाद–** जैन धर्म ने मतों व विचारों सम्बन्धी वाद—विवाद को दूर करने के लिए अनेकान्तवाद का प्रतिपादन किया। इस सिद्धान्त के अनुसार कोई भी कथन पूर्णरूपेण सत्य या असत्य नहीं है।

(ix) **स्याद्‌वाद–** यह जैन धर्म का एक मुख्य दार्शनिक सिद्धान्त है। इसका अभिप्राय यह है कि जो बात कही जा रही है वह किसी अपेक्षा से कही जा रही है। यह बात अन्य अपेक्षाओं या दृष्टिकोणों से भी कही जा सकती है। एक ही बात को सात बार विभिन्न प्रकार से स्पष्ट किया जा सकता है। इसे सप्तभंगीनय भी कहा जाता है।

2. श्वेताम्बर और दिगम्बर सम्प्रदाओं में अन्तर स्पष्ट कीजिए।

उ०– **श्वेताम्बर तथा दिगम्बर सम्प्रदायों में अन्तर–** इन दोनों सम्प्रदायों में निम्नलिखित अन्तर हैं—

	दिगम्बर	श्वेताम्बर
1. मूर्तियाँ	दिगम्बर सम्प्रदाय की मूर्तियाँ नग्न होती हैं।	श्वेताम्बर सम्प्रदाय की मूर्तियों को वस्त्र पहनाए जाते हैं तथा उन्हें गहनों से सुसज्जित किया जाता है।
2. विवाह	दिगम्बर के अनुसार महावीर स्वामी ने विवाह नहीं किया था।	श्वेताम्बर के अनुसार महावीर स्वामी ने यशोदा से विवाह किया था।
3. अनुयायी	दिगम्बर महावीर के अनुयायी थे।	श्वेताम्बर पार्श्वनाथ के अनुयायी थे।

4. स्त्री मोक्ष	दिगम्बर अनुयायी इस धारणा के विरुद्ध थे।	श्वेताम्बर के अनुयायी स्त्री के लिए मोक्ष सम्भव मानते थे।
5. वस्त्र	दिगम्बर वस्त्रहीन रहते थे।	श्वेताम्बर वस्त्र धारण करते थे।
6. विश्वास का आधार	दिगम्बर केवल 14 पूर्वों में विश्वास करते थे।	श्वेताम्बर जैन आगमों (12 अंग, 12 उपांग, 6 प्रकीर्णन, 6 वेदसूत्र, 4 मूलसूत्र) इत्यादि में विश्वास करते थे।
7. प्रसार	दिगम्बर का प्रसार मुख्य रूप से उत्तरी भारत के मथुरा तथा दक्षिण में मैसूर–क्षेत्र में हुआ था।	श्वेताम्बर का प्रसार मुख्यतया गुजरात तथा आस–पास के क्षेत्रों में हुआ था।

3. समाज में जैन धर्म के योगदान को स्पष्ट कीजिए।

उ०– जैन धर्म का योगदान– जैन धर्म ने भारत के धार्मिक, सांस्कृतिक, सामाजिक तथा राजनीतिक क्षेत्रों में अमिट छाप छोड़ी है। जैन धर्म के प्रमुख योगदान निम्नलिखित हैं—

(i) धार्मिक क्षेत्र में– धार्मिक क्षेत्र में जैन धर्म का बहुमूल्य योगदान रहा है। लोगों को सादा जीवन जीने की सीख जैन धर्म की ही देन है। जैन धर्म में यज्ञों, कर्मकाण्डों और बलियों के लिये कोई स्थान नहीं था। इससे प्रभावित होकर हिन्दू धर्म के लोगों ने धर्म में नवीनीकरण के उद्देश्य से इसमें से व्यर्थ के रीति—रिवाजों को दूर किया। इससे लोगों का आकर्षण हिन्दू धर्म की ओर पुन: बढ़ने लगा। जैन धर्म ने सभी धर्मों के प्रति सहनशीलता की नीति का प्रचलन करके एक अनुकरणीय उदाहरण प्रस्तुत किया है। यही कारण है कि अनेक शताब्दियों के बाद भी भारत में जैन धर्म का अस्तित्व आज भी है तथा लोगों की प्रेरणा का स्रोत बना हुआ है।

(ii) सांस्कृतिक क्षेत्र में– जैन धर्म ने सांस्कृतिक क्षेत्र में प्रशंसनीय योगदान दिया। जैन विद्वानों ने भारत की अनेक भाषाओं जैसे—प्राकृत, संस्कृत, गुजराती, हिन्दी, मराठी, कन्नड़, तमिल, तेलगु आदि में अनेक ग्रन्थों की रचना की। ये ग्रन्थ व्याकरण, काव्य, कोष, छन्दशास्त्र, योगशास्त्र, कथाओं तथा चरित्रकाव्यों आदि विभिन्न विषयों से सम्बन्धित थे। जैन ग्रन्थों में 12 अंग, 12 उपांग, 6 प्रकीर्णन, 6 वेदसूत्र, 4 मूलसूत्र आदि को प्रमुख स्थान प्राप्त है। इससे साहित्य का भी पर्याप्त विकास हुआ।

कला के क्षेत्र में जैन कलाकार किसी प्रकार कम नहीं थे। उन्होंने भवन—निर्माण कला, मन्दिर—निर्माण कला, मूर्तिकला तथा चित्रकला के क्षेत्र में जो अमूल्य योगदान दिया है उसे कभी भुलाया नहीं जा सकता। राजस्थान में आबू पर्वत पर बने **दिलवाड़ा के मन्दिर** तथा मध्यप्रदेश में बने **खजुराहो के मन्दिर** जैन मन्दिर—निर्माण कला के सर्वश्रेष्ठ नमूने हैं। इन्हें देखकर व्यक्ति चकित रह जाता है। इनके अतिरिक्त, जैनियों ने अनेक अन्य भव्य मन्दिरों, गुफाओं, स्तूपों, स्तम्भों तथा मूर्तियों का निर्माण किया। जैनियों द्वारा निर्मित गुफाओं में उड़ीसा में स्थित उदयगिरी तथा खंडगिरी की गुफाएँ, चित्तौड़ का स्तम्भ, श्रवनबेलगोला में निर्मित 70 फुट ऊँची गोमतेश्वर की मूर्ति तथा मध्य प्रदेश में निर्मित 80 फुट ऊँची जैन तीर्थंकर की मूर्ति जैन—कला के सजीव प्रमाण हैं।

(iii) सामाजिक क्षेत्र में– जैन धर्म ने सामाजिक क्षेत्र में बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। छठी शताब्दी ई०पू० में समाज चार प्रमुख जातियों ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्व एवं शूद्र में विभक्त हो गया था। ब्राह्मण वर्ग को विशेष अधिकार दिए गए थे, जिसका लाभ उठाकर ये अपने व्यक्तिगत लाभों के लिए लोगों का शोषण कर रहे थे। इससे विभिन्न जातियों में घृणा की भावना फैल गई थी। शूद्रों के साथ पशुओं से भी क्रूर व्यवहार किया जाता था तथा उन्हें सबसे निम्न स्थान प्राप्त था। महावीर स्वामी ने इसे समाप्त करने के लिए जाति प्रथा का कड़ा विरोध किया। उन्होंने ब्राह्मणों के अत्याचारों का खुलकर विरोध किया। इससे लोगों में परस्पर घृणा की भावना दूर तो हुई ही साथ—साथ निम्न वर्ग के लोगों को समाज में एक नया स्थान प्राप्त हुआ।

(iv) राजनीतिक क्षेत्र में– अहिंसा के पक्षधर जैन धर्म ने भारतीयों पर गहरा प्रभाव छोड़ा इसने लोगों को शान्ति से जीने की प्रेरणा दी। अनेकों राजाओं ने युद्ध से संन्यास ले लिया। इस कारण भारत में चिरकाल तथा शान्ति एवं समृद्धि का वातावरण बना रहा। राजनीति पर इस सिद्धान्त के कुछ नकारात्मक प्रभाव भी हुए। युद्ध न होने के कारण भारतीय सेनाएँ दुर्बल हो गई, जिसके कारण बाद में विदेशी आक्रमणों का वह सही प्रकार से मुकाबला नहीं कर पाई और भारतीयों को अनेक वर्षों तक दासता का जीवन व्यतीत करना पड़ा।

4. महात्मा बुद्ध का जीवन परिचय दीजिए।

उ०– बौद्ध धर्म के प्रवर्तक महात्मा बुद्ध थे। गौतम बुद्ध को महावीर स्वामी के समकालीन माना जाता है। छठी शताब्दी ई०पू० में विभिन्न सम्प्रदायों में बौद्ध धर्म सर्वप्रमुख था। गौतम बुद्ध का जन्म 563 ई०पू० कपिलवस्तु के पास **लुम्बिनी** नामक स्थान पर हुआ था। इनके पिता का नाम शुद्धोधन और माता का नाम महामाया था। बुद्ध के बचपन का नाम सिद्धार्थ था। बुद्ध के जन्म के लगभग एक सप्ताह बाद इनकी माता का देहान्त हो गया था। उनका पालन—पोषण उनकी मौसी व विमाता प्रजापति **गौतमी** ने

किया। इस कारण उन्हें **गौतम** भी कहा जाता है। गौतम बुद्ध बचपन से ही एकान्त प्रिय, गम्भीर व मननशील थे। वे सांसारिक कार्यों में रूचि नहीं लेते थे। इनकी पत्नी का नाम यशोधरा तथा पुत्र का नाम राहुल था। सत्य की खोज के लिए गौतम बुद्ध ने केवल 29 वर्ष की आयु में ही गृह त्याग दिया। ज्ञान एवं सत्य की प्राप्ति के लिए उन्होंने छ: वर्षों तक अत्यन्त कठोर तपस्या की। बुद्ध सात दिनों तक अखण्ड समाधि में स्थिर रहे। आठवें दिन बैशाख की पूर्णिमा को उन्हें ज्ञान बोध हुआ। 35 वर्ष की आयु में ज्ञान प्राप्ति के बाद वे बुद्ध कहलाए। इन्हें ज्ञान प्राप्ति उरुवेला नामक स्थान पर एक पीपल के वृक्ष के नीचे हुआ था। इस वृक्ष को **बोधि वृक्ष** तथा इस पवित्र स्थान को **बोध गया** कहा गया। ज्ञान की प्राप्ति करने के बाद गौतम बुद्ध द्वारा दिया गया प्रथम उपदेश पाली भाषा में था। इन्होंने लगभग 45 वर्षों तक धर्म प्रचार किया तथा 80 वर्ष की आयु में कुशीनगर में इनकी मृत्यु (महापरिनिर्वाण) हो गई।

5. बौद्ध धर्म के सिद्धान्तों को स्पष्ट कीजिए।

उ०– बौद्ध धर्म की शिक्षाएँ (सिद्धान्त)– बौद्ध धर्म के प्रवर्तक गौतम बुद्ध (बौद्ध धर्म) की प्रमुख शिक्षाएँ निम्नलिखित हैं—

(i) चार आर्य सत्य– महात्मा बुद्ध के सभी उपदेश चार महान सत्यों पर आधारित हैं— (क) संसार दु:खों का घर है। (ख) इन दु:खों का सबसे बड़ा कारण तृष्णा है। (ग) तृष्णा को समाप्त करके मनुष्य को दु:खों से छुटकारा मिल सकता है। (घ) तृष्णा की समाप्ति के लिए मनुष्य को अष्ट—मार्ग पर चलना चाहिए।

(ii) अष्ट मार्ग या अष्टांगिक– तृष्णा को दूर करने तथा मोक्ष प्राप्त करने के लिए महात्मा बुद्ध ने जो मार्ग बताया उसे 'अष्ट—मार्ग' कहते हैं। उन्होंने निम्न आठ मार्गों पर चलने पर बल दिया—

सम्यक् दृष्टि– जीव को मोह—माया का त्याग करके उचित दृष्टि बनाए रखनी चाहिए।

सम्यक् संकल्प– जीव को उचित विचारों का संकल्प करना चाहिए।

सम्यक् वाक– जीव को सदैव सत्य बोलना चाहिए।

सम्यक् कर्म– जीवों को केवल उत्तम कार्य ही करने चाहिए।

सम्यक् आजीव– जीवों को ईमानदारी और परिश्रम से धन कमाकर अपना जीवनयापन करना चाहिए।

सम्यक् व्यायाम– प्रत्येक जीव को विवेकपूर्ण प्रयत्न तथा परिश्रमयुक्त जीवनयापन करना चाहिए।

सम्यक् ध्यान– जीव को सदैव शुद्ध विचार रखने चाहिए।

सम्यक् समाधि– जीव को शुद्ध चित्त की एकाग्रता बनाए रखनी चाहिए।

(iii) दस शील और आचरण– गौतम बुद्ध ने नैतिक आचरण की पवित्रता पर विशेष बल दिया। इस पवित्रता के लिए उन्होंने दस शील बतलाए—सत्य, अहिंसा, चोरी न करना, धन संग्रह न करना, ब्रह्मचर्य का पालन, नृत्य और गायन का त्याग, कोमल शैय्या का त्याग, सुगन्धित द्रव्यों का त्याग, असमय भोजन न करना, स्त्री तथा स्वर्ण का त्याग। प्रथम पाँच नियम गृहस्थियों के लिए हैं जबकि साधुओं के लिए सभी नियम हैं।

(iv) कर्मवाद– महात्मा बुद्ध का विचार था कि कोई व्यक्ति जैसे कर्म करता है उसे उसी के अनुसार फल व अगला जन्म मिलता है। इस प्रकार उनका पुनर्जन्म में विश्वास था।

(v) निर्वाण–प्राप्ति– बौद्ध धर्म के अनुसार मनुष्य का सबसे बड़ा उद्देश्य निर्वाण—प्राप्ति है। मोक्ष प्राप्त करके मनुष्य बार—बार जन्म और मरण के चक्र से छुटकारा प्राप्त कर सकता है।

(vi) अनीश्वरवादिता– गौतम बुद्ध ईश्वर के अस्तित्व में विश्वास नहीं करते थे। उनका वेदों में भी विश्वास नहीं था।

(vii) जाति-पाति में अविश्वास– महात्मा बुद्ध सभी मनुष्यों को समान मानते थे। उनका कहना था कि निर्वाण—प्राप्ति का मार्ग सभी जातियों के लिए समान रूप से खुला है।

6. बौद्ध धर्म के उदय के क्या कारण थे?

उ०– बौद्ध धर्म के उदय के कारण– भारत में बौद्ध धर्म के उदय के कारण निम्नलिखित हैं—

(i) जाति प्रथा का विकास– भारत में जाति प्रथा तथा अस्पृश्यता चरम सीमा पर विस्तारित हो चुकी थी। उच्च जाति वाले लोग निम्न जाति के लोगों (शूद्रों)को घृणा की दृष्टि से देखते थे। समाज में लोगों को प्रताड़ित किया जाता था। इससे त्रस्त होकर लोग एक ऐसे धर्म की तलाश करने लगे जिसमें ऊँच—नीच का भेदभाव न हो।

(ii) सरल धर्म की खोज– छठी शताब्दी ई०पू० हिन्दू धर्म बहुत ही जटिल हो गया था। उपनिषदों के गूढ़ दर्शनों की रचना संस्कृत भाषा में थी। संस्कृत भाषा का ज्ञान प्रत्येक व्यक्ति को नहीं था। जनता एक सरल धर्म की खोज चाहती थी। इसके कारण भी बौद्ध धर्म का प्रसार तीव्रता से हुआ।

(iii) ब्राह्मणों में भ्रष्टाचार– इस शताब्दी में ब्राह्मण चरित्रहीन हो गया था। उनमें लोभ कूट—कूट कर भरा था। अधिकांश ब्राह्मणों को धार्मिक ग्रन्थों का ज्ञान नहीं था। पढ़े—लिखे क्षत्रिय इसे सहन नहीं कर सके और उन्होंने नए धार्मिक आन्दोलन चलाए। इन आन्दोलनों के फलस्वरूप बौद्ध धर्म, जैन धर्म आदि का उदय हुआ।

(iv) **कर्मकाण्डों की बहुलता–** हिन्दू धर्म में कर्मकाण्डों की भरमार थी, जिससे जनता तंग आ चुकी थी। बौद्ध धर्म में कर्मकाण्डों व यज्ञों के लिए कोई स्थान नहीं था। इस कारण भी बौद्ध धर्म का विस्तार तीव्रता से हुआ।

उपरोक्त कारणों ने बौद्ध धर्म के उदय होने में सहायता प्रदान की। ऐसे अन्धकारपूर्ण वातावरण में महात्मा बुद्ध ने लोगों की आवश्यकताओं के अनुरूप उनके सम्मुख सरल धर्म प्रस्तुत किया।

7. जैन और बौद्ध धर्म में समानताएँ बताते हुए दोनों धर्मों में अन्तर स्पष्ट कीजिए।

उ०– **जैन धर्म तथा बौद्ध धर्म में समानताएँ–** जैन धर्म तथा बौद्ध धर्म में निम्नलिखित समानताएँ पाई जाती हैं—

(i) दोनों ही धर्मों ने अहिंसा पर बल दिया है।
(ii) दोनों ही धर्मों ने ईश्वर पर अविश्वास जताया है।
(iii) दोनों ही धर्मों ने नैतिक आचरण पर बल दिया है।
(iv) दोनों ही धर्मों ने वेदों को अस्वीकार किया है।
(v) दोनों ही धर्मों का जन्म हिन्दू धर्म के विरोधी के रूप में हुआ।
(vi) दोनों ही धर्मों के प्रवर्तक क्षत्रिय राजकुमार थे।
(vii) दोनों ही धर्मों के विचारों का मूल—स्रोत उपनिषदों का सांख्य दर्शन है।
(viii) दोनों ही धर्मों ने कर्मकाण्ड, अस्पृश्यता, जातिभेद, यज्ञ, पशुबलि आदि का विरोध किया है।

जैन धर्म तथा बौद्ध धर्म में अन्तर– जैन धर्म तथा बौद्ध धर्म में निम्नलिखित अन्तर हैं—

जैन धर्म	बौद्ध धर्म
(i) जैन धर्म के अनुसार किसी भी जीव या निर्जीव (वस्तु) को कष्ट नहीं पहुँचाना चाहिए।	(i) बौद्ध धर्म के अनुसार किसी भी प्राणी को मन, वचन तथा कर्म से कष्ट नहीं पहुँचाना चाहिए।
(ii) इस धर्म में मोक्ष-प्राप्ति के लिए त्रिरत्न का पालन आवश्यक है।	(ii) इसमें मोक्ष-प्राप्ति के लिए अष्ट-मार्ग बताया गया है।
(iii) जैन धर्म में सन्यास से पूर्व गृहस्थ जीवन को आवश्यक माना गया है।	(iii) इस धर्म के अनुसार ऐसा करना आवश्यक नहीं है।
(iv) जैन धर्म के अनुयायी तीर्थंकरों की पूजा करते हैं।	(iv) बौद्ध धर्म के अनुयायी बोधिसत्त्वों की पूजा करते हैं।
(v) जैन धर्म की दिगम्बर शाखा के अनुयायी बिल्कुल नंगे रहते हैं।	(v) बौद्ध धर्म की किसी भी शाखा में यह बात नहीं पायी जाती।
(vi) जैन धर्म के प्रमुख ग्रन्थ 'अंग' और 'उपांग' हैं।	(vi) बौद्ध धर्म के प्रसिद्ध ग्रन्थ 'जातक' तथा 'त्रिपिटक' हैं।
(vii) जैन धर्म केवल भारत तक सीमित रहा।	(vii) बौद्ध धर्म विदेशों में भी खूब लोकप्रिय हुआ।

8. समाज में बौद्ध धर्म के योगदान को स्पष्ट कीजिए।

उ०– **बौद्ध धर्म का योगदान–** बौद्ध धर्म अत्यन्त व्यवहारिक था। बौद्ध धर्म का परम लक्ष्य निर्वाण प्राप्ति था। मुक्ति का दूसरा नाम निर्वाण ही है। अन्य धर्मों के अनुसार जीवन से मुक्ति मरने के बाद मिलती है, परन्तु बौद्ध धर्म के अनुसार वह जीवित रहते ही सम्भव है। बौद्ध धर्म कर्मफल एवं पुनर्जन्म का समर्थन करता है। कर्मों के अनुसार ही मनुष्य को अच्छे या बुरे फल की प्राप्ति होती है। बौद्ध धर्म शीघ्र ही पूरे उत्तर भारत में फैल गया। भारत में ही नहीं बौद्ध धर्म श्रीलंका, तिब्बत, चीन, जापान तथा दक्षिण—पूर्व एशिया के अन्य देशों में भी लोकप्रिय हो गया था। बौद्ध धर्म ने भारत में राजनीतिक स्थिरता, परस्पर एकता तथा शान्ति बनाए रखने में बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। बौद्ध धर्म के अहिंसावादी सिद्धांतों से अनेक शासक प्रभावित हुए। उन्होंने युद्धों का त्याग कर दिया तथा अपना जीवन प्रजा के कल्याण में लगा दिया। इससे राज्यों में प्रजा बहुत समृद्ध हो गई। बौद्ध धर्म के उदय से पहले हिन्दू धर्म में अनेक कुरीतियाँ प्रचलित थीं। लोग व्यर्थ के आडम्बरों में उलझे हुए थे। समाज में ब्राह्मणों का बोलबाला था। ब्राह्मण समुदाय लालची और भ्रष्टाचारी था। हिन्दू धर्म केवल एक आडम्बर मात्र बनकर रह गया था। महात्मा बौद्ध ने हिन्दू धर्म में उपस्थित इन कुप्रथाओं का पुरजोर विरोध किया। बौद्ध धर्म के अनुसार कोई भी व्यक्ति बिना ब्राह्मणों के सहयोग से अपने समस्त कार्य सम्पन्न कर सकता था। इस कारण बहुत से लोग हिन्दू धर्म छोड़कर बौद्ध धर्म में सम्मिलित होने लगे। महात्मा बुद्ध के निर्वाण के पश्चात् बौद्ध धर्म के अनुयायियों ने महात्मा बुद्ध तथा बोधिसत्त्वों की सुन्दर मूर्तियाँ निर्मित करके उनकी पूजा आरम्भ कर दी। इस प्रकार बौद्ध धर्म ने भारत में मूर्तिपूजा का प्रचलन किया जो आज तक जारी है।

सांस्कृतिक क्षेत्र में बौद्ध धर्म का योगदान अत्यन्त सराहनीय है। बौद्ध संघों द्वारा न केवल बौद्ध धर्म का प्रचार किया जाता था, अपितु ये शिक्षा देने के विख्यात केन्द्र भी बन गए। तक्षशिला, नालन्दा और विक्रमशिला नामक बौद्ध विश्वविद्यालयों ने अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त की। इन विश्वविद्यालयों में पढ़ने के लिए बड़ी संख्या में छात्र विदेशों से भी आते थे। बौद्ध विद्वानों द्वारा

रचित ग्रन्थों जैसे— त्रिपिटक, जातक, बुद्ध, महाविभास, मिलिन्द पन्हों, सौदरनन्द, ललित विस्तार तथा महामंगल सूत्र इत्यादि ने भारतीय साहित्य में बहुमूल्य वृद्धि की। भवन—निर्माण कला और मूर्तिकला के क्षेत्रों में बौद्ध धर्म की देन को कभी भी भुलाया नहीं जा सकता। अशोक तथा कनिष्क के राज्य—काल में भारत में बड़ी संख्या में स्तूपों तथा विहारों का निर्माण हुआ। महाराजा अशोक द्वारा निर्मित करवाए गए साँची तथा भरहुत के स्तूपों की सुन्दर कला को देखकर व्यक्ति चकित रह जाता है। कनिष्क के समय गांधार और मथुरा कला का विकास हुआ; महात्मा बुद्ध तथा बोधिसत्त्वों की अति सुन्दर मूर्तियाँ निर्मित की गई। अजन्ता तथा बाघ की गुफाओं को देखकर चित्रकला के क्षेत्र में उस समय हुए विकास का सहज अनुमान लगाया जा सकता है। समय—समय पर बौद्ध भिक्षु धर्म प्रचार करने के लिए विदेशों, जैसे—चीन, जापान, श्रीलंका, बर्मा, इण्डोनेशिया, जावा, सुमात्रा, तिब्बत आदि देशों में जाते रहे। इससे न केवल इन देशों में बौद्ध धर्म फैला, अपितु भारतीय संस्कृति का विकास भी हुआ।
सामाजिक क्षेत्र में बौद्ध धर्म की देन प्रशंसनीय है। बौद्ध धर्म के उदय से पहले हिन्दू धर्म में जाति—प्रथा बड़ी जटिल हो गई थी। उच्च जाति के लोग निम्न जाति के लोगों से घृणा करते थे। शुद्रों पर अनेक अत्याचार किए जाते थे। महात्मा बुद्ध ने जाति—प्रथा के विरुद्ध जोरदार प्रचार किया। उन्होंने अपने अनुयायियों को परस्पर भ्रातृ—भाव का संदेश दिया। महात्मा बुद्ध ने अपने धर्म में सभी जातियों और वर्गों को सम्मिलित करके भारतीय समाज को एक नया रूप प्रदान किया। इससे निम्न वर्ग के लोगों को भी समाज में प्रगति करने का अवसर मिला। बौद्ध धर्म के प्रभावाधीन लोगों ने मांस—भक्षण, मदिरापान तथा अन्य नशीले पदार्थों का सेवन बन्द कर दिया।

❖ **मानचित्र सम्बन्धी अभ्यास कार्य**

अध्यापक की सहायता से विद्यार्थी स्वयं करें।

❖ **प्रोजेक्ट कार्य**

अध्यापक की सहायता से विद्यार्थी स्वयं करें।

इकाई-1 (ख) : जनपदों एवं राज्य का विकास

6 जनपदों की राजनीतिक प्रतिद्वन्द्विता तथा महाजनपद

अभ्यास

❖ **बहुविकल्पीय प्रश्न**

उ०— बहुविकल्पीय प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्य पुस्तक के पृष्ठ संख्या—58 का अवलोकन कीजिए।

❖ **अतिलघु उत्तरीय प्रश्न**

उ०— अतिलघु उत्तरीय प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्य पुस्तक के पृष्ठ संख्या—58 व 59 का अवलोकन कीजिए।

❖ **लघु उत्तरीय प्रश्न**

1. सोलह महाजनपदों के नाम उनकी राजधानी के साथ लिखिए।

उ०— सोलह महाजनपदों के नाम उनकी राजधानी सहित निम्नलिखित हैं—

क्र०सं०	महाजनपद	राजधानी	क्र०सं०	महाजनपद	राजधानी
1.	काशी	वाराणसी	9.	कुरु	इन्द्रप्रस्थ
2.	कौशल	श्रावस्ती/अयोध्या	10.	पांचाल	अहिच्छत्र-काम्पिल्य
3.	अंग	चम्पा	11.	मत्स्य	विराटनगर
4.	मगध	गिरिव्रज (राजगृह)	12.	शूरसेन	मथुरा
5.	वज्जि	मिथिला	13.	अस्मक	पैठन
6.	मल्ल	कुशीनगर, पावा	14.	अवन्ति	उज्जयिनी, महिष्मती
7.	चेदि	सुक्तिमती	15.	गान्धार	तक्षशिला
8.	वत्स	कौशाम्बी	16.	कम्बोज	लाजपुर

2. गौतम बुद्ध के समय के गणराज्यों के नाम उनकी राजधानी के साथ लिखिए।

उ०— छठी शताब्दी ई० पूर्व अर्थात् गौतम बुद्ध के समय दस गणतन्त्र भी थे,जो निम्नलिखित थे—

क्र०सं०	गणराज्य	राजधानी	क्र०सं०	गणराज्य	राजधानी
1.	शाक्य	कपिलवस्तु	6.	मग्ग	सुमसुमारगिरी
2.	बुली	अल्लकप्प	7.	कालाम	केसपुत्त
3.	कोलिय	रामग्राम	8.	मल्ल	कुशीनगर
4.	मल्ल	पावा	9.	मोरिय	पिप्पलीवन
5.	लिच्छवी	वैशाली	10.	विदेह	मिथिला

3. बिम्बिसार का संक्षिप्त परिचय दीजिए।

उ०– बिम्बिसार का जन्म 558 ई० पू० के लगभग हुआ था। वह मात्र 15 वर्ष की आयु में 544 ई० पू० मगध का शासक बना। मगध साम्राज्य के उत्थान और विकास में बिम्बिसार का महत्वपूर्ण योगदान रहा। बिम्बिसार ने राजग्रह को अपनी राजधानी बनाया। कौशल नरेश प्रसेनजित की बहन कौशल देवी उनकी पत्नी और अजातशत्रु की माँ थी। इसके अतिरिक्त उसने वैशाली, पंजाब आदि राज्यों से भी इसने वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित कर अपने सम्राज्य का विस्तार किया। बिम्बिसार ने 492 ई० पू० तक मगध साम्राज्य पर शासन किया। बिम्बिसार बौद्ध धर्म के महान श्रद्धालु थे। बिम्बिसार का सम्बन्ध हर्यंक वंश से था।

4. अजातशत्रु का संक्षिप्त परिचय दीजिए।

उ०– अजातशत्रु बिम्बिसार का पुत्र था। कौशल नरेश प्रसेनजित की बहन कौशल देवी अजातशत्रु की माँ थी। सिंहासन प्राप्त करने के लालच में अजातशत्रु ने अपने पिता की 492 ई० पू० हत्या कर दी। अजतशत्रु ने मगध पर 492 ई० पू० से 460 ई० पू० तक शासन किया। वह बहुत शक्तिशाली शासक सिद्ध हुआ। प्रथम बौद्ध संगीति का आयोजन 487 ई० पूर्व अजातशत्रु के शासन काल में ही हुआ था। 460 ई० पू० में अजातशत्रु की की मृत्यु हो गयी थी।

5. नन्दवंश पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

उ०– चौथी शताब्दी ई० पू० में महापद्मनन्द ने शिशुनाग वंश के अन्तिम शासक कालाशोक की हत्या करके मगध में नन्दवंश की स्थापना की। वह बड़ा शक्तिशाली शासक सिद्ध हुआ। उसे उग्रसेन और सर्वक्षत्रांतक भी कहा जाता है। महापद्मनन्द की मृत्यु के बाद उसके 8 पुत्र मगध के सिंहासन पर बैठे और उन्होने 22 वर्षो तक शासन किया। नन्द वंश का अन्तिम शासक घनानन्द था। 322 ई० पू० चन्द्र गुप्त ने घनानन्द को पराजित कर मगध में मौर्य वंश की नींव डाली।

❖ **विस्तृत उत्तरीय प्रश्न**

1. महाजनपदों का विस्तृत परिचय दीजिए।

उ०– बुद्ध के समय में (छठी शताब्दी ई० पू०) सोलह जनपदों का उल्लेख मिलता जिनका परिचय निम्नवत है—

(i) काशी– इस काल का सबसे पुराना और प्रसिद्ध जनपद काशी था। काशी की राजधानी वरुणा और असी नदियों के संगम पर बसी वाराणसी थी जो आज की आधुनिक वाराणसी के नाम से प्रसिद्ध है। राजा ब्रह्मदत्त के शासनकाल में काशी राज्य की शक्ति और समृद्धि विशेष बढ़ गई थी। 'गुत्तिल जातक' के अनुसार काशी नगरी 12 योजन तक विस्तारित थी। जैन धर्म के 23वें तीर्थंकर पार्श्वनाथ के पिता अश्वसेन काशी के प्राचीन राजाओं में से एक थे।

(ii) कौशल– आज के समय का अवध ही प्राचीन काल का कौशल था। वर्तमान उत्तर प्रदेश राज्य के साकेत, अयोध्या और श्रावस्ती को मिलाकर कौशल महाजनपद के रूप में जाना जाता था। महात्मा बुद्ध के समय में कौशल की राजधानी श्रावस्ती थी।

(iii) अंग– यह जनपद मगध के पश्चिम में था। वर्तमान बिहार के पटना और गया जिलों को मिलाकर मगध कहा जाता है। आधुनिक भागलपुर के समीप चम्पा में इसकी राजधानी थी।

(iv) मगध– वर्तमान बिहार के पटना और गया जिले इस जनपद के अन्तर्गत थे। प्रारम्भ में इसकी राजधानी **गिरिव्रज** थी। यह राज्य अपने वैभव के लिए अत्यधिक प्रसिद्ध था। महात्मा बुद्ध के समय के पूर्व **बृहद्रथ** और **जरासन्ध** मगध के दो विख्यात राजा हो चुके थे।

(v) वज्जि– यह जनपद गंगा के उत्तर तथा हिमालय के दक्षिण में स्थित था। आधुनिक काल में इसे बिहार राज्य का उत्तरी भाग माना जा सकता है। यह महाजनपद विश्व के प्राचीनतम गणराज्य के जन्मदाता के रूप में प्रसिद्ध है। यह राज्य आठ गणराज्यों का संघ था, जिनमें लिच्छवि, विदेह और ज्ञात्रिक विशेष महत्वपूर्ण थे। विदेह की राजधानी मिथिला, लिच्छवियों की राजधानी वैशाली और ज्ञात्रिकों की राजधानी कुण्डग्राम थी। कालान्तर में मगध के राजा अजातशत्रु ने इस जनपद को अपने राज्य में सम्मिलित कर लिया था।

(vi) मल्ल– यह महाजनपद वज्जि संघ के उत्तर में स्थित था। वज्जि संघ की भाँति मल्ल राज्य भी एक संघ राज्य था। इस संघ राज्य में मल्लों की दो शाखाएँ थीं। इनमें से एक की राजधानी **कुशीनगर** और दूसरे की **पावा** थी। कुशीनगर आधुनिक

देवरिया जिले में कसिया और पावा आधुनिक पडरौना था। ये दोनों नगर अपने समय के बड़े समृद्धिशाली नगर थे।

(vii) चेटि अथवा चेदि– आधुनिक बुन्देलखण्ड और उसके सीमावर्ती प्रदेश इसके अन्तर्गत थे। इसकी राजधानी शुक्तिमती अथवा सोत्थिवती थी। महाभारत काल के राजा शिशुपाल की मृत्यु के उपरान्त इस राज्य का पतन हो गया।

(viii) वत्स या वंश– काशी के दक्षिण और चेदि के उत्तर का भाग उस समय वत्स था। इसकी राजधानी कौशाम्बी अथवा कोसंबी थी। यह वर्तमान प्रयाग से लगभग 45 किमी दूर आधुनिक कौसम गाँव है। जब गंगा की भीषण बाढ़ से हस्तिनापुर नष्ट हो गया तो जनमेजय के प्रपौत्र निचक्षु ने कौशाम्बी को ही अपनी राजधानी बनाया था।

(ix) कुरु– वर्तमान दिल्ली तथा मेरठ के समीपवर्ती प्रदेश कुरू राज्य के अन्तर्गत थे। इसकी राजधानी **इन्द्रप्रस्थ** थी। इस राज्य का दूसरा मुख्य नगर हस्तिनापुर था। पालि—ग्रन्थों के अनुसार कुरु राज्य के शासन युधिष्ठिला गोत्र के थे। कालान्तर में इस राज्य पर भी मगध ने अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया था।

(x) पांचाल– पांचाल प्रदेश में आधुनिक रुहेलखण्ड और उसके समीप के कतिपय जिले सम्मिलित थे। प्राचीन काल में यह जनपद दो राज्यों— **उत्तर पांचाल** और **दक्षिण पांचाल** में विभक्त था। उत्तर पांचाल की राजधानी **अहिच्छत्र** तथा दक्षिण पांचाल की राजधानी **काम्पिल्य** थी। दक्षिण पांचाल का राज्य उत्तर पांचाल की अपेक्षा शक्तिशाली था। उत्तर पांचाल के एक सम्राट का नाम दुर्मुख (दुम्मुख) था। 'उत्तराध्ययन सूत्र' में राजा ब्रह्मदत्त को पृथ्वी का एक महान राजा माना गया है। इसी ग्रन्थ से यह भी ज्ञात होता है कि काम्पिल्य के राजा संजय ने राज्य का परित्याग कर जैन धर्म को अंगीकार कर लिया था।

(xi) मच्छ या मत्स्य– यह जनपद यमुना नदी के पश्चिम तथा कुरु राज्य के दक्षिण में स्थित था। इसकी राजधानी विराटनगर थी। बौद्ध साहित्य में इस जनपद के राजाओं का उल्लेख नहीं मिलता। महाभारत में शहाज नामक राजा का उल्लेख है, जिसने चेदि और मत्स्य दोनों राज्यों का शासन किया था।

(xii) शूरसेन– यह राज्य कुरु के दक्षिण और चेदि के उत्तर—पश्चिम में स्थित था। इसकी राजधानी **मथुरा** थी। महाभारत से ज्ञात होता है कि इस राज्य में यादव वंश ने बडी प्रतिष्ठा प्राप्त की थी। बौद्ध ग्रन्थों में जिस अवन्तिपुत्र का उल्लेख मिलता है, वह इसी शूरसेन देश का राजा और भगवान बुद्ध का समकालीन था।

(xiii) अश्मक (अस्मक)– यह राज्य गोदावरी के तट पर स्थित था। इसकी राजधानी **पोतन** अथवा **पोतलनगरी** थी। पुराणों के अनुसार इस राज्य के शासन इक्ष्वाकु वंश के थे। एक जातक से यह ज्ञात होता है कि किसी समय में यह राज्य काशी राज्य के अधीन था। **चुल्लकलिंग जातक** के अनुसार, अरुण नामक राजा ने कलिंग देश पर विजय प्राप्त कर उसे अपने राज्य के अधीन कर लिया था। इस राज्य का अवन्ति से निरन्तर संघर्ष चलता रहा और कालान्तर में यह राज्य अवन्ति के अधीन हो गया।

(xiv) अवन्ति– आधुनिक मालवा प्राचीन काल का अवन्ति राज्य था। इस राज्य के दो भाग— **उत्तरी अवन्ति** तथा **दक्षिणी अवन्ति** थे। उत्तरी अवन्ति की राजधानी उज्जयिनी तथा दक्षिणी अवन्ति की राजधानी माहिष्मती (आधुनिक मान्धाता) थी। बुद्ध के समय में अवन्ति राज्य एक अत्यधिक शक्तिशाली राज्य था। चण्डप्रद्योत इस राज्य का प्रसिद्ध शासक था, जिसने कई बार वत्सराज उदसन को अपने अधीन करने का प्रयास किया था। अवन्ति के राजा प्रद्योत ने इस राज्य से कई बार युद्ध किया था, किन्तु अन्त में वह पराजित हुआ था।

(xv) गान्धार– यह राज्य आधुनिक अफगानिस्तान का दक्षिणी—पूर्वी भाग था। इसमें पंजाब का पश्चिमी भाग और कश्मीर का कुछ दक्षिणी भाग भी सम्मिलित था। 'कुम्भकार जातक' के अनुसार इस राज्य की राजधानी **तक्षशिला** थी जो उस समय विद्या और कला का मुख्य केन्द्र थी। बुद्ध के समकालीन गान्धार नरेश **पुष्पकुसाती** ने मगध के राजा बिम्बिसार के पास अपना दूत भेजा था।

(xvi) कम्बोज– कश्मीर का उत्तरी भाग और गान्धार के उत्तर का प्रदेश कम्बोज महाजनपद में सम्मिलित था। इसे गान्धार का पड़ोसी राज्य भी कहते थे। क्योंकि इन दोनों राज्यों के नाम बौद्ध ग्रन्थों में साथ—साथ प्रयुक्त हुए हैं। इस राज्य के दो प्रमुख नगर— **राजपुत्र** और **द्वारका** थे।

2. गणराज्यों का विस्तृत परिचय दीजिए।

उ०– गणराज्यों का संक्षिप्त परिचय–

(i) कपिलवस्तु के शाक्य (आधुनिक गोरखपुर के पश्चिम और नेपाल की तराई में स्थित, गौतम बुद्ध की जन्मभूमि)

(ii) अल्लकप्प के बुली (आधुनिक शाहाबाद तथा मुजफ्फरपुर, बिहार राज्य)

(iii) रामग्राम के कोलिय (कपिलवस्तु के पूर्व स्थित)

(iv) पावा के मल्ल (फाजिलपुर, उत्तर प्रदेश)

(v) वैशाली के लिच्छवि (आधुनिक मुजफ्फरपुर, बिहार)

(vi) सुंसुमागिरी के मग्ग (आधुनिक मिर्जापुर)

(vii) केसपुत्त के कालाम (कपिलवस्तु और रामग्राम के बीच, गौतम बुद्ध के गुरु कालाम की जन्मभूमि)
(viii) कुशीनगर के मल्ल (आधुनिक कसिया, उत्तर प्रदेश)
(ix) पिप्पलीवन के मोरिय (हिमालय की तराई में स्थित, चन्द्रगुप्त मौर्य की जन्मभूमि)
(x) मिथिला के विदेह (नेपाल के निकट जनकपुर ग्राम)

3. मगध साम्राज्य के उत्थान तथा विकास में किन शासकों का योगदान सराहनीय था संक्षेप में बताइए।

उ०– मगध साम्राज्य का उत्थान और विकास– मगध राज्य का प्राचीन भारत के इतिहास में बहुत महत्वपूर्ण स्थान था। मगध राज्य का विस्तार वर्तमान बिहार राज्य के दक्षिण में स्थित पटना तथा गया जनपदों में हुआ था। मगध साम्राज्य ने चतुर्थ शताब्दी ई०पू० तक भारत की राजनीति में बड़ी महत्तवपूर्ण भूमिका निभाई। पाँचवीं शताब्दी ई०पू० में यह सबसे विस्तृत एवं शक्तिशाली साम्राज्य बन गया। छठी शताब्दी ई०पू० में यह उत्तरी भारत में स्थापित 16 महाजनपदों में अपना स्थान बना चुका था। 'ब्रहद्रथ वंश' राजवंश मगध पर शासन करने वाला पहला ज्ञात राजवंश था। इस वंश के संस्थापक बृहद्रथ थे। इस वंश का सबसे प्रतापी राजा जरासन्ध था। रिपंजय इस वंश का अन्तिम शासक था। मगध साम्राज्य के उत्थान और विकास में निम्नलिखित शासकों की महत्वपूर्ण भूमिका रही—

(i) बिम्बिसार (544–492 ई०पू०)– बिम्बिसार का मगध साम्राज्य के उत्थान एवं विकास में बहुत महत्वपूर्ण योगदान रहा था। वह 544 ई०पू० में मगध का शासक बना। इस समय उसकी आयु मात्र 15 वर्ष थी। उसने 492 ई०पू० तक शासन किया। बिम्बिसार एक सफल राजनीतिज्ञ था। सिंहासन पर बैठने के बाद उसने भारतीय राजनीति को बड़े ध्यान से समझा। बिम्बिसार ने मगध राज्य को सुदृढ़ बनाने के उद्देश्य से उस समय के बड़े व शक्तिशाली राज्यों के साथ वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित किए। उसने सर्वप्रथम कौशल नरेश प्रसेनजित की बहन कौशल देवी से विवाह किया। उसे प्रसेनजित ने काशी नामक शहर दहेज में दिया। काशी शहर के मगध में मिल जाने से मगध की वार्षिक आय में एक लाख रुपये की वृद्धि हो गई। इसके अतिरिक्त उसने चेलना वंश की राजकुमारी, केश्मा पंजाब के मद्र राज्य के शासक की पुत्री, विदेह राज्य की राजकुमारी वासवी से भी वैवाहिक सम्बन्ध बनाए। इन सम्बन्धों ने मगध साम्राज्य को शक्तिशाली बनाने के साथ—साथ उसकी सुदृढ़ता में वृद्धि की। बिम्बिसार बहुत प्रतापी, योग्य, महान विजेता, साम्राज्य निर्माता और धर्मसहिष्णु शासक था। बिम्बिसार का साम्राज्य लगगभग 80,000 गाँवों तक विस्तृत था मगध की राजधानी गिरिव्रज थी जो पटना से 80 किमी० दूर थी। बिम्बिसार ने केवल एक योग्यनीतिज्ञ और विख्यात सेनापति था, अपितु एक अनुभवी और सफल राज्य—प्रबन्धक भी था। उसने एक कुशल शासन—व्यवस्था की स्थापना की थी। प्रजा का कल्याण करना वह अपना कर्तव्य समझता था। प्रशासन—व्यवस्था को उत्तम ढंग से चलाने के उद्देश्य से उसने एक मन्त्रिमण्डल का गठन किया हुआ था।

यह कहना कदापि गलत न होगा कि बिम्बिसार के शासनकाल के दौरान मगध साम्राज्य का चहुँमुखी विकास हुआ। सिंहासन प्राप्त करने के लालच में बिम्बिसार के पुत्र अजातशत्रु ने 492 ई०पू० बिम्बिसार की हत्या कर दी। बौद्ध ग्रन्थों में बिम्बिसार को बौद्ध धर्म का महान श्रद्धालु और जैन धर्म ग्रन्थों में उसे जैन धर्म का महान श्रद्धालु बताया गया है।

(ii) अजातशत्रु (492–460 ई०पू०)– बिम्बिसार की मृत्यु के बाद उसका पुत्र अजातशत्रु 492 ई०पू० में मगध के सिंहासन पर बैठा। उसने 460 ई०पू० तक शासन किया। वह बहुत शक्तिशाली शासक सिद्ध हुआ। उसने अपने शासनकाल में मगध राज्य को साम्राज्य में परिवर्तित कर दिया। प्रथम बौद्ध संगीति का आयोजन अजातशत्रु ने ही किया था।

अजातशत्रु की सबसे महत्वपूर्ण सफलता वैशाली के लिच्छवियों को पराजित करना था। उस समय लिच्छवी बहुत शक्तिशाली थे। इस युद्ध के लिए अजातशत्रु ने यह बहाना बनाया कि लिच्छवियों ने अजातशत्रु के विरुद्ध कौशल राज्य की सहायता की थी। दोनों के बीच यह युद्ध 16 वर्षों तक चलता रहा। इस युद्ध में विजय प्राप्त करने के उद्देश्य से अजातशत्रु ने अपनी सेना को अधिक शक्तिशाली बनाया तथा गंगा एवं सोन नदियों के संगम पर पाटलिपुत्र नामक एक नगर की स्थापना की तथा उसकी पूर्ण किलेबन्दी की। इसके अतिरिक्त, उसके दो मन्त्री लिच्छवियों में फूट डलवाने में सफल हुए। इन प्रयत्नों के फलस्वरूप अन्ततः अजातशत्रु लिच्छवियों को पराजित करने में सफल रहा। इस शानदार विजय के फलस्वरूप जहाँ मगध के साम्राज्य का बहुत अधिक विस्तार हुआ, वहीं अजातशत्रु के गौरव में भी वृद्धि हुई।

(iii) अजातशत्रु के उत्तराधिकारी– अजातशत्रु के पुत्र का नाम उदयन था जोकि अजातशत्रु की मृत्यु के पश्चात् मगध के सिंहासन पर बैठा। उदयन ने पाटलिपुत्र को मगध साम्राज्य की राजधानी बनाया, क्योंकि पाटलिपुत्र मगध साम्राज्य के मध्य में स्थित था। पाटलिपुत्र का प्रसिद्ध जैन चैत्यगृह भी उदयन ने ही बनवाया। उदयन के बाद अनुरुद्ध, मुण्ड और नागदासक नाम के शासक मगध सिंहासन पर बैठे। ये सभी शासक बिलकुल नकारा और अयोग्य थे।

(iv) शिशुनाग वंश– 420 ई०पू० में शिशुनाग ने हर्यंक वंश के अन्तिम शासक नागदासक की हत्या करके मगध में एक नए राजवंश की स्थापना की। उसने वैशाली को कुछ समय के लिए मगध साम्राज्य की राजधानी बनाया। उसकी सबसे महत्वपूर्ण सफलता अवन्ति के शासक चण्डप्रद्योत को पराजित करना था। इसके अतिरिक्त, उसने वत्स और कौशल शासकों को भी पराजित किया। इन शासकों के प्रदेशों को मगध साम्राज्य में सम्मिलित कर लिया गया जिसके

परिणामस्वरूप इस साम्राज्य की सीमाएँ दूर—दूर तक फैल गईं।

(v) नन्द वंश– 364 ई०पू० में **महापद्मनन्द** ने मगध में नन्द वंश की स्थापना की। उसने 28 वर्ष तक शासन किया। वह बड़ा शक्तिशाली शासक सिद्ध हुआ। उसकी सैनिक शक्ति बहुत विशाल और सुदृढ़ थी। इसी कारण उसे उग्रसेन कहा जाता था। क्षत्रियों का नाश करने के कारण उसे 'सर्वक्षत्रांतक' भी कहा जाता है। उसने अपने शासनकाल में इक्ष्वांक, पांचाल, कुरु, शूरसेन, मिथिला, कलिंग इत्यादि शासकों को पराजित करके मगध साम्राज्य की सीमाओं में खूब विस्तार किया। परिणामस्वरूप उसे उत्तरी भारत का प्रथम महान सम्राट कहा जाता है।

4. मगध साम्राज्य के विस्तार के कारण बताइए।

उ०– मगध साम्राज्य के विस्तार के कारण– मगध साम्राज्य के विस्तार के कुछ प्रमुख कारण निम्नलिखित है—

(i) मगध शासकों के पास विशाल और प्रशिक्षित सेना थी जिसमें 2 लाख पैदल सैनिक, 60 हजार घुड़सवार तथा 6 हजार हाथी सम्मिलित थे। सेना में हाथियों का प्रयोग पहली बार किया गया जो दुर्ग तोड़ने में तथा युद्ध—साम्रगी अथवा खाद्य सामग्री ढोने में अत्यन्त सहायक सिद्ध हुए।

(ii) मगध साम्राज्य का आर्थिक पक्ष अत्यन्त मजबूत था। सिंचाई के पर्याप्त साधन थे। कृषि उपज भरपूर होती थी। व्यापार भी उन्नत दशा में था। सेना के रखरखाव में आर्थिक कठिनाई नहीं आती थी।

(iii) मगध साम्राज्य के विस्तार में इसकी भौगोलिक स्थिति पर्याप्त सहायक सिद्ध हुई । मगध के उत्तर की ओर गंगा, दक्षिण की ओर विंध्याचल पर्वत, पूर्व की ओर सोन तथा पश्चिम की ओर चम्पा नदियाँ बहती थीं। इस प्रकार मगध साम्राज्य चारों ओर से सुरक्षित था। इसकी दोनों राजधानियाँ राजगृह और पाटलिपुत्र भी भौगोलिक दृष्टि से महत्वपूर्ण स्थानों पर स्थित थीं। पहली राजधानी राजगृह पाँच पर्वतों की एक श्रृंखला द्वारा घिरी हुई थी। उस समय तक तोपों का आविष्कार नहीं हुआ था, इसलिए मगध पर विजय प्राप्त करना लगभग असम्भव था। पाँचवीं शताब्दी में मगध के शासकों ने पाटलिपुत्र को अपनी राजधानी बनाया। यह मगध के केन्द्र तथा गंगा, गण्डक और सोन नदियों के संगम पर स्थित था। इससे थोड़ी दूरी पर सरयू नदी गंगा में मिलती थी। परिणामस्वरूप नदियों से घिरे होने के कारण पाटलिपुत्र अत्यन्त सुरक्षित था।

(iv) मगध के विस्तार में लोहे के विशाल भण्डारों ने महत्वपूर्ण योगदान दिया। इन लोहे के भण्डारों के कारण ही मगध के शासक उन्नत किस्म के शस्त्र बना पाए। मगध साम्राज्य के विरोधियों के पास लोहे के भण्डारों का अभाव था। जिसके कारण उनके लिए ऐसे शस्त्रों का निर्माण करना असम्भव था। इन शस्त्रों के परिणामस्वरूप मगध के शासक अपने विरोधियों को सरलता से पराजित कर पाए। छठी शताब्दी ई०पू० के लगभग उज्जैन जोकि अवन्ति की राजधानी था, में लोहे को ढालने का कार्य आरम्भ हो चुका था। परिणामस्वरूप वहाँ के लौहार बढ़िया किस्म के शस्त्र बनाने मे सफल हुए। इसी कारण उत्तरी भारत में अपनी प्रभुसत्ता स्थापित करने के लिए मगध और अवन्ति के शासकों में कठोर संघर्ष चलता रहा। अवन्ति पर अधिकार करने के लिए मगध को लगभग सौ वर्ष लगे।

(v) अन्य कारणों में बिम्बिसार, अजातशत्रु, शिशुनाग तथा महापद्मनन्द जैसे वीर, कुशल तथा लोकप्रिय शासकों का होना तथा जाति—प्रथा का शिथिल होना भी था। जनसाधारण परस्पर मेल—मिलाप और एकता से रहते थे। आपस में भेदभाव अथवा छल—कपट देखने को नहीं मिलता था।

5. सिकन्दर के आक्रमण के प्रभावों की विवेचना कीजिए।

उ०– सिकन्दर के आक्रमण का प्रभाव– सिकन्दर के आक्रमण के निम्नलिखित प्रभाव हुए—

राजनीतिक प्रभाव–

(i) राजनीतिक चेतना– इस आक्रमण से सामान्य जनता में भी राज्य और राष्ट्र के प्रति देशभक्ति की भावना जाग्रत हुई जिससे राष्ट्रीय सुरक्षा की भावना का प्रबल विकास हुआ।

(ii) राष्ट्रीय एकता की भावना का विकास– सिकन्दर के आक्रमण ने भारतीयों को इस बात का आभास कराया कि अपने राज्य को शक्तिशाली बनाने के लिए उसमें राष्ट्रीय एकता का होना अति आवश्यक है।

(iii) सैन्य कुशलता का ज्ञान– सिकन्दर के आक्रमण से भारतीयों को इस बात का ज्ञान हो गया कि उसका सैन्य संगठन अत्यन्त दोषपूर्ण एवं दुर्बल है। सिकन्दर के प्रशिक्षित और सुसंचालित सैनिकों को देखकर भारतीय यह समझ गए कि थोड़े से प्रशिक्षित सैनिक भी एक विशाल असंगठित सेना को सरलता से पराजित कर सकते हैं।

(iv) केन्द्रीय शक्ति के महत्व का विकास– यह सत्य है कि सिकन्दर के आक्रमण ने सम्पूर्ण देश को प्रभावित नहीं किया, किन्तु इसने पंजाब और सिन्ध के छोटे—छोटे राज्यों की शासन पद्धति को नष्ट किया और एक विशाल साम्राज्य की स्थापना में सहायता दी।

सांस्कृतिक प्रभाव–

(i) गान्धार शैली का प्रादुर्भाव– यूनानियों के प्रभाव के कारण भारतीय मूर्तिकला और चित्रकला के क्षेत्र में एक नवीन शैली का उदय हुआ है, जो भारतीय इतिहास में गान्धार शैली कहलाती है। इसके अतिरिक्त, भवन—निर्माण के क्षेत्र में भी यूनानी

कला का समन्वय दृष्टिगोचर होता है। गान्धार कला ने भारतीय कला को एक नया आयाम दिया था।

(ii) **व्यापारिक क्षेत्र का विकास–** सिकन्दर ने अनेक नगरों और दूर–दूर के क्षेत्रों में पक्के राजमार्गों का निर्माण करवाया था, जिससे व्यापार के क्षेत्र में विशेष प्रगति हुई। आवागमन के साधनों से सांस्कृतिक समन्वय में भी बहुत सहायता मिली।

(iii) **मुदा-निर्माण पर प्रभाव–** भारत में यूनानी शासकों ने कुछ समय तक ही राज्य किया, तथापि उनके चले जाने के पश्चात् उनके कुछ सुन्दर सिक्के यहीं रह गए। जब वे बाद में प्रचलन में आए तो उनकी कलात्मक सुन्दरता को देखकर भारतीय आश्चर्यचकित रह गए और उन्होंने भी अपने पुराने सिक्कों के स्थान पर नए सिक्के चलाए। ये सिक्के यूनानी मुद्रा की तौल, आकार और कलात्मक विशेषताओं आदि के अनुसार निर्मित किए गए थे। इस प्रकार, भारतीयों ने यूनानियों से सिक्के बनाने की उच्चकोटि की कला का ज्ञान प्राप्त किया।

(iv) **भारतीय ज्योतिष एवं दर्शन पर प्रभाव–** ज्योतिष के क्षेत्र में जहाँ एक ओर भारतीयों ने यूनानियों से बहुत कुछ सीखा, वहीं महान यूनानी चिन्तक **पाइथागोरस** पर भारतीय दर्शन का गहरा प्रभाव पड़ा। कुछ भारतीय ज्योतिष की राशियाँ— मेष, वृषभ, शनि आदि यूनानी नामों का ही रूपान्तर हैं। भारतीय ज्योतिषशास्त्र के **रेचक** और **मौखिक** सिद्धान्त नि:सन्देह यूनानी ही हैं।

(v) **अन्य प्रभाव–** भारतीय वेशभूषा पर भी यूनानी प्रभाव के चिह्न मिलते हैं। मौर्यकालीन मुद्राओं पर उत्कीर्ण चित्रों से पता चलता है कि भारतीयों ने यूनानियों के समान कोट तथा पायजामा पहनना आरम्भ कर दिया था।

कुछ विद्वानों का मानना है कि सिकन्दर के आक्रमण की तिथि से ही भारत में तिथि–क्रम प्रारम्भ हुआ। सिकन्दर के आक्रमण से पूर्व भारत अनेक छोटे–छोटे राज्यों में विभक्त था। सिकन्दर ने उत्तर–पश्चिम सीमान्त, पंजाब और सिन्धु प्रदेश के राज्यों को जीतकर उन्हें राजनीतिक एकता प्रदान की।

❖ **मानचित्र सम्बन्धी अभ्यास कार्य**

अध्यापक की सहायता से विद्यार्थी स्वयं करें।

❖ **प्रोजेक्ट कार्य**

अध्यापक की सहायता से विद्यार्थी स्वयं करें।

7 साम्राज्य का विकास-मौर्य साम्राज्य
(चन्द्रगुप्त मौर्य एवं अशोक)

अभ्यास

❖ **बहुविकल्पीय प्रश्न**

उ०– बहुविकल्पीय प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्य पुस्तक के पृष्ठ संख्या–66 का अवलोकन कीजिए।

❖ **अतिलघु उत्तरीय प्रश्न**

उ०– अतिलघु उत्तरीय प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्य पुस्तक के पृष्ठ संख्या–66 व 67 का अवलोकन कीजिए।

❖ **लघु उत्तरीय प्रश्न**

1. मौर्य साम्राज्य का संक्षिप्त परिचय देते हुए इसके स्रोत बताइए।

उ०– **मौर्य साम्राज्य–** भारत के इतिहास में मौर्य शासकाल का एक महत्वपूर्ण स्थान है। भारत ने मौर्यकाल के आरम्भ से एक नए युग में प्रवेश किया। मौर्यों के समय में ही भारत में एक सुदृढ़ शासन व्यवस्था की नींव रखी गई। मौर्यवंश की स्थापना को भारतीय युग की एक महत्वपूर्ण घटना भी माना गया है। भारत का पहला ऐतिहासिक राजवंश मौर्य वंश ही था। मौर्य वंश की स्थापना 321 ई०पू० में चन्द्रगुप्त मौर्य द्वारा की गई थी। चन्द्रगुप्त ने पाटलिपुत्र को मौर्य साम्राज्य की राजधानी घोषित की थी। चन्द्रगुप्त मौर्य ने चाणक्य को अपना प्रधानमन्त्री नियुक्त किया। चन्द्रगुप्त मौर्य के उत्तराधिकारी बिन्दुसार ने मौर्य साम्राज्य को सुरक्षित रखा और इसकी सीमाओं में वृद्धि की। अशोक इस साम्राज्य के सर्वाधिक प्रसिद्ध शासक थे। अशोक के प्रयत्नों से बौद्ध धर्म विश्व का एक लोकप्रिय धर्म बन गया। 184 ई०पू० में पुष्यमित्र शुंग ने मौर्य वंश के अन्तिम शासक बृहद्रथ की हत्या कर दी और मौर्य साम्राज्य का सदैव के लिए पतन कर दिया।

मौर्य साम्राज्य के स्रोत– मौर्य वंश की जानकारी मुख्यत: निम्नलिखित पुस्तकों से हुई है–

(i) मेगस्थनीज की इण्डिका (ii) कौटिल्य का अर्थशास्त्र (iii) विशाखदत्त का मुद्राराक्षस (iv) पुराणाथम ऐतिहासिक

2. चन्द्रगुप्त मौर्य का संक्षिप्त परिचय दीजिए।

उ०– चन्द्रगुप्त मौर्य को भारतीय इतिहास का प्रथम ऐतिहासिक सम्राट कहा जाता है। चन्द्रगुप्त मौर्य का जन्म 345 ई० पू० में पाटलिपुत्र में मोरिय जाति के मुखिया के यहाँ हुआ था। उसने अपने गुरु एवं मंत्री विणुगुप्त जिसे इतिहास में चाणक्य और कौटिल्य के नाम से जाना जाता है, की सहायता से भारत को यूनानी शक्तियों से मुक्त कराया और मगध के नन्द वंशीय राजा घनानन्द को सिंहासन पदच्युत कर मगध राज्य पर अपना अधिकार कर लिया। चन्द्रगुप्त मौर्य ने 322 ई० पू० से लेकर 298 ई० पू० तक लगभग 24 वर्षों तक सफलतापूर्वक शासन किया। अन्तिम समय में अपना राजकाज अपने पुत्र बिंदुसार को सौंपकर जैन धर्म स्वीकार कर लिया। 298 ई० पू० चन्द्रगुप्त मौर्य ने मैसूर में अंतिम सांस ली।

3. चन्द्रगुप्त के शासनकाल में केन्द्रीय शासन को समझाइए।

उ०– चन्द्रगुप्त के शासनकाल में सम्पूर्ण साम्राज्य में एक सुदृढ़ केन्द्रीय शासन स्थापित किया गया था। केन्द्रीय शासन की सभी शक्तियों का स्रोत राजा होता था। राजा ही सर्वोच्च कार्यपालिका अध्यक्ष और सर्वोच्च न्यायाधीश होता था। लेकिन मौर्य राजा प्रजापालक ही थे। मौर्य सम्राटों ने शासन कार्यों में सलाह लेने के लिए केन्द्रीय मन्त्रिपरिषद् का गठन कर रखा था। इसके सदस्यों को आमात्य कहा जाता था। प्रत्येक आमात्य एक प्रशासनिक विभाग का अधिकारी होता था। प्रशासनिक विभागों में **गुप्तचर विभाग**, **टकसाल विभाग**, **राजस्व विभाग**, **जल विभाग**, **वन विभाग** आदि प्रमुख थे। आचार्य कौटिल्य ने अपने ग्रन्थ **अर्थशास्त्र** में 18 आमात्यों और 30 प्रशासकीय विभागों का उल्लेख किया है। इन आमात्यों में **पुरोहित** (धर्म का अधिकारी), **सचिव** (प्रधानमंत्री), **समाहर्त्ता** (राजस्व संग्रह अधिकारी), **सेनापति** (युद्ध विभाग का अध्यक्ष), **अन्तपाल** (सीमाओं का रक्षक), **दण्डपाल**, **कर्मान्तक** आदि प्रमुख थे।

4. चन्द्रगुप्त मौर्य की सैन्य व्यवस्था को स्पष्ट कीजिए।

उ०– चन्द्रगुप्त मौर्य ने एक विशाल सेना की व्यवस्था की थी। उसकी सेना मुख्य रूप से चार प्रकार की थी—पैदल, अश्व, गज (हाथी) और रथ। सैन्य विभाग में प्रमुख रूप से तीन विभाग थे— सेना, दुर्ग और शस्त्रागार सेना के उचित प्रबन्ध के लिए पाँच—पाँच सदस्यों की छह सैन्य समितियाँ गठित थीं। ये समितियाँ क्रमश: पैदल सेना, अश्व सेना, गज सेना, रथ सेना, सैन्य सामग्री, रसद, तथा अस्त्र—शस्त्रों का प्रबन्ध करती थीं। चन्द्रगुप्त मौर्य की सेना में छह लाख पैदल, तीस हजार अश्वरोही नौ हजार हाथी और आठ हजार रथ थे।

5. सम्राट अशोक का संक्षिप्त परिचय दीजिए।

उ०– सम्राट अशोक, बिन्दुसार तथा रानी धर्मा का पुत्र था। सम्राट अशोक, बिन्दुसार की मृत्यु के बाद सिंहासन पर बैठा। उसने 269 ई० पू० से 232 ई० पू० तक मौर्य साम्राज्य पर शासन किया। 261 ई० पू० अशोक ने कलिंग—नरेश के साथ भयंकर युद्ध किया जो कलिंग युद्ध के नाम से विख्यात है। इस युद्ध में हुए भीषण नरसंहार और रक्तपात को देखकर अशोक का हृदय परिवर्तित हो गया और उसने भविष्य में कभी युद्ध न करने की प्रतिज्ञा ली। अशोक ने बौद्ध धर्म को स्वीकार किया और इसके प्रचार—प्रसार के लिए अपने पुत्र महेन्द्र और पुत्री संघमित्रा को लंका भेजा। तृतीय बौद्ध संगीति का आयोजन अशोक के शासनकाल में पाटलिपुत्र में हुआ। उसके शिलालेखों में उसे देवानांप्रिय तथा प्रियदर्शी कहा गया। अशोक एक आदर्शवादी महान सम्राट, विजेता, शासक, धर्मपरायण, प्रजापालक, धर्मसहिष्णु तथा कर्तव्यनिष्ठ राजा था।

6. मौर्य साम्राज्य के पतन के कारणों को स्पष्ट कीजिए।

उ०– मौर्य साम्राज्य के पतन के कारण– मौर्य साम्राज्य के पतन के निम्नलिखित कारण थे—

(i) आततायी शासन– मौर्य साम्राज्य के विभिन्न प्रान्तों में दुष्ट अमात्यों का शासन रहा जिस कारण प्रजा विद्रोही हो गई। बिन्दुसार एवं अशोक के शासनकाल में तक्षशिला में प्रजा ने अमात्य के विरुद्ध शिकायत की थी।

(ii) उत्तर-पश्चिम सीमा की असुरक्षा– अशोक ने 'भेरीघोष' के स्थान पर 'धम्मघोष' की नीति का पालन करते हुए विभिन्न देशों में धर्म प्रचारक भेजे, लेकिन उत्तरी—पश्चिमी सीमा की सुरक्षा पर कोई ध्यान नहीं दिया। साथ ही 'चीन की महान दीवार' बन जाने से भी मौर्य साम्राज्य असुरक्षित हो गया, क्योंकि अब मध्य एशियाई जातियों के आक्रमण उत्तर—पश्चिम सीमा से मौर्य साम्राज्य पर होने लगे।

(iii) ब्राह्मणों का विरोध– अशोक की अहिंसा की नीति के कारण ब्राह्मण उसके विरुद्ध हो गए, क्योंकि उसने यज्ञों एवं धार्मिक अनुष्ठानों के अवसर पर पशु—पक्षियों की बलि को गैर—कानूनी घोषित कर दिया। इससे ब्राह्मणों की जीविका पर असर पड़ा। ब्राह्मण ऐसी नीतियाँ चाहते थे जो उनके हितों को सुरक्षित रख सकें। इसी कारण मौर्य साम्राज्य के अनेक भागों में ब्राह्मण राजाओं ने छोटे—छोटे राज्य स्थापित कर लिए और अनेक स्थानों पर ब्राह्मणों के विद्रोह हुए। इसी कारण मौर्य साम्राज्य कमजोर होकर विघटित हो गया।

(iv) आर्थिक कारण– मौर्य शासकों के पास एक बड़ी नौकरशाही—व्यवस्था थी और साथ ही एक विशाल स्थायी सेना भी थी। इन दोनों के रख—रखाव पर भारी खर्च आता था। विभिन्न प्रकार के करों के बावजूद इस खर्च की भरपाई करना दुष्कर

कार्य था। इस पर भी अशोक एवं उसके उत्तराधिकारियों ने बौद्ध भिक्षुओं को अत्यधिक दान—दक्षिणा दी। इससे राज्य की वित्तीय स्थिति और कमजोर हो गई।

❖ **विस्तृत उत्तरीय प्रश्न**

1. चन्द्रगुप्त के विजय अभियान को सविस्तार समझाइए।

उ०– चन्द्रगुप्त मौर्य एक वीर एवं साहसी योद्धा था। उसने अपने प्रथम असफल अभियान से सबक सीखा और अपने गुरु चाणक्य की सहायता से अपनी सेना को संगठित कर उसका पुनर्गठन किया। चन्द्रगुप्त के विजय अभियान का संक्षिप्त विवरण निम्नलिखित है—

(i) **पंजाब पर आक्रमण– महावंश** की एक टीका के अनुसार चन्द्रगुप्त ने चारों दिशाओं में घूम—घूमकर एक शक्तिशाली सेना का संगठन किया। इस समय तक सिकन्दर महान की मृत्यु हो चुकी थी और पंजाब में विद्रोह आरम्भ हो चुका था। चन्द्रगुप्त ने इसी समय पंजाब में अपनी पूरी सेना के साथ यूनानियों के विरुद्ध युद्ध छेड़ दिया। इस युद्ध में यूनानी शीघ्र ही पंजाब से भागने के लिए विवश हो गए। पंजाब पर विजय चन्द्रगुप्त मौर्य की पहली विजय थी।

(ii) **मगध पर पुनः आक्रमण–** पंजाब पर अपना अधिकार स्थापित करने के बाद उसने अपनी विशाल शक्तिशाली सेना के साथ मगध पर पुन: आक्रमण किया। मगध की राजधानी पाटलिपुत्र को चारों ओर से घेर लिया गया और वहाँ का नन्दवंश सम्राट धनानन्द मारा गया। चन्द्रगुप्त की यह दूसरी सबसे बड़ी सफलता थी। इस विजय के बाद ही लगभग 322 ई०पू० में चन्द्रगुप्त का मगध सिंहासन पर राज्याभिषेक किया गया।

(iii) **सेल्यूकस पर आक्रमण–** सेल्यूकस सिकन्दर का प्रमुख सेनापति था और उसकी मृत्यु के पश्चात् उसने सम्पूर्ण पश्चिमी और मध्य—एशिया पर अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया था। अत: प्रतिशोधवश और विश्व— विजय की इच्छा के कारण सेल्यूकस ने 305 ई०पू० में चन्द्रगुप्त मौर्य पर आक्रमण कर दिया। लेकिन सेल्यूकस तथा चन्द्रगुप्त के बीच युद्ध होने का कोई उल्लेख नहीं मिलता है। टार्न के अनुसार दोनों के बीच सन्धि हुई तथा चन्द्रगुप्त ने सेल्यूकस को 500 हाथी भेंट किए। इसके बदले में सेल्यूकस को अपनी पुत्री हेलन का विवाह चन्द्रगुप्त के साथ करना पड़ा और साथ ही अपने चार प्रदेश— हेरात (काबुल), गांधार (एरियक),कन्दहार (आरकोशिया) एवं बलूचिस्तान भी चन्द्रगुप्त को देने पड़े। इस प्रकार मौर्य साम्राज्य की सीमा ईरान तक विस्तृत हो गई।

(iv) **पश्चिमी भारत पर विजय–** चन्द्रगुप्त मौर्य ने पश्चिमी भारत पर भी विजय प्राप्त की थी ऐसा प्राप्त साक्ष्यों से ज्ञात हुआ है। शक शासक रुद्रदमन (150 ई०पू०)के शिलालेख से ज्ञात होता है कि चन्द्रगुप्त मौर्य का गवर्नर वैश्य 'पुष्यगुप्त' सौराष्ट्र और मालवा की देख—रेख करता था। इसके अतिरिक्त, सोपारा नामक स्थान पर अशोक का शिलालेख प्राप्त हुआ है। ये सभी साक्ष्य इस बात की पुष्टि करते हैं कि चन्द्रगुप्त मौर्य का पश्चिमी भारत पर भी अधिकार रहा होगा।

(v) **दक्षिण भारत पर विजय–** चन्द्रगुप्त ने अपने जीवन काल में दक्षिण भारत पर भी विजय प्राप्त की थी। दक्षिण में चन्द्रगुप्त का मैसूर के भू—भाग पर अधिकार था। मुद्राराक्षस के अनुसार दक्षिण भारत पर चन्द्रगुप्त मौर्य का एकछत्र शासन था।

2. चन्द्रगुप्त के शासन प्रबन्ध को स्पष्ट कीजिए।

उ०– **चन्द्रगुप्त का शासन प्रबन्ध–** चन्द्रगुप्त ने अपने कुशल शासक होने का परिचय देते हुए अपने शासन को निम्नलिखित भागों में विभाजित किया था—

(i) **केन्द्रीय शासन–** मौर्यकाल में सम्पूर्ण साम्राज्य में एक सुदृढ़ केन्द्रीय शासन स्थापित किया गया था। केन्द्रीय शासन की सभी शक्तियों का स्रोत राजा होता था। राजा ही सर्वोच्च कार्यपालिका अध्यक्ष और सर्वोच्च न्यायाधीश होता था। लेकिन मौर्य राजा प्रजापालक ही थे। मौर्य सम्राटों ने शासन कार्यों में सलाह लेने के लिए केन्द्रीय मन्त्रिपरिषद् का गठन कर रखा था। इसके सदस्यों को आमात्य कहा जाता था। प्रत्येक आमात्य एक प्रशासनिक विभाग का अधिकारी होता था। प्रशासनिक विभागों में **गुप्तचर विभाग**, **टकसाल विभाग**, **राजस्व विभाग**, **जल विभाग**, **वन विभाग** आदि प्रमुख थे। आचार्य कौटिल्य ने अपने ग्रन्थ **अर्थशास्त्र** में 18 आमात्यों और 30 प्रशासकीय विभागों का उल्लेख किया है। इन आमात्यों में **पुरोहित** (धर्म का अधिकारी), **सचिव** (प्रधानमंत्री), **समाहर्त्ता** (राजस्व संग्रह अधिकारी), **सेनापति** (युद्ध विभाग का अध्यक्ष), **अन्तपाल** (सीमाओं का रक्षक), **दण्डपाल**, **कर्मान्तक** आदि प्रमुख थे।

(ii) **प्रान्तीय शासन–** समस्त साम्राज्य को चार प्रान्तों में विभक्त कर दिया गया था, ये प्रान्त निम्नांकित थे—

पूर्वी प्रान्त– इसमें वर्तमान उत्तर प्रदेश, बंगाल, बिहार तथा उड़ीसा सम्मिलित थे।

उत्तर पश्चिमी प्रान्त– वर्तमान पंजाब, सिंध, कश्मीर, बलूचिस्तान तथा अफगानिस्तान शामिल थे।

पश्चिम प्रान्त– मालवा, गुजरात, काठियावाड़ तथा राजस्थान प्रदेश सम्मिलित थे।

दक्षिण प्रान्त– विन्धाचल पर्वत से लेकर मैसूर तक के प्रदेश सम्मिलित थे।

प्रत्येक प्रान्त का शासन—प्रबन्ध एक गवर्नर के अधीन होता था जिसे **कुमार** कहा जाता था। कुमार के मुख्य कार्य प्रान्त में शान्ति तथा व्यवस्था स्थापित करना, सम्राट के आदेशों को प्रारूप देना, नगरों के प्रबन्ध का निरीक्षण करना आदि थे।

(iii) नगर शासन– नगर प्रशासन के मुख्य अधिकारी को 'नगराध्यक्ष' कहा जाता था। पाटलिपुत्र के नगर प्रशासन के लिए पाँच–पाँच सदस्यों की छ: समितियाँ जो निम्नलिखित हैं, विभिन्न प्रकार के कार्यों के लिए बनाई गई थीं–

(क) शिल्पकला समिति
(ख) वैदेशिक समिति
(ग) जनसंख्या समिति
(घ) वाणिज्य व्यवसाय समिति
(ड) वस्तु निरीक्षक समिति
(च) कर समिति।

(iv) ग्राम शासन– ग्राम शासन की सबसे छोटी इकाई थी। ग्राम का मुखिया 'ग्रामिक' अथवा ग्रामिणी कहलाता था। उसकी सहायता के लिए पंचायत होती थी। प्रत्येक गाँव में एक सरकारी कर्मचारी होता था, जो ग्राम भोजक कहलाता था। 5 से 10 गाँवों की व्यवस्था 'गोप' नामक अधिकारी करता था। इसके ऊपर 'स्थानिक' होता था जो जनपद के चौथाई भाग का प्रबन्ध करता था।

आय के स्त्रोत– राज्य की आय के विभिन्न स्त्रोत थे। इन स्त्रोतों में मालगुजारी प्रमुख था। इसके अतिरिक्त सेतुकर, वनकर, सीमाशुल्क, धर्म स्थलकर, पशुकर आदि आय के प्रमुख स्त्रोत थे। इन स्त्रोतों से प्राप्त धन को सैन्य संगठनों तथा सार्वजनिक कार्यों के लिए प्रयोग किया जाता था।

भूमिकर– भूमिकर उपज का 1/6 भाग या 1/4 भाग होता था।

न्याय व्यवस्था– मौर्य शासन प्रणाली में न्याय और दण्ड व्यवस्था की ओर भी विशेष ध्यान दिया गया था। राजा सर्वोच्च न्यायाधीश होता था। इस काल की न्याय व्यवस्था के अन्तर्गत निम्नलिखित दो प्रकार के न्यायालय होते थे–

(क) धर्मस्थीय न्यायालय– सम्पत्ति और धन सम्बन्धी मुकदमों के लिए।

(ख) कंटकशोधन न्यायालय– फौजदारी, हत्या तथा मारपीट के मुकदमों के लिए। चन्द्रगुप्त मौर्य अपराधियों को कठोर दण्ड देता था। इसलिए उस समय अपराध कम होते थे। अपराधियों का पता लगाने के लिए एक संगठित गुप्तचर विभाग भी था। मौर्य शासकों की न्याय व्यवस्था सुव्यवस्थित थी।

(ग) जनपद सन्धि– इस न्यायालय में दो गाँवों के आपसी झगड़ों का निर्णय होता था।

(घ) द्रोणमुख– यह न्यायालय चार सौ गाँवों के ऊपर होता था।

(ड) राजुक– राजुक जनपद के न्यायालय का न्यायाधीश होता था।

(v) सैन्य व्यवस्था– मेगस्थनीज और **कौटिल्य** के विवरण से पता चलता है कि मौर्य राजाओं ने एक विशाल सेना की व्यवस्था की थी। उनकी मुख्य रूप से चार प्रकार की सेनाएँ थी– **पैदल**, **अश्व**, **गज** और **रथ** सेना। मौर्य शासकों के पास जलसेना भी थी। सैन्य विभाग में प्रमुख रूप से तीन विभाग थे– **सेना**, **दुर्ग** और **शस्त्रागार**। मेगस्थनीज ने अपने ग्रन्थ **इण्डिका** में लिखा है कि सेना का उचित प्रबन्ध करने के लिए पाँच–पाँच सदस्यों की छ: सैन्य समितियाँ गठित थीं। ये समितियाँ क्रमश: पैदल सेना, अश्व सेना, गज सेना, रथ सेना, सैन्य सामग्री, रसद तथा अस्त्र–शस्त्रों का प्रबन्ध देखती थीं। मेगस्थनीज के अनुसार चन्द्रगुप्त मौर्य की सेना में छ: लाख पैदल, तीस हजार अश्वारोही, नौ हजार हाथी और आठ हजार रथ थे।

3. मौर्यकालीन सामाजिक, आर्थिक और धार्मिक दशा को स्पष्ट कीजिए।

उ०– **मौर्यकालीन सामाजिक दशा–** मौर्यकाल में वर्ण व्यवस्था अपनी चरम सीमा पर थी। समाज साधारण रूप से चार वर्णों में विभाजित था। ये वर्ण, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र थे। इसके साथ–साथ चार आश्रम– ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ तथा सन्यास भी सामाजिक संगठन के मूलाधार थे। वर्ण व्यवस्था जाति व्यवस्था में परिवर्तित हो गई थी। स्त्रियों का स्थान समाज में उच्च था। विवाह शास्त्रीय नियमों के अनुसार होते थे। कन्या की विवाह योग्य आयु 12 वर्ष तथा लड़के की 16 वर्ष होना उचित माना जाता था। समाज में कुछ ऐसे वर्ग थे जो जनता का मनोरंजन किया करते थे। नट–नर्तक, गायक ऐसे ही वर्ग थे। इसके अलावा शिकार, घुड़दौड़, मल्लयुद्ध आदि भी मनोरंजन के प्रमुख साधन थे।

मौर्यकालीन आर्थिक दशा– जनता की आजीविका का मुख्य साधन कृषि था। विभिन्न प्रकार के अनाज पैदा किए जाते थे। रेशमी, सूती तथा ऊनी वस्त्रों का व्यवसाय उन्नत दशा में था। हाथीदाँत आदि से आभूषण बनाए जाते थे। खानों से खनिज सम्पदा निकाली जाती थी। इस काल में व्यापार आन्तरिक तथा बाह्य दोनों प्रचलन में था। चीन, मिस्त्र, सीरिया, लंका तथा पश्चिमी देशों से भारत का व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित हो गया था। मौर्य काल में हमे सोने, चाँदी तथा ताँबे के सिक्के प्राप्त हुए हैं। 'आहत सिक्के' प्रचुर मात्रा में प्राप्त हुए हैं।

मौर्यकालीन धार्मिक दशा– मौर्यकाल में ब्राह्मण धर्म को उच्च स्थान प्राप्त था। ब्राह्मण धर्म के साथ–साथ शैव, वैष्णव तथा पौराणिक धर्म का भी प्रचलन प्रारम्भ हो गया था। इस काल में वृक्ष तथा नागपूजा का भी प्रचलन था। अशोक के शासनकाल में बौद्ध धर्म का प्रभाव बढ़ गया था। जैन धर्म को भी प्रोत्साहन मिला था। चन्द्रगुप्त मौर्य तथा अशोक के पौत्र सम्प्रति जैन धर्म के उपासक थे। इस काल में एक नवीन सम्प्रदाय का जन्म हुआ जिसे आजीवक सम्प्रदाय कहते हैं। आजीवक नग्न संन्यासियों की

भाँति जीवन व्यतीत करते थे।

4. अशोक का धम्म स्पष्ट कीजिए।

उ०– **अशोक का धम्म (धर्म)–** अशोक का 'धम्म' बौद्ध धर्म न होकर धर्मों का सार था। 'धम्म' प्राकृत भाषा का शब्द है जिसका हिन्दी में अर्थ होता है 'धर्म'। यद्यपि अशोक का व्यक्तिगत धर्म बौद्ध था, लेकिन उसने अपने शिलालेखों और अभिलेखों में बौद्ध धर्म के सिद्धांतों को न लिखवाकर, चारित्रिक एवं नैतिक शिक्षाओं का प्रचार किया। ये नैतिक शिक्षाएँ ही संकलित रूप में 'अशोक का धम्म' कहलाईं। तेहरवें शिलालेख में अशोक ने अपने धम्म का समस्त सार देते हुए लिखा है कि समस्त जीवधारी अहिंसा के पात्र हैं। अशोक के धम्म में निम्नलिखित दो प्रकार के तत्व (i) व्यावहारिक तथा (ii) निषेधात्मक सम्मिलित थे—

(i) **व्यवहारिक तत्व–** माता—पिता एवं बड़ों का आदर करना, छोटों के साथ उचित व्यवहार करना, सत्य, संयम, भक्ति, दया, दान से युक्त व्यवहार करना, मन एवं कर्म की शुद्धि करना, श्रमिकों एवं नौकरों के साथ उचित व्यवहार करना, अहिंसा का पालन करना, अल्प व्यय एवं अल्प संग्रह करना।

(ii) **निषेधात्मक तत्व–** उग्र व्यवहार नहीं करना चाहिए, निष्ठुर नहीं होना चाहिए, क्रोध नहीं करना चाहिए, घमण्ड नहीं करना चाहिए, ईर्ष्या नहीं रखनी चाहिए आदि।

अशोक ने समस्त निषेधों के लिए 'असिनव ' शब्द का प्रयोग किया है जिसका अर्थ है 'पाप'।

अशोक ने धम्म के प्रचार—प्रसार के लिए अभिलेख खुदवाएँ, धर्मयात्राएँ कीं, धर्म महामात्रों की नियुक्ति की, धम्म मंडल की व्यवस्था की और अहिंसा को राजनीति का मुख्य आधार बनाया।

5. अशोक के अभिलेखों पर एक लेख लिखिए।

उ०– **अशोक के अभिलेख–** भारतीय इतिहास में अशोक के अभिलेखों को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। अभिलेखों द्वारा अशोक के शासनकाल प्राय: सभी बातों पर यथोचित्त प्रकाश पड़ता है। इन अभिलेखों को तीन श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है—(क) शिलालेख, (ख) स्तम्भ लेख, (ग) गुहा लेख। **वी०ए० स्मिथ** के अनुसार इन लेखों को आठ भागों में बाँटा गया है।

दो लघु शिलालेख– दोनों लघु शिलालेखों को 258 ई०पू० में खुदवाया गया था। प्रथम प्रकार के लघु शिलालेख से अशोक के व्यक्तिगत जीवन की तथा द्वितीय प्रकार के लघु शिलालेख से धर्म के सम्बन्ध में जानकारी मिलती है। प्रथम प्रकार के शिलालेख सहसराम (बिहार), बैराट (राजस्थान), मास्की, गवीमठ, पल्कीगुंडू, चेरागुडी में तथा द्वितीय प्रकार के शिलालेख सिद्धपुर (मैसूर), जतिंग, रामेश्वर तथा ब्रह्मगिरी में पाए गए हैं।

भाब्रू या बैराट शिलालेख– यह राजस्थान स्थित बैराट नामक स्थान से उपलब्ध हुआ है। इसमें अशोक के बौद्ध धर्म के अनुयायी होने का स्पष्ट प्रमाण है।

चौदह शिलालेख– इनमें तेरहवाँ शिलालेख सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। इसमें अशोक के हृदय—परिवर्तन का उल्लेख मिलता है। अशोक के चौदह शिलालेख इन स्थानों से प्राप्त हुए हैं— (i) उत्तर—पश्चिमी भारत में शाहबाजगढ़ी तथा मानसहेरा, (ii) उत्तरी भारत में काल्सी, (iii) पश्चिमी भारत में गिरनार तथा (iv) दक्षिणी भारत में मास्की स्थान।

कलिंग शिलालेख– इनकी संख्या दो है। ये धौली तथा जोगढ़ नामक स्थान पर पाए गए हैं।

गुफा लेख– अंकित गुफा लेखों की संख्या तीन है। ये लेख बिहार स्थित गया के समीप 'बारबर' की पहाड़ियों में स्थित चार गुफाओं में से तीन की दीवारों पर अंकित हैं। इन लेखों से धार्मिक सहिष्णुता की जानकारी प्राप्त होती है।

तराई स्तम्भ लेख– इनकी संख्या दो है। ये लेख नेपाल की तराई में स्थित 'रुम्मिन देई' तथा ''निग्लीवा'' में पाए गए हैं। इससे ज्ञात होता है कि अशोक ने बुद्ध के जीवन से सम्बन्धित पवित्र स्थानों की यात्रा की थी।

सात स्तम्भ लेख– ये लेख भारत के 6 स्थानों से प्राप्त हुए हैं— ये प्राप्त लेख हैं—

(i) दिल्ली टोपरा स्तम्भ लेख तथा
(ii) मेरठ स्तम्भ लेख,
(iii) इलाहाबाद स्तम्भ लेख,
(iv) लौरिया—अरेराज स्तम्भ लेख,
(v) लौरिया— नंदनगढ़ स्तम्भ लेख तथा
(vi) रामपुरवा स्तम्भ लेख।

लघु स्तम्भ लेख– ये लेख एक प्रकार के राज्यदेश हैं। इनमें से दो साँची एवं सारनाथ के स्तम्भों पर खुदे हुए हैं तथा दो प्रयाग में हैं। अशोक का चार शेरों वाला स्तम्भ सारनाथ में मिला है।

6. अशोक के साम्राज्य विस्तार को समझाइए।

उ०– **अशोक का साम्राज्य विस्तार–** अशोक के शिलालेखों एवं स्तम्भ लेखों से ज्ञात होता है कि उसके राज्य की सीमाएँ उत्तर में काबुल से लेकर दक्षिण में मैसूर तक और पूर्व में बंगाल की खाड़ी से लेकर पश्चिम में अरब सागर तक फैली हुई थीं।

अशोक का ज्येष्ठ भाई सुसीम उस समय तक्षशिला का प्रांतपाल था। तक्षशिला में भारतीय—यूनानी मूल के बहुत लोग रहते थे। इससे वह क्षेत्र विद्रोह के लिए उपयुक्त था। सुसीम के अकुशल प्रशासन के कारण भी उस क्षेत्र में विद्रोह पनप उठा। राजा बिन्दुसार ने सुसीम के कहने पर राजकुमार अशोक को विद्रोह के दमन के लिए वहाँ भेजा। अशोक के आने की खबर सुनकर

ही विद्रोहियों ने उपद्रव समाप्त कर दिया और विद्रोह बिना किसी युद्ध के समाप्त हो गया। हालांकि यहाँ पर बगावत एक बार फिर अशोक के शासनकाल में हुई थी पर इस बार उसे बलपूर्वक कुचल दिया गया। अशोक की इस प्रसिद्धि से उसके भाई सुसीम को सिंहासन न मिलने का खतरा बढ़ गया। उसने सम्राट बिन्दुसार से कह कर अशोक को निर्वास में डाल दिया। अशोक कलिंग चला गया। वहाँ उसे मत्स्य कुमारी कौर्वकी से प्रेम हो गया। हाल में मिले साक्ष्यों के अनुसार बाद में अशोक ने उसे दूसरी या तीसरी रानी बनाया था।

इसी बीच उज्जैन में विद्रोह हो गया। उसे सम्राट ने निर्वासन से बुला विद्रोह को दबाने के लिए भेज दिया। हालाँकि उसके सेनापतियों ने विद्रोह को दबा दिया पर उसकी पहचान गुप्त ही रखी गई, क्योंकि मौर्यों द्वारा फैलाए गए गुप्तचर जाल से उसके बारे में पता चलने के बाद उसके भाई सुसीम द्वारा उसे मरवाए जाने का भय था। वह बौद्ध सन्यासियों के साथ रहा था। इसी दौरान उसे बौद्ध विधि—विधानों तथा शिक्षाओं का पता चला था। यहाँ पर एक सुन्दरी जिसका नाम देवी था, से उसे प्रेम हो गया जिसे उसने स्वस्थ होने के बाद विवाह कर लिया।

कुछ वर्षो के बाद सुसीम से तंग आ चुके लोगों ने अशोक को राजसिंहासन हथिया लेने के लिए प्रोत्साहित किया क्योंकि सम्राट बिन्दुसार वृद्ध तथा रुग्न हो चले थे। जब वह आश्रम में थे तब उनको यह खबर मिली की उनकी माँ को उनके सौतले भाईयों ने मार डाला। तब उन्होंने राजमहल में जाकर अपने सारे सौतलें भाईयों को मार डाला और सम्राट बने। सत्ता सँभालते ही अशोक ने पूर्व तथा पश्चिम दोनों दिशाओं में अपना साम्राज्य फैलाना शुरू किया। उसने आधुनिक असम से ईरान की सीमा तक साम्राज्य केवल आठ वर्षों में विस्तृत कर लिया।

❖ **मानचित्र सम्बन्धी अभ्यास कार्य**

अध्यापक की सहायता से विद्यार्थी स्वयं करें।

❖ **प्रोजेक्ट कार्य**

अध्यापक की सहायता से विद्यार्थी स्वयं करें।

8 गुप्त साम्राज्य

(आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक विकास)

अभ्यास

❖ **बहुविकल्पीय प्रश्न**

उ०– बहुविकल्पीय प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्य पुस्तक के पृष्ठ संख्या— 73 का अवलोकन कीजिए।

❖ **अतिलघु उत्तरीय प्रश्न**

उ०– अतिलघु उत्तरीय प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्य पुस्तक के पृष्ठ संख्या—73 व 74 का अवलोकन कीजिए।

❖ **लघु उत्तरीय प्रश्न**

1. गुप्त साम्राज्य के उदय का संक्षिप्त परिचय दीजिए।

उ०– **गुप्त साम्राज्य का उदय–** जब मौर्य साम्राज्य का पतन हुआ तो राजनीतिक एकता का एक बार पुन: विखण्डन हो गया। पूर्वी भारत, मध्यभारत और दक्कन में मौर्यों के स्थान पर शुंग, कण्व और सातवाहन जैसे राजवंशों का शासन स्थापित हुआ। पश्चिमी भारत में हिन्दू—यवन, शक, पहलव और कुषाणों का अस्तित्व शासक के रूप में सामने आया। इनके बाद गुप्त साम्राज्य की स्थापना हुई। गुप्तवंश का शासनकाल प्राचीन इतिहास में बहुत महत्वपूर्ण स्थान रखता है तथा इसे प्राचीन भारतीय इतिहास का **स्वर्ण युग** माना जाता है। इस युग में भारत ने राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, साहित्यिक, कला तथा विज्ञान के क्षेत्र में बहुत प्रगति की। भारत की संस्कृति का प्रचार—प्रसार विदेशों में भी आरम्भ हुआ और एक वृहत्तर भारत का निर्माण हुआ। इस वंश की स्थापना 275 ई० में **श्रीगुप्त** ने मगध में की थी, परन्तु इसका वास्तविक संस्थापक होने का श्रेय **चन्द्रगुप्त प्रथम** को दिया जाता है। **समुद्रगुप्त** और **चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य** गुप्तवंश के दो महान और शक्तिशाली शासक थे। उन्होंने एक कुशल शासन—व्यवस्था स्थापित करने के साथ—साथ गुप्त साम्राज्य की सीमा के विस्तार मे ं भी महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

2. चन्द्रगुप्त प्रथम का संक्षिप्त परिचय दीजिए।

उ०– **चन्द्रगुप्त प्रथम–** मगध की जनता 320 ई० तक क्षत्रियों व कुषाणों के शासन से त्रस्त हो चुकी थी। इनमें अब राष्ट्रीयता की भावना का उद्‌गार हो चुका था। जनता ने चन्द्रगुप्त प्रथम के नेतृत्व में क्षत्रियों व कुषाणों की विदेशी सत्ता को उखाड़ फेंका। चन्द्रगुप्त प्रथम एक स्वतन्त्र शासक के रूप में सामने आया। उसने लिच्छवि वंश की राजकुमारी **कुमारदेवी** से विवाह कर **महाराजाधिराज** की उपाधि ग्रहण की और अपनी राजनीतिक स्थिति को मजबूत किया। कुछ समय के उपरान्त उसने लिच्छवि

साम्राज्य को भी अपने साम्राज्य में मिला लिया। उसने 320 ई० से 335 ई०तक शासन किया तथा इसी दौरान उसने समुद्रगुप्त को अपना उत्तराधिकारी नियुक्त कर दिया था। चन्द्रगुप्त प्रथम ने 'गुप्त संवत' नामक नया संवत बनाया जिसका प्रथम वर्ष 26 फरवरी, 320 ई० से आरम्भ होता है।

3. चन्द्रगुप्त द्वितीय का शासन काल स्पष्ट कीजिए।

उ०– रामगुप्त का वध करके **चन्द्रगुप्त द्वितीय** 380 ई० में सिंहासन पर आसीन हुआ। इतिहास में उसे **विक्रमादित्य** के नाम से भी जाना जाता है। इसने शक—राज्य का अन्त करके हिमालय से लेकर दक्षिण में नर्मदा नदी तक और पश्चिम में काठियावाड़ से लेकर पूर्व में बंगाल तक अपने साम्राज्य का विस्तार किया। चन्द्रगुप्त द्वितीय का काल **कला-साहित्य** का स्वर्ण युग कहा जाता है। उसके दरबार में विद्वानों एवं कलाकारों को आश्रय प्राप्त था। उसके दरबार में कई महान विभूतियाँ थीं— कालिदास, धन्वन्तरि, क्षपणक, अमरसिंह, शंकु, बेताल भट्ट, घटकर्पर, वाराहमिहिर, वररूचि, आर्यभट्ट, विशाखदत्त, शुद्रक, ब्रह्मगुप्त, विष्णुशर्मा और भास्कराचार्य उल्लेखनीय थे। ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मसिद्धान्त का प्रतिपादन किया जिसे बाद में न्यूटन ने गुरूत्वाकर्षण के नाम से प्रतिपादित किया। चन्द्रगुप्त द्वितीय ने 414 ई० तक शासन किया।

4. सुदर्शन झील का पुनर्निर्माण क्यों और किसके द्वारा करवाया गया।

उ०– स्कन्दगुप्त के शासनकाल में भारी वर्षा के कारण चन्द्रगुप्त मौर्य काल में बनी सुदर्शन झील का बॉध टूट गया था। इसलिए स्कन्दगुप्त ने प्रजा की भलाई के लिए इस झील का पुनर्निर्माण करवाया।

5. गुप्त साम्राज्य का पतन किस प्रकार हुआ?

उ०– स्कन्दगुप्त, गुप्त वंश का अन्तिम महान सम्राट था। 467 ई० में उसकी मृत्यु के बाद छठी शताब्दी के आरम्भ तक इस वंश के कई राजा हुए, जैसे—पुरुगुप्त, नरसिंह गुप्त, बालादित्य, कुमारगुप्त द्वितीय, बुद्धगुप्त, भानुगुप्त आदि। किन्तु इनमें से एक—दो को छोड़कर अन्य सभी अयोग्य सिद्ध हुए। अपनी दुर्बलता के कारण वे न तो हूणों के आक्रमण का सफलतापूर्वक सामना न कर सके और न ही आन्तरिक विद्रोह का दमन कर सके। इस प्रकार समुद्रगुप्त तथा चन्द्रगुप्त द्वितीय द्वारा स्थापित किया गया शानदार गुप्त साम्राज्य छिन्न—भिन्न हो गया।

6. गुप्त काल के धार्मिक विकास को समझाइए।

उ०– **गुप्त काल में धार्मिक विकास–** धार्मिक विकास के लिए भी गुप्त युग प्रसिद्ध है। हिन्दू धर्म के स्वरूप का निर्माण भी इसी युग में हुआ था। गुप्त सम्राज्य के सम्राट हिन्दू धर्म के अनुयायी थे। विष्णु इनके इष्ट देव थे। इस युग में शैव तथा वैष्णव धर्म का अत्यधिक प्रचार—प्रसार हुआ। इनके साथ—साथ जैन एवं बौद्ध धर्म भी अस्तित्व में रहे। आरम्भ में इस युग के समस्त राजा वैदिक धर्म के समर्थक थे। बाद में इस वंश के अनेक राजाओं ने बौद्ध धर्म स्वीकार कर लिया था और अहिंसावादी नीति के समर्थक हो गए थे। सार यह है कि गुप्तकाल में सभी धर्मों का सम्मान किया जाता था तथा सभी धर्मों को विकास का समान अवसर मिला।

❖ विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

1. गुप्त काल के उद्गम पर प्रकाश डालिए।

उ०– **गुप्त काल (गुप्त साम्राज्य) का उद्गम–** जब मौर्य साम्राज्य का पतन हुआ तो राजनीतिक एकता का एक बार पुन: विखण्डन हो गया। पूर्वी भारत, मध्यभारत और दक्कन में मौर्यों के स्थान पर शुंग, कण्व और सातवाहन जैसे राजवंशों का शासन स्थापित हुआ। पश्चिमी भारत में हिन्दू—यवन, शक, पहलव और कुषाणों का अस्तित्व शासक के रूप में सामने आया। इनके बाद गुप्त साम्राज्य की स्थापना हुई। गुप्तवंश का शासनकाल प्राचीन इतिहास में बहुत महत्वपूर्ण स्थान रखता है तथा इसे प्राचीन भारतीय इतिहास का **स्वर्ण युग** माना जाता है। इस युग में भारत ने राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, साहित्यिक, कला तथा विज्ञान के क्षेत्र में बहुत प्रगति की। भारत की संस्कृति का प्रचार—प्रसार विदेशों में भी आरम्भ हुआ और एक वृहत्तर भारत का निर्माण हुआ। इस वंश की स्थापना 275 ई० में **श्रीगुप्त** ने मगध में की थी, परन्तु इसका वास्तविक संस्थापक होने का श्रेय **चन्द्रगुप्त प्रथम** को दिया जाता है। **समुद्रगुप्त** और **चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य** गुप्तवंश के दो महान और शक्तिशाली शासक थे। उन्होंने एक कुशल शासन—व्यवस्था स्थापित करने के साथ—साथ गुप्त साम्राज्य की सीमा के विस्तार मे ं भी महत्वपूर्ण योगदान दिया है। गुप्तकाल पर प्रकाश डालने हेतु हमारे पास बहुत से स्रोत हैं। जैसे चीनी यात्री फाह्यान का वृत्तान्त, विज्जिका का कौमुदी महोत्सव, पुराण, हरिषेण का इलाहाबाद स्तम्भ लेख, कालिदास की रचनाएँ, महरौली तथा एरण अभिलेख, गुप्त सम्राटों द्वारा जारी किए गए सिक्के, मुहरें, उनके द्वारा बनाए गए भवन इत्यादि।

गुप्त साम्राज्य का आरम्भ तृतीय शताब्दी के चतुर्थ दशक में तथा इसका उत्थान चतुर्थ शताब्दी के प्रारम्भ में हुआ। गुप्त साम्राज्य में भारत ने प्रत्येक क्षेत्र में उन्नति की, यही कारण है कि भारतीय इतिहास में गुप्त साम्राज्य को **स्वर्णयुग** के नाम से जाना जाता है। गुप्त राजाओं ने सम्पूर्ण भारत में राज्य विस्तार का प्रयास किया और एक विस्तृत साम्राज्य का निर्माण करने में पूर्णत: सफल रहे। इस काल में गुप्त शासकों ने राजनीतिक एकता स्थापित कर सम्पूर्ण भारत को अपने संरक्षण में ले लिया। **चन्द्रगुप्त प्रथम**,

समुद्रगुप्त, **चन्द्रगुप्त द्वितीय**, **कुमारगुप्त**, **स्कन्दगुप्त**, **बुद्धगुप्त** आदि गुप्तकाल के प्रमुख शासक थे। गुप्त वंश किस जाति से सम्बन्धित था यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता है। कुछ इतिहासकार उन्हें क्षत्रिय तो कुछ ब्राह्मण बताते हैं। कुछ विद्वान उन्हें शूद्र मानते हैं तो कुछ के अनुसार वे वैश्य थे।

2. गुप्तकाल की सामाजिक, आर्थिक, एवं धार्मिक दशा को विस्तार से समझाइए।

उ०– गुप्तकाल में भारत का चहुँमुखी विकास हुआ था। विद्वानों ने गुप्त काल की तुलना आगस्टन काल और पैरिक्लियन काल से की है। गुप्तकाल की सामाजिक आर्थिक एवं धार्मिक दशाओं का विवरण निम्नलिखित है—

सामाजिक दशा– गुप्त युग में समाज में संयुक्त परिवार प्रथा का चलन था। परिवार का सबसे अधिक आयु वाला पुरुष परिवार का मुखिया होता था। इस युग में पुत्रियों को सम्पत्ति के अधिकार से वंचित रखा गया था। इस युग में छुआछूत और जाति प्रथा का अस्तित्व था फिर भी इस युग में समाज के विभिन्न वर्गों में भाई—चारे की भावना विकसित थी। गुप्तकाल में स्त्रियों को सीमित अधिकार ही प्राप्त थे। स्त्री शिक्षा की औपचारिक व्यवस्था नहीं थी। बाल विवाह प्रथा का प्रचलन अत्यन्त लोकप्रिय हो गया था। समाज ने विधवा विवाह को अस्वीकार करते हुए सती प्रथा आरम्भ कर दी थी। गुप्त युग में लोगों का प्रमुख भोजन चावल तथा गेहूँ व जौ की रोटियाँ थीं। इनके साथ—साथ भोजन में दूध, दही, मक्खन, घी, सब्जियाँ तथा फलों को भी प्रयुक्त किया जाता था। कुछ लोग मांस के साथ मदिरापान भी करते थे। इस काल के लोगों का नैतिक स्तर बहुत ऊँचा था । इस युग के लोग बहुत ईमानदार, दयालु तथा दानी स्वभाव के थे। इन लोगों में असहाय लोगों के प्रति सहानुभूति की भावना भी पाई जाती थी। धनी व्यक्तियों ने निर्धनों के नि:शुल्क इलाज हेतु चिकित्सालय भी खुलवाए थे। इस युग के पुरुषों का मुख्य परिधान धोती, कुर्ता, व पगड़ी था। स्त्रियाँ साड़ी या लाँग सारी पहनती थीं। जूतों का प्रयोग न के बराबर होता था। इस युग में पुरुष और स्त्रियाँ दोनों ही आभूषण पहनते थे।

आर्थिक दशा– इस युग में व्यापार बहुत ही उन्नत अवस्था में था। राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार जल एवं थल दोनों मार्गों से होता था। वैशाली, ताम्रलिप्ति, मथुरा, पाटलिपुत्र, प्रयाग, वाराणसी, उज्जयिनी, भडौच तथा पेशावर इस युग में प्रमुख व्यापारिक केन्द्र थे। व्यापार में आभूषण, इत्र, पाउडर, उबटन, सुगन्धित तेल, मसाले, सूतीवस्त्र, बहुमूल्य रत्न आदि का निर्यात तथा खजूर, कपूर, रेशम, टिन, ताँबा, चाँदी, सोना आदि का आयात किया जाता था। इस काल में सिक्कों का प्रचलन भी हो गया था। व्यापार के लिए सोने, चाँदी तथा ताँबे के सिक्कों का प्रयोग किया जाता था। वस्तु के क्रय—विक्रय में कौड़ियों का भी प्रयोग किया जाता था। वस्तु—विनिमय के माध्यम से भी व्यापार होता था। व्यापारिक मार्गों की सुरक्षा के विशेष उपाए किए जाते थे। इस युग में कृषि को जीविका का प्रमुख साधन माना जाता था। तरकारी, फल, तिलहन, जूट, नील, सुपारी, कपास, बाजरा, ज्वार, चावल, गेहूँ आदि की खेती की जाती थी। उद्योग—धन्धों की दशा भी इस युग में अच्छी थी। वस्त्र उद्योग, स्वर्ण उद्योग तथा लौह उद्योग आदि प्रचलित थे। दिल्ली में स्थित उत्कृष्ट महरौली लौह—स्तम्भ गुप्तयुग की लौह कला का सर्वोत्तम उदाहरण है जो इस तथ्य को इंगित करता है कि लौह उद्योग अत्यधिक उन्नत था। नौकाओं और जहाजों का निर्माण भी इस युग में होता था।

धार्मिक दशा–धार्मिक विकास के लिए भी गुप्त युग प्रसिद्ध है। हिन्दू धर्म के स्वरूप का निर्माण भी इसी युग में हुआ था। गुप्त सम्राज्य के सम्राट हिन्दू धर्म के अनुयायी थे। विष्णु इनके इष्ट देव थे। इस युग में शैव तथा वैष्णव धर्म का अत्यधिक प्रचार—प्रसार हुआ। इनके साथ—साथ जैन एवं बौद्ध धर्म भी अस्तित्व में रहे। आरम्भ में इस युग के समस्त राजा वैदिक धर्म के समर्थक थे। बाद में इस वंश के अनेक राजाओं ने बौद्ध धर्म स्वीकार कर लिया था और अहिंसावादी नीति के समर्थक हो गए थे। सार यह है कि गुप्तकाल में सभी धर्मों का सम्मान किया जाता था तथा सभी धर्मों को विकास का समान अवसर मिला।

3. गुप्तकाल के शासकों का संक्षिप्त विवरण दीजिए।

उ०– गुप्तकाल के शासकों का संक्षिप्त विवरण निम्नलिखित है—

(i) चन्द्रगुप्त प्रथम– मगध की जनता 320 ई० तक क्षत्रियों व कुषाणों के शासन से त्रस्त हो चुकी थी। इनमें अब राष्ट्रीयता की भावना का उद्‌गार हो चुका था। जनता ने चन्द्रगुप्त प्रथम के नेतृत्व में क्षत्रियों व कुषाणों की विदेशी सत्ता को उखाड़ फेंका। चन्द्रगुप्त प्रथम एक स्वतन्त्र शासक के रूप में सामने आया। उसने लिच्छवि वंश की राजकुमारी **कुमारदेवी** से विवाह कर **महाराजाधिराज** की उपाधि ग्रहण की और अपनी राजनीतिक स्थिति को मजबूत किया। कुछ समय के उपरान्त उसने लिच्छवि साम्राज्य को भी अपने साम्राज्य में मिला लिया। उसने 320 ई० से 335 ई०तक शासन किया तथा इसी दौरान उसने समुद्रगुप्त को अपना उत्तराधिकारी नियुक्त कर दिया था। चन्द्रगुप्त प्रथम ने 'गुप्त संवत' नामक नया संवत बनाया जिसका प्रथम वर्ष 26 फरवरी, 320 ई० से आरम्भ होता है।

(ii) समुद्रगुप्त– चन्द्रगुप्त प्रथम के पश्चात् समुद्रगुप्त सिंहासन पर बैठा। समुद्रगुप्त गुप्तवंशीय महाराजाधिराज चन्द्रगुप्त प्रथम की पट्टहिषी लिच्छवि कुमारी श्रीकुमारीदेवी का पुत्र था। चन्द्रगुप्त ने अपने अनेक पुत्रों में से इसे ही अपना उत्तराधिकारी चुना और अपने जीवनकाल में ही समुद्रगुप्त को शासन का भार सौंप दिया था। इससे प्रजा बहुत प्रसन्न हुई किन्तु समुद्रगुप्त के अन्य भाई इससे रुष्ट हो गए। समुद्रगुप्त का मंत्री कवि **हरिषेण** था। इसके द्वारा रचित **प्रयाग-प्रशस्ति** से समुद्रगुप्त के

राज्यारोहण विजय, साम्राज्य विस्तार आदि के विषय में उपयोगी जानकारी मिलती है। समुद्रगुप्त ने अपने साम्राज्य के सीमावर्ती राज्यों को अधीनस्थ राज्य बनाया तथा महाराजाधिराज की उपाधि धारण की। वह एक महान विजेता था। उसने अपनी शूरवीरता और पराक्रम से सम्पूर्ण भारत पर विजय प्राप्त की। समुद्रगुप्त का साम्राज्य उत्तर में हिमालय की तलहटी से दक्षिण में नर्मदा नदी तक और पूर्व में हुगली से पश्चिम में यमुना व चम्बल तक विस्तृत था।

(iii) रामगुप्त– समुद्रगुप्त के बाद रामगुप्त सम्राट बना, लेकिन इसके राजा बनने में विभिन्न इतिहासकारों में मतभेद है। विभिन्न साक्ष्यों के आधार पर पता चलता है कि समुद्रगुप्त के दो पुत्र थे— रामगुप्त तथा चन्द्रगुप्त। रामगुप्त बड़ा होने के कारण पिता की मृत्यु के बाद गद्दी पर बैठा, लेकिन वह निर्बल एवं कायर था। वह शकों द्वारा पराजित हुआ और अत्यन्त अपमानजनक सन्धि कर अपनी पत्नी **ध्रुवस्वामिनी** को शकराज को भेंट में दे दिया था, लेकिन उसका छोटा भाई चन्द्रगुप्त द्वितीय बड़ा ही वीर एवं स्वाभिमानी व्यक्ति था। वह छद्म में ध्रुवस्वामिनी के वेश में शकराज के पास गया। फलत: रामगुप्त निन्दनीय होता गया। तत्पश्चात् चन्द्रगुप्त ने अपने बड़े भाई रामगुप्त की हत्या कर दी। उसकी पत्नी से विवाह कर लिया और गुप्त वंश का शासक बन बैठा।

(iv) चन्द्रगुप्त द्वितीय (विक्रमादित्य)– रामगुप्त का वध करके **चन्द्रगुप्त द्वितीय** 380 ई० में सिंहासन पर आसीन हुआ। इतिहास में उसे **विक्रमादित्य** के नाम से भी जाना जाता है। इसने शक—राज्य का अन्त करके हिमालय से लेकर दक्षिण में नर्मदा नदी तक और पश्चिम में काठियावाड़ से लेकर पूर्व में बंगाल तक अपने साम्राज्य का विस्तार किया। चन्द्रगुप्त द्वितीय का काल **कला-साहित्य** का स्वर्ण युग कहा जाता है। उसके दरबार में विद्वानों एवं कलाकारों को आश्रय प्राप्त था। उसके दरबार में कई महान विभूतियाँ थीं— कालिदास, धन्वन्तरि, क्षपणक, अमरसिंह, शंकु, बेताल भट्ट, घटकर्पर, वाराहमिहिर, वररूचि, आर्यभट्ट, विशाखदत्त, शुद्रक, ब्रह्मगुप्त, विष्णुशर्मा और भास्कराचार्य उल्लेखनीय थे। ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मसिद्धान्त का प्रतिपादन किया जिसे बाद में न्यूटन ने गुरुत्वाकर्षण के नाम से प्रतिपादित किया।

(v) कुमारगुप्त महेन्द्रादित्य– कुमारगुप्त महेन्द्रादित्य चन्द्रगुप्त द्वितीय का पुत्र तथा उसका उत्तराधिकारी भी था। कुमारगुप्त चन्द्रगुप्त द्वितीय की मृत्यु के बाद सन 414 में सत्तारूढ़ हुआ। कुमारगुप्त ने लगभग चालीस वर्षों तक शासन किया।

कुमारगुप्त का शासन शान्ति और सुव्यवस्था का काल था। साम्राज्य उन्नति के पराकाष्ठा पर था। इसने अपने साम्राज्य को अधिक संगठित और सुशोभित बनाए रखा। गुप्त सेना ने पुष्यमित्रों को बुरी तरह परास्त किया था। कुमारगुप्त ने अपने विशाल साम्राज्य की पूरी तरह रक्षा की जो उत्तर में हिमालय से दक्षिण में नर्मदा तक तथा पूर्व में बंगाल की खाड़ी से लेकर पश्चिम में अरब सागर तक विस्तृत था।

कुमारगुप्त के अभिलेखों व मुद्राओं से ज्ञात होता है कि उसने अनेक उपाधियाँ धारण की। उसने महेन्द्र कुमार, श्री महेन्द्र, श्री महेन्द्र सिंह, महेन्द्रा दिव्य आदि उपाधि धारण की थी। मिलरक्द अभिलेख से ज्ञात होता है कि कुमारगुप्त के साम्राज्य में चतुर्दिक सुख व शान्ति का वातावरण विद्यमान था। कुमारगुप्त प्रथम स्वयं वैष्णव धर्मानुयायी था, किन्तु उसने धर्म सहिष्णुता की नीति का पालन किया। गुप्त शासकों में सर्वाधिक अभिलेख कुमारगुप्त के ही प्राप्त हुए हैं। उसने अधिकाधिक संख्या में मयूर आकृति की रजत मुद्राएँ प्रचलित की थी। उसी के शासनकाल में नालन्दा विश्वविद्यालय की स्थापना की गई थी।

(iv) स्कन्दगुप्त (विक्रमादित्य)– पुष्यमित्र के आक्रमण के समय ही गुप्त शासक कुमारगुप्त प्रथम की 455 ई० में मृत्यु हो गई थी। उसकी मृत्यु के बाद उसका पुत्र स्कन्दगुप्त सिंहासन पर बैठा। उसने सर्वप्रथम पुष्यमित्र को पराजित किया और उस पर विजय प्राप्त की। हालाँकि सैन्य अभियानों में वो पहले से ही शामिल रहता था। मन्दसौर शिलालेख से ज्ञात होता है कि स्कन्दगुप्त की प्रारम्भिक कठिनाइयों का लाभ उठाते हुए वाकाटक शासक नरेन्द्र सेन ने मालवा पर अधिकार कर लिया परन्तु स्कन्दगुप्त ने वाकाटक शासक नरेन्द्र सेन को पराजित कर दिया।

स्कन्दगुप्त ने 12 वर्ष तक शासन किया। स्कन्दगुप्त ने विक्रमादित्य, क्रमादित्य आदि उपाधियाँ धारण कीं। कई अभिलेखों में स्कन्दगुप्त को शक्रोपन कहा गया है।

स्कन्दगुप्त का शासन बड़ा उदार था जिसमें प्रजा पूर्णरूपेण सुखी और समृद्ध थी। स्कन्दगुप्त एक अत्यन्त लोकोपकारी शासक था जिसे अपनी प्रजा के सुख—दु:ख की निरन्तर चिन्ता बनी रहती थी। जूनागढ़ अभिलेख से पता चलता है कि स्कन्दगुप्त के शासनकाल में भारी वर्षा के कारण मौर्यकाल में बनी सुदर्शन झील का बाँध टूट गया था। उसने दो माह के भीतर अतुल धन का व्यय करके पत्थरों की जड़ाई द्वारा उस झील के बाँध का पुनर्निर्माण करवा दिया। उसके शासनकाल में सघर्षों की भरमार लगी रही। उसको सबसे अधिक परेशान मध्य एशियाई हूण लोगों ने किया। हूण बहुत ही दुर्दांत कबीले थे तथा उनके साम्राज्य से पश्चिम में रोमन साम्राज्य को भी खतरा बना हुआ था। श्वेत हूणों के नाम से पुकारे जाने वाली उनकी एक शाखा ने हिन्दुकुश पर्वत को पार करके फारस तथा भारत की ओर रूख किया। उन्होंने पहले गान्धार पर कब्जा कर लिया और फिर गुप्त साम्राज्य को चुनौती दी पर स्कन्दगुप्त ने उन्हें करारी शिकस्त दी और हूणों ने अगले 50 वर्षों तक अपने को भारत से दूर रखा।

गोविन्दगुप्त स्कन्दगुप्त का छोटा चाचा था, जो मालवा के गर्वनर के पद पर नियुक्त था। इसने स्कन्दगुप्त के विरुद्ध विद्रोह कर दिया। स्कन्दगुप्त ने इस विद्रोह का दमन किया।

स्कन्दगुप्त गुप्त राजवंश का आखिरी शक्तिशाली सम्राट था। 467 ई० में उसका निधन हो गया।

अन्य गुप्त शासक– गुप्त वंश का अन्तिम महान सम्राट स्कन्दगुप्त था। उसकी मृत्यु के बाद छठी शताब्दी के आरम्भ तक गुप्त वंश के कई अन्य शासक हुए। इनमें कुछ प्रमुख रहे जैसे पुरूगुप्त, नरसिंह गुप्त, बालादित्य, कुमारगुप्त द्वितीय, भानुगुप्त, बुद्धगुप्त आदि। इनमें से लगभग सभी शासक अयोग्य तथा विफल सिद्ध हुए। अपनी कायरता के कारण ये शासक हूणों के आक्रमण का मुकाबला न कर सके और समुद्रगुप्त तथा चन्द्रगुप्त द्वितीय द्वारा स्थापित किया गया शानदार गुप्त साम्राज्य तितर बितर हो गया।

4. गुप्तकालीन शासन व्यवस्था को स्पष्ट कीजिए।

उ०– **गुप्तकालीन शासन व्यवस्था–** राजा शासन का अध्यक्ष होता था। वह **मंत्रियों** की सहायता से राज्य धर्म के अनुसार शासन करता था। महामंत्री, महाबलाधिकृत, महादण्डनायक, महाप्रतिहार, संधिविग्रहिक तथा कुमारमात्य नामक प्रमुख अधिकारी होते थे। भूराजस्व, राज्य के आय का प्रमुख साधन था। करों की कुल संख्या 18 थी।

सम्पूर्ण साम्राज्य प्रान्तों में विभक्त था, जिनके अधिकारी उपारिक **भोगिक**, **भोगपति** तथा **गोत्ता** कहलाते थे। प्रान्त **विषय**, **मण्डल एवं भोग** में विभक्त थे। **ग्राम** प्रशासन की सबसे छोटी इकाई थी। विषय का अधिकारी विषयपति होता था। जिसकी सहायता **कुमारमात्य** व **आयुक्त** करते थे। जिले के शासक की सहायता दण्डिन, दण्डपासिक, कुलक आदि करते थे। ग्राम का अधिकारी ग्रामिक एवं भोजक होते थे। प्रान्तीय जिला व ग्राम के शासन में जनता के प्रतिनिधियों का महत्वपूर्ण स्थान था।

सैन्य विभाग– केन्द्र में मुख्य विभाग सेना का था। **संधिविग्रहिक** सेना का मुख्य अधिकारी होता था। इसे संधि और युद्ध करने का अधिकार प्राप्त था। उसके अधीनस्थ सैन्य अधिकारी थे— **महासेनापति** अथवा **महादण्डनायक**, **बलाधिकृत** अर्थात् सैनिकों की नियुक्ति करने वाला, **रणभाण्डागरिक** अर्थात् सैनिक सामानों का अधिकारी, **भटश्वपति** अर्थात् पैदल एवं घुड़सवारों का अध्यक्ष आदि। **बलाधिकरण** सेना के कार्यालय को कहते थे।

न्याय विभाग- न्याय—व्यवस्था श्रेष्ठ थी। दण्ड—व्यवस्था कठोर नहीं थी। किसी को भी मृत्युदण्ड नहीं दिया जाता था। देशद्रोही अथवा चोर अपराधी का हाथ काट दिया जाता था। सम्राट न्याय—विभाग का सर्वोच्च अधिकारी होता था। उसका निर्णय अन्तिम माना जाता था। **नारद स्मृति** के अनुसार गुप्त युग में चार प्रकार के न्यायालय थे— (i) कुल न्यायालय, (ii) श्रेणी न्यायालय, (iii) गुण न्यायालय, (iv) राजकीय न्यायालय। इनमें प्रथम तीन जनता के तथा चौथा सरकारी न्यायालय होता था। संक्षेप में, गुप्त सम्राटों ने प्रजा—हितैषी शासन—प्रबन्ध की व्यवस्था की जो उस काल के बाद के राज्यों के लिए आदर्श व्यवस्था बन गई।

5. गुप्तकाल में हुई विभिन्न क्षेत्रों की उन्नति पर प्रकाश डालिए।

उ०– गुप्तकाल में विभिन्न क्षेत्रों में हुई उन्नति का विवरण निम्नलिखित है—

साहित्य एवं शिक्षा– गुप्त युग में साहित्य एवं शिक्षा के क्षेत्र में व्यापक उन्नति हुई। गुप्तकाल की राष्ट्रीय भाषा संस्कृत थी। हरिषेण, वीरसेन तथा पटसभट्टी इस युग के प्रमुख साहित्यकार थे। मातृगुप्तृ कालीदास तथा भारवि इस युग के प्रमुख कवि थे। काशी, मथुरा, पद्मावती, उज्जयिनी, अवन्ति, बल्लभी, पाटलिपुत्र, काँची आदि इस युग के प्रमुख शैक्षिक केन्द्र थे। हिन्दु, जैन तथा बौद्ध साहित्य की रचना इसी युग में हुई थी। पुराणों, नारद व बृहस्पति स्मृतियाँ व अन्य धर्मशास्त्र इसी युग में रचे गए, ईश्वरकृष्ण ने सांख्यकारिका की रचना की। बौद्ध साहित्य में **दीपवंश** एवं **महावंश** की रचना हुई। संस्कृत साहित्य में उच्च स्थान प्राप्त होने के कारण कालिदास को **भारतीय शेक्सपीयर** कहा जाता है। संस्कृत साहित्य में **कालिदास** ने कुमारसम्भव, रघुवंश, मेघदूत, अभिज्ञानशाकुन्तलम तथा मालविकाग्निमित्रम की रचना की। इस युग में लौकिक साहित्य की रचना भी प्रचुर मात्रा में हुई। **विशाखदत्त** की मुद्राराक्षस, देवी चन्द्रगुप्तम, भट्टी का रावण वध, शूद्रक का मृच्छकटिकम, सुबन्धु की वासवदत्ता, दण्डी की दसकुमारचरित आदि की रचना इसी युग में की गई।

विज्ञान– विज्ञान का विकास भी गुप्तकाल में चरम सीमा पर था। गणित, आयुवेद, ज्योतिष, खगोलशास्त्र आदि विषयों पर इस युग में अनेक ग्रन्थ लिखे गए थे। ब्रह्मगुप्त का **ब्रह्म सिद्धान्त** वाराहमिहिर की **बृहत्संहिता** तथा आर्यभट्ट की आर्यभट्टीयम रचना इसी काल की देन है। चरक द्वारा रचित **चरक संहिता** का निर्माण भी इसी काल में हुआ था। इसके अतिरिक्त भी कई ग्रन्थ इसी काल में लिखे गए थे। धनवन्तरि इस युग के प्रख्यात वैद्य थे। **नवनीतकम** इस युग की प्रसिद्ध चिकित्सा पुस्तक थी। हस्त्यायुर्वेद व अश्वशास्त्र पशु चिकित्सा से सम्बन्धित पुस्तकें थी। इसी युग में आयुर्वेदाचार्यों ने भी यह सिद्ध किया कि सोना, चाँदी, लोहा, ताँबा आदि धातुओं में रोग निवारण की शक्ति विद्यमान थी।

सामाजिक, आर्थिक तथा प्रशासनिक क्षेत्र में उन्नति– इसके लिए विस्तृत उत्तरीय प्रश्न संख्या—2 के उत्तर का अवलोकन कीजिए।

6. गुप्तकालीन कलाओं पर एक लेख लिखिए।

उ०– **गुप्तकालीन कलाएँ–** गुप्तकाल में मूर्तिकला, चित्रकला, वास्तुकला, संगीत, नाट्य कला व मुद्राकला के क्षेत्र में बहुत उन्नति हुई।

मूर्तिकला– प्राचीनकाल में मूर्तिकला की चार प्रमुख शैलियाँ थी। इनमें सारनाथ शैली के उत्कृष्ट नमूने गुप्तकाल में मिलते हैं। इस युग में गान्धार प्रभाव से मुक्त होकर भारतीय कला अपने विशुद्ध रूप में प्रकट हुई। देवताओं की मूर्तियों का निर्माण हुआ। देवमूर्तियों में अलंकृत प्रभावमण्डल, झीने वस्त्र, मुद्रा तथा आसन कला की दृष्टि से प्रशंसनीय हैं।

चित्रकला– इस युग में चित्रकला का भी विकास बहुत तेजी से हुआ। स्वाभाविकता, लावण्यता, सजीवता आदि इस युग की चित्रकला की प्रमुख विशेषताएँ थीं। महाराष्ट्र की अजन्ता की गुफाओं व बाघ गुफाओं के चित्र इस युग की चित्रकला के सबसे अनुपम उदाहरण हैं।

अजन्ता की चित्रकला– अजन्ता की पहाड़ी महाराष्ट्र में जलगाँव से 55 किमी और औरंगाबाद से 100 किमी की दूरी पर स्थित हैं। अजन्ता नामक गाँव से इनकी दूरी मात्र 5 किमी है। ये गुफाएँ एक ही पहाड़ी को काट—तराशकर बनाई गइ हैं। सर्पिलाकार बघोरा नदी के किनारे सुरम्य वातावरण में बौद्ध—भिक्षुओं के वर्षा आवास के लिए ही इन गुफाओं का निर्माण चिन्तन, मनन और ध्यान की दृष्टि से किया गया था। यहाँ कुल 29 पूर्ण गढ़ी और एक अनगढ़ गुफा मिली हैं। इन गुफाओं की दीवारों पर विभिन्न रंगों से चित्रांकन पाया जाता है। पहली, दूसरी, सोलहवी तथा सत्रहवीं गुफा चित्रों की विषयवस्तु बौद्ध धर्म है तथा चित्रकार की तुलिका सर्वत्र बुद्ध अथवा बोधिसत्व को चित्रित करने से सलग्न हैं। लता—वृक्षों तथा पशु—पक्षियों के चित्र भी अंकित किए गए हैं। मानव हृदय के भावों का चित्रण मनोहारी है। मैत्री, प्रेम, घृणा, दया, हर्ष, लज्जा एवं चिन्ता आदि भावों का सजीव है और हृदयस्पर्शी चित्रण इन गुफाओं की विशेषता है। चित्रों में अप्सराओं, गन्धर्वों, विभिन्न देवी—देवताओं एवं नारी का बाहुल्य दिखाई पड़ता है।

एलोरा– एलोरा की गुफाएँ भी महाराष्ट्र राज्य में स्थित हैं। इन गुफाओं में विशाल पर्वतों को काटकर अन्य भव्य मन्दिरों का निर्माण किया गया है। इनमें इन्द्रसभा गणेश, कैलाशनाथ, एवं लंकेश्वर के जीवन्त चित्र दर्शनीय हैं।

बाघ की चित्रकला– बाघ (ग्वालियर) मध्यप्रदेश के सुदूर अंचल में स्थित एक छोटा—सा गाँव है। यहाँ से 9 गुफाएँ प्राप्त हुई हैं। इनमें अधिकांश गुफाएँ व चित्र नष्ट हो चुके हैं। केवल 6 चित्र सुरक्षित हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि ये कलाकृतियाँ गुप्तकाल की हैं। इन गुफाओं में सजीव व मनोहारी चित्रों का अंकन है।

वास्तुकला– इस युग में विभिन्न मन्दिरों, गुफाओं, चैत्य, बिहार, स्तूपों व अट्टालिकाओं से युक्त वैभवशाली नगरों का निर्माण हुआ। इनके निर्माण में पकी हुई ईंटों व पत्थरों का प्रयोग हुआ है। नागौर स्थित भूमरा का शिव मन्दिर, कानपुर स्थित भितरगाँव का मन्दिर तथा सारनाथ का धमेख स्तूप गुप्त काल का ही है।

संगीत एवं नाट्यकला– इस काल में संगीत एवं नाट्यकला का पर्याप्त विकास हुआ। गुप्त शासकों ने संगीत, नृत्य व अभिनय को प्रोत्साहन दिया। देवदासी व नगरवधुओं को इन कलाओं में श्रेष्ठ प्रशिक्षण दिया जाता था।

मुद्राकला– मुद्रा का पर्याप्त विकास भी इसी युग में हुआ था। इस युग की प्रचलित मुद्राएँ बहुमूल्य धातु की बनी होती थी। इस युग में सोने एवं चाँदी के सिक्कों का प्रचलन था। चन्द्रगुप्त प्रथम के सिक्कों पर चन्द्रगुप्त व कुमारदेवी के चित्र हैं तथा दूसरी ओर सिंह पर सवार दुर्गा है। समुद्रगुप्त काल के सिक्के तत्कालीन मुद्राकला के सर्वोत्तम उदाहरण हैं।

❖ **मानचित्र सम्बन्धी अभ्यास कार्य**

अध्यापक की सहायता से विद्यार्थी स्वयं करें।

❖ **प्रोजेक्ट कार्य**

अध्यापक की सहायता से विद्यार्थी स्वयं करें।

9 हर्ष कालीन उपलब्धियाँ

<u>अभ्यास</u>

❖ **बहुविकल्पीय प्रश्न**

उ०– बहुविकल्पीय प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्य पुस्तक के पृष्ठ संख्या—69 का अवलोकन कीजिए।

❖ **अतिलघु उत्तरीय प्रश्न**

उ०– अतिलघु उत्तरीय प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्य पुस्तक के पष्ठ संख्या—80 का अवलोकन कीजिए।

❖ **लघु उत्तरीय प्रश्न**

1. हर्ष के साम्राज्य का संक्षिप्त परिचय दीजिए।

उ०– गुप्तकाल के लगभग 100 वर्षों के बाद एक नई शक्ति का उदय हुआ, जो वर्धनवंश के नाम से प्रसिद्ध है। इस वंश का सबसे प्रतापी राजा हर्ष था। लगभग 606 ई० में हर्ष वर्धन थानेश्वर के सिंहासन पर बैठा। हर्षवर्धन ने अपनी विजयों द्वारा उत्तरी भारत में एक विशाल साम्राज्य की स्थापना की। हर्ष ने लगभग 41वर्षों तक शासन किया। इन वर्षों में हर्ष ने अपने साम्राज्य का विस्तार राजस्थान, उत्तरप्रदेश, पूर्वी पंजाब, बिहार व उड़ीसा तक था। डा० स्मिथ के अनुसार—''हर्षवर्धन के साम्राज्या में मलावा, गुजरात एवं सौराष्ट्र के अतिरिक्त हिमालय से लेकर नर्मदा तक, जिसमें नेपाल का भू—भाग भी सम्मिलित था। गंगा की पूरी तलहटी पर हर्ष का साम्राज्य स्थापित था।''

2. वर्धन राज्य की स्थापना पर प्रकाश डालिए।

उ०– गुप्त साम्राज्य के पतन के बाद भारत में अव्यवस्था फैल गई तथा देश पुनः छोटे—छोटे राज्यों में विभक्त हो गया। हूणों के विनाशकारी आक्रमणों ने स्थिति को अधिक गम्भीर बना दिया था। ऐसी परिस्थितियों में थानेश्वर में पुष्यभूति ने वर्धन राज्य की स्थापना की। इस वंश का सर्वाधिक प्रसिद्ध एवं शक्तिशाली शासक हर्षवर्धन था। हर्ष के पिता का नाम प्रभाकर वर्धन तथा माता का नाम यशोमति था। हर्षवर्धन से पूर्व तीन शासकों नरवर्धन, राज्यवर्धन तथा आदित्यवर्धन ने शासन किया। नरवर्धन ने वर्धन वंश की स्थापना की थी। इन शासकों ने 505 ई० से 580 ई० तक शासन किया। प्रभाकरवर्धन राज्य का प्रथम स्वतंत्र शासक था। उसने महाराजधिराज की उपाधि धारण की थी। प्रभाकरवर्धन ने 580 ई० से 605 ई० तक शासन किया।

3. राज्यवर्धन का संक्षिप्त परिचय दीजिए।

उ०– राज्यवर्धन एक शक्तिशाली शासक था। वह प्रभाकर वर्धन का ज्येष्ठ पुत्र और हर्षवर्धन का बड़ा भाई था। उसने पिता की मृत्यु पर अपना राजपाट हर्षवर्धन को सौंपकर स्वयं सन्यासी जीवन ग्रहण करने का निश्चय किया। इसी समय उसे समाचार मिला कि मालवा नरेश देवगुप्त ने गोंड शासक शशांक के साथ मिलकर उसकी बहन राज्यश्री के पति गृहवर्मन का वध करके राज्यश्री को बंदी बना लिया। अतः उसने सन्यास का विचार त्याग कर तुरन्त देवगुप्त पर आक्रमण कर उसे पराजित कर दिया। गोंड शासक शशांक ने राज्यवर्धन की अधीनता स्वीकार करते हुए अपनी पुत्री का विवाह राज्यवर्धन से करने का प्रस्ताव रखा। राज्यवर्धन उसका प्रस्ताव स्वीकार किया और निहत्था उसके दरबार में पहुँचा जहाँ पर धोखे से शशांक ने राज्यवर्धन का वध कर दिया।

4. हर्षवर्धन का संक्षिप्त परिचय दीजिए।

उ०– हर्षवर्धन, राज्यवर्धन का छोटा भाई और प्रभाकरवर्धन का पुत्र था। उसका जन्म 590 ई० में हुआ था। वह राज्यवर्धन की मृत्यु के बाद 16 वर्ष की आयु में 606 ई० में थानेश्वर का शासक बना। हर्षवर्धन को वर्धन वंश का सबसे प्रसिद्ध राजा तथा भारतीय इतिहास में अन्तिम हिन्दु सम्राट होने का गौरव प्राप्त है। हर्षवर्धन ने शासक बनने के बाद अपने भाई की हत्या का बदला लिया और अपने सेनापति भण्डी की सहायता से अपनी बहन राज्यश्री को ढूँढ़ निकाला। अपनी बहन और मन्त्रियों के आग्रह पर हर्ष ने कन्नोज का भी शासन स्वीकार कर लिया। हर्ष ने 41 वर्षों तक शासन किया। 647 ई० में हर्ष का निधन हो गया।

5. हर्ष का साम्राज्य विस्तार स्पष्ट कीजिए।

उ०– **हर्ष का साम्राज्य विस्तार–** हर्ष के साम्राज्य को लेकर कुछ विद्वानों के कथन निम्नलिखित हैं—

डॉ० राजबली पाण्डेय के अनुसार–''हर्षवर्धन का साम्राज्य विस्तार राजस्थान, वर्तमान उत्तर प्रदेश, पूर्वी पंजाब, बिहार, बंगाल और उड़ीसा तक था।

डॉ० स्मिथ के अनुसार– ''हर्षवर्धन के शासन—काल के अन्तिम वर्षों में मालवा, गुजरात एवं सौराष्ट्र के अतिरिक्त हिमालय से लेकर नर्मदा तक, जिसमें नेपाल का भू—भाग भी सम्मिलित था, गंगा की पूरी तलहटी पर हर्षवर्धन का शासन स्थापित था।''

श्री के०एम० पन्निकर के अनुसार– ''हर्ष के साम्राज्य में उत्तर में हिमालय से लेकर दक्षिण में विन्ध्यपर्वत तक तथा पूर्व में कामरूप से पश्चिम में सौराष्ट्र तक का विशाल भूखण्ड सम्मिलित था।''

6. हर्ष के धर्म पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

उ०– **हर्ष का धर्म–** हर्षवर्धन एक धर्मपरायण सम्राट था। हर्ष शिव भक्त था और वह शैव धर्म का अनुयायी था। हर्ष के शैव होने की पुष्टि **रत्नावली**, **नागानन्द**, **प्रिय दर्शिका** आदि कृतियों से होती हैं। किन्तु बाद में हर्ष एक बौद्ध भिक्षु **दिवाकर मित्र के** सम्पर्क में आया और उसका झुकाव बौद्ध धर्म की ओर हो गया। इस प्रकार दिवाकर मित्र के प्रभाव में आकर हर्ष ने बौद्ध धर्म अंगीकार कर लिया। बौद्ध धर्म में भी हर्ष प्रारम्भ में **हीनयान** सम्प्रदाय का अनुयायी था। किन्तु बाद में वह चीनी यात्री **ह्वेनसांग के** प्रभाव में आया और **महायान धर्म** का अनुयायी हो गया। उसने महायान सम्प्रदाय के प्रचार—प्रसार में अत्यधिक योगदान दिया। महायान सम्प्रदाय को लोकप्रिय बनाने के लिए उसने **कन्नौज सभा और प्रयाग सभा** (धार्मिक सभाएँ) का आयोजन कराया। बौद्ध धर्म के प्रचार—प्रसार के लिए **बौद्ध मठों, विहारों तथा स्तूपों का** निर्माण करवाया। भिक्षुओं को उदारतापूर्वक दान दिया।

बुद्ध की हजारों मूर्तियों का निर्माण कराया। यद्यपि हर्ष ने बौद्ध धर्म ग्रहण कर लिया था, किन्तु फिर भी वह अन्य धर्मों का आदर करता था। विद्वानों का मत है कि वह प्रतिदिन 1000 बौद्ध भिक्षुओं और 500 ब्राह्मणों को भोजन कराता था। अत: कहा जा सकता है कि हर्ष बौद्ध होते हुए भी अन्य धर्मों के प्रति सहिष्णु था।

❖ **विस्तृत उत्तरीय प्रश्न**

1. हर्षवर्धन एक धर्मपरायण सम्राट था। सिद्ध कीजिए।

उ०– **हर्ष का धर्म–** हर्षवर्धन एक धर्मपरायण सम्राट था। हर्ष शिव भक्त था और वह शैव धर्म का अनुयायी था। हर्ष के शैव होने की पुष्टि **रत्नावली**, **नागानन्द**, **प्रिय दर्शिका** आदि कृतियों से होती हैं। किन्तु बाद में हर्ष एक बौद्ध भिक्षु **दिवाकर मित्र के** सम्पर्क में आया और उसका झुकाव बौद्ध धर्म की ओर हो गया। इस प्रकार दिवाकर मित्र के प्रभाव में आकर हर्ष ने बौद्ध धर्म अंगीकार कर लिया। बौद्ध धर्म में भी हर्ष प्रारम्भ में **हीनयान** सम्प्रदाय का अनुयायी था। किन्तु बाद में वह चीनी यात्री **ह्वेनसांग के** प्रभाव में आया और **महायान धर्म** का अनुयायी हो गया। उसने महायान सम्प्रदाय के प्रचार–प्रसार में अत्यधिक योगदान दिया। महायान सम्प्रदाय को लोकप्रिय बनाने के लिए उसने **कन्नौज सभा और प्रयाग सभा** (धार्मिक सभाएँ) का आयोजन कराया। बौद्ध धर्म के प्रचार–प्रसार के लिए **बौद्ध मठों, विहारों तथा स्तूपों का** निर्माण करवाया। भिक्षुओं को उदारतापूर्वक दान दिया। बुद्ध की हजारों मूर्तियों का निर्माण कराया। यद्यपि हर्ष ने बौद्ध धर्म ग्रहण कर लिया था, किन्तु फिर भी वह अन्य धर्मों का आदर करता था। विद्वानों का मत है कि वह प्रतिदिन 1000 बौद्ध भिक्षुओं और 500 ब्राह्मणों को भोजन कराता था। अत: कहा जा सकता है कि हर्ष बौद्ध होते हुए भी अन्य धर्मों के प्रति सहिष्णु था।

कन्नौज का धार्मिक सम्मेलन– हर्ष धार्मिक शास्त्रार्थों में बहुत रूचि लेता था। फरवरी 643 ई० में उसने कन्नौज में एक धार्मिक सम्मेलन आयोजित किया। **महायान सम्प्रदाय का** प्रचार एवं प्रसार ही इस सम्मेलन का उद्देश्य था। इस सम्मेलन में **18 देशों के नरेश, 300 ब्राह्मण** और **जैनी**, **3000 महायानी बौद्ध भिक्षु** तथा **1000 बौद्ध आचार्यों** ने भाग लिया। इन सभी में आवास के लिए शिविर लगाए गए। इस सम्मेलन के प्रथम दिन बुद्ध की मूर्ति को हाथी पर रखकर जुलूस के रूप में पूरे नगर में घुमाया गया। **ह्वेनसांग इस** सम्मेलन का सभापति था। कन्नौज सम्मेलन लगभग 22 दिनों तक चला इस सम्मेलन में हर्ष ने बौद्ध धर्म को सर्वश्रेष्ठ धर्म घोषित किया। उसने इसी सम्मेलन में ह्वेनसांग को महायान का सर्वश्रेष्ठ विद्वान घोषित कर उसे **'महायान देव'** और **'मोक्ष देव'** उपाधियों से विभूषित किया।

प्रयाग की धार्मिक सभा– हर्ष नियमित रूप से प्रत्येक पाँचवें वर्ष में प्रयाग में दान महोत्सव का आयोजन करता था। इस अवसर पर वह अनाथों, रोगियों, साधुओं, गरीबों आदि जरूरतमंद लोगों को करोड़ों मुद्राएँ दान देता था। हर्ष दान देते समय किसी भी प्रकार का कोई भेद–भाव नहीं करता था। हर्ष अपनी दानशीलता के लिए इतिहास में प्रसिद्ध हैं। वह कई बार अपने अस्त्र–शस्त्रों को भी दान में दे देता था।

कन्नौज के धार्मिक सम्मेलन और प्रयाग की धार्मिक सभा के उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट होता है कि हर्ष धर्मपरायण, धर्म सहिष्णु और महा दानी सम्राट था।

2. हर्ष के विजय अभियान को स्पष्ट कीजिए।

उ०– **हर्ष का विजय अभियान–** हर्ष बहुत ही पराक्रमी व साहसी शासक था। हर्ष की वीरता को कुछ विद्वानों ने अशोक महान व समुद्रगुप्त के समतुल्य माना है। हर्ष ने अपने उद्दश्यों की पूर्ति के लिए निम्नलिखित युद्ध किए–

(i) पंच प्रदेश की विजय– ह्वेनसांग के अनुसार–''हर्ष ने पंच प्रदेश अर्थात् पंजाब, कन्नौज, गौड़ (बंगाल), मिथिला (बिहार) तथा उड़ीसा पर विजय प्राप्त की थी।''

(ii) बल्लभी (सौराष्ट्र) की विजय– हर्ष ने मालवा तक अपना साम्राज्य बढ़ाकर सौराष्ट्र के शासक ध्रुवसेन द्वितीय पर आक्रमण करके उसने परास्त किया। ध्रुवसेन द्वितीय ने भागकर भड़ौच के राजा दच्छ के यहाँ शरण ली और उसके सहयोग से अपना खोया हुआ राज्य पाने की चेष्ठा की। यहाँ पर हर्ष ने ध्रुवसेन को पहले से सशक्त रूप से देखा और अपनी पुत्री का विवाह ध्रुवसेन से कर दिया और ध्रुवसेन द्वितीय से मित्रता कर ली। ध्रुवसेन द्वितीय ने हर्ष को अपना अधीश्वर स्वीकार कर लिया था।

(iii) गौड़ की विजय– गौड़ विजय को लेकर इतिहासकार अभी तक एक मत नहीं हैं। कुछ विद्वानों का मानना है कि हर्ष ने शशांक की मृत्यु के बाद गौड़ पर अपना अधिकार कर लिया था। ह्वेनसांग के अनुसार– गौड़ प्रदेश पर 619 ई० तक शशांक ने ही शासन किया। हर्ष को गौड़ पर कोई सफलता नहीं मिली। संक्षेप में यह विजय संदेहास्पद है।

(iv) सिन्ध की विजय– हर्षचरित के अनुसार हर्ष ने सिन्ध पर आक्रमण कर वहाँ के शासक को नतमस्तक किया। ह्वेनसांग के अनुसार जिस समय वह भारत आया सिन्ध एक स्वतन्त्र राज्य था, डॉ० मजूमदार के अनुसार, हर्ष को सिन्ध के विरुद्ध कोई विशेष सफलता नहीं प्राप्त हुई।

(v) पूर्व की विजय– हर्ष ने अपने शासन के अन्तिम दिनों में पूर्व की सीमा की ओर प्रस्थान किया। इस समय तक शशांक की

मृत्यु हो चुकी थी। अत: हर्ष ने सरलता से पूर्व पर भी विजय प्राप्त कर ली।

(vi) **अन्य विजय–** उपरोक्त विजयों के अतिरिक्त हर्षवर्धन ने कच्छ, सूरत तथा आनदंपुर पर भी विजय प्राप्त की थी। पुलकेशिन द्वितीय की मृत्यु के पश्चात् हर्षवर्धन ने गंजम प्रदेश पर अपना अधिकार कर लिया था।

3. हर्ष की शासन व्यवस्था पर प्रकाश डालिए।

उ०– हर्ष की शासन व्यवस्था–

राजा की स्थिति– शासन का सर्वोच्च अधिकारी राजा था। वह मुख्य न्यायाधीश तथा युद्ध में सेना का नेतृत्व करता था। वह राज्य के उच्च पदाधिकारियों की नियुक्ति भी करता था। हर्ष ने **'परमभट्टारक परमेश्वर', 'परमदेवता' तथा 'महाराजाधिराज'** आदि उपाधियाँ ग्रहण की थी।

केन्द्रीय शासन– राजा राज्य का सर्वोच्च अधिकारी था। केन्द्रीय शासन अनेक भागों में विभक्त था। इन विभागों को अध्यक्षों एवं मत्रियों का संरक्षण प्राप्त था। राजा के निजी अधिकारी निम्न प्रकार थे—

(i) प्रतिहार (राज्य सभा का मुख्य संरक्षक)

(ii) विनयानुसार (आगन्तुकों को राज्य सभा में ले जाने वाला और उनके आगमन की घोषणा करने वाला)

(iii) स्थापित (रनिवास के कर्मचारियों का निरीक्षक)।

मंत्रिपरिषद्– हर्ष के शासन प्रबन्ध में मंत्रिपरिषद् थी अथवा नहीं ठीक प्रकार से ज्ञात नहीं हैं। परन्तु इतना निश्चित है कि हर्ष के शासनकाल में अनेक मंत्री थे, जिनके सहयोग से हर्ष शासन करता था। हर्षचरित के अनुसार **'अवन्ति'** हर्ष का प्रधानमंत्री था। मंत्रियों में **संधिविग्रहिक** अर्थात् संधि और युद्ध करने का अधिकारी, **अक्षपटलाधिकृत** जिसके हाथ में सरकारी कागज—पत्र रहते थे, अर्थ विभाग का मंत्री तथा न्याय विभाग के मंत्री मुख्य थे।

प्रांतीय शासन– समस्त साम्राज्य की भूमि को राज्य, राष्ट्र, देश अथवा मण्डल कहा जाता था। इसे कई प्रांतों जिन्हें भुक्ति अथवा प्रदेश कहते थे, में विभक्त किया गया था। अहिच्छेत्र, श्रावस्ती, कौशाम्बी इस काल के मुख्य 'भुक्ति' (प्रान्त) थे, 'भुक्ति' को विषयों (जिलों) में विभक्त किया गया था। प्रांतों के अधिकारी उपारिक, महाराज, भोगपति, गोप्ता, राजस्थानीय आदि कहलाते थे। विषयपति विषय (जिला) का शासक होता था। इसकी नियुक्ति प्राप्त—पति द्वारा की जाती थी। प्रत्येक विषय को **पथकों में** विभक्त किया गया था, जो वर्तमान तहसील की भाँति थे।

ग्राम शासन– 'पथकों' (तहसीलों) को गाँवों में बाँट दिया गया था। 'गाँव' शासन की सबसे छोटी इकाई होती थी। गाँव के सभी मामलों की देखभाल **'महत्तर'** नामक पदाधिकारी करता था। ग्रामिक, कुलाधिकरण, अक्षपटलिक गाँव के अन्य महत्वपूर्ण अधिकारी होते थे।

न्याय-व्यवस्था– हर्ष एक न्यायप्रिय सम्राट था, स्वयं सम्राट न्याय का स्रोत था। सम्राट नीचे के न्यायालयों से आए आवेदनों पर विचार करके निर्णय लेता था। न्याय—विभाग का अधिकारी **मीमांसक** कहलाता था।

दण्ड विधान– हर्ष के शासनकाल में दण्ड विधान अत्यन्त कठोर था। घोर अपराध के लिए मृत्युदण्ड; सामाजिक नैतिकता के उल्लंघन करने वाले को अंगभंग तथा राजद्रोहियों को आजीवन कारावास का दण्ड दिया जाता था। कुछ अन्य अपराधों के लिए अपराधी को नगर अथवा गाँव से निष्कासन का दण्ड देकर जंगलों में भेज दिया जाता था।

पुलिस-विभाग– हर्षकालीन पुलिस—विभाग का संगठन गुप्तकालीन पुलिस—विभाग से मिलता—जुलता था। हर्ष के समय के पुलिस—विभाग के अधिकारी भी **दण्डपाशिक, दण्डिक** तथा **चौरोद्धरणिक** कहलाते थे। गुप्तचरों की भी व्यवस्था थी, किन्तु फिर भी चोरों व डाकुओं का भय समाप्त नहीं हुआ था।

सैन्य-प्रबन्ध– हर्ष का सैन्य प्रबन्ध अत्यन्त सुदृढ़ था। हर्ष की सेना के तीन मुख्य अंग थे— 1. पैदल, 2. अश्वारोही, 3. हाथी। सेना के लिए सिन्ध, अफगानिस्तान तथा ईरान से उच्च कोटि के घोड़ों का क्रय किया जाता था। ह्वेनसांग के अनुसार हर्ष की सेना में पैदल फौजों के अतिरिक्त साठ हजार हाथी तथा एक लाख अश्वारोही थे।

आय-व्यय के साधन– हर्ष के शासनकाल में आय के प्रमुख साधन इस प्रकार थे— भूमिकर, अनाज पर लगा विशेष कर, खनिज पदार्थों पर कर, न्यायालयों से शुल्क व जुर्माना आदि। आय के मुख्य साधन कर थे। किन्तु हर्ष ने अपनी प्रजा पर बहुत कम कर लगाए थे। भूमि कर आय का प्रमुख साधन था, जो उपज का 1/6 भाग था।

राज्य की आय को मुख्यत: चार मदों पर व्यय किया जाता था— (i) राजकीय व्यय तथा धार्मिक अनुष्ठानों पर, (ii) उच्च राजकीय पदाधिकारियों के वेतन का भुगतान करने के लिए, (iii) विद्वानों को पुरस्कृत करने हेतु तथा (iv) विभिन्न सम्प्रदायों को दान तथा सार्वजनिक निर्माण हेतु।

जन-कल्याण सम्बन्धी कार्य– हर्ष की शासन—व्यवस्था में एक मुख्य विभाग लोग कल्याण विभाग था। जिसका मुख्य कार्य जनता की सुख—सुविधा में वृद्धि करना था। प्रजा के लिए **चिकित्सालय** तथा **औषधालय** खुलवाए गए थे जहाँ लोगों की नि:शुल्क चिकित्सा की जाती थी। अच्छी **सड़कों की** व्यवस्था की गई थी। सड़कों के किनारे **छायादार वृक्ष** लगाए गए थे ।

4. हर्षकालीन सामाजिक, धार्मिक व आर्थिक दशा को स्पष्ट कीजिए।

उ०– **हर्षकालीन आर्थिक दशा–** हर्ष के शासनकाल की एक विशिष्ट घटना ह्वेनसांग का भारत आगमन है। उसने जिन–जिन प्रदेशों की यात्रा की वहाँ की आर्थिक समृद्धता को देखकर चकाचौंध हो गया। बल्लभी के आर्थिक वैभव के बारे में लिखा है कि ''यहाँ पर 100 घर ऐसे हैं जिनके पास 100 लाख मुद्राएँ हैं।'' उसके विवरण से ऐसा लगता है कि उस समय भी कृषि आजीविका का प्रधान साधन था। उद्योग–धन्धे भी उन्नतिशील अवस्था में थे। व्यापार की स्थिति अच्छी थी। कहने का तात्पर्य यह है कि भारत की हर्षकालीन आर्थिक स्थिति उच्च कोटि की थी।

हर्षकालीन सामाजिक दशा– ह्वेनसांग के अनुसार,'' तत्कालीन समाज में जाति–पाति के बन्धन कठोर थे।'' अन्तर्जातीय विवाह एवं विधवा विवाह का प्रचलन नहीं था। बाल विवाह अवश्य प्रचलित था। पर्दा प्रथा का रिवाज नहीं था। निम्न जातियाँ उच्च जातियों के आवास से दूर रहती थीं। लोग लहसुन, प्याज, मांस,मदिरा एवं मछली का प्रयोग कम करते थे। ब्राह्मण लोग विद्यार्जन, क्षत्रिय युद्ध और वैश्य व्यापार किया करते थे। निम्न वर्ग के लोगों का जीवन कष्टकारी था।

हर्षकालीन धार्मिक दशा– हर्ष के समय में ब्राह्मण धर्म उन्नति पर था। ब्राह्मण धर्म की व्यापकता के कारण ही विदेशी लोग भारत को ब्राह्मण देश कहते थे। काशी और प्रयाग ब्राह्मण धर्म के मुख्य केन्द्र थे। विष्णु की पूजा लोकप्रिय थी। ब्राह्मण धर्म के साथ–साथ बौद्ध धर्म भी पनप रहा था। बौद्ध धर्म दो भागों में विभाजित हो चुका था। हीनयान और महायान। कहीं–कहीं दोनों सम्प्रदाय के लोग साथ–साथ एक ही विहार में रह लेते थे। इसलिए ऐसा लगता था कि दोनों सम्प्रदायों में विभेद कठोर नहीं था। कन्नौज के 100 विहारों में 1000 बौद्ध भिक्षु थे। जैन धर्म का पतन हो रहा था। राजा सभी धर्मों का आदर करते थे।

5. नालन्दा विश्वविद्यालय पर एक लेख लिखिए।

उ०– **नालन्दा विश्वविद्यालय–** यह प्राचीन भारत में उच्च शिक्षा का केन्द्र था। इसकी स्थापना का श्रेय गुप्त शासक कुमारगुप्त प्रथम को प्राप्त है। वर्तमान बिहार राज्य में पटना से 88 किमी दक्षिण–पूर्व राजग्रह में इस महान बौद्ध विश्व विद्यालय के भग्नावशेष इसके प्राचीन वैभव का अहसास कराते हैं। सातवी शताब्दी में हर्षवर्धन के शासन में भारत भ्रमण के लिए चीनी यात्री ह्वेनसांग के अनुसार हर्षवर्धन के काल में शिक्षा का व्यापक प्रसार हुआ और शिक्षा का स्तर भी बहुत ही अच्छा था। इस समय में नालन्दा विश्वविद्यालय उच्च शिक्षा का प्रमुख केन्द्र था। नालन्दा विश्वविद्यालय को हर्ष पर्याप्त आर्थिक सहायता भी देता था तथा इस विश्वविद्यालय को हर्ष का राजकीय संरक्षण भी प्राप्त था। नालन्दा विश्वविद्यालय में चीन, मंगोलिया तथा अन्य देशों के कई विद्यार्थी शिक्षा ग्रहण करने आते थे।

इस विश्वविद्यालय में लगभग 1200 शिक्षक थे। नालन्दा विश्वविद्यालय में विदेशी छात्रों को भोजन, वस्त्र, दवाई आदि की सुविधा भी प्रदान की जाती थी। ह्वेनसांग ने भी इस विश्वविद्यालय में 18 माह तक योगशास्त्र की शिक्षा प्राप्त की। ह्वेनसांग के अनुसार, ''भारत में इस प्रकार की अन्य सहस्त्रों शिक्षण संस्थाएँ हैं, किन्तु वैभव में नालन्दा की तुलना उनमें से किसी से भी नहीं की जा सकती।'' हर्ष के शासनकाल में काशी तथा बल्लभी विश्वविद्यालय की स्थिति भी बहुत ही उन्नत दशा में थी।

❖ **मानचित्र सम्बन्धी अभ्यास कार्य**

अध्यापक की सहायता से विद्यार्थी स्वयं करें।

❖ **प्रोजेक्ट कार्य**

अध्यापक की सहायता से विद्यार्थी स्वयं करें।

इकाई-1 (ग) : छोटे राज्यों का उदय

10 सामन्तवाद-तत्कालीन राजपूतों का उत्कर्ष

अभ्यास

❖ **बहुविकल्पीय प्रश्न**

उ०– बहुविकल्पीय प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्य पुस्तक के पृष्ठ संख्या–86 का अवलोकन कीजिए।

❖ **अतिलघु उत्तरीय प्रश्न**

उ०– अतिलघु उत्तरीय प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्य पुस्तक के पृष्ठ संख्या–86 व 87 का अवलोकन कीजिए।

❖ **लघु उत्तरीय प्रश्न**

1. राजपूत काल की नींव कब और कैसे पड़ी ?

उ०– भारत के अन्तिम हिन्दु सम्राट हर्षवर्धन की 647 ई० में मृत्यु के पश्चात उत्तरी भारत अनेक छोटे—छोटे राज्यों में विभक्त हो गया था। इन छोटे—छोटे राज्यों में नए राजवंशों की नींव पड़ी जिसे सामूहिक रूप से राजपूत काल कहा जाता है। 650 ई० से 1200 ई० तक उत्तरी भारत में अनेक राजपूत राज्य स्थापित होने के कारण यह काल भारत के इतिहास में राजपूत काल के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

2. राजपूतों के उत्कर्ष में विदेशी उत्पत्ति का सिद्धान्त स्पष्ट कीजिए।

उ०– **राजपूतों के उत्कर्ष में विदेशी उत्पत्ति का सिद्धान्त–** राजस्थान के प्रसिद्ध इतिहासकार कर्नल टॉड के अनुसार राजपूत विदेशी जातियों की सन्तान थे। उन्होंने भारतीयों से विवाह सम्बन्ध स्थापित कर लिए तथा उनके संस्कारों को ग्रहण कर लिया और भारतीय समाज का एक अभिन्न अंग बन गए। इन विदेशी जातियों से जो सन्तानें उत्पन्न हुई बहुत ही वीर और पराक्रमी थीं। उन्हें ही राजपूत कहा जाने लगा। विलियम क्रुकान, डॉ० ईश्वरी प्रसाद, डॉ० आर० भण्डारकर तथा डॉ० एन०एन० घोष, कर्नल टॉड की इस बात का समर्थन करते हैं कि राजपूत विदेशी थे।

3. त्रिराष्ट्र संघर्ष को स्पष्ट कीजिए।

उ०– अरबों के आक्रमण के बाद तीन विशाल शक्तियाँ सामने आई। ये थीं—बंगाल के पाल, राजस्थान के प्रतिहार तथा दक्कन के राष्ट्रकूट इन तीनों ही शक्तियों में कन्नौज पर अधिकार को लेकर लगभग 200 वर्षों तक अनेक चरणों में युद्ध होता रहा। इतिहास में इसी संघर्ष को त्रिराष्ट्र संघर्ष कहते है।

4. सामन्तवाद की उत्पत्ति के कारण स्पष्ट कीजिए।

उ०– **सामन्तवाद की उत्पत्ति के कारण–** सामन्तवाद की उत्पत्ति के निम्नलिखित कारण थे—

(i) सर्वप्रमुख कारण यह था कि शासकों ने अपने निकट के सहयोगियों को भूमि एवं ग्राम दान में देना प्रारम्भ कर दिया। राजाओं द्वारा अपने सम्बन्धियों को विभिन्न प्रान्तों में राज्यपाल नियुक्त करने की प्रथा से सामन्तवाद सुदृढ़ हुआ और जैसे ही केन्द्रीय सत्ता कुछ कमजोर हुई सामन्त स्वतन्त्र होने का प्रयत्न करने लगे।

(ii) जब कोई शासक दूसरे शासक पर आक्रमण करके उसे जीत लेता था तो विजित क्षेत्र पर वह अपना एक प्रतिनिधि नियुक्त कर देता था। यह प्रतिनिधि वास्तव में अपने शासक का 'सामन्त' मात्र होता था जिसका प्रमुख कार्य सामान्य प्रशासन देखना तथा करों आदि को वसूल करना होता था।

(iii) इस काल में वाणिज्य और व्यापार की दशा ठीक नहीं थी, इसलिए अर्थव्यवस्था में कृषि का महत्व बढ़ गया। फलस्वरूप भूमि अनुदान की आवश्यकता हुई और 'सामन्तों' का जन्म हुआ।

❖ **विस्तृत उत्तरीय प्रश्न**

1. राजपूतों के उत्कर्ष सम्बन्धी सिद्धान्तों की विस्तृत विवेचना कीजिए।

उ०– **राजपूतों का उत्कर्ष–** सम्राट हर्षवर्धन की मृत्यु के बाद सामन्तवाद आया। इसी समय राजपूत नामक एक नए वर्ग का भी उदय हुआ जो बाद में एक जाति बन गई। राजपूतों की उत्पत्ति के सम्बन्ध में इतिहासकारों ने भिन्न—भिन्न मत प्रकट किए हैं। कुछ विद्वान इनकी उत्पत्ति अग्निकुंड से बताते हैं तो कुछ इनको विदेशी मानते हैं। कुछ इनको सूर्यवंशी तो कुछ इन्हें चन्द्रवंशी बताते हैं। कुछ विद्वानों का कहना है कि राजपूत मिश्रित जाति से हैं। इन सभी का संक्षिप्त विवरण निम्नवत् है—

(i) अग्निकुण्ड उत्पत्ति का सिद्धान्त– पृथ्वीराज चौहान के राजकवि **चन्दबरदाई** ने अपनी पुस्तक **पृथ्वीराज रासों** में यह मत व्यक्त किया है कि राजपूतों की उत्पत्ति अग्निकुण्ड से हुई। उनके विचारानुसार परशुराम ने जब सभी क्षत्रियों का नाश कर दिया तो ब्राह्मणों को अपनी रक्षा के लिए किसी शक्तिशाली जाति की आवश्यकता अनुभव हुई। अनेक ब्राह्मणों ने एकत्र होकर **आबू पर्वत** (राजस्थान) पर **40 दिनों तक** एक महान यज्ञ **ऋषि वशिष्ठ** के नेतृत्व में किया। अन्ततः उनका यज्ञ सफल हुआ। पवित्र अग्नि से चार योद्धा उत्पन्न हुए जिन्होंने चार राजपूत वंशों— **परमार, प्रतिहार, चौहान** और **चालुक्य** राजपूतों की नींव रखी। आधुनिक इतिहासकार इस सिद्धान्त से बिलकुल सहमत नहीं है। वे इसे कोरी कल्पना बताते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि चन्दबरदाई ने अपने आश्रयदाता की प्रतिष्ठा एवं गौरव की वृद्धि के लिए इस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। अतः इस सिद्धान्त का कोई ऐतिहासिक महत्व नहीं है।

(ii) विदेशी उत्पत्ति का सिद्धान्त– राजस्थान के प्रसिद्ध इतिहासकार कर्नल टॉड के अनुसार राजपूत विदेशी जातियों की सन्तान थे। उन्होंने भारतीयों से विवाह सम्बन्ध स्थापित कर लिए तथा उनके संस्कारों को ग्रहण कर लिया और भारतीय समाज का एक अभिन्न अंग बन गए। इन विदेशी जातियों से जो सन्तानें उत्पन्न हुई बहुत ही वीर और पराक्रमी थीं। उन्हें ही राजपूत कहा जाने लगा। विलियम क्रुकान, डॉ० ईश्वरी प्रसाद, डॉ० आर० भण्डारकर तथा डॉ० एन०एन० घोष, कर्नल टॉड की इस बात का समर्थन करते हैं कि राजपूत विदेशी थे।

(iii) सूर्यवंशी और चन्द्रवंशी का सिद्धान्त– वेदव्यास, सी०वी० वैद्य, गौरी शंकर ओझा तथा डॉ० दशरथ शर्मा आदि विद्वानों का मत है कि राजपूत विदेशी नहीं थे अपितु वे प्राचीनकालीन भारत की क्षत्रिय जाति के सूर्यवंशी तथा चन्द्रवंशी

परिवारों से सम्बन्धित थे। अपने मत की पुष्टि के लिए उन्होंने निम्नलिखित तर्क दिए हैं—

(क) राजपूतों का शारीरिक आकार विदेशियों की अपेक्षा आर्यों से अधिक मिलता था।

(ख) राजपूतों ने अग्निपूजा, सूर्यपूजा, अश्वमेघ यज्ञ आदि की प्रथाएँ विदेशियों से ग्रहण नहीं की थीं।

(ग) 9वीं तथा 10वीं शताब्दी के राजपूत शासकों के शिलालेखों में यह बताया गया है कि वे सूर्यवंशी तथा चन्द्रवंशी क्षत्रिय थे।

(घ) जयपुर, जैसलमेर, मेवाड़, बीकानेर आदि राज्यों के शासक बड़े आदर से इस बात का दावा करते थे कि वे राम तथा कृष्ण (सूर्यवंशी तथा चन्द्रवंशी)के परिवारों में से हैं।

अनेक इतिहासकार इस सिद्धान्त से सहमत नहीं हैं। अपने पक्ष में वे यह तर्क देते हैं कि अगर राजपूत सूर्यवंशी तथा चन्द्रवंशी थे तो 7वीं शताब्दी से पूर्व उनका नाम सुनने में क्यों नहीं आता।

(iv) मिश्रित जाति का सिद्धान्त– डॉ० वी०ए० स्मिथ के अनुसार राजपूत न तो पूरी तरह भारतीय थे और न ही पूर्ण रूप से विदेशी थे। वह इन दोनों जातियों के मिश्रण से उत्पन्न हुए थे। भारत में हूण, कुषाण और शक आदि नामक विदेशी जातियाँ स्थायी रूप से बस गई थीं। उन्होंने भारतीयों से विवाह—सम्बन्ध स्थापित कर लिए थे। इनमें से बाद में **चौहान, परमार, प्रतिहार, सिसोदिया** आदि राजपूत राजवंशों की उत्पत्ति हुई जबकि चन्देल, राठौर तथा कालचूरी आदि राजवंशों की उत्पत्ति गोंड, भार, कोल आदि भारतीय जातियों के मेल से हुई ।

(v) सर्वाधिक विश्वसनीय सिद्धान्त– राजपूतों की उत्पत्ति सम्बन्धी गहन अध्ययन से ज्ञात होता है कि कर्नल टॉड का यह मत कि राजपूत विदेशी थे, को स्वीकार नहीं किया जा सकता। सी०वी० वैद्य, वेदव्यास और गौरी शंकर ओझा का मत कि राजपूत सूर्यवंशी तथा चन्द्रवंशी थे, को भी नहीं माना जा सकता। चन्दबरदाई का यह सिद्धान्त कि राजपूतों की उत्पत्ति अग्निकुण्ड से हुई, एक काल्पनिक कथा लगती है। अत: इसका कोई ऐतिहासिक महत्व नहीं है। परिणामस्वरूप हम आधुनिक इतिहासकार **वी०ए० स्मिथ** के इस मत से सहमत है कि राजपूत मिश्रित जाति से सम्बन्ध रखते थे।

2. सामन्तवाद की विशेषताएँ बताइए।

उ०– सामन्तवाद की विशेषताएँ– सामन्तवाद की मुख्य विशेषताएँ निम्नलिखित थी—

(i) सामन्त भूमि के स्वामी– सैद्धान्तिक रूप में महाराजा समूची भूमि का स्वामी होता था। वह अपनी भूमि को जागीरों के रूप में कुछ निश्चित शर्तों पर अपने अधीन सामन्तों में बाँट देता था। यदि कोई सामन्त अनुदान की शर्तों का पालन करने में असमर्थ होता था, तो राजा उसकी भूमि को जब्त कर सकता था। यह अनुदान किसी सामन्त को जीवन भर के लिए दिया जाता था। उसकी मृत्यु के पश्चात् यह राजा की इच्छा पर निर्भर करता था कि वह सामन्त से सम्बन्धित जागीर उसके परिवार के किसी अन्य सदस्य को दे अथवा न दे। किन्तु व्यावहारिक रूप में सामन्तों को प्राप्त भूमि पीढ़ी—दर—पीढ़ी चलती रहती थी।

(ii) सामन्तों के प्रकार– राजपूत काल में **तीन प्रकार** के सामन्त होते थे। पहली प्रकार के सामन्त राजा के उच्चाधिकारी होते थे जो राजकीय सेवा के बदले वेतन के रूप में भूमि प्राप्त करते थे। दूसरी प्रकार के सामन्त भूतपूर्व शासक होते थे जो पराजित होने पर राजा की अधीनता स्वीकार कर लेते थे। राजा उन्हें अपना सामन्त नियुक्त कर देता था। तीसरी प्रकार के सामन्त ऐसे पुरोहित थे जिन्हें राजा लगान—मुक्त भूमि दान के रूप में प्रदान करता था। इस प्रकार के सामन्तों को कोई सैनिक सेवा नहीं करनी पड़ती थी।

(iii) सामन्तों के वर्ग– राजपूत काल में सामन्तों के अनेक वर्ग (दर्जे) थे। **बड़े सामन्तों** को महासामन्त, महासामन्तधिपति, मंडलेश्वर तथा **छोटे सामन्तों** को राजा, ठाकुर, भोगिका तथा भोकता आदि कहा जाता था। इन सामन्तों के आगे **उप-सामन्त** होते थे।

(iv) सामन्तों के कर्तव्य– राजपूत काल में सामन्तों को अनेक प्रकार के कर्तव्य निभाने होते थे— (क) वे अपने अधीन प्रदेश में महाराजा के आदेशों के पालन का वचन देते थे। (ख) वे अपने अधीन प्रदेश में शान्ति—व्यवस्था स्थापित रखने के लिए उत्तरदायी थे। (ग) वे अपने—अपने अधीन प्रदेश से भू—राजस्व एकत्रित करके महाराजा को उसका निश्चित भाग भेजते थे। (घ) वे युद्ध के दिनों में अथवा आंतरिक विद्रोह के समय अपने सैनिकों को भेजकर महाराजा की सहायता करते थे। (ड) उन्हें विशेष अवसरों पर महाराजा के दरबार में उपस्थित होना पड़ता था तथा नजराना भी देना पड़ता था। (च) वे अपने अधीन क्षेत्र में जन—कल्याण का कार्य भी करते थे।

(v) सामन्तों के अधिकार– राजपूत काल के सामन्तों को अनेक अधिकार भी प्राप्त थे— (क) वे अपने अधीन क्षेत्र से भू—राजस्व एकत्रित करते थे। (ख) वे अपने अधीन क्षेत्र के लोगों के दीवानी तथा फौजदारी मुकदमों के निर्णय करते थे तथा अपराधियों से जुर्माना वसूल करते थे। (ग) वे आलीशान भवनों में रहते थे तथा बड़ी—बड़ी उपाधियाँ भी धारण करते थे। (घ) वे अपने अधीन कर्मचारियों की भी नियुक्ति करते थे। (ड) वे व्यावहारिक रूप में अपने अधीन भूमि के स्वामी होते थे।

(vi) **सामन्तों पर नियंत्रण–** सामन्त यद्यपि अपने अधीनस्थ प्रदेशों की शासन–व्यवस्था चलाने में स्वतंत्र थे किन्तु उन पर कुछ प्रतिबन्ध भी थे। (क) महाराजा समय–समय पर सामन्तों की सेना का निरीक्षण करता था। (ख) महाराजा के आदेशों का पालन न करने वाले सामन्तों की भूमि को जब्त किया जा सकता था अथवा उन्हे कम किया जा सकता था। (ग) सामान्तों को एक स्थान से दूसरे स्थान पर स्थानान्तरित किया जा सकता था।

3. **सामन्तवाद के गुण तथा अवगुण बताइए।**

उ०– **सामन्दवाद के गुण–** भारतीय इतिहास में सामन्त व्यवस्था में निम्नलिखित गुण थे–

(i) सामन्तवाद से कई क्षेत्रीय भाषाओं को प्रोत्साहन मिला।
(ii) सामन्तों ने मन्दिरों तथा मूर्तियों के निर्माण तथा चित्रकला के विकास में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।
(iii) सामन्त राजा देश की आन्तरिक सुरक्षा तथा बाह्य आक्रमणों के समय अपनी सेना के सैनिकों के साथ सहयोग देते थे।
(iv) सामन्तों को अपने अन्तर्गत प्रदेशों से लगान एकत्रित करने तथा प्रशासनिक अधिकार दिए गए थे। इस कारण प्रशासनिक मामलों में महाराजा का भार कम हुआ था।

सामन्तवाद के अवगुण– सामन्तवादी व्यवस्था के निम्नलिखित विनाशकारी परिणाम निकले–

(i) समाज धनी तथा निर्धन दो वर्गों में विभाजित हो गया। सामन्ती व्यवस्था के कारण देश कई जातियों में बँट गया। जाति–प्रथा पहले से अधिक कठोर हो गई। इस कारण देश की एकता को गहरा धक्का लगा।
(ii) सामन्ती व्यवस्था के कारण किसानों की दशा बहुत दयनीय हो गई। उन्हें भूमि से बेदखल किया जा सकता था तथा नए कर लगाए जा सकते थे। सामन्त उनसे **विस्ति** (बलात् श्रम) भी लेते थे। सामन्त उन पर कई प्रकार के अत्याचार करते थे किन्तु किसान इस सम्बन्ध में महाराजा के समक्ष शिकायत नहीं कर सकते थे। इस कारण जहाँ महाराजा का अपनी प्रजा से सम्पर्क टूटा, वहीं कृषि के उत्पादन पर भी बुरा प्रभाव पड़ा।
(iii) महाराजा से अधिक–से–अधिक जागीर प्राप्त करने के लिए सामन्तों में परस्पर संघर्ष चलता रहता था।
(iv) देश को बाह्य आक्रमणों तथा आन्तरिक विद्रोहों से बचाने के लिए महाराजा सामन्तों के अधीन सैनिकों पर आश्रित होते थे। सामन्त कई बार सैनिक भेजने में जान–बूझकर देरी कर देते थे। इस कारण महाराजा को कठिनाइयों का सामना करना पड़ता था। युद्ध के मैदान में भी सामन्तों के सिपाही उनके ही प्रति वफादार होते थे, न कि राजा के प्रति। भिन्न–भिन्न सामन्तों के अधीन सेना का संगठन तथा उनके युद्ध करने का ढंग करने का ढंग अलग–अलग होता था। इस कारण रण–क्षेत्र में सैनिकों में परस्पर सामन्जस्य उत्पन्न नहीं होता था। इन कारणों से ही राजपूतों को तुर्को के साथ पराजय का मुख देखना पड़ा तथा उनके राज्यों का एक–एक करके अन्त हो गया।
(v) राज्य की आय का बड़ा भाग सामन्तों के पास ही रह जाता था। महाराजा को सामन्तों की ओर से एक निश्चित आय ही प्राप्त होती थी। इसलिए राजा अपनी सैनिक–शक्ति को सुदृढ़ करने अथवा जन–कल्याण के कार्यों की ओर विशेष ध्यान न दे सके।
(vi) सामन्त अपनी शाक्ति बढ़ाने तथा अवसर पाकर अपना स्वतन्त्र राज्य स्थापित करने के प्रयास में लगे रहते थे।

❖ **मानचित्र सम्बन्धी अभ्यास कार्य**

अध्यापक की सहायता से विद्यार्थी स्वयं करें।

❖ **प्रोजेक्ट कार्य**

अध्यापक की सहायता से विद्यार्थी स्वयं करें।

11 राजपूत कालीन सभ्यता
(सामाजिक एवं सांस्कृतिक उपलब्धियाँ)

अभ्यास

❖ **बहुविकल्पीय प्रश्न**

उ०– बहुविकल्पीय प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्य पुस्तक के पृष्ठ संख्या– 93 व 94 का अवलोकन कीजिए।

❖ **अतिलघु उत्तरीय प्रश्न**

उ०– अतिलघु उत्तरीय प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्य पुस्तक के पष्ठ संख्या–94 का अवलोकन कीजिए।

❖ लघु उत्तरीय प्रश्न

1. राजपूतो के सन्दर्भ में ईश्वरी प्रसाद के कथन को स्पष्ट कीजिए।

उ०– डा० ईश्वरी प्रसाद के कथनानुसार ''राजपूत अपनी स्त्रियों का सम्मान करते थे यद्यपि जन्म से मृत्यु तक उनका जीवन भयंकर कठिनाइयों से भरा होता था। फिर भी स्त्रियाँ संकटकाल में साहस तथा दृढ—संकल्प का प्रदर्शन करती थीं और ऐसी वीरता से कार्य करती थीं जो विश्व के इतिहास में उल्लेखनीय है।'' राजपूत स्त्रियाँ अपने सतीत्व का पालन करना पुनीत कर्तव्य समझती थीं। जौहर प्रथा में आक्रमणकारियों के हाथों से बचने के लिए राजपूत स्त्रियाँ एक बड़ी चिता बनाकर सामूहिक रूप से अपने प्राणों को न्यौछावर कर देती थी। युद्ध—कला में भी वे अत्यधिक प्रवीण होती थीं तथा युद्ध भूमि में शेरनी के समान शत्रुओं पर वार करती थीं। अपने पति की मृत्यु होने पर वे सती हो जाती थीं। इसलिए राजपूत लोग अपनी स्त्रियों का अत्यधिक सम्मान करते थे।

2. राजपूत युग में स्थानीय प्रशासन को स्पष्ट कीजिए।

उ०– **राजपूत युग में**–प्रान्तों का विभाजन विषयों में किया गया था। प्रत्येक विषय आधुनिक जिले के समान था जिसे मण्डल भी कहा जाता था। विषय के प्रमुख अधिकारी को विषयपति कहते थे। वह अपने क्षेत्र में शान्ति व्यवस्था बनाए रखने का कार्य करता था। राजपूतकालीन राज्यों में अनेक नगर थे। नगरअध्यक्ष कोष्टपाल कहलाता था। वह नगर में कानून—व्यवस्था को बनाकर रखता था। उसकी सहायता के लिए स्थानीय समितियों का गठन होता था। प्रशासन की आधारभूत इकाई ग्राम थी। ग्राम के मुखिया को **ग्रामपति** अथवा **ग्रामिक** कहते थे। वह गाँव में जनकल्याण के कार्यों के साथ—साथ कानून व्यवस्था को सुचारू रूप से चलाने का कार्य करते थे। वह स्थानीय करों को एकत्रित करने का कार्य भी करता था। वह गाँव में एक सभा को आयोजित करता था जिसे **ग्राममहत्तर** कहते थे। इस सभा में गाँव के बुजर्गों को शामिल किया जाता था।

3. राजपूत युग के सन्दर्भ निम्नलिखित विषयों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

(i) जीवनियाँ (ii) वैष्णव मत (iii) न्याय प्रबन्ध (iv) युवराज (v) पटरानी

उ०– (i) **जीवनियाँ–** राजपूत काल में अनेक प्रसिद्ध जीवनियों की रचना भी की गई। इनमें **चन्दबरदाई** द्वारा लिखित **'पृथ्वीराज रासो'** सर्वाधिक प्रसिद्ध है। इसमें दिल्ली तथा अजमेर के शासक पृथ्वीराज चौहान के जीवन का वर्णन किया गया है। **बिल्हण** ने **'विक्रमांक देव चरित'** में चालुक्य शासक विक्रमादित्य छठे की जीवनी का वृतान्त दिया है। **केदार भट्ट** ने **'जय चन्द्र प्रकाश'** में कन्नौज के शासक जयचन्द राठौर के जीवन का वर्णन किया है। **बल्लाल ने 'भोज प्रबन्ध'** में परमार वंश के शासक भोज के गौरवमयी जीवन पर प्रकाश डाला है।

(ii) **वैष्णव मत–** राजपूत काल में वैष्णव मत काफी लोकप्रिय हुआ। इस मत के अनुयायी विष्णु तथा उसके अवतारों की पूजा करते थे। इस काल में राम तथा कृष्ण को विष्णु का अवतार मानकर उनकी पूजा आरम्भ कर दी गई थी। वैष्णव आन्दोलन के समर्थकों में पहला नाम **रामानुज** का है। उनका जन्म 1017 ई० में तिरूपति (तमिलनाडु) में, एक ब्राह्मण परिवार में हुआ था। उनका मानना था कि विष्णु सर्वोच्च तथा सर्व शक्तिमान हैं। उन्होंने मुक्ति प्राप्त करने के लिए कर्म, ज्ञान तथा भक्ति पर बल दिया। उनकी सरल शिक्षाओं का लोगों पर बहुत प्रभाव पड़ा। उन्हें भक्ति आन्दोलन का जन्मदाता माना जाता है।

(iii) **न्याय प्रबन्ध–** राजपूत शासक बहुत न्यायप्रिय थे। वे प्रजा को निष्पक्ष न्याय देने के लिए प्रसिद्ध थे। उनके निर्णयों को अन्तिम समझा जाता था। वे किसी भी अपराधी की सजा को बढ़ा सकते थे, कम कर सकते थे अथवा उसे माफ कर सकते थे। न्याय—कार्यों में **पुरोहित** राजा की सहायता करते थे। गाँवों में अधिकतर मुकदमों का निर्णय **ग्राम सभाएँ** करती थीं। निर्णय देने से पूर्व अपराधी की पूर्ण जाँच—पड़ताल की जाती थी। जहाँ कहीं प्रमाणों का अभाव होता था वहाँ अपराधी को अग्नि अथवा कोई अन्य परीक्षा देनी पड़ती थी। राजपूत काल में अपराधियों को कठोर दण्ड दिए जाते थे, साधारण अपराधियों के हाथ—पाँव काट दिए जाते थे तथा उनसे जुर्माना भी वसूला जाता था। चोरी—डकैती, हत्या, गद्दारी आदि के लिए मृत्यु—दण्ड दिया जाता था।

(iv) **युवराज–** राजपूत युग में राजा के बाद का स्थान युवराज का था। राजा के सबसे बड़े पुत्र को ही अधिकांशत: युवराज के पद पर नियुक्त किया जाता था। युवराज प्रशासन के सभी कार्यों में अपनी भागीदारी निभाता था। युवराज को राजदूत की भूमिका निभानी होती थी। यदि किसी भी कारण से राजा अयोग्य होता था तो उसका राज—पाठ युवराज को सौंप दिया जाता था।

(v) **पटरानी–** इस काल में रानी भी राजकार्यों में राजा के बराबर की भूमिका निभाती थी। चौहान शासक अजयराज की पटरानी सोमाला देवी ने अपने नाम के सिक्के जारी किए थे। सिंहासन पर बैठते हुए यदि कोई युवराज अल्पायु होता था तो वह पटरानी के संरक्षण में अपना कार्य करता था। पटरानियाँ महिषी, राजमहिषी तथा महादेवी नामक उपाधियाँ धारण करती थी।

❖ विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

1. राजपूतों की राज व्यवस्था की विशेषतोओं का उल्लेख कीजिए।

उ०– राजपूतों की राज व्यवस्था की मुख्य विशेषताएँ निम्नलिखित हैं—

(i) **राजा–** राजपूत काल में राजा सर्वोच्च अधिकारी होता था। वह परमेश्वर, महाराजाधिराज, परमभट्टारक, महासमन्ताधिपति

आदि उपाधियों को ग्रहण करता था। राजा का पद वंशानुगत होता था। राजा राज्य के सभी महत्वपूर्ण पदों पर नियुक्तियाँ करता था। राजा के मुख से निकला प्रत्येक शब्द कानून माना जाता है। उसे किसी भी अपराधी को माफ करने का अधिकार था। केवल राजाओं को ही सन्धि करने का अधिकार था। राजपूत शासक निरंकुश होने के बाद भी अपनी शक्तियों का गलत उपयोग नहीं करते थे। वह धर्मशास्त्रों का पालन करते हुए सदैव प्रजा की भलाई के लिए कार्य करते थे।

(ii) युवराज– राजपूत युग में राजा के बाद का स्थान युवराज का था। राजा के सबसे बड़े पुत्र को ही अधिकाशत: युवराज के पद पर नियुक्त किया जाता था। युवराज प्रशासन के सभी कार्यों में अपनी भागीदारी निभाता था। युवराज को राजदूत की भूमिका निभानी होती थी। यदि किसी भी कारण से राजा अयोग्य होता था तो उसका राज—पाठ युवराज को सौंप दिया जाता था।

(iii) पटरानी– इस काल में रानी भी राजकार्यों में राजा के बराबर की भूमिका निभाती थी। चौहान शासक अजयराज की पटरानी सोमाला देवी ने अपने नाम के सिक्के जारी किए थे। सिंहासन पर बैठते हुए यदि कोई युवराज अल्पायु होता था तो वह पटरानी के संरक्षण में अपना कार्य करता था। पटरानियाँ महिषी, राजमहिषी तथा महादेवी नामक उपाधियाँ धारण करती थी।

(iv) मन्त्री– राजपूत शासकों ने प्रशासन की कुशलता के लिए अपनी—अपनी मन्त्रिपरिषद् का गठन किया था। इन मन्त्रियों की संख्या) राजा की इच्छा पर निर्भर करती थी। केवल शिक्षित तथा राजनीति में कुशल व्यक्तियों को ही मन्त्री के पद पर नियुक्त किया जाता था। मन्त्री अपने सभी कार्यों के लिए राजा के प्रति उत्तरदायी होते थे। राजा जब चाहे उन्हें उनके पद से हटा सकता था अथवा अधिकारों में कमी कर सकता था। मन्त्रियों के परामर्श को मानना राजा के लिए अनिवार्य नहीं था। राजपूत काल के प्रमुख मन्त्री निम्नलिखित थे—

- **(क) महामन्त्री–** महामन्त्री राज्य का प्रधानमन्त्री होता था। उसे **महामात्य** भी कहा जाता था। वह राजा का प्रमुख परामर्शदाता होता था। वह राज्य के सभी विभागों की देख—भाल करता था।
- **(ख) सेनापति–** प्रधानमन्त्री के बाद दूसरा महत्वपूर्ण पद सेनापति का था। उसे **महादण्डनायक** भी कहा जाता था। वह सैनिक प्रशासन से सम्बन्धित सभी कार्य करता था। वह दुर्गों का निर्माण भी करवाता था।
- **(ग) सन्धिविग्रहिक–** वह राज्य का **विदेश मन्त्री** था। उसका मुख्य कार्य दूसरे राज्यों के साथ सम्बन्ध स्थापित करना था। इस सम्बन्ध में वह राज्यादेश भी तैयार करता था। वह राजा के राजदूत के रूप में कार्य करता था।
- **(घ) अक्षपट्टालिक–** वह राज्य का **वित्त मन्त्री** था। वह राज्य की आय तथा व्यय का सम्पूर्ण ब्यौरा रखता था।
- **(ड) भाण्डायागरिक–** वह शाही राजकोष का प्रधान था।
- **(च) महाप्रतिहार–** वह राजमहल का प्रमुख सुरक्षा अधिकारी था। कोई भी व्यक्ति केवल उसके द्वारा ही राजा से मिल सकता था।
- **(छ) महापुरोहित–** वह धार्मिक कार्यों का मन्त्री था। वह राजा को धार्मिक मामलों में परामर्श देता था। वह राजा की सुरक्षा तथा राज्य के विस्तार के लिए प्रार्थना करता था। वह युद्ध के समय राजा के साथ जाता था।
- **(ज) धर्मस्थ–** वह न्याय विभाग का प्रधान था। वह राजा को न्यायिक कार्यों में परामर्श देता था। वह यह भी देखता था कि किसी से कोई अन्याय न हो।

(v) प्रान्तीय प्रबन्ध– प्रशासन की कुशलता के लिए राजपूत शासकों ने अपने राज्यों को कई प्रान्तों में विभाजित कर रखा था। प्रान्त को उस समय भुक्ति या राष्ट्र कहा जाता था। प्रान्तीय प्रबन्ध के मुख्य अधिकारी को उपारिक या राष्ट्रपति कहते थे। वह अपने अधीन क्षेत्र में कानून व्यवस्था बनाए रखने का कार्य करता था। इसके लिए उसके पास कुछ सेना भी होती थी। वह अपने कार्यों के लिए राजा के प्रति उत्तरदायी होता था।

(vi) स्थानीय प्रशासन– प्रान्तों का विभाजन विषयों में किया गया था। प्रत्येक विषय आधुनिक जिले के समान था जिसे मण्डल भी कहा जाता था। विषय के प्रमुख अधिकारी को विषयपति कहते थे। वह अपने क्षेत्र में शान्ति व्यवस्था बनाए रखने का कार्य करता था। राजपूतकालीन राज्यों में अनेक नगर थे। नगरअध्यक्ष कोष्टपाल कहलाता था। वह नगर में कानून—व्यवस्था को बनाकर रखता था। उसकी सहायता के लिए स्थानीय समितियों का गठन होता था। प्रशासन की आधारभूत इकाई ग्राम थी। ग्राम के मुखिया को **ग्रामपति** अथवा **ग्रामिक** कहते थे। वह गाँव में जनकल्याण के कार्यों के साथ—साथ कानून व्यवस्था को सुचारू रूप से चलाने का कार्य करते थे। वह स्थानीय करों को एकत्रित करने का कार्य भी करता था। वह गाँव में एक सभा को आयोजित करता था जिसे **ग्राममहत्तर** कहते थे। इस सभा में गाँव के बुजर्गों को शामिल किया जाता था।

(vii) सामन्ती प्रबन्ध– राजपूतों के राजनीतिक संगठन की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता सामन्ती व्यवस्था थी। राजपूत—राज्यों में दो प्रकार के क्षेत्र होते थे। एक वे जिन पर राजा का सीधा अधिकार होता था तथा दूसरे वे जिन पर सामन्तों का शासन होता था। सामन्त अपने अधीन क्षेत्रों में शासन चलाने में स्वतन्त्र थे। वे अपनी इच्छा से कर लगा सकते थे तथा वसूल कर सकते थे। उन्हें ग्रामों को दान देने का भी अधिकार था। वे लोगों के झगड़ों का फैसला भी करते थे। इन अधिकारों के बदले सामन्तों को राजा को नियमित रूप से कर एवं सैन्य सहायता देनी पड़ती थी। विशेष अवसरों पर वे राजा को उपहार भी देते

थे। उनकी गतिविधियों पर नियंत्रण रखने के लिए राजा सामन्तों के दरबारों में अपने राजदूत नियुक्त करता था। प्राय: सामन्त अपने निहित स्वार्थों की पूर्ति करने में लगे रहते थे। वे अवसर मिलते ही राजा के विरुद्ध विद्रोह भी कर देते थे। परिणामत: सामन्ती व्यवस्था राजपूतों के लिए बड़ी हानिकारक सिद्ध हुई। इसने (सामन्ती व्यवस्था ने) शासक को दुर्बल तथा शक्तिहीन बनाया।

(viii) **वित्तीय प्रबन्ध–** राजपूतों के युग में राज्य की आय का प्रमुख साधन भू—राजस्व था। भू—राजस्व कुल आय का पाँचवा भाग होता था। इसे **भाग** या **उद्रंग** कहते थे। किसी भी कारण से फसलों के नष्ट हो जाने पर भू—राजस्व माफ कर दिया जाता था। इस युग में ब्राह्मणों को दान में दी गई भूमि तथा मन्दिरों से भी कुछ कर लिया जाता था। इसके अतिरिक्त खानों, सामन्तों, वनों द्वारा दिए जाने वाले करों एवं उपहारों, सब्जियाँ व फल बेचने वालों पर लगे हुए करों तथा अपराधियों से वसूले जाने वाले जुर्माने भी राज्य की आय के स्रोत थे। राजपूत शासक धन को जन—कल्याण, सेना, राजदरबार की शान—शौकत व राज्य कर्मचारियों के वेतन पर व्यय करते थे।

(ix) **सैनिक प्रबन्ध–** राजपूत शासकों की सेना में स्थायी और अस्थायी दोनों ही प्रकार के सैनिक होते थे। सेना का एक बड़ा भाग सामन्तों के अधीन होता था। युद्ध के समय सामन्त अपने सैनिकों के साथ राजा की सहायता करते थे। पैदल सैनिक, घुड़सवार सैनिक तथा हाथी राजपूत सेनाओं के प्रमुख अंग हुआ करते थे। कुछ स्थानों जैसे मध्य प्रदेश एवं राजस्थान आदि में ऊँटों को भी सेना में सम्मिलित किया जाता था। महादण्डनायक, दण्डनायक, सेनापति, पीलूपति, अश्वपति, महाबलाधिकृत तथा बलाधिकृत नामक अधिकारी सैनिकों को प्रशिक्षण देने के लिए नियुक्त होते थे। राज्य की सुरक्षा के लिए विशाल दुर्गों का निर्माण होता था। इन दुर्गों की देखभाल का उत्तरदायित्व **कोष्ठपाल** का था। तीर—कमान, तलवार, नेजे, भाले तथा बर्छे राजपूत सेनाओं के प्रमुख शस्त्र थे। राजपूत सैनिक रणभूमि में कभी भी निहत्थे सैनिक पर वार नहीं करते थे और न ही सोए हुए सैनिक पर आक्रमण करते थे। राजपूत सैनिक शत्रु से हारने और पीठ दिखाने की अपेक्षा रणभूमि में मृत्यु को प्राप्त करना अधिक गौरव की बात मानते थे।

(x) **न्याय प्रबन्ध–** राजपूत शासक बहुत न्यायप्रिय थे। वे प्रजा को निष्पक्ष न्याय देने के लिए प्रसिद्ध थे। उनके निर्णयों को अन्तिम समझा जाता था। वे किसी भी अपराधी की सजा को बढ़ा सकते थे, कम कर सकते थे अथवा उसे माफ कर सकते थे। न्याय—कार्यों में **पुरोहित** राजा की सहायता करते थे। गाँवों में अधिकतर मुकदमों का निर्णय **ग्राम सभाएँ** करती थीं। निर्णय देने से पूर्व अपराधी की पूर्ण जाँच—पड़ताल की जाती थी। जहाँ कहीं प्रमाणों का अभाव होता था वहाँ अपराधी को अग्नि अथवा कोई अन्य परीक्षा देनी पड़ती थी। राजपूत काल में अपराध्यिों को कठोर दण्ड दिए जाते थे। साधारण अपराधियों के हाथ—पाँव काट दिए जाते थे तथा जुर्माना भी वसूला जाता था। चोरी—डकैती, हत्या, गद्दारी आदि के लिए मृत्यु—दण्ड दिया जाता था।

2. राजपूत युग में वित्तीय और सामन्ती प्रबन्ध को समझाइए।

उ०– उत्तर के लिए विस्तृत उत्तरीय प्रश्न संख्या—1 के उत्तर का अवलोकन कीजिए।

3. राजपुत युग के सामाजिक एवं धार्मिक जीवन को स्पष्ट कीजिए।

उ०– **राजपूत युग सामाजिक जीवन–** राजपूत काल में समाज केवल चार ही जातियों (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र) में ही विभाजित नहीं था, वह अनेक उपजातियों में भी विभाजित हो गया था। ब्राह्मणों को समाज में विशेष स्थान प्राप्त था। वे लोगों को धार्मिक शिक्षा देते थे तथा धार्मिक कार्यों में भूमिका निभाते थे। राजा तथा सैनिक क्षत्रिय वर्ग से सम्बन्धित थे। वैश्य सम्प्रदाय व्यापार का कार्य करते थे। इस काल में अन्तर्जातीय विवाह को असामाजिक कृत्य माना जाता था। समाज में शूद्रों के साथ बहुत ही गलत व्यवहार किया जाता था। इस काल में छुआ—छूत की भावना का व्यापक प्रसार था। राजपूत काल में स्त्रियों का अत्यधिक सम्मान किया जाता था। उच्च परिवारों की अधिकाशं स्त्रियाँ शिक्षित होती थीं। वे संगीत, नृत्य तथा चित्रकला में भी निपुण होती थीं। राजपूत काल में **अवन्ति, सुन्दरी, इन्दुलेखा, शीला, सुभद्रा, लक्ष्मी, मोरिका, विज्जिका** आदि प्रसिद्ध कवयित्रियाँ थीं। राजपूत स्त्रियाँ सामाजिक तथा धार्मिक जीवन में सक्रिय भाग लेती थीं। वे बड़ी बहादुर होती थीं। वे आवश्यकता पड़ने पर पुरुषों की भाँति युद्ध—क्षेत्र में शत्रु का सामना करती थीं। राजपूत—स्त्रियों को अपने पति का चुनाव करने में पूर्ण स्वतन्त्रता थी। राजपूत राजा अपनी पुत्रियों के विवाह के लिए **स्वयंवर** रचाते थे। उस समय प्राय: एक विवाह की प्रथा थी। राजा तथा सामन्त एक से अधिक विवाह करते थे। राजपूत स्त्रियाँ चरित्रवान होती थीं। **सती प्रथा** के अनुसार राजपूत स्त्रियाँ अपने पति की मृत्यु के बाद उसके शव के साथ जीवित चिता में जल जाती थीं। स्त्री समाज में **जौहर प्रथा** भी प्रचलित थी। इस प्रथा के अनुसार जब स्त्रियों को शत्रुओं से बचने का कोई उपाय नहीं सूझता था तो वे अपने सतीत्व की रक्षा के लिए एक विशाल चिता में एक साथ प्रवेश करके भस्म हो जाती थीं। इस काल में अतिथियों का बहुत सम्मान होता था। इस काल के शासक अपने शत्रु के शरण में आने पर उनके साथ भी बहुत अच्छा व्यवहार करते थे। उसे पूर्ण राजकीय सम्मान प्रदान करते थे। राजपूत काल में उच्च वर्ग के पुरुष कोट, पैंट, जूते आदि पहनते थे साधारण लोग धोती पहनते थे। स्त्रियाँ चोली एवं साड़ियाँ पहनती थीं। उच्च वर्ग के लोगों के वस्त्र रेशम तथा मलमल के बने होते थे। इस काल में पुरुष और स्त्रियाँ दोनों ही आभूषण पहनते थे।

राजपूत लोग शाकाहारी व मांसाहारी दोनों ही प्रकार का भोजन करते थे। ये लोग अपने भोजन में अधिकाशंत: गेहूँ, चावल, जौ, ज्वार, दालें, सब्जियाँ, दूध, दही, मक्खन, घी तथा विभिन्न प्रकार के मसालों का प्रयोग भी करते थे। इस काल में राजपूत लोग मोर, हिरण, मुर्गा, घोड़ा, सुअर आदि का मांस खाते थे। उच्च वर्ग के लोगों में अफीम तथा मदिरापान का भी प्रचलन था। इस काल में शिक्षा के क्षेत्र में कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ था। केवल उच्च वर्ग व ब्राह्मण सम्प्रदाय ही शिक्षा ग्रहण करता था। विद्यार्थी को शिक्षा ग्रहण करने के लिए शिक्षक के आवास पर जाना होता था। उच्च—शिक्षा की व्यवस्था कुछ मन्दिर प्रागणों में की गई थी। इस काल में शिक्षा के मुख्य विषयों में व्याकरण, वेद, गणित, ज्योतिष, सैनिक विद्या एवं नैतिक शास्त्र थे। राजपूत राजाओं तथा सामन्तों को शिकार का बहुत शौक था। जन साधारण संगीत, नृत्य, मल्लयुद्ध, शतरंज तथा नौकायान आदि से अपना मनोरंजन करते थे। उस काल में रामनवमी, शिवरात्री, जनमाष्टमी, दीवाली, होली, दशहरा आदि त्योहार थे। राजपूत समाज में कुछ बुराइयाँ भी व्याप्त थी। लड़कियों के जन्म को अच्छा नहीं समझा जाता था। कुछ परिवार लड़कियों को उनके जन्म लेते ही मार डालते थे। जाति—प्रथा ने जटिल रूप धारण कर लिया था। विभिन्न जातियों में परस्पर एकता का अभाव था। निम्न जाति के लोग अपमानजनक जीवन व्यतीत करते थे। उच्च वर्ग के लोग जुआ खेलने के भी बहुत शौकीन थे।

राजपूत युग का धार्मिक जीवन– राजपूत शासक हिन्दू धर्म के अनुयायी थे। देवी—देवताओं में उनकी अपार श्रद्धा थी। राजपूत शासक शिव तथा काली देवी की पूजा अर्चना सबसे अधिक करते थे। इस काल में राम तथा श्रीकृष्ण को भी महत्वपूर्ण माना जाता था। राजपूत शासकों ने विभिन्न देवी—देवताओं के अनेकों मन्दिरों का निर्माण कराया है। राजपूत शासकों ने व्रत और तीर्थ—यात्रा को भी बहुत महत्वपूर्ण माना है। ब्राह्मणों का इस युग में बहुत सम्मान होता था। इस काल में महत्वपूर्ण धार्मिक परिवर्तन हुए। एक ओर जहाँ बौद्ध तथा जैन धर्मों का प्रचार—प्रसार कम हुआ वहीं हिन्दू धर्म ने पुन: अपना गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त किया। इस काल में इस्लाम का प्रवेश एवं प्रसार भी भारत में आरम्भ हुआ।

(i) हिन्दू धर्म– राजपूत काल का हिन्दू धर्म वैदिक काल के हिन्दू धर्म से काफी भिन्न था। इस काल में शैव मत एवं वैष्णव मत दोनों लोकप्रिय हुए। इसके अतिरिक्त शक्ति मत भी प्रचलित था।

(क) शैव मत– राजपूत काल में दो नए मत अस्तित्व में आए। इन्हें योगी तथा लिंगायत मत कहा जाता था।

योगी— मध्यकाल में शैव मत से सम्बन्धित एक श्रेणी का जन्म हुआ जिसे योगी कहा जाता था। योगियों की मुख्य शाखा को नाथपंथी कहा जाता था। इसके संस्थापक गोरखनाथ थे। उत्तरी भारत में योगियों का बहुत प्रभाव था। वे शिव की भैरव रूप में पूजा करते थे। वे योगाभ्यास पर बल देते थे।

लिंगायत— लिंगायत मत की स्थापना 12वीं शताब्दी में बासव ने की थी। वे शिव के पुजारी थे तथा शिवलिंग की पूजा करते थे। उन्होंने जाति—प्रथा, उपवास, तीर्थयात्रा तथा बली संस्कारों का जोरदार शब्दों में खण्डन किया। वे बाल—विवाह के विरोधी थे। उन्होंने विधवा—विवाह के पक्ष में प्रचार किया।

(ख) वैष्णव मत– राजपूत काल में वैष्णव मत काफी लोकप्रिय हुआ। इस मत के अनुयायी विष्णु तथा उसके अवतारों की पूजा करते थे। इस काल में राम तथा कृष्ण को विष्णु का अवतार मानकर उनकी पूजा आरम्भ कर दी गई थी। वैष्णव आन्दोलन के समर्थकों में पहला नाम **रामानुज** का है। उनका जन्म 1017 ई० में तिरूपति (तमिलनाडु) में, एक ब्राह्मण परिवार में हुआ था। उनका मानना था कि विष्णु सर्वोच्च तथा सर्व शक्तिमान हैं। उन्होंने मुक्ति प्राप्त करने के लिए कर्म, ज्ञान तथा भक्ति पर बल दिया। उनकी सरल शिक्षाओं का लोगों पर बहुत प्रभाव पड़ा। उन्हें भक्ति आन्दोलन का जन्मदाता माना जाता है।

(ग) शक्ति मत– राजपूत काल में देवियों की पूजा भी बहुत प्रचलित थी। उस समय **पार्वती, दुर्गा, लक्ष्मी, सरस्वती, भवानी, चण्डिका, अम्बिका** आदि देवियों की पूजा की जाती थी। उन्हें मातृ—शक्ति का प्रतीक समझा जाता था।

(ii) बौद्ध धर्म– राजपूत काल में बौद्ध धर्म भारत से लगभग लुप्त हो गया था। इसके पतन के कई कारण थे। इसकी पूजा परिपाटी पहले की अपेक्षा जटिल हो गई थी। वे बुद्ध को ईश्वर के रूप में पूजने लग गए थे। वे जादू—टोनों में विश्वास करने लगे थे। यह सभी बातें बौद्ध धर्म के सिद्धान्तों के विरुद्ध थीं।

(iii) जैन धर्म– राजपूत काल में जैन धर्म को गुजरात तथा राजस्थान के चालुक्य, मालवा के परमार तथा कर्नाटक के गंग शासकों का संरक्षण प्राप्त था। इन शासकों ने कई प्रसिद्ध जैन मन्दिरों तथा जैन सन्तों की मूर्तियों का निर्माण करवाया। इनमें से आबू पर्वत पर बने दिलवाड़ा मन्दिर तथा श्रवण बेलगोला (कर्नाटक) में बनी 18 मीटर ऊँची एक जैन सन्त की मूर्ति अपनी कला के लिए सबसे प्रसिद्ध है। कालान्तर में बढ़ती हुई कट्टरता तथा राजकीय संरक्षण की कमी के कारण जैन धर्म का पतन आरम्भ हो गया।

4. राजपूत युग में साहित्य और कला की विवेचना दीजिए।

उ०– **राजपूत युग में साहित्य का क्षेत्र–** राजपूत काल में साहित्य और कला के क्षेत्र में अभूतपूर्व उन्नति की। कई राजपूत शासक स्वयं भी उच्च कोटि के विद्वान थे। इस काल में अनेक लेखक, कवि तथा नाटककार हुए। उन्होंने संस्कृत तथा अन्य भाषाओं से सम्बन्धित अनेक ग्रन्थों की रचना की। साहित्यक सेवाओं के लिए राजपूत काल का नाम सदैव इतिहास के पन्नों में स्वर्णिम

अक्षरों में लिखा जाएगा। इस काल की कुछ कृतियाँ निम्नवत् हैं–

(i) काव्य– राजपूत काल में उच्च कोटि के अनेक काव्य–ग्रन्थों की रचना की गई। इनमें जयदेव की **गीत गोविन्द** सर्वाधिक प्रसिद्ध है। वह बंगाल के शासक **लक्ष्मण सेन** का दरबारी कवि था। गीत गोविन्द में उसने राधा तथा कृष्ण के प्यार का अति सुन्दर वर्णन किया है। **भार्तृहरि, माघ, दामोदरगुप्त तथा क्षेमेन्द्र** भी उल्लेखनीय कवि हुए। भार्तृहरि ने **'रावण वध'** माघ ने **'शीशुपाल वध'** तथा श्री हर्ष दामोदरगुप्त ने **'कुट्टनीमाता'** तथा क्षेमेन्द्र ने **'रामायण मंजरी'** एवं **'दस अवतार चरित'** नामक ग्रन्थों की रचना की। इस काल में अभिनंद ने **'रामचरित'** तथा वासुदेव ने **'युधिष्ठिर विजय'** नामक महाकाव्यों की रचना की।

(ii) नाटक– राजपूत काल का सर्वाधिक प्रसिद्ध नाटककार **भवभूति** था। वह कन्नौज के शासक यशोवर्मन के दरबार की शोभा था। उसके द्वारा लिखे गए तीन नाटक, **'महावीर चरित', 'उत्तर रामचरित'** तथा **'मालती माधव'** बहुत प्रसिद्ध हुए। इसके अतिरिक्त, **राजशेखर** की **'बाल रामायण', 'बाल भारती'** तथा **'कर्पूरमंजरी', भट्ट नारायण** का **'वेणी संहार'** मुरारि का **'अनर्धराघव' आनन्दवर्दन** का **'प्रबोधचन्द्र'** तथा हस्तिमल्ल का **'विक्रान्त कौरव'** एवं **'सुभद्रा हरण'** नामक नाटक भी प्रसिद्ध थे।

(iii) जीवनियाँ– राजपूत काल में अनेक प्रसिद्ध जीवनियों की रचना भी की गई। इनमें **चन्दबरदाई** द्वारा लिखित **'पृथ्वीराज रासो'** सर्वाधिक प्रसिद्ध है। इसमें दिल्ली तथा अजमेर के शासक पृथ्वीराज चौहान के जीवन का वर्णन किया गया है। **बिल्हण** ने **'विक्रमांक देव चरित'** में चालुक्य शासक विक्रमादित्य छठे की जीवनी का वृतान्त दिया है। **केदार भट्ट** ने **'जय चन्द्र प्रकाश'** में कन्नौज के शासक जयचन्द राठौर के जीवन का वर्णन किया है। **बल्लाल ने 'भोज प्रबन्ध'** में परमार वंश के शासक भोज के गौरवमयी जीवन पर प्रकाश डाला है।

(iv) कथा साहित्य– राजपूत काल में कथा साहित्य पर भी अनेक ग्रन्थों की रचना हुई। इनमें **सोमदेव** रचित **'कथा सरित सागर'** सर्वाधिक महत्वपूर्ण ग्रन्थ है। इसमें वर्णित कथाओं से हमें इस काल के लोगों की परम्पराओं के सम्बन्ध में जानकारी मिलती है। इसके अतिरिक्त **क्षेमेन्द्र** रचित **'वृहत्कथा मंजरी'** में भी कहानियों का अति सुन्दर ढंग से वर्णन किया गया है। **'हितोपदेश'** नामक ग्रन्थ में पंचतन्त्र पर आधारित कथाओं का वर्णन किया गया है।

(v) ऐतिहासिक साहित्य– राजपूत काल में ऐतिहासिक साहित्य की भी रचना की गई। **कल्हण द्वारा** रचित **'राजतरंगिणी'** राजपूत काल का सर्वाधिक प्रसिद्ध ऐतिहासिक ग्रन्थ था। नि:सन्देह यह कश्मीर के इतिहास को जानने के लिए बहुमूल्य स्रोत है। **सन्ध्याकरनंदी ने 'रामचरित'** में पाल वंश के इतिहास का वर्णन किया है।

(vi) विज्ञान– राजपूत काल में विज्ञान से सम्बन्धित अनेक महत्वपूर्ण ग्रन्थों की रचना की गई। **भास्कराचार्य ने** नक्षत्र विज्ञान पर **'सिद्धान्त शिरोमणि'** लिखा। चिकित्सा पर **बाणभट्ट ने 'अष्टांग संग्रह', माधव ने 'माधवनिदान'** तथा **चक्रपाणिदत ने 'चिकित्सा संग्रह'** नामक ग्रन्थों की रचना की।

(vii) दर्शन– राजपूत काल में दर्शन से सम्बन्धित ग्रन्थों की भी रचना की गई। इस काल में **हेमचन्द्र ने** जैन दर्शन पर **'प्रमाण मीमांसा', धर्म कीर्ति** ने बौद्ध दर्शन पर **'न्यायबिन्दु', श्रीधर** ने **वैशेषिक दर्शन** पर तथा **वाचस्पति मिश्र** ने **सांख्य दर्शन** पर ग्रन्थ लिखे।

(viii) व्याकरण तथा कोशग्रन्थ– राजपूत काल में अनेक व्याकरण तथा कोशग्रन्थों की रचना हुई। व्याकरण ग्रन्थों में **हरदत्त** की **'पदमंजरी' जयदित्य** की **'काशिकवृत्ति'** तथा **कक्ष्यप** की **'बालवबोध'** प्रसिद्ध हैं। कोशग्रन्थों में **हेमचन्द्र का 'अभिधान चिन्तामणि'** तथा **यादव भट्ट** का **'वैजयन्ती'** प्रसिद्ध हैं।

कला का क्षेत्र– कला के क्षेत्र में राजपूतों का बहुत महत्वपूर्ण स्थान रहा है–

(i) मूर्तिकला– राजपूत काल में मूर्ति निर्माण कला भी अपनी उन्नति के शिखर पर थी। इस काल में मिट्टी, पत्थर तथा विभिन्न प्रकार के धातुओं की मूर्तियाँ बनाई गईं। इनमें से अनेक मूर्तियाँ अपनी सौन्दर्य कला के लिए विश्वविख्यात हैं। राजपूत काल में शिव, विष्णु, इन्द्र, ब्रह्मा, कार्तिकेय, अग्नि, सूर्य, गणेश आदि देवताओं तथा दुर्गा, लक्ष्मी, पार्वती,चण्डी, शीतला, काली तथा उमा आदि देवियों की बहुसंख्या में मूर्तियाँ बनाई गईं। इसके अतिरिक्त, जैन तीर्थंकरों, महात्मा बुद्ध तथा बोद्धिसत्वों की भी मूर्तियाँ बनाई गईं । इनके अतिरिक्त, नर्तक, नर्तकियों, शासकों, सामन्तों, साधारण स्त्री–पुरुषों, पशु–पक्षियों आदि की भी भव्य मूर्तियाँ बनाई गईं। राजपूत काल की सर्वोत्तम मूर्तियाँ मध्य प्रदेश के खजुराहो मन्दिरों, उड़ीसा के पुरी, भुवनेश्वर तथा कोणार्क के मन्दिरों, एवं राजस्थान के दिलवाड़ा मन्दिरों में आज भी देखी जा सकती हैं। ये मूर्तियाँ अपनी कोमलता, भाव प्रदर्शन तथा सजीवता में अद्वितीय हैं।

(ii) भवन–निर्माण कला– राजपूत काल भवन–निर्माण कला के क्षेत्र में भारत के इतिहास का सबसे शानदार युग था। इस काल में अनेक विशाल दुर्ग तथा महल बनाए गए। इन्हें पहाड़ियों के बीच अथवा सुन्दर कृत्रिम झीलों के किनारों पर बनाया जाता था। इनमें चित्तौड़, रणथम्भौर, कालिंजर तथा जोधपुर के दुर्ग तथा ग्वालियर, जयपुर एवं उदयपुर के महल विशेष

रूप से उल्लेखनीय हैं। राजपूत काल में विशेष रूप से मन्दिर निर्माण कला का विकास हुआ। इस काल में **नागर शैली** के अनुसार मन्दिरों का निर्माण किया गया।

राजपूत काल में जिन प्रसिद्ध मन्दिरों का निर्माण हुआ उनमें **खजुराहो** (मध्य प्रदेश) में निर्मित मन्दिर सर्वाधिक प्रसिद्ध हैं। यहाँ **नागर शैली** के 85 मन्दिरों का निर्माण किया गया था। इनमें से अब 20 ही बचे हैं। इन मन्दिरों का निर्माण 10वीं तथा 11वीं शताब्दी में चन्देल शासकों द्वारा किया गया था। ये मन्दिर शिव, विष्णु तथा जैन तीर्थंकरों को समर्पित हैं। खजुराहों के मन्दिरों में **कन्दरिया महादेव मन्दिर** अपनी उत्कृष्ट कला के कारण सर्वाधिक प्रसिद्ध है। इस मन्दिर में 900 से अधिक अति सुन्दर मूर्तियों का निर्माण किया गया है।

राजपूत काल में **भुवनेश्वर** (उड़ीसा)में अनेक मन्दिरों का निर्माण किया गया। इस कारण भुवनेश्वर को **मन्दिरों का नगर** भी कहा जाता है। इन मन्दिरों में **लिंगराज, मुक्तेश्वर तथा राजरानी के मन्दिर** अपनी उच्च कोटि की कला के कारण प्रसिद्ध हैं। इन मन्दिरों को गंग शासकों ने 10वीं से 13वीं शताब्दी के मध्य बनाया था। **कोणार्क** (उड़ीसा) का **सूर्य मन्दिर** तथा **पुरी** का **जगन्नाथ मन्दिर** भी अपनी उत्तम कला के कारण आकर्षण का केन्द्र हैं।

राजस्थान के **आबू पर्वत** पर बने **दिलवाड़ा मन्दिरों की कला** को देखकर व्यक्ति चकित रह जाता है। इन मन्दिरों का निर्माण गुजरात के सोलंकी वंश के शासकों ने 11वीं से 13वीं शताब्दी के मध्य किया। यहाँ कुल पाँच मन्दिरों का निर्माण किया गया है जो जैन तीर्थंकरों को समर्पित हैं। ये सभी मन्दिर सफेद संगमरमर से बने हैं। इनकी मेहराबदार छत, स्तम्भ तथा गुम्बद अत्यन्त सुन्दर हैं।

ग्वालियर में निर्मित सास—बहू मन्दिर तथा तेली मन्दिर, उदयपुर में नीलकण्ठ मन्दिर, कलचुरी में चौंसठ योगिनी मन्दिर, उज्जैन का महाकालेश्वर मन्दिर, चित्तौड़गढ़ में कालिका माता का मन्दिर, जोधपुर के समीप निर्मित सूर्य मन्दिर, कुम्भरियों में सोमनाथ तथा पार्श्वनाथ मन्दिर, गुजरात के बड़नगर में निर्मित श्री कृष्ण मन्दिर तथा मोढेरा का सूर्य मन्दिर, कांगडा में निर्मित मसरुर मन्दिर, बैजनाथ तथा सिद्धनाथ के मन्दिर, कश्मीर में निर्मित मार्तण्ड मन्दिर, शंकराचार्य मन्दिर, शिव तथा विष्णु मन्दिर राजपूत कला के अहम उदाहरण हैं।

(iii) चित्रकला– राजपूत काल में चित्रकला के क्षेत्र में भी अभूतपूर्व विकास हुआ। इस काल में चित्रकला के प्रसिद्ध केन्द्र मेवाड़, जयपुर, जोधपुर, बीकानेर, बूंदी, कटोच, कृष्णगढ़, बसोली, कांगड़ा, गुलेर, गढ़वाल, जम्मू, नूरपुर, चम्बा, मण्डी तथा बिलासपुर थे। इस काल की चित्रकला की प्रमुख विशेषताएँ निम्नाकित हैं—

(क) चित्रों में चटकीले रंगों का प्रयोग किया गया है।
(ख) इस काल की चित्रकला का मुख्य विषय राधा तथा कृष्ण का प्रेम है।
(ग) इस काल की चित्रकला जनजीवन का प्रतिनिधित्व करती है।
(घ) इस काल में राजा, मन्त्रियों तथा सामन्तों के भी चित्र बनाए गए हैं।
(ड) इस काल में प्रकृति, वृक्षों, नदियों, पहाड़ों, पशुओं तथा पक्षियों का भी चित्रण किया गया।

❖ **मानचित्र सम्बन्धी अभ्यास कार्य**

अध्यापक की सहायता से विद्यार्थी स्वयं करें।

❖ **प्रोजेक्ट कार्य**

अध्यापक की सहायता से विद्यार्थी स्वयं करें।

12 दक्षिण भारत के प्रमुख राजवंश

(सांस्कृतिक उपलब्धियाँ)

अभ्यास

❖ **बहुविकल्पीय प्रश्न**

उ०– बहुविकल्पीय प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्य पुस्तक के पृष्ठ संख्या—107 का अवलोकन कीजिए।

❖ **अतिलघु उत्तरीय प्रश्न**

उ०– अतिलघु उत्तरीय प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्य पुस्तक के पृष्ठ संख्या—108 का अवलोकन कीजिए।

❖ **लघु उत्तरीय प्रश्न**

1. दक्षिण भारत का संक्षिप्त परिचय दीजिए।

उ०– दक्षिण भारत में विंध्याचल पर्वत से लेकर दक्षिण में कन्याकुमारी तक का भू—भाग आता है। दक्षिण भारत को 'दक्कन' भी कहते हैं। राजपूत काल में इस भाग को दक्षिणापथ के नाम से भी जाना जाता है। इस भू—भाग के पूर्व में बंगाल की खाड़ी, पश्चिम में अरब सागर तथा दक्षिण में हिन्द महासागर है। दक्षिण भारत को राजनीतिक दृष्टि से दो भागों में विभाजित किया गया है–दक्षिणापथ (कृष्णा नदी के उत्तर का क्षेत्र) व सुदूर दक्षिण (कृष्णा नदी से दक्षिण का क्षेत्र) इन क्षेत्रों में विभिन्न राजवंशों का शासन रहा है।

2. चोल साम्राज्य के किन्हीं दो शासकों का परिचय दीजिए।

उ०– चोल साम्राज्य के दो शासकों का परिचय निम्नवत है–

(i) करिकाल– प्रारम्भिक चोल शासकों में करिकाल सर्वाधिक विख्यात शासक था। उसका शासनकाल द्वितीय शताब्दी में माना जाता है। वह एक शक्तिशाली तथा महत्वाकांक्षी शासक था। उसने **पुहार (कावेरीपट्टनम)** को अपने राज्य की राजधानी घोषित किया। करिकाल ने **वेण्णि** पर आक्रमण करके संघ की संयुक्त सेनाओं को कड़ी पराजय दी। एक अन्य महत्वपूर्ण लड़ाई जो **वाहैप्परन्दलै** में हुई करिकाल ने 9 अन्य छोटे शासकों के एक संघ को परास्त किया। करिकाल की विजयों से आतंकित होकर एयिनार, ओलियार तथा अरुवालर के शासकों ने उसकी अधीनता स्वीकार कर ली। उसके शासनकाल की सबसे महत्वपूर्ण घटना श्रीलंका की विजय थी। एक महान विजेता होने के साथ-साथ करिकाल एक कुशल प्रबन्धक भी था। उसने कृषि तथा व्यापार को प्रोत्साहन दिया। उसने जनहित के लिए अनेक कार्य भी किए। वह वैदिक धर्म में विश्वास रखता था।

(ii) विजयालय 850–871 ई०– 9वीं शताब्दी के मध्य चोल वंश का पुन: उत्कर्ष हुआ। इसका श्रेय चोल शासक विजयालय को जाता है। उसने 850 ई० से 871 ई० तक शासन किया। वह पल्लवों का सामन्त था। उसने पल्लवों और पाण्डयों के मध्य चलने वाले संघर्ष का लाभ उठाकर **तंजौर** पर अपना अधिकार कर लिया तथा उसे अपने राज्य की राजधानी घोषित किया। विजयालय ने तंजौर में दुर्गा का एक मन्दिर बनवाया । इस प्रकार विजयालय ने चोल वंश की पुन: प्रतिष्ठा स्थापित की।

3. पल्लव वंश की उत्पत्ति किस प्रकार हुई ?

उ०– पल्लव वंश प्राचीन दक्षिण भारत का राजवंश था। पल्लवों की उत्पत्ति के विषय में कोई स्पष्ट उल्लेख नहीं हैं। पल्लव वंश की उत्पत्ति में अनेक तत्वों का योगदान था। उनमें उत्तर भारत के कायस्थ और स्थानीय नागवंश का सम्मिश्रण था। संभवत: पल्लव प्रारम्भ में सात वाहनों के सामन्त थे। उन्होने कांची प्रदेश नागों से लिया होगा। बाद के कुछ अभिलेखों में पल्लव राजवंश की उत्पत्ति गूर्जरों और भारद्वाज से बताई गई। सिंहविष्णु को पल्लव वंश का वास्तविक संस्थापक माना जाता है। उसने छठी शताब्दी में 25 वर्षों तक शासन किया।

4. तीन पल्लव शासकों का संक्षिप्त परिचय दीजिए।

उ०– तीन पल्लव शासकों का संक्षिप्त परिचय निम्नवत है—

(i) सिंहविष्णु 575–600 ई०– सिंहविष्णु को पल्लव वंश का **वास्तविक संस्थापक** माना जाता है। उसने 575 ई० से 600 ई० तक शासन किया। वह एक महान विजेता सिद्ध हुआ। उसने चोलों को पराजित करके उनके महत्वपूर्ण प्रदेश चोलमण्डलम पर अधिकार कर लिया। इसके अतिरिक्त उसने पाण्ड्यों, कलभ्रों, मालवों तथा केरलों के शासकों को पराजित करके अपने राज्य का विस्तार किया। उसने मामल्लपुरम में आदिविराह मन्दिर का निर्माण करवाया। इस मन्दिर में सिंहविष्णु सहित उसकी दो रानियों की उत्कृष्ट मूर्तियाँ उत्कीर्ण हैं। उसके दरबारी कवि **भारवि** ने संस्कृत में **किरातार्जुनीय** नामक प्रसिद्ध ग्रन्थ की रचना कर सिंहविष्णु के नाम को इतिहास में अमर बना दिया। सिंह विष्णु वैष्णव धर्म का अनुयायी था।

(ii) महेन्द्रवर्मन प्रथम 600–640 ई०– 600 ई० में सिंहविष्णु की मृत्यु के बाद उसका पुत्र महेन्द्रवर्मन प्रथम कांची के सिहांसन पर बैठा। उसने 640 ई० तक शासन किया। वह पल्लव वंश का सर्वाधिक शक्तिशाली एवं विख्यात शासक था। उसके शासनकाल में पल्लवों तथा चालुक्यों में दक्षिण में सर्वोच्चता के लिए दीर्घकालिक संघर्ष आरम्भ हो गया। महेन्द्रवर्मन प्रथम एक उच्च कोटि का नाटककार तथा कवि था। उसने **मत्तविलास प्रहसन** नामक प्रसिद्ध ग्रन्थ की रचना की। उसने साहित्य, संगीतकला तथा चित्रकला को खूब प्रोत्साहन दिया। उसके शासनकाल में भवन-निर्माण कला के क्षेत्र में अद्वितीय उन्नति हुई। उसने तिरुचिरापल्ली, महेन्द्रवाड़ी पल्लवर्म, दलवानूर आदि स्थानों पर अनेक भव्य मन्दिरों का निर्माण करवाया। इन मन्दिरों की विशेषता यह थी कि इन्हें चट्टानों से बनाया गया था तथा इनमें ईंटों, चूने, धातु तथा लकड़ी का प्रयोग नहीं किया गया। महेन्द्रवर्मन प्रारम्भ में जैन धर्म का अनुयायी था। बाद में वह शिव का उपासक बन गया था।

(iii) नरसिंहवर्मन प्रथम 640–668 ई०– महेन्द्रवर्मन प्रथम के बाद उसका पुत्र नरसिंहवर्मन प्रथम सिंहासनरूढ़ हुआ। उसने 640ई० से 668 ई० तक शासन किया। वह अपने पिता से भी अधिक विजेता तथा कुशल प्रशासक सिद्ध हुआ। उसने पल्लवों, चोल, चेर, पाण्ड्य, कलभ्रों तथा श्रीलंका के शासकों को पराजित करके पल्लव साम्राज्य की सीमाओं में वृद्धि की। नरसिंहवर्मन प्रथम महान कला प्रेमी भी था। उसने महाबलिपुरम् नामक एक नए नगर की स्थापना की। इस नगर में उसने अनेक मन्दिरों की स्थापना की। इसमें उसके द्वारा चट्टानों से निर्मित सात रथ मन्दिर अपनी उत्कृष्ट कला के कारण सुविख्यात हैं।

5. शैली के आधार पर पल्लवों द्वारा निर्मित मन्दिरों के विभाजन को स्पष्ट कीजिए।

उ०– शैली के आधार पर पल्लवों द्वारा निर्मित मन्दिरों को चार भागों मे विभक्त किया गया है—

(i) महेन्द्र शैली– महेन्द्रवर्मन के शासनकाल (600–640 ई०) में एक विशिष्ट मन्दिर निर्माण शैली का उदय हुआ जिसे उसी के नाम पर **'महेन्द्रशैली'** कहा जाता है। ऐसे मन्दिर महेन्द्रवाड़ी, तिरूचिरापल्ली, दलवानूर, पल्लवर्म, भौरवकौंडा, मंमदौर आदि स्थानों पर बनाए गए। ये मन्दिर चट्टानों को काटकर बनाए गए हैं। इन मन्दिरों की मुख्य विशेषता उनके भीतर बने स्तम्भ हैं। ये स्तम्भ चोकोर भी हैं तथा त्रिकोण भी । इन स्तम्भों को कमल के फूल और शेरों की मूर्तियों से अलंकृत किया गया है। मन्दिरों के द्वार पर द्वारपालों तथा खिड़कियों के अगल—बगल गन्धर्व की भव्य मूर्तियों का निर्माण किया गया है।

(ii) नरसिंह शैली– नरसिंह प्रथम के शासनकाल (640–668 ई०)में पल्लव निर्माणकला शैली में कुछ महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए— (क) इस काल में जिन मन्दिरों का निर्माण हुआ उनके स्तम्भ महेन्द्रशैली के भारी-भरकम स्तम्भों की अपेक्षा अधिक आकर्षक, पतले एवं लम्बे हैं। (ख) इस काल में राजा-रानियों की अति सुन्दर मूर्तियों को मन्दिरों में रखा गया। (ग) इस काल में सात **रथ–मन्दिरों** का निर्माण किया गया। इन्हें महाबलिपुरम में चट्टानों को काटकर बनाया गया है।

(iii) राजसिंह शैली– इस शैली का प्रारम्भ नरसिंहवर्मन द्वितीय राजसिंह के शासनकाल (695–722 ई०)में हुआ था। इस शैली में निर्मित मन्दिरों में महाबलिपुरम का समुद्रतटीय मन्दिर, कांची का कैलाशनाथ मन्दिर तथा बैंकुंठपेरुमाल मन्दिर अपनी उत्कृष्ठ कला के कारण विख्यात हैं। महाबलिपुरम मन्दिर के रथों में देवी—देवताओं तथा स्त्री—पुरुषों की मूर्तियाँ दर्शनीय हैं। इस मन्दिर में निर्मित रथ **'सप्त पैगोडा'** के नाम से विश्वविख्यात हैं। इस शैली की प्रमुख विशेषता मण्डप के सुदृढ़ स्तम्भ, चहारदीवारी, सिंह स्तम्भ आदि हैं।

(iv) अपराजित शैली– इस शैली का प्रारम्भ पल्लव शासक अपराजित वर्मन ने अपने शासनकाल (879–897 ई०) में आरम्भ किया था। इस काल में निर्मित मन्दिरों में मुक्तेश्वर, मतंगेश्वर, वीराट्टनेश्वर और परमेश्वर नामक मन्दिर अपनी कला के कारण प्रसिद्ध हैं। इन मन्दिरों के शिखर अति सुन्दर हैं। इन मन्दिरों के द्वार पर चार भुजाओं वाले द्वारपाल बनाए गए हैं।

❖ विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

1. चोल वंश के उद्गम को समझाइए।

उ०– चोल वंश का उद्गम–

चोल प्राचीन भारत का एक राजवंश था। चोल शब्द की व्युत्पत्ति विभिन्न प्रकार से की जाती रही है। कर्नल जेरिनों ने चोल शब्द को संस्कृत 'काल' एवं 'कोल' से संबद्ध करते हुए इसे दक्षिण भारत के कृष्णवर्ण आर्य समुदाय का सूचक माना है। चोल शब्द को संस्कृत 'चोर' तथा तमिल 'चोलम्' से भी संबद्ध किया गया है किन्तु इनमें से कोई मत ठीक नहीं है। आरम्भिक काल से ही चोल शब्द का प्रयोग इसी नाम के राजवंश द्वारा शासित प्रजा और भूभाग के लिए व्यवहृत होता रहा है। संगमयुगीन **मणिमेक्लै** में चोलों को सूर्यवंशी कहा है। चोलों के अनेक प्रचलित नामों में शेंबियन् भी है। शेंबियन् के आधार पर उन्हें शिबि से उद्भूत सिद्ध करते हैं। 12वीं सदी के अनेक स्थानीय राजवंश अपने को करिकाल से उद्भूत कश्यप गोत्रीय बताते हैं। चोलों के उल्लेख अत्यंत प्राचीन काल से ही प्राप्त होने लगते हैं। कात्यायन ने चोलों का उल्लेख किया है। अशोक के अभिलेखों में भी इसका उल्लेख उपलब्ध है। किन्तु इन्होंने संगमयुग में ही दक्षिण भारतीय इतिहास को संभवत: प्रथम बार प्रभावित किया। संगमकाल के अनेक महत्वपूर्ण चोल सम्राटों में **करिकाल** अत्यधिक प्रसिद्ध हुए। संगमयुग के पश्चात् का चोल इतिहास अज्ञात है। फिर भी चोल—वंश—परंपरा एकदम समाप्त नहीं हुई थी क्योंकि रेनंडु (जिला कुडाया) प्रदेश में चोल पल्लवों, चालुक्यों तथा राष्ट्रकूटों के अधीन शासन करते रहे।

नवीं सदी के मध्य से चोलों का पुनरुत्थान हुआ। इस चोल वंश का संस्थापक विजयालय (850–870 ई०) पल्लव अधीनता में उरैयुर प्रदेश का शासक था। विजयालय की वंश परम्परा में लगभग 20 राजा हुए, जिन्होंने कुल मिलाकर चार सौ से अधिक वर्षों तक शासन किया। विजयालय के पश्चात् आदित्य प्रथम (871–907 ई०), परान्तक प्रथम (907—955 ई०) ने क्रमश: शासन किया। परान्तक प्रथम ने पांड्य-सिंहल नरेशों की सम्मिलित शक्ति को, पल्लवों, बाणों, बैडुंबों के अतिरिक्त राष्ट्रकूट कृष्ण द्वितीय को भी पराजित किया। चोल शक्ति एवं साम्राज्य का वास्तविक संस्थापक परान्तक ही था। उसने लंकापति उदय (945—53 ई०) के समय सिंहल पर भी एक असफल आक्रमण किया। परान्तक अपने अंतिम दिनों में राष्ट्रकूट सम्राट कृष्ण तृतीय द्वारा 949 ई० में बड़ी बुरी तरह पराजित हुआ। इस पराजय के फलस्वरूप चोल साम्राज्य की नींव हिल गई।

परान्तक प्रथम के बाद के 32 वर्षों में अनेक चोल राजाओं ने शासन किया। इनमें गंडरादित्य, अरिंजय और सुंदर चोल या परान्तक द्वितीय प्रमुख रहे।

इसके पश्चात् राजराज प्रथम (985—1014 ई०) ने चोल वंश की प्रसारनीति को आगे बढ़ाते हुए अपनी अनेक विजयों द्वारा अपने वंश की मर्यादा को पुन: प्रतिष्ठित किया। उसने सर्वप्रथम पश्चिमी गंगों को पराजित कर उनका प्रदेश छीन लिया। तदन्तर पश्चिमी चालुक्यों से उनका दीर्घकालिक परिणामहीन युद्ध आरंभ हुआ। इसके विपरीत राजराज को सुदूर दक्षिण में आशातीत सफलता मिली। उन्होंने केरल नरेश को पराजित किया। पांड्यों को पराजित कर मदुरै और कुर्ग में स्थित उद्गै अधिकृत कर

लिया। यही नहीं, राजराज ने सिंहल पर आक्रमण करके उत्तरी प्रदेशों को अपने राज्य में मिला लिया।

राजराज ने पूर्वी चालुक्यों पर आक्रमण कर वेंगी को जीत लिया। किन्तु इसके बाद पूर्वी चालुक्य सिंहासन पर उन्होंने शक्तिवर्मन को प्रतिष्ठित किया और अपनी पुत्री कुंदवा का विवाह शक्तिवर्मन के लघु भ्राता विमलादित्य से किया। इस समय कलिंग के गंग राजा भी वेंगी पर दृष्टि गड़ाए थे, राजराज ने उन्हें भी पराजित किया।

राजराज के बाद उनके पुत्र **राजेंद्र प्रथम** (1012—1044 ई०) सिंहासनारूढ़ हुए। राजेंद्र प्रथम भी अत्यंत शक्तिशाली सम्राट थे। राजेंद्र ने चेर, पांड्य एवं सिंहल जीता तथा उन्हें अपने राज्य में मिला लिया। उन्होंने पश्चिमी चालुक्यों को कई युद्धों में पराजित किया, उनकी राजधानी को ध्वस्त किया किंतु उन पर पूर्ण विजय न प्राप्त कर सके। राजेंद्र के दो अन्य सैनिक अभियान अत्यंत उल्लेखनीय है। उनका प्रथम सैनिक अभियान पूर्वी समुद्रतट से कलिंग, उड़ीसा, दक्षिण कौशल आदि के राजाओं को पराजित करता हुआ बंगाल के विरुद्ध हुआ। उन्होंने पश्चिम एवं दक्षिण बंगाल के तीन छोटे राजाओं को पराजित करने के साथ-साथ शक्तिशाली पाल राजा महीपाल को भी पराजित किया। इस अभियान का कारण अभिलेखों के अनुसार गंगाजल प्राप्त करना था। यह भी ज्ञात होता है कि पराजित राजाओं को यह जल अपने सिरों पर ढोना पड़ा था। किंतु यह मात्र आक्रमण था, इससे चोल साम्राज्य की सीमाओं पर कोई असर नहीं पड़ा।

राजेंद्र का दूसरा महत्वपूर्ण आक्रमण मलयद्वीप, जावा और सुमात्रा के शैलेन्द्र शासन के विरुद्ध हुआ। यह पूर्ण रूप से नौसैनिक आक्रमण था। शैलेन्द्र साम्राटों का राजराज से मैत्रीपूर्ण व्यवहार था किंतु राजेंद्र के साथ उनकी शत्रुता का कारण अज्ञात है। राजेंद्र को इसमें सफलता मिली। राजराज की भाँति राजेंद्र ने भी एक राजदूत चीन भेजा।

2. पल्लव वंश के विकास को स्पष्ट करते हुए इसकी सभ्यता और संस्कृति पर प्रकाश डालिए।

उ०– पल्लव वंश का इतिहास बहुत प्राचीन है। इस वंश की स्थापना सिंह वर्मन ने सम्भवत: 275 ई० में दक्षिण भारत में कांचीवरम् नामक स्थान पर की। प्रारम्भिक पल्लव-शासकों के नाम शिवस्कन्दवर्मन, स्कन्दवर्मन, बुद्धवर्मन, तथा विष्णुगोप आदि थे। इन शासकों के सम्बन्ध में कोई निश्चित जानकारी प्राप्त नहीं है। छठी शताब्दी के अन्त में पल्लव इतिहास का सबसे गौरवपूर्ण युग आरम्भ हुआ। पल्लव वंश के इतिहास के विकास में निम्नलिखित शासकों का उल्लेखनीय योगदान रहा।

(i) सिंहविष्णु 575–600 ई०– सिंहविष्णु को पल्लव वंश का **वास्तविक संस्थापक** माना जाता है। उसने 575 ई० से 600 ई० तक शासन किया। वह एक महान विजेता सिद्ध हुआ। उसने चोलों को पराजित करके उनके महत्वपूर्ण प्रदेश चोलमण्डलम पर अधिकार कर लिया। इसके अतिरिक्त उसने पाण्ड्यों, कलभ्रों, मालवों तथा केरलों के शासकों को पराजित करके अपने राज्य का विस्तार किया। उसने मामल्लपुरम में आदिविराह मन्दिर का निर्माण करवाया। इस मन्दिर में सिंहविष्णु सहित उसकी दो रानियों की उत्कृष्ठ मूर्तियाँ उत्कीर्ण हैं। उसके दरबारी कवि **भारवि** ने संस्कृत में **किरातार्जुनीय** नामक प्रसिद्ध ग्रन्थ की रचना कर सिंहविष्णु के नाम को इतिहास में अमर बना दिया। सिंह विष्णु वैष्णव धर्म का अनुयायी था।

(ii) महेन्द्रवर्मन प्रथम 600–640 ई०– 600 ई० में सिंहविष्णु की मृत्यु के बाद उसका पुत्र महेन्द्रवर्मन प्रथम कांची के सिहांसन पर बैठा। उसने 640 ई० तक शासन किया। वह पल्लव वंश का सर्वाधिक शक्तिशाली एवं विख्यात शासक था। उसके शासनकाल में पल्लवों तथा चालुक्यों में दक्षिण में सर्वोच्चता के लिए दीर्घकालिक संघर्ष आरम्भ हो गया। महेन्द्रवर्मन प्रथम एक उच्च कोटि का नाटककार तथा कवि था। उसने **मत्तविलास प्रहसन** नामक प्रसिद्ध ग्रन्थ की रचना की। उसने साहित्य, संगीतकला तथा चित्रकला को खूब प्रोत्साहन दिया। उसके शासनकाल में भवन-निर्माण कला के क्षेत्र में अद्वितीय उन्नति हुई। उसने तिरुचिरापल्ली, महेन्द्रवाड़ी पल्लवर्म, दलवानूर आदि स्थानों पर अनेक भव्य मन्दिरों का निर्माण करवाया। इन मन्दिरों की विशेषता यह थी कि इन्हें चट्टानों से बनाया गया था तथा इनमें ईंटों, चूने, धातु तथा लकड़ी का प्रयोग नहीं किया गया। महेन्द्रवर्मन प्रारम्भ में जैन धर्म का अनुयायी था। बाद में वह शिव का उपासक बन गया था।

(iii) नरसिंहवर्मन प्रथम 640–668 ई०– महेन्द्रवर्मन प्रथम के बाद उसका पुत्र नरसिंहवर्मन प्रथम सिंहासनरूढ़ हुआ। उसने 640ई० से 668 ई० तक शासन किया। वह अपने पिता से भी अधिक विजेता तथा कुशल प्रशासक सिद्ध हुआ। उसने पल्लवों, चोल, चेर, पाण्ड्य, कलभ्रों तथा श्रीलंका के शासकों को पराजित करके पल्लव साम्राज्य की सीमाओं में वृद्धि की। नरसिंहवर्मन प्रथम महान कला प्रेमी भी था। उसने महाबलिपुरम् नामक एक नए नगर की स्थापना की। इस नगर में उसने अनेक मन्दिरों की स्थापना की। इसमें उसके द्वारा चट्टानों से निर्मित सात रथ मन्दिर अपनी उत्कृष्ट कला के कारण सुविख्यात हैं।

(iv) परमेश्वरवर्मन प्रथम 670—695 ई०— वह महेन्द्रवर्मन द्वितीय का पुत्र था। उसने 670 ई० से 695 ई० तक शासन किया। वह शिव का उपासक था। उसने अपने राज्य में अनेक मन्दिर बनवाए।

(v) नरसिंहवर्मन द्वितीय 695–722 ई०– परमेश्वरवर्मन प्रथम के पुत्र नरसिंहवर्मन द्वितीय ने 695 ई० से 722 ई० तक शासन किया। उसका शासनकाल शान्ति और समृद्धि का काल थी। उसने अनेक भव्य मन्दिरों का निर्माण करवाया। इनमें कांची का कैलाशनाथ मन्दिर तथा महाबलिपुरम् का समुद्रतटीय मन्दिर अपनी अद्वितीय कला तथा सौन्दर्य के कारण आज भी विख्यात है।

उसने अनेक विद्वानों को अपने दरबार में संरक्षण प्रदान किया था। इनमें संस्कृत का महान विद्वान **दण्डिन** सर्वाधिक विख्यात था। उसने **दशकुमार चरित** नामक विख्यात ग्रन्थ की रचना की।

पल्लव वंश की सभ्यता एवं संस्कृति– पल्लव वंश में राज्य का सर्वोच्च अधिकारी राजा होता था। राजा ही कार्यपालिका और नगरपालिका दोनों का अध्यक्ष होता है। इस वंश में शासन व्यवस्था अत्यन्त कुशल थी। पल्लव वंश के शासकों के पास अपार शक्तियाँ थीं। वे इन शक्तियों का प्रयोग प्रजा के विकास एवं कल्याण के लिए करते थे। इनकी शासन व्यवस्था धर्मशास्त्रों के सिद्धान्त पर आधारित थी।

शासन व्यवस्था की कुशलता के लिए साम्राज्य को राष्ट्रों (प्रान्तों), कोट्टमों (जिलों), नाडुओं (तालुकों) तथा ग्रामों में बाँटा गया था। महत्वपूर्ण प्रान्तों की बागड़ोर राजकुमारों के पास होती थी। शासन की सबसे छोटी इकाई ग्राम थी। ग्राम की व्यवस्था के लिए अनेक समितियों का गठन किया गया था। केन्द्रीय शासन का ग्रामों में बहुत कम हस्तक्षेप होता था। इस वंश में आय का मुख्य स्रोत भू—राजस्व था। यही कारण था कि पल्लव शासकों ने कृषि पर विशेष ध्यान दिया था। केवल केन्द्रीय सरकार को ही नमक और चीनी तैयार करने का एकाधिकार था। इसके कारण राज्य को बहुत अच्छी आय होती थी। इस आय को राजा द्वारा सेना, कर्मचारियों और जन-कल्याण के कार्यों पर व्यय किया जाता था। पल्लव वंश के शासक बहुत ही न्याय प्रिय थे। उनके द्वारा प्रजा को निष्पक्ष न्याय देने के लिए अनेक न्यायालयों की स्थापना की गई थी। न्यायालय के न्यायधीशों को **धर्मासन** कहा जाता था। नि:सन्देह पल्लवों की शासन व्यवस्था बहुत कुशल थी।

कुशल शासक होने के साथ—साथ पल्लव शासक महान कला प्रेमी भी थे। कला प्रेमी होने के कारण पल्लवों ने दक्षिण भारत के सांस्कृतिक इतिहास में अपना विशिष्ट स्थान बना लिया था। पल्लवों ने अपने समय में विभिन्न मन्दिरों का निर्माण कराया था। ये मन्दिर पत्थरों, ईंटों तथा चट्टानों का काटकर बनाए जाते थे। इन मन्दिरों की प्रमुख विशेषता इनकी निर्माण शैली है जो कि आज भी आश्चर्य का केन्द्र है।

धार्मिक संस्कृति व शिक्षा– पल्लव काल को हिन्दू धर्म के विकास का काल कहा जाता है। इस काल में कर्मकाण्ड, यज्ञ, मूर्ति—पूजा, अवतारवाद आदि की पराकाष्ठा थी। इस काल में शैव धर्म का बहुत प्रचार—प्रसार था। पल्लव शासकों ने हिन्दू धर्म का समर्थक होते हुए भी बौद्ध तथा जैन धर्म को संरक्षण प्रदान किया था। पल्लव साम्राज्य में अधिकतर लोग शिक्षित थे। शिक्षा-प्रसार का अधिकतर कार्य ब्राह्मण ही करते थे। पल्लवों की राजधानी कांची थी, जोकि शिक्षा का सबसे प्रसिद्ध केन्द्र था। नालन्दा विश्वविद्यालय के प्रसिद्ध आचार्य धर्मपाल, वात्सयायन तथा प्रसिद्ध बौद्ध विद्वान **दिग्नाग** ने कांची विश्वविद्यालय से ही शिक्षा प्राप्त की थी। यहाँ पर संस्कृत अध्ययन पर विशेष ध्यान दिया जाता था। वेद, महाभारत, कालिदास, भारवि और वराहमिहिर के ग्रन्थ पल्लव राज्य में अत्यन्त लोकप्रिय थे। इस काल में तमिल साहित्य का भी पर्याप्त विकास हुआ।

3. चालुक्य वंश पर एक लेख लिखिए।

उ०– **चालुक्य वंश**— चालुक्य वंश के जिन शासकों ने बीजापुर जिलों में स्थित बादामी अथवा वातापी को अपनी राजधानी बना कर शासन किया, वे इतिहास में 'बादामी चालुकय' कहलाए। इस वंश की स्थापना छठी शताब्दी में जय सिंह तथा उसके पुत्र रणराग ने की थी। बादामी के चालुक्य शासकों ने लगभग 200 वर्षो से कुछ अधिक समय तक शासन किया। इस वंश के प्रमुख शासकों का संक्षिप्त वर्णन निम्नलिखित है-

(i) पुलकेशिन प्रथम 535–66 ई०– पुलकेशिन प्रथम को बादामी चालुक्य वंश का **वास्तविक संस्थापक** माना जाता है वह रणराग का पुत्र था। उसने 535 से 566 ई० तक शासन किया। उसने कदम्बों से बादामी को जीतकर अपने राज्य की राजधानी बनाया। उसने यहाँ एक सुदृढ दुर्ग का निर्माण करवाया। पुलकेशिन प्रथम के शासनकाल से चालुक्य वंश की महानता का युग आरम्भ हुआ ।

(ii) किर्तिवर्मन प्रथम 566–97 ई०– पुलकेशिन प्रथम के पश्चात उसका ज्येष्ठ पुत्र किर्तिवर्मन प्रथम 566 ई० में सिंहासन पर बैठा। उसने 597 ई० तक शासन किया। उसने नल, कदम्ब और मौर्य शासकों को पराजित करके चालुक्य राज्य का विस्तार किया।

उसके राज्य में कर्नाटक के धरवाड, बेलगाँव, बीजापुर, बेहलारी तथा शिमोगा जिले, महाराष्ट्र के सीमान्त प्रदेश एवं आन्ध्र के करनूल तथा गुंटुर जिले सम्मिलित थे। उसने बादामी को भव्य भवनों तथा मन्दिरों के निर्माण से अत्यधिक सुन्दर बनाया।

(iii) मंगलेश 597–609 ई०– कीर्तिवर्मान प्रथम के पश्चात् छोटा भाई सिंहासनारूढ़ हुआ। उसने सभी दिशाओं मे चालुक्य राज्य का प्रसार करने का प्रयास किया। उसने सर्वप्रथम कलचूरी शासक वद्धराज को पराजित किया। इसके पश्चात् मंगलेश ने रेवतीद्वीप (गोवा) पर अधिकार किया। वह वैष्णव धर्म का अनुयायी था। उसे अपने शासनकाल के अन्त में ग्रहयुद्ध का सामना करना पड़ा जिसमें मंगलेश मारा गया तथा पुलकेशिन द्वितीय नया शासक बना।

(iv) पुलकेशिन द्वितीय 609–42 ई०– पुलकेशिन द्वितीय चालुक्य वंश का सर्वाधिक शक्तिशाली एवं विख्यात शासक था। उसने 609 ई० से 642 ई० तक शासन किया। उसने एक विस्तृत साम्राज्य की स्थापना की। वह 642 ई० में पल्लव शासक

नरसिंहवर्मन के साथ युद्ध करते हुए मारा गया।

(v) विक्रमादित्य प्रथम 655–81 ई०– पुलकेशिन द्वितीय की मृत्यु के पश्चात् लगभग 13 वर्ष तक चालुक्य साम्राज्य की स्थिति बड़ी डावाँडोल रही। ऐसे नाजुक समय में विक्रमादित्य, जो पुलकेशिन का तीसरा पुत्र था, ने बहुत साहस से काम लिया। उसने 655 ई० में अपने शासक होने की घोषणा की। उसने 681 ई० तक शासन किया। उसने अपने पिता पुलकेशिन द्वितीय की पल्लवों के हाथों हुई पराजय का प्रतिशोध लिया। इसके अतिरिक्त उसने पाण्ड्य, चोल, चेर और कलभ्रों को पराजित करके उनके अनेक प्रदेशों पर अधिकार कर लिया। वह शिव भक्त था। वह ब्राह्मणों और मन्दिरों को दान देने के लिए प्रसिद्ध था। उसके शासनकाल में शिव के दो विशाल मन्दिर बनवाए गए।

(vi) विनयादित्य 681–696 ई०– विक्रमादित्य की मृत्यु के बाद उसका पुत्र 681 ई० में सिंहासन पर बैठा। उसने 696 ई० तक शासन किया। वह अपने पिता की तरह महान था। उसने पल्लवों, चोलों, पाण्ड्यों, कलभ्रों, केरलों, मालवों तथा हैहयों को पराजित किया। उसने उत्तरी भारत पर आक्रमण करके सकलोतरपथनाथ को पराजित किया।

696 ई० में विनयादित्य की मृत्यु के बाद उसका पुत्र विजयादित्य राजगद्दी पर बैठा। उसने 732 ई० तक शासन किया। उसके बाद उसके पुत्र विक्रमादित्य द्वितीय ने 733 ई० से 744 ई० तक शासन किया। कीर्तिवर्मन द्वितीय बादामी ने चालुक्य वंश का अन्तिम शासक था। उसने 744 ई० से 757 ई० तक शासन किया। वह 757 ई० में कृष्ण प्रथम के साथ युद्ध में मारा गया। इस प्रकार बादामी के चालुक्य वंश का अन्त हो गया।

चालुक्यों की सभ्यता तथा संस्कृति

चालुक्य राजाओं की सभ्यता एवं संस्कृति विवरण नीचे प्रस्तुत है–

(i) राजनीतिक दशा– चालुक्यों की शासन—व्यवस्था में **राजा** ही शासन का मूल आधार होता था। राजा का पद **वंशानुगत** होता था। शासन सम्बन्धी कार्यों में राजा की सहायता हेतु एक **मन्त्रिपरिषद्** का गठन किया जाता था। सामान्यता मन्त्रिपरिषद् के सदस्यों की सलाह से ही राजा शासन कार्यों को सम्पन्न करता था। वैसे राजा स्वेच्छाचारी तथा निरंकुश होता था। राज्य की समस्त शक्तियां राजा में ही निहित होती थीं। वह सेनाओं का प्रधान तथा न्याय का सर्वोच्च अधिकारी होता था। स्वेच्छाचारी होने के बावजूद राजा प्रजा के हितों पर उचित ध्यान देता था।

(ii) सामाजिक दशा– चालुक्यों के शासनकाल में अनेक नई जातियों तथा उप-जातियों का प्रादुर्भाव हो गया था। इसके परिणामस्वरूप तत्कालीन-समाज संकीर्ण विचारों से ग्रस्त हो गया था। समाज में नैतिकता का निरन्तर ह्रास हो रहा था। **बाल विवाह** तथा **सती प्रथा** का प्रचलन था, परिणामस्वरूप स्त्रियों की स्थिति सम्मानजनक नहीं थी।

(iii) आर्थिक दशा– आर्थिक दृष्टि से चालुक्य काल को उत्तम माना जाता है। उन दिनों **कृषि** तथा **व्यापार** उन्नति की ओर अग्रसर थे। राज्य से व्यापर को संरक्षण प्राप्त था। व्यापार के विकास तथा विस्तार हेतु मण्डियों तथा बंदरगाहों की व्यवस्था की गई थी जिससे आन्तरिक तथा विदेशी दोनों प्रकार के व्यापार का पर्याप्त विकास हुआ।

(iv) धार्मिक दशा– चालुक्यों के शासनकाल में ब्राह्मण की विशेष उन्नति हुई। स्वयं चालुक्य ब्राह्मण धर्म के अनुयायी थे। धार्मिक जीवन में विष्णु का अधिक महत्व था। इस काल में बादामी, पट्टदकल, ऐहोल आदि स्थानों पर अनेक देवी-देवताओं के मन्दिरों का निर्माण किया गया।

चालुक्य नरेश अन्य धर्मों के प्रति सहिष्णु थे। राज्य की ओर से **बौद्ध** तथा **जैन धर्मों** को संरक्षण प्रदान किया जाता था। परिणामस्वरूप दक्षिण में जैन धर्म का पर्याप्त विस्तार हुआ।

(v) साहित्य एवं कला– चालुक्य राजा विद्या तथा कला के महान प्रेमी थे। वे विद्वानों तथा कलाकारों को आश्रय प्रदान करते थे। **देहोल, पट्टदकल** तथा **बादामी** इस काल के मुख्य कला केन्द्र थे। बादामी में वास्तुकला (architecture) को विशेष महत्व दिया गया था। मन्दिरों के निर्माण में आर्य एवं द्रविड़ दोनों शैलियों को अपनाया गया है। कुछ इतिहासकारों के विचार में अजन्ता तथा एलोरा कुछ की गुफाओं का निर्माण चालुक्यों के शासनकाल में किया गया था।

4. राष्ट्रकूट वंश के उदय को बताते हुए इसके प्रशासन, कला और संस्कृति पर प्रकाश डालिए।

उ०– **राष्ट्रकूट वंश का उदय–** राष्ट्रकूट वंश की स्थापना सामन्त दान्तिदुर्ग ने 753 ई० में कीर्तिवर्मन द्वितीय को हराकर की थी। राष्ट्रकूट वंश के प्रारम्भिक शासकों में दन्तिवर्मा, इन्द्र प्रथम, गोविन्द प्रथम, कर्क प्रथम और इन्द्र द्वितीय थे।

इनका शासनकाल लगभग छठी से तेरहवीं शताब्दी के मध्य था। इस काल में उन्होंने परस्पर घनिष्ठ परन्तु स्वतंत्र जातियों के रूप में राज्य किया। उनके ज्ञात प्राचीनतम शिलालेखों में सातवीं शताब्दी का 'राष्ट्रकूट' ताम्रपत्र मुख्य है, जिसमें उल्लिखित है कि, 'मालवा प्रान्त' मानपुर में उनका साम्राज्य था (जोकि आज मध्य प्रदेश राज्य में स्थित है)। इसी काल की अन्य 'राष्ट्रकूट'जातियों में 'अचलपुर' (जो आधुनिक समय में महाराष्ट्र में स्थित एलिच्पुर है), के शासक तथा 'कन्नौज' के शासक भी शामिल थे। इनके मूलस्थान तथा मूल के बारे में कई भ्रांतियाँ प्रचलित हैं। एलिच्पुर में शासन करने वाले 'राष्ट्रकूट' 'बादामी चालुक्यों' उपनिवेश के रूप में स्थापित हुए थे। लेकिन 'दान्तिदुर्ग' के नेतृत्व में उन्होंने चालुक्य शासक 'कीर्तिवर्मन द्वितीय' को

वहाँ से उखाड़ फेंका तथा आधुनिक 'कर्नाटक' प्रान्त के 'गुलबर्ग' को अपना मुख्य स्थान बनाया। यह जाति बाद में 'मान्यखेत के राष्ट्रकूटों' के नाम से विख्यात हो गई, जो 'दक्षिण भारत' में 753 ई० में सत्ता में आई, इसी समय पर बंगाल का 'पाल साम्राज्य' एवं 'गुजरात के प्रतिहार साम्राज्य' भारतीय उपमहाद्वीप के पूर्व और उत्तर-पश्चिम भूभाग पर तेजी से सत्ता में आ रहे थे।
आठवीं से दसवीं शताब्दी के मध्य के काल में गंगा के उपजाऊ मैदानी भाग पर स्थित 'कन्नौज राज्य' पर नियन्त्रण हेतु एक त्रिदलीय संघर्ष चल रहा था, उस वक्त 'कन्नौज' उत्तर भारत की मुख्य सत्ता के रूप में स्थापित था। प्रत्येक साम्राज्य उस पर नियन्त्रण करना चाह रहा था। 'मान्यखेत के राष्ट्रकूटों' की सत्ता के उच्चतम शिखर पर उनका साम्राज्य उत्तर दिशा में 'गंगा' और 'यमुना नदी' पर दोआब से लेकर दक्षिण में कन्याकुमारी तक था। यह उनके राजनीतिक विस्तार, वास्तुकला उपलब्धियों और साहित्यिक योगदान का काल था। इस राजवंश के प्रारम्भिक शासक हिन्दू धर्म के अनुयायी थे, परन्तु बाद में यह राजवंश जैन धर्म के प्रभाव में आ गया था।
प्रशासन– ये संभवत: मूल रूप से द्रविड़ किसान थे, जो लातातापुर (लातूर, उसमानवाद के निकट) के शाही परिवार के थे। ये कन्नड भाषा बोलते थे, लेकिन उन्हें उत्तर—डाककनी भाषा की जानकारी भी थी। अपने शत्रु चालुक्य वंश को पराजित करने वाले राष्ट्रकूट वंश के शासन काल में ही दक्कन साम्राज्य भारत की दूसरी बड़ी राजनीतिक इकाई बन गया, जो मालवा से कांची तक फैला हुआ था। इस काल में राष्ट्रकूटों के महत्व का इस तथ्य से पता चलता है कि एक मुस्लिम यात्री ने यहाँ के राजा को दुनिया के चार महान शासकों में से एक बताया (अन्य शासक खलीफा तथा बाइजंतीया और चीन के सम्राट थे)।
कला और संस्कृति– कई राष्ट्रकूट राजा अध्ययन और कला के प्रति समर्पित थे। दूसरे राजा, कृष्ण प्रथम (लगभग 756 से 773 ई०) ने एलोरा में चट्टान को काटकर कैलाश मंदिर बनवाया, इस राजवंश का प्रसिद्ध शासक अमोघवर्ष प्रथम ने, जिन्होंने लगभग 814 से 878 तक शासन किया, सबसे पुरानी ज्ञात कन्नड कविता **कविराजमार्ग** के कुछ खंडों की रचना की थी। उनके शासन काल के दौरान जैन गणितज्ञों और विद्वानों ने 'कन्नड' व 'संस्कृत' भाषा हेतु महत्वपूर्ण योगदान दिया। उनकी वास्तुकला 'द्रविणन शैली'आज भी मील का पत्थर मानी जाती है, जिसका एक प्रसिद्ध उदाहरण 'एलोरा' का **'कैलाशनाथ मन्दिर'** है। अन्य महत्वपूर्ण योगदानों में 'महाराष्ट्र' में स्थित 'एलीफेंटा गुफाओं' की मूर्तिकला तथा 'कर्णाटक' के 'पतादक्कल' में स्थित 'काशी विश्वनाथ' और 'जैन मन्दिर' आदि आते हैं, यही नहीं यह सभी **'यूनेस्को'** की **वर्ल्ड हेरिटेज साईट** में भी शामिल है।

❖ **मानचित्र सम्बन्धी अभ्यास कार्य**

अध्यापक की सहायता से विद्यार्थी स्वयं करें।

❖ **प्रोजेक्ट कार्य**

अध्यापक की सहायता से विद्यार्थी स्वयं करें।

इकाई-2 (क) : सल्तनतकालीन भारत

13 दिल्ली सल्तनत - स्थापना एवं सुदृढ़ीकरण

(प्रशासनिक उपलब्धियां, समाज एवं संस्कृति)

अभ्यास

❖ **बहुविकल्पीय प्रश्न**

उ०– बहुविकल्पीय प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्य पुस्तक के पृष्ठ संख्या– 116 व 117 का अवलोकन कीजिए।

❖ **अतिलघु उत्तरीय प्रश्न**

उ०– अतिलघु उत्तरीय प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्य पुस्तक के पृष्ठ संख्या–117 का अवलोकन कीजिए।

❖ **लघु उत्तरीय प्रश्न**

1. दिल्ली सल्तनत पर एक संक्षिप्त टिप्पणी कीजिए।

उ०– वो साम्राज्य जिसका शासनतंत्र दिल्ली शहर को राजधानी बनाकर संचालित किया जाता था, उसे 'दिल्ली सल्तनत' की संज्ञा दी गई। कुतुबुद्दीन ऐबक को दिल्ली सल्तनत का संस्थापक माना जाता है जो मौहम्मद गौरी का सेनानायक बनकर भारत आया था। 1206 ई० से 1526 ई० के मध्य भारत में दिल्ली सल्तनत के पाँच राजवंशों ने शासन किया, जिसमें कुतुबुद्दीन ऐबक ने गुलाम वंश की स्थापना की। मुस्लिम सुल्तानों ने दिल्ली को अपने साम्राज्य की राजधानी बनाकर लगभग तीन शताब्दी तक शासन किया। इसलिए भारतीय इतिहास में इस युग को 'सल्तनत युग' और मुस्लिम साम्राज्य को 'दिल्ली सल्तनत' के नाम से सम्बोधित किया जाता है।

2. गुलाम वंश के प्रमुख शासकों का परिचय दीजिए।

उ०– **गुलाम वंश के प्रमुख शासक–** गुलाम वंश के प्रमुख शासक निम्नलिखित थे–

इल्तुतमिश– गुलाम वंश का सबसे योग्य शासक इल्तुतमिश था। इसे ही गुलाम वंश का वास्तविक शासक माना जाता है। खलीफा ने सन् 1229 ई० में इल्तुतमिश को शासन करने का अधिकार पत्र दिया था। इल्तुतमिश दिल्ली सल्तनत का पहला योग्य शासक था। यह बहुत ही कुशल प्रशासक तथा न्यायप्रिय सुल्तान था।

रजिया– रजिया इल्तुतमिश की पुत्री थी। यह विश्व की प्रथम **महिला शासक** थी। रजिया योग्य, साहसी और कार्यकुशल होने के साथ–साथ दूरदर्शी महिला थी। उसका नारीत्व ही उसकी असफलता का कारण था।

बलबन– बलबन कठोर नीति का समर्थक व दैवी सिद्धान्त का अनुयायी था। बलबन गुलाम वंश का सबसे शक्तिशाली शासक था। उसने कठोरतापूर्वक विद्रोहों का दमन करके नवजात मुस्लिम साम्राज्य की रक्षा की।

3. सैय्यद और लोदी वंश को स्पष्ट कीजिए।

उ०– **सैय्यद वंश (1414 ई० से 1451 ई० तक)–** सैय्यद वंश के संस्थापक खिज्र खाँ थे। खिज्र खाँ ने (1414–1421 ई०) तक शासन किया था। खिज्र खाँ के बाद मुबारक खाँ (1421–1434 ई०), मौहम्मदशाह (1434–1445 ई०) तथा आलमशाह (1445–1451 ई०) ने दिल्ली सल्तनत पर शासन किया।

लोदी वंश (1451 ई० से 1526 ई० तक)– लोदी वशं का संस्थापक बहलोल लोदी था। उसने 1415–1489 तक शासन किया। 1489 ई० से 1517 ई० तक सिकन्दर लोदी ने दिल्ली पर शासन किया। इब्राहिम लोदी इस वंश का अन्तिम शासक था। पानीपत के मैदान में इब्राहिम लोदी को बाबर ने पराजित करके मुगल वंश की नींव रखी।

4. सल्तनतकाल के केन्द्रीय शासन के प्रमुख पदों को बताइए।

उ०– सल्तनत काल में प्रशासन का विकेन्द्रीकरण किया गया था। सम्पूर्ण प्रशासन की धुरी स्वयं सुल्तान था। वही शक्ति का स्रोत था। प्रशासन की सुविधा हेतु राज्यों को इक्ता (प्रान्तों में) में, इक्ता को शिकों में तथा परगनों में विभक्त किया गया था। गाँव प्रशासन की सबसे छोटी इकाई थी। सल्तनतकाल के केन्द्रीय शासन के प्रमुख पद निम्नलिखित थे। (i) नायब, (ii) वजीर, (iii) नायब वजीर, (iv) मुशरिक-ए-मुमालिक, (v) मुस्तौकी–ए–मुमालिक, (vi) दीवान–ए–आरिज, (vii) दीवान–ए–इंशा, (viii) दीवान–ए–रसातल, (ix) सद्र–उस–सुदूर, (x) बरीद–ए–मुमालिक।

5. सल्तनकालीन करों को परिभाषित कीजिए।

उ०– सल्तनकाल में प्रजा पर मुख्य पाँच प्रकार के कर लगाए जाते थे जो निम्नवत हैं–

(i) उश्रफ– यह मुसलमानों से लिया जाने वाला भूमिकर था। ऐसी भूमि जो प्राकृतिक साधनों से सिंचित थी वहाँ से उपज का 10% और जिस भूमि पर मानवकृत साधनों से सिंचाई होती थी वहाँ से उपज का 5% भाग कर के रूप में लिया जाता था।

(ii) खराज (खिराज)– यह गैर मुस्लिम जनता पर भूमिकर था जो पैदावार के 1/3 से लेकर 1/2 तक भूमिकर के रूप में लिया जाता था।

(iii) खम्स (खुम्स)– यह लूटे हुए धन, खानों अथवा भूमि में गड़े हुए खजानों से प्राप्त सम्पत्ति का 1/5 भाग होता था जो कर के रूप में लिया जाता था। शेष 4/5 भाग सैनिकों, अधिकारियों अथवा खजाना प्राप्त करने वाले को दिया जाता था।

(iv) जकात– यह मुस्लिम जनता पर धार्मिक कर था जो एक निश्चित सम्पत्ति से अधिक होने की स्थिति में ही लिया जाता था। दूसरे शब्दों में यह धन मुसलमानों से उनकी आय का 2½ % कर के रूप में लिया जाता था और इस धन को केवल मुसलमानों के हितार्थ ही व्यय किया जाता था।

(v) जजिया– यह कर गैर मुस्लिम जनता (जिम्मी) से लिया जाता था। आय के आधार पर गैर मुस्लिम जनता को तीन वर्गों में बाँटा गया था। साधरण वर्ग से 12 मध्यम वर्ग से 24 और धनिक वर्ग से 48 दिरहम के रूप में लिया जाता था।

6. सल्तनतकालीन केन्द्रीय शासन में वजीर की भूमिका स्पष्ट कीजिए।

उ०– सल्तनतकाल में सुल्तान का प्रधानमंत्री वजीर कहलाता था। वह सुल्तान तथा जनता के बीच मध्यस्थ का कार्य करता था। वह कुछ प्रतिबन्धों के अन्तर्गत सुल्तान की शक्ति तथा विशेषाधिकारों का प्रयोग किया करता था। वह सुल्तान के परामर्श से महत्वपूर्ण पदाधिकारियों की नियुक्ति करता था और सुल्तान की अनुपस्थिति में शासन कार्य का संचालन करता था। वह वित्त विभाग का अध्यक्ष होता था। उसके विभाग को 'दीवान–ए–वजारत' कहते थे। वजीर के अधीनस्थ अनेक कर्मचारी होते थे, जिनमें तीन अधिकारी नायब वजीर, मुशरिफ–ए–मुमालिक तथा मुस्तौफी–ए–मुमालिक अत्यधिक महत्वपूर्ण थे।

7. सल्तनतकालीन स्थानीय शासन को समझाइए।

उ०– सल्तनतकाल में स्थानीय शासन की भी विशेष व्यवस्था की गई थी। सल्तनत के प्रान्तों को शिकों में विभक्त किया गया था। शिक का शासक शिकदार कहलाता था। शिक पुनः सरकारों में बँटे हुए थे। सरकार परगनों में और परगने ग्रामों में बँटे हुए थे। ग्राम स्थानीय प्रशासन की सबसे छोटी इकाई थी। प्रत्येक ग्राम का प्रबन्ध करने के लिए मुकद्दम (मुखिया) होता था, मालगुजारी

सम्बन्धी रिकॉर्ड पटवारी रखता था। परगने के प्रबन्ध के लिए चौधरी होता था तथा नगरों में कोतवाल की व्यवस्था थी।

8. भक्ति आन्दोलन को समझाइए।

उ०– **भक्ति आन्दोलन–** सल्तनतकाल में अनेक साधु-सन्त और सुधारक हुए थे, जिन्होने भक्ति भावना के विकास पर बल दिया और धर्म सुधार का एक ऐसा नया आन्दोलन चलाया जो इतिहास में भक्ति आन्दोलन के नाम से प्रसिद्ध हुआ। यद्यपि यह आन्दोलन कोई नया आन्दोलन नहीं था, वरन् इसका सूत्रपात **आदि शंकराचार्य** के समय से ही उनके द्वारा चलाए गए **अद्वैतवादी दर्शन** से हो चुका था। सल्तनत काल में समाज का स्तर बहुत गिर गया था। ऐसी गम्भीर स्थिति को देखकर अनेक सुधारक सामने आए और उन्होने समाज एवं धर्म में सुधार हेतु अनेक आन्दोलन संचालित किए। भक्ति आन्दोलन के सन्तों में रामानुज, रामानन्द, कबीर, चैतन्य महाप्रभु, गुरुनानक, वल्लभाचार्य, रैदास, दादू, नामदेव आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

❖ विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

1. गुलाम वंश का परिचय दीजिए।

उ०– **गुलाम वंश (1206 ई० से 1290 ई० तक)–** कुतुबुद्दीन ऐबक को भारत में गुलाम वंश का संस्थापक माना गया है। गौरी की मृत्यु के बाद लाहौर के नागरिकों ने कुतुबुद्दीन ऐबक को लाहौर आकर शासन सत्ता अपने हाथों में लेने के लिए आमन्त्रित किया। ऐबक ने लाहौर पहुँचकर शासन सत्ता अपने हाथ में ले ली। वह मुहम्मद गौरी के गुलामों में योग्यतम सिद्ध हुआ। वह अपनी योग्यता के कारण धीरे—धीरे उन्नति करता हुआ सुल्तान के पद तक पहुँचा और एक ऐसे राज्य का संस्थापक बना जो भारत में स्थायी रहा। ऐबक में व्यावहारिक बुद्धि थी। ऐबक की सबसे बड़ी योग्यता उसका एक कर्मठ सैनिक और योग्य सेनापति होना था। ऐबक के पास समय का अभाव रहा। वह अपने जीवन में दिल्ली सल्तनत को पूर्ण स्थायित्व प्रदान नहीं कर सका और उसे गजनी सुल्तानों की सम्प्रभुता के दावे से पूर्ण मुक्ति नहीं दिला सका। उसके ये कार्य अधूरे रहे। ऐबक ने अपने शासनकाल में दिल्ली में **कुव्वत–उल–इस्लाम** और अजमेर में **ढ़ाई दिन का झोंपड़ा** नामक मस्जिदों का निर्माण कराया। दिल्ली में विश्वप्रसिद्ध **कुतुबमीनार** का निर्माण भी उसके समय में आरम्भ किया गया। कालान्तर में **चौगान** खेलते समय घोड़े से गिर जाने के कारण 1210 ई० में उसकी मृत्यु हो गई।

कुतुबुद्दीन ऐबक की मृत्यु के पश्चात उसका पुत्र **आरामशाह** लाहौर में गद्दी पर बैठा, किन्तु वह एक अयोग्य शासक था। फलत: 8 माह की अल्प अवधि में ही ऐबक के दामाद और बदायूँ के सूबेदार **इल्तुतमिश** ने उसकी हत्या कर दिल्ली सल्तनत पर अपना अधिकार स्थापित कर लिया।

इल्तुतमिश ऐबक का दामाद था, न कि उसका वंशज। इल्तुतमिश शम्सी वंश का था। इस कारण उसके गद्दी पर बैठने से दिल्ली के सिंहासन पर एक नवीन राजवंश का शासन स्थापित हुआ।

इल्तुतमिश के बाद उसकी योग्य पुत्री **रजिया बेगम** (1236–46 ई०) ने दिल्ली पर राज्य किया। रजिया के बाद शासन सत्ता बलबन (1266–1287 ई०) के हाथ में आ गई। 1287 ई० में बलबन की मृत्यु के पश्चात् उसका पोता **कैकुबाद** दिल्ली की गद्दी पर बैठा, किन्तु वह एक अयोग्य व्यक्ति था। उसकी अयोग्यता का लाभ उठोकर खिलजी अमीरों ने 1290 ई० में उसकी हत्या कर दी और इस प्रकार गुलाम वंश के शासन का अन्त हो गया।

गुलाम वंश के प्रमुख शासक– गुलाम वंश के प्रमुख शासक निम्नलिखित थे—

इल्तुतमिश– गुलाम वंश का सबसे योग्य शासक इल्तुतमिश था। इसे ही गुलाम वंश का वास्तविक शासक माना जाता है। खलीफा ने सन् 1229 ई० में इल्तुतमिश को शासन करने का अधिकार पत्र दिया था। इल्तुतमिश दिल्ली सल्तनत का पहला योग्य शासक था। यह बहुत ही कुशल प्रशासक तथा न्यायप्रिय सुल्तान था।

रजिया– रजिया इल्तुतमिश की पुत्री थी। यह विश्व की प्रथम **महिला शासक** थी। रजिया योग्य, साहसी और काय—कुशल होने के साथ-साथ दूरदर्शी महिला भी थी। उसका नारीत्व ही उसकी असफलता का कारण था।

बलबन– बलबन कठोर नीति का समर्थक व दैवी सिद्धान्त का अनुयायी था। बलबन गुलाम वंश का सबसे शक्तिशाली शासक था। उसने कठोरतापूर्वक विद्रोहों का दमन करके नवजात मुस्लिम साम्राज्य की रक्षा की।

2. सल्तनतकाल के स्थापना एवं सुदृढ़ीकरण को समझाइए।

उ०– **सल्तनतकाल की स्थापना एवं सुदृढ़ीकरण –** मुस्लिम सुल्तानों ने दिल्ली को अपनी राजधानी बनाकर 1206 ई० से 1526 ई० तक शासन किया। इसलिए इतिहास में इस युग को सल्तनत काल और मुस्लिम साम्राज्य को दिल्ली सल्तनत के नाम से जाना जाता है। मौहम्मद गौरी के लौट जाने के पश्चात उसके सेनापति कुतुबुद्दीन ऐबक ने 1206 ई० में प्रारम्भिक तुर्क वंश की स्थापना की थी। किन्तु उसका सम्पूर्ण काल वैदेशिक झगड़ों में ही व्यतीत हुआ। इसी कारण वह शासन सम्बन्धी रचनात्मक कार्यों का सम्पादन नहीं कर पाया। इस राजवंश को संगठित करने का कार्य इल्तुतमिश ने किया। उसने एल्दौज और कुबाचा जैसी शक्तियों का पतन करके गुलाम वंश का विस्तार किया। इसी समय बंगाल, राजस्थान और अरब पर भी इस वंश का अधिकार हो गया। इल्तुतमिश को खलीफा से सल्तान होने की स्वीकृति भी प्राप्त हो गई। आगे चलकर बलबन ने इस कार्य को

और भी सुदृढ़ किया। वह राजा के दैवी अधिकार के सिद्धान्त का समर्थक था। इसलिए दरबार की शान—शौकत में अत्यधिक वृद्धि की। उसके शासनकाल में अनुशासन कठोर था।

सल्तनतकाल के साम्राज्य का विस्तार खिलजी वंश के सुल्तान अलाउद्दीन के समय में अधिक हुआ। उसने गुजरात, रणथम्भौर, चित्तौड़, मालवा, मारवाड़ तथा जालौर जो भारत के उत्तरी भाग में स्थित थे, को अपने अधिकार में कर खिलजी राज्य की सीमा का विस्तार किया। उत्तर ही नहीं, उसने दक्षिण में स्थित देवगिरी, वारंगल, द्वारसमुद्र, मदुरा जैसे राज्यों को जीतकर दक्षिणी सीमा तक विस्तार कर लिया। वह दिल्ली सल्तनत का प्रथम मुसलमान शासक था, जिसने सुदूर दक्षिण के राज्यों को जीता।

खिलजी वंश के बाद तुगलक वंश में मुहम्मद तुगलक अत्यधिक उल्लेखनीय है। यद्यपि उसके कार्य विवादास्पद रहे किन्तु उसकी छाप आधुनिक काल में स्पष्ट दिखाई पड़ती है। उसके ताँबे के सिक्कों का प्रचलन आज की सांकेतिक मुद्रा का प्रारम्भ कहा जा सकता है। वह अत्यन्त महत्वाकांक्षी था जिसने बाहरी क्षेत्रों की विजय की रणनीति बनाई किन्तु उस क्षेत्र में वह कारगर नहीं हुआ। राज्य के सुदृढ़ीकरण की दृष्टि से फिरोज तुगलक का नाम भुलाया नहीं जा सकता है। उसने बहुत से कल्याणकारी कार्य किए। 23 करों को समाप्त कर जनता पर केवल पाँच कर लगाए गए जिसे उश्र, खराज, जकात, जजिया और खुम्स कहा गया। सिंचाई के लिए नहरों की व्यवस्था करना उसका प्रजाहितकारी कार्य था। उसने बहुत से भवनों तथा नगरों का निर्माण भी कराया। फिरोजाबाद, फतेहाबाद, हिसार, जौनपुर और फिरोजपुर जैसे नगर फिरोज तुगलक के समय में ही बनाए गए थे।

सल्तनतकाल का प्रभाव तुगलक वंश के उत्तरार्द्ध से ही प्रारम्भ हो जाता है। इसके बहुत से कारण रहे हैं, जिनमें मंगोलों का अनवरत आक्रमण तथा सन् 1398–99 में तैमूर का आक्रमण प्राण घातक प्रमाणित हुआ। तुगलक वंश के समय में ही असन्तोष के कारण विजयनगर और बहमनी जैसे राज्यों की स्थापना हुई। 1414 ई० में दौलत खाँ को परास्त कर खिज्र खाँ ने एक नये राज्य वंश की स्थापना की जिसे सैय्यद वंश कहा जाता है।

सल्तनतकालीन सैय्यद वंश में राज्य उत्तरोत्तर कमजोर ही होता गया। इस वंश के अन्तिम सुल्तान अलाउद्दीन आलमशाह से बहलोल लोदी ने सत्ता हस्तगत कर 1451 ई० में लोदी वंश की स्थापना कर ली। लोदी वंश में कुल तीन सुल्तान हुए। प्रथम बहलोल लोदी जिसने लोदी वंश की स्थापना की तथा दूसरा सिकन्दर लोदी जिससे सन् 1504 ई० में आगरा नगर की नींव डाली। इस वंश का अन्तिम सुल्तान इब्राहिम लोदी था जो 1526 ई० में पानीपत के मैदान में बाबर से पराजित होकर मारा गया। इस प्रकार दिल्ली सल्तनत काल 1526 ई० में इब्राहिम लोदी की पराजय के बाद समाप्त हो गया।

3. सल्तनकालीन सभ्यता एवं संस्कृति पर प्रकाश डालिए।

उ०– सल्तनकालीन सभ्यता एवं संस्कृति–

सल्तनतकाल में शासन–व्यवस्था– सल्तनकाल में शासन की बागडोर सम्राट के हाथ में रहती थी। जिसे **'सुल्तान'** कहा जाता था। सुल्तान पूर्णतया निरंकुश होता था और अपने आपको ईश्वर (अल्लाह) का प्रतिनिधि मानकर कुरान के नियमों के अनुसार राज्य करता था। नियमों की व्याख्या भी वह अपने मतानुसार करता था। अपनी इच्छानुसार अपनी पसंद के व्यक्तियों की वह मन्त्रिपरिषद् बनाकर उनको कार्यभार सौंपता था। साम्राज्य सुविधानुसार प्रान्तों (सूबे) में विभक्त किया गया था और प्रत्येक प्रान्त का एक सूबेदार होता था।

व्यवहार में सुल्तान कुरान शरीफ के अनुसार शासन का संचालन करते थे तथा उन पर मुल्ला—मौलवियों और उलेमाओं का प्रभाव होता था।

(i) मन्त्रिपरिषद्– सुल्तान शासन—कार्य में अपनी सहायता के लिए नायब, वजीर, आरिज—ए—मुमालिक, दीवाने आरिज आदि अधिकारियों को नियुक्त करते थे। सुविधा के लिए शासन को प्रान्तों में बाँटा गया था। प्रान्तों के शासक सूबेदार कहलाते थे। स्थानीय शासन का संचालन स्थानीय अधिकारियों द्वारा किया जाता था। इस काल में जागीरदारी प्रथा प्रचलित थी।

(ii) सामाजिक दशा– सल्तनतकाल में समाज के दोनों वर्गों (हिन्दू व मुस्लिम) में स्त्रियों की दशा को अच्छा नहीं कहा जा सकता। स्त्रियाँ स्वेच्छा से घर के बाहर नहीं जा सकती थीं। सामान्यतया एक विवाह प्रथा का प्रचलन था। बाल—विवाह, पर्दा प्रथा व सती प्रथा भी इस युग में प्रचलन में थी। इन कुरीतियों ने स्त्रियों की दशा को बहुत प्रभावित किया था।

इस काल में लोग शान्तिपूर्वक रहना पसन्द करते थे। नगरों में शानदार भवनों का निर्माण करवाया जाता था। इस काल में ग्राम्य जीवन शैली में भी कोई अन्तर नहीं था। इस काल में सूफी—सन्तों एवं भक्ति आन्दोलन के प्रचारकों ने धार्मिक सहिष्णुता को सामाजिक जीवन का आधार बताया और सामाजिक उन्नति हेतु हिन्दू मुस्लिमों को एक—दूसरे के साथ आपस में मिल-जुलकर रहने की प्रेरणा दी थी।

साधारणत: हिन्दू और मुस्लिम एक—दूसरे को समझने का प्रयत्न कर रहे थे और परिस्थितियों एवं व्यावहारिकता के कारण एक दूसरे के निकट आकर कुछ—न—कुछ सीख भी रहे थे। फलत: समाज परिवर्तनशील हो चला था, खान—पान, वेष—भूषा तथा प्रचलित रीति—रिवाजों में सुधार हो रहा था। धोती अंगिया, पेटीकोट, चुनरी के साथ-साथ कुर्ता, चोली, पायजामा, अंगरखा आदि का प्रयोग होता था। लोगों को आभूषण धारण करने का शौक था।

समाज में मनोरंजन के लिए खेल—कूद, शिकार, चौगान आदि का प्रचलन था। इसके अतिरिक्त हिन्दू होली, दीवाली एवं मुस्लिम ईद, शब—ए—बारात जैसे पर्व भी मनाते थे। इसी काल में मुहम्मद—बिन तुगलक ने सर्वप्रथम सार्वजनिक रूप से होली खेली। सामान्यतया हिन्दू शाकाहारी और मुस्लिम सर्वाहारी थे।

(iii) कला– स्थापत्य कला के क्षेत्र में सल्तनतकाल समृद्धशाली युग रहा है। दिल्ली सुल्तानों के साथ-साथ इक्तादारों ने भी अपने—अपने क्षेत्र में इमारतों का निर्माण कराया। हिन्दू स्थापत्य कला और तुर्की कारीगरों की कला के मिश्रण से स्थापत्य के क्षेत्र में नवीनता आई। मेहराब, गुम्बद और मीनारें इस काल के स्थापत्य की प्रमुख विशेषता रही।

सल्तनतकालीन स्थापत्य कला के प्रमुख उदाहरण–

कुतुबुद्दीन ऐबककालीन इमारतें	—	कुव्वत उल इस्लाम मस्जिद, कुतुबमीनार, ढाई दिन का झोंपड़ा।
इल्तुतमिशकालीन इमारतें	—	सुल्तान गढ़ी की दरगाह, मुइनुद्दीन चिश्ती।
खिलजीकालीन इमारतें	—	अलाई दरवाजा, जमात खाँ मस्जिद, सीरी का किला।
तुगलककालीन इमारतें	—	गयासुद्दीन का मकबरा, आदिलाबाद का किला, बारह खम्भा।
लोदीकालीन इमारतें	—	मुहम्मदशाह का मकबरा, सिकन्दर लोदी का मकबरा।

(iv) साहित्य– इस काल में संस्कृत साहित्य को गहरा धक्का लगा। कुछ सुल्तानों ने फारसी भाषा की शिक्षा के लिए मदरसे खुलवाए। इस काल में फारसी, अरबी और भारतीय भाषाओं के मिश्रण से एक नई भाषा का जन्म हुआ जो **उर्दू** कहलाई। सल्तनतकाल में अनेक लेखक तथा शायर हुए। जिनकी शायरी, गजलें तथा रूबाइयाँ लोकप्रिय हुईं। बलबन के काल में **अमीर खुसरो** को उर्दू का प्रथम महाकवि माना जाता है। इस काल में हिन्दी साहित्य के **पृथ्वीराज रासो, हम्मीर रासो, बीसलदेव रासो, सुमन रासो** आदि काव्य-ग्रन्थों की रचना की गई। इस काल में **नामदेव, गुरुनानक, मीरा, कबीर** और **रहीम** हिन्दी के महान कवि हुए। इस काल में **हरिकेलि नाटक, पार्वती परिणय, ललित विग्रहराज नाटक, विदग्ध माधव, ललित माधव आदि** उल्लेखनीय नाटकों की भी रचना की गई।

इस काल के प्रमुख ग्रन्थ थे– (क) अमीर खुसरो द्वारा रचित नूह सिपेहर, तुगलकनामा, खजाइनुल फुतूह आदि, (ख) जयदेव का गीत गोविन्द, (ग) जियाउद्दीन बरनी का तारीख-ए-फिरोजाशाही तथा फतवा—ए—जहाँदारी, (घ) हसन निजामी का ताजुल मआसिर इत्यादि।

(v) धार्मिक दशा– सल्तनतकाल में धार्मिक कट्टरता को समाप्त करने की दशा में प्रयास किए गए। अनेक साधु—संतों और समाज सुधारकों ने भक्ति भावना के विकास पर बल दिया और धर्म सुधार का एक ऐसा नया आन्दोलन चलाया जो इतिहास में भक्ति आन्दोलन के नाम से प्रसिद्ध हुआ। सल्तनतकाल में समाज का स्तर बहुत गिर गया था। ऐसी गम्भीर स्थिति को देखकर अनेक समाज सुधारक सामने आए और उन्होने समाज एवं धर्म में सुधार हेतु अनेक आन्दोलन संचालित किए। भक्ति आन्दोलन के संतों में रामानुज, रामानन्द, कबीर, चैतन्य महाप्रभु, गुरुनानक, बल्लभाचार्य, रैदास, दादू, नामदेव आदि थे। सुफी संतों में ख्वाजा मुइनुद्दीन चिश्ती, बख्तियार काकी, बाबा फरीद, अमीर खुसरो, निजामुद्दीन औलिया आदि नाम उल्लेखनीय हैं।

4. सल्तनतकालीन प्रान्तीय और स्थानीय शासन को स्पष्ट कीजिए।

उ०– **प्रान्तीय शासन–** सल्तनतकाल में शासन के सुसंचालन हेतु साम्राज्य को प्रान्तों (इक्ता) में विभक्त किया गया था। प्रत्येक प्रान्त के शासन के लिए **एक प्रान्तपति** (इक्तादार) की नियुक्ति की जाती थी। इक्तादार सुल्तान के प्रति वफादार होता था तथा प्रतिवर्ष निश्चित धनराशि कर के रूप में सुल्तान को भेजता था। प्रान्तीय शासन का सम्पूर्ण उत्तरदायित्व **इक्तादार** का होता था। मुख्यतया इक्तादार एक सैनिक अधिकारी था, अपने क्षेत्र की सुरक्षा करना, शान्ति बनाए रखना और सुल्तान के प्रतिनिधि के रूप में सुल्तान के आदेशानुसार शासन करना उसका मुख्य दायित्व था। इक्तादार का यह पद न तो पैतृक था और न ही स्थायी। समय-समय पर सुल्तान द्वारा इनका स्थानान्तरण भी किया जाता था।

स्थानीय शासन की भी विशेष व्यवस्था की गयी थी। सल्तनत के प्रान्त 'शिकों' में विभक्त थे। 'शिक' का शासक शिकदार कहलाता था। 'शिक' पुनः सरकारों में बँटें हुए थे। सरकार परगनों में और परगने 'ग्रामों' में बँटें हुए थे। प्रत्येक ग्राम का प्रबन्ध करने के लिए **मुकद्दम** (मुखिया) से सहायता ली जाती थी। **'पटवारी'** मालगुजारी सम्बन्धी रिकॉर्ड रखता था। परगने के प्रबन्ध के लिए **'चौधरी'** होता था।

5. सूफी मत को समझाते हुए भक्ति आन्दोलन की विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।

उ०– **सूफी मत–** सूफी सम्प्रदाय वह धार्मिक संगठन है जो भौतिक जीवन से दूर रहकर सरल और संयमित जीवन व्यतीत करने पर बल देता है। उनके जीवन का मुख्य उद्देश्य परोपकार और दीन—दु:खियों की सेवा करना है।

सूफी सन्त एक ईश्वर में विश्वास करते हैं तथा सभी पदार्थ और व्यक्ति उसके अंग हैं। सूफियों के अनुसार ईश्वर एक है, सभी कुछ ईश्वर में है, उसके बाहर कुछ नहीं है और सभी कुछ त्यागकर, प्रेम के द्वारा ही ईश्वर को प्राप्त किया जा सकता है। प्रमुख

सूफी सन्त थे— ख्वाजा मुइनुद्दीन चिश्ती, बाबा फरीद, निजामुद्दीन औलिया आदि।

सूफी मत के सिद्धान्त– सूफी सम्प्रदायों द्वारा समय—समय पर सूफी धर्म से सम्बन्धित जो विचार व्यक्त किए गए हैं, उनमें विभिन्नता होते हुए भी काफी साम्यता है। सूफियों के प्रमुख सिद्धान्त निम्नवत् हैं—

(i) सूफियों के अनुसार व्यक्ति को केवल एक ईश्वर में विश्वास रखना चाहिए। सूफी, ईश्वर को सत्य, निर्गुण और निराकार मानते हैं।
(ii) उनके अनुसार समस्त सृष्टि की रचना निराकार ईश्वर ने की है।
(iii) सच्चा सूफी अपवित्रता को त्यागकर पवित्रता में विश्वास करता है।
(iv) सूफियों के अनुसार, ईश्वर की सत्यता को जानना चाहिए तथा संसार में रहते हुए ही जीवन से मुक्त हो जाना चाहिए।
(v) सूफी, संगीत और गायन अर्थात् भक्ति को ईश्वर प्राप्ति में सहायक मानते हैं।
(vi) गुरु अथवा पीर को सूफियों ने विशेष महत्व प्रदान किया है। सूफी सन्त गुरु-शिष्य परम्परा में विश्वास करते हैं।
(vii) सूफी मत के अनुसार मानव सृष्टि में सर्वश्रेष्ट प्राणी है।
(viii) सूफियों के अनुसार मनुष्य को गण्डे, ताबीज तथा चमत्कार आदि में विश्वास नहीं करना चाहिए।
(ix) सूफी मत प्रेम व नैतिकता पर आधारित है।
(x) आत्मा परमात्मा का ही अंश है, यह सूफी मत का प्रमुख विश्वास है।
(xi) सूफी कर्मकाण्डों में विश्वास नहीं रखते थे। ये तो ईश्वर प्राप्ति के लिए—तौबा, खौफ, अपरिग्रह, करुणा, शुक्रगुजार होना, आशा, सन्तोष, निर्धन रहना, रिजा (ईश्वर को आत्मसमर्पण) आदि गुणों का पालन करना उपयोगी और आवश्यक समझते थे।

भक्ति आन्दोलन की विशेषताएँ– भक्ति आन्दोलन की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित थीं—

(i) भक्ति आन्दोलन के सभी प्रवर्तक समाज में व्याप्त निरर्थक आडम्बरों के घोर विरोधी थे।
(ii) भक्ति आन्दोलन के सन्तों ने कर्मकाण्डी देवी—देवताओं की मूर्तिपूजा का खण्डन किया।
(iii) इन्होंने जाति—प्रथा का घोर विरोध किया।
(iv) इन्होंने समाज में ऊँच—नीच और भेदभाव का प्रबल विरोध किया।
(v) इस आन्दोलन के प्रवर्तकों का कहना था कि सच्चे हृदय से ही ईश्वर की भक्ति की जा सकती है और मोक्ष भी तभी प्राप्त किया जा सकता है।
(vi) इन्होंने व्यक्तिगत चरित्र की शुद्धता पर विशेष बल दिया।
(vii) इन सुधारकों ने तत्कालीन सामाजिक स्थिति में भी पर्याप्त सुधार किए।
(viii) इनके द्वारा हिन्दू नारी की हीन दशा के सुधार की ओर विशेष ध्यान दिया गया था।
(ix) भक्ति आन्दोलन द्वारा सामाजिक कुरीतियों को भी दूर करने का भरसक प्रयत्न किया गया था।
(x) इस आन्दोलन का जन्म दक्षिण भारत में हुआ था, परन्तु यह आन्दोलन धीरे—धीरे समस्त भारत में फैल गया था।

❖ **मानचित्र सम्बन्धी अभ्यास कार्य**

अध्यापक की सहायता से विद्यार्थी स्वयं करें।

❖ **प्रोजेक्ट कार्य**

अध्यापक की सहायता से विद्यार्थी स्वयं करें।

इकाई-2 (ख) : मुगलकाल में भारत

14 शेरशाह की उपलब्धियाँ

अभ्यास

❖ **बहुविकल्पीय प्रश्न**

उ०– बहुविकल्पीय प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्य पुस्तक के पृष्ठ संख्या—125 व 126 का अवलोकन कीजिए।

❖ **अतिलघु उत्तरीय प्रश्न**

उ०– अतिलघु उत्तरीय प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्य पुस्तक के पृष्ठ संख्या—126 का अवलोकन कीजिए।

❖ **लघु उत्तरीय प्रश्न**

1. सूरी वंश की नींव किस प्रकार रखी गई।

उ०– बाबर की मृत्यु के पश्चात उसका सबसे बड़ा पुत्र हुमायूँ 1530 ई० में दिल्ली के राजसिंहासन पर बैठा। हुमायूँ का शासन काल 1530 ई० से 1545 ई० तक रहा। 15 वर्षों में उसे अनेक शत्रुओं और कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। शेरशाह ने हुमायूँ को चौसा 1539 ई० और कन्नौज 1540 ई० के युद्धों पराजित करके सूरी वंश की नींव रखी।

2. शेरशाह का संक्षिप्त जीवन परिचय दीजिए।

उ०– शेरशाह का वास्तविक नाम फरीद था। बाद में उसका नाम शेरखाँ पड़ा। शेरशाह का जन्म 1486 ई० में होशियारपुर के निकट बजवाड़ा गाँव में हसनखाँ नामक व्यक्ति के घर पर हुआ था। अपनी योग्यता, कुशलता और वीरता के आधार पर बिहार के सूबेदार बहारखाँ की सेवा में नियुक्त रहा। इसके बाद वह मुगल सम्राट बाबर की सेना में भी भर्ती रहा। बहारखाँ की मृत्यु को जाने के बाद उसकी बेगम ने शेरखाँ को अपना नायक नियुक्त कर दिया। धीरे–धीरे शेरखाँ ने बिहार पर अपना अधिकार जमा लिया। शेरखाँ ने चुनार की विधवा रानी लाडमलिका और गाजीपुर के सरदार नासिरखाँ की धनवान विधवा गौहर गुसाई से विवाह किया। शेरखाँ ने हुमायूँ को चौसा (1539 ई०) और कन्नौज (1540 ई०) में पराजित करके सूर वंश की स्थापना की। यद्यपि शेरशाह अल्पकाल तक ही (1540–1545 ई०) तक राज सिंहासन पर बैठा तथापि उसकी विभिन्न उपलब्धियाँ उसके गौरवशाली इतिहास की साक्षी हैं। वह एक महान विजेता, कुशल शासन प्रबन्धक, न्यायप्रिय तथा प्रजा पालक शासक था।

3. चौसा के युद्ध पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

उ०– **चौसा का युद्ध (1537 ई० से 1539 ई० तक)–** शेरखाँ के विरुद्ध हुमायूँ ने 1537 ई० में चढ़ाई की थी। मुगलों ने पहले चुनार दुर्ग पर आक्रमण किया फिर कुछ माह पश्चात् उस पर अपना आधिपत्य कर लिया। इतने समय में शेरखाँ गौड़ पर विजय प्राप्त करके और वहाँ से सारा धन लेकर अपने परिवार के साथ रोहतास दुर्ग में चला गया। हुमायूँ ने गौड़ पर विजय प्राप्त कर ली, परन्तु इसके पश्चात उसने बहुत समय रंगरलियाँ मनाने में व्यतीत किया। शेरखाँ ने इस समय का लाभ उठाकर अपनी शक्ति को बहुत बढ़ा लिया तथा हुमायूँ के विरुद्ध युद्ध की पूरी तैयारी कर ली। 26, जून 1539 ई० को चौसा नामक स्थान पर अफगानों और मुगलों में बहुत भयंकर युद्ध हुआ। और इस युद्ध में शेरखाँ को विजय प्राप्त हुई तथा हुमायुँ जान बचाकर भाग निकला। इस युद्ध में विजय प्राप्त करके शेरखाँ ने **शेरशाह** की उपाधि धारण की। वर्तमान में चौसा उत्तर प्रदेश में स्थित है।

4. शेरशाह के शासन-प्रबन्ध की विशेषताएँ बताइए।

उ०– **शेरशाह के शासन-प्रबन्ध की विशेषताएँ–** एक योग्य सैनिक और सफल विजेता होने के साथ–साथ शेरशाह एक योग्य शासक भी था। शेरशाह के शासन के मुख्य पक्षों को हम इस प्रकार प्रस्तुत कर सकते हैं–

(i) सुव्यवस्थित और सुदृढ़ केन्द्रीय प्रशासन ही शेरशाह के शासन की प्रमुख विशेषता थी। इस व्यवस्था में सम्पूर्ण शक्ति सुल्तान के हाथों में केन्द्रित थी और सुल्तान का, शासन के सभी पक्षों पर पूरा नियन्त्रण था।

(ii) शेरशाह के शासन की दूसरी विशेषता उसका प्रजाहित था। वह प्रजा के दु:ख–सुख को अपना दु:ख–सुख समझता था।

(iii) शेरशाह धर्मसहिष्णु सुल्तान था, उसके शासनकाल में हिन्दुओं के साथ पूरी सहिष्णुता बरती गई।

(iv) शेरशाह का शासन राज कर्मचारियों के शुद्ध आचरण पर आधारित था। उसका विश्वास था कि राज कर्मचारियों का चरित्र उच्च होना चाहिए। वे ईमानदार, चरित्रवान और कर्त्तव्यपरायण होने चाहिए।

(v) शेरशाह ने कृषि के विकास एवं उन्नति को शासन का मुख्य आधार मानते हुए कृषि की उन्नति हेतु राजकीय तत्परता दिखाई। शेरशाह ने प्रचलित पूर्ववर्ती शासन–प्रणाली के दोषों का पूर्ण निराकरण करके अपने साम्राज्य में एक सुसंगठित एवं सुव्यवस्थित शासन–प्रणाली स्थापित की।

उपर्युक्त व्यवस्थाएँ और उसके सैनिक कारनामें तथा उसकी रचनात्मक उपलब्धियाँ नि:सन्देह प्रशंसा योग्य हैं।

5. शेरशाह के शासन में परगनों का प्रबन्ध समझाइए।

उ०– **शेरशाह के शासन में परगनों का प्रबन्ध–** शेरशाह सूरी की शासन व्यवस्था में प्रत्येक जिला (सरकार) कई परगनों में विभाजित था। परगने की शासन–व्यवस्था एक शिकदार एक मुन्सिफ और कई सहायक कर्मचारियों के हाथों में होती थी। परगने तथा शासन का मुख्य अधिकारी **शिकदार** होता था। मुन्सिफ परगने के वित्त अथवा लगान सम्बन्धी कार्यों का अधिकारी था। वह अपने अधीनस्थों की देखरेख भी करता था। परगने से लगान एकत्रित करके उसे शाही कोष में जमा करवाने का कार्य भी उसी का था। शिकदार और मुन्सिफ के अतिरिक्त प्रत्येक पगरने में एक **खजान्ची** और दो **कारकुन** (लिपिक) होते थे। खजान्ची का कार्य परगने का कोष प्रबन्ध तथा कारकुन भूमि सम्बन्धी अभिलेख हिन्दी और फारसी भाषा में रखते थे।

6. शेरशाह शासन की न्याय–व्यवस्था को स्पष्ट कीजिए।

उ०– **शेरशाह शासन की न्याय–व्यवस्था–** शेरशाह का विचार था कि प्रत्येक सुल्तान का यह प्रथम कर्तव्य है कि वह अपनी प्रजा को समान समझे तथा धर्म और जाति का भेदभाव किए बिना समान रूप से न्याय करे। चाहे कोई उसका सम्बन्धी ही क्यों न हो, अपराध करने पर शेरशाह सभी को समान रूप से दण्ड देता था। इसलिए उसने **सुल्तान–ए–आदिल** (न्यायकारी सम्राट)की उपाधि धारण की थी। सुल्तान न्याय की सर्वोच्च अदालत था तथा अनेक झगड़ों का वह स्वयं निर्णय करता था। उसके अतिरिक्त

केन्द्र में प्रधान काजी एवं अन्य प्रान्तों में काजी रहते थे, जो झगड़ों का निर्णय करते थे। प्रत्येक सरकार में काजी की नियुक्ति की गई थी, जिनकी अदालत में अपील सुनी जाती थी तथा अन्य मुकदमों का भी निर्णय होता था। काजी को फौजदारी के झगड़ों का निर्णय करने का अधिकार होता था। दीवानी मुकदमों का निर्णय मुफ्ती तथा अमीन करते थे और ग्रामों में पंचायत के द्वारा झगड़ों का निर्णय होता था।

❖ **विस्तृत उत्तरीय प्रश्न**

1. शेरशाह के विजय अभियान को स्पष्ट कीजिए।

उ०– **शेरशाह का विजय अभियान–** अपने शासनकाल में शेरशाह ने निम्नलिखित प्रमुख विजय प्राप्त की—

(i) **चौसा का युद्ध (1537 ई० से 1539 ई० तक)–** शेरखाँ के विरुद्ध हुमायूँ ने 1537 ई० में चढ़ाई की थी। मुगलों ने पहले चुनार दुर्ग पर आक्रमण किया फिर कुछ माह पश्चात् उस पर अपना आधिपत्य कर लिया। इतने समय में शेरखाँ गौड़ पर विजय प्राप्त करके और वहाँ से सारा धन लेकर अपने परिवार के साथ रोहतास दुर्ग में चला गया। हुमायूँ ने गौड़ पर विजय प्राप्त कर ली, परन्तु इसके पश्चात उसने बहुत समय रंगरलियाँ मनाने में व्यतीत किया। शेर खाँ ने इस समय का लाभ उठाकर अपनी शक्ति को बहुत बढ़ा लिया तथा हुमायूँ के विरुद्ध युद्ध की पूरी तैयारी कर ली। 26, जून 1539 ई० को चौसा नामक स्थान पर अफगानों और मुगलों में बहुत भयंकर युद्ध हुआ। और इस युद्ध में शेरखाँ को विजय प्राप्त हुई तथा हुमायूँ जान बचाकर भाग निकला। इस युद्ध में विजय प्राप्त करके शेर खाँ ने **शेरशाह** की उपाधि धारण की। वर्तमान में चौसा उत्तर प्रदेश में स्थित है।

(ii) **कन्नौज का युद्ध (1540 ई०)–** 17 मई, 1540 ई० को मुगलों तथा अफगानों के मध्य कन्नौज में एक और युद्ध हुआ। इस युद्ध में भी हुमायुँ को बुरी तरह परास्त होना पड़ा और शेरशाह को विजय प्राप्त हुई। हुमायुँ आगरा और दिल्ली होता हुआ लाहौर पहुँच गया। शेरशाह ने दिल्ली और आगरा पर भी अपना अधिकार स्थापित कर लिया था।

(iii) **पंजाब की विजय तथा गक्खड़ कबीले के विरुद्ध अभियान (1540–41 ई०)–** दिल्ली और आगरा पर विजय प्राप्त करने के बाद शेरशाह ने बिना किसी विरोध के पंजाब पर अधिकार कर लिया। कामरान शेरशाह की सेनाओं के कूच करने से पहले ही पंजाब छोड़कर काबुल—कन्धार की ओर चला गया था। अब शेरशाह ने झेलम तथा रावलपिंडी के प्रदेशों में रहने वाली गक्खड़ कबीले के विरुद्ध चढ़ाई कर दी तथा उनके प्रदेश उजाड़ कर रख दिए। उत्तर—पश्चिमी सीमा को सुरक्षित रखने के लिए शेरशाह ने करोड़ों रुपए खर्च करके झेलम नगर से उत्तर—पश्चिम की ओर लगभग 15 किलोमीटर की दूरी पर रोहतास नामक दुर्ग का निर्माण करवाया।

(iv) **मालवा की विजय–** शेरशाह द्वारा 1542 ई० में मालवा पर चढ़ाई कर दी गई। मालवा के शासक कादिरशाह ने उसका कोई विरोध नहीं किया और शेरशाह की अधीनता को स्वीकार कर लिया। शेरशाह ने मालवा के सभी प्रदेशों जिनमें सारंगपुर, उज्जैन और माण्डु भी शामिल थे को अपने साम्राज्य में मिला लिया। शेरशाह ने शुजात खाँ को मालवा का नया सूबेदार नियुक्त किया।

(v) **रायसिन की विजय–** शेरशाह सूरी ने मध्य भारत के प्रसिद्ध रायसिन राज्य पर 1543 ई० में आक्रमण किया। शेरशाह ने रायसिन के शासक राजपूत सरदार पूरनमल को सन्धि करने के लिए मजबूर कर दिया। शेरशाह ने अपने पराक्रम का प्रयोग करते हुए रायसिन पर अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया।

(vi) **मुल्तान तथा सिन्ध की विजय–** शेरशाह की आज्ञा पाकर पंजाब के गर्वनर हैबत खाँ नियाजी ने विद्रोही सरदारों को दबाने और दक्षिण—पश्चिम की ओर राज्य की सीमाओं का विस्तार आरम्भ कर दिया। सन 1543 ईं० में उसने मुल्तान शासक बख्शूलंगा को पराजित कर मुल्तान का प्रदेश अफगान साम्राज्य में मिला लिया।

(vii) **मारवाड़ तथा अन्य राजपूत प्रदेशों पर विजय (1544 ई०)–** शेरशाह ने 1544 ई० में मारवाड़ पर चढ़ाई कर दी। उधर मारवाड़ का राजा मालदेव भी लड़ने के लिए तैयार था। राजपूतों ने बड़ी वीरता से अफगानों का मुकाबला किया। जब शेरशाह को विजय प्राप्त करने की कोई सम्भावना नजर न आई तो उसने चालाकी से काम किया। उसने मालदेव के सरदारों की ओर से अपने नाम पर कुछ जाली पत्र लिखवाकर एक रेशमी थैली में डालकर मालदेव के खेमे के पास गिरवा दिया। थैले में रखी चिट्ठी को पढ़कर मालदेव यह समझा कि उसके सरदार उसे धोखा देकर उसे शेरशाह को सौंप देंगे। अत: मालदेव ने अपनी सेनाओं को पीछे हटने का आदेश दिया। अन्त में विजय शेरशाह की हुई। इसके बाद शेरशाह ने आगे बढ़कर जोधपुर पर अधिकार कर लिया।

(viii) **मेवाड़ की विजय–** शेरशाह ख्वास खाँ को मारवाड़ में छोड़कर मेवाड़ की ओर बढ़ा और बिना किसी विरोध के उसने चित्तौड़ के दुर्ग को अपने अधिकार में ले लिया। इस प्रकार शेरशाह ने चार प्रसिद्ध दुर्गों अजमेर, आबू पर्वत, जोधपुर और चित्तौड़ पर अपना अधिकार कर लिया। बचे हुए राजपूतों के प्रदेशों को उसने अपने साम्राज्य में सम्मिलित नहीं किया।

(ix) **कालिंजर पर अधिकार और शेरशाह की मृत्यु (1545 ई०)–** शेरशाह ने बुन्देलखण्ड स्थित कालिंजर दुर्ग पर सन 1545 ई० में चढ़ाई कर दी। कालिंजर के राजा कीर्ति सिंह ने कई महीनों तक कालिंजर के किले से शत्रुओं का मुकाबला

किया। अन्त में शेरशाह ने कालिंजर पर भी अपना अधिकार कर लिया; दुर्भाग्यवश बारूद का एक गोला फट जाने से 22 मई, 1545 ई० को उसकी मृत्यु हो गई।

2. शेरशाह के शासन–प्रबन्ध सम्बन्धी सिद्धान्त को बताते हुए उसके केन्द्रीय शासन प्रबन्ध पर प्रकाश डालिए।

उ० **शेरशाह के शासन–प्रबन्ध सम्बन्धी सिद्धान्त–** शेरशाह का शासन—प्रबन्ध निम्नलिखित सिद्धान्तों पर आधारित था—

(i) सम्पूर्ण साम्राज्य में एक समान शासन—व्यवस्था स्थापित करना।

(ii) शासन में धार्मिक सहनशीलता का वातावरण उत्पन्न करना।

(iii) शासक के रूप में उसने स्वयं को न्यायप्रिय, उदार, शान्ति और सुव्यवस्था स्थापित करने वाला, राजकीय आय का सदुपयोग करने वाला और सच्चा लोकहितकारी सुल्तान सिद्ध करने का प्रयास किया था।

(iv) शेरशाह का यह भी विचार था कि शासक को प्रजा का पालक होना चाहिए और जनहित के कार्यों में उसे निरन्तर संलग्न रहना चाहिए।

(v) शासक को राज्य की कृषि एवं व्यापार की उन्नति के लिए प्रयत्न करना चाहिए।

(vi) शासन—व्यवस्था में सुल्तान को अपने कर्मचारियों एवं जागीरदारों पर कठोर नियन्त्रण रखना चाहिए।

(vii) शासन में भ्रष्ट अधिकारियों के लिए कठोर दण्ड की व्यवस्था होनी चाहिए।

शेरशाह के उपर्युक्त सिद्धान्त केवल कागजों की शोभा ही नहीं थे, वरन् वह इन उपयोगी सिद्धान्तों का बहुत सावधानी से पालन करता था। उसके प्रशासन के प्रमुख तथ्यों का विवरण निम्नलिखित है—

केन्द्रीय शासन प्रबन्ध– राजा– अपने शासन का प्रमुख शेरशाह स्वयं ही था। उसके पास असीम शक्ति का भण्डार था। वह अपनी सुविधा के अनुसार कानून बनाता था तथा उसे लागू करता था। कानून न मानने वालों को कठोर दण्ड दिया जाता था। सेना की बागडोर भी उसने अपने ही हाथों में रखी थी। यह कहना गलत न होगा कि शेरशाह की सरकार तानाशाही सरकार थी। परन्तु शेरशाह सदैव प्रजा की भलाई का ध्यान रखता था। वह भोग विलास में अपना समय नष्ट नहीं करता था अपितु व प्रजा के सुख व भलाई के लिए अथक परिश्रम करता था। उसका कहना था कि, 'बड़ों को यह शोभा देता है कि वे सदा क्रियाशील रहें'।

मन्त्री– शेरशाह के प्रमुख मन्त्री तथा उनके विभाग निम्नलिखित थे—

(i) दीवान—ए—वजारत (अर्थ विभाग)— इस विभाग का अध्यक्ष **वजीर** था। वह साम्राज्य की आय—व्यय की देखभाल तथा अन्य विभागों की भी देखभाल करता था। वजीर का महत्व सुल्तान के बाद था।

(ii) दीवान—ए—आरिज (युद्ध विभाग)— इस विभाग का अध्यक्ष **आरिज–ए–मुमालिक** कहलाता था। वह सेना की भर्ती, अनुशासन तथा नियन्त्रण कार्य करता था। तथा वेतन वितरण का प्रबन्ध भी उसी के हाथ मे था। शेरशाह स्वयं इस विभाग में बड़ी रुचि लेता था।

(iii) दीवान—ए—रसालत (वैदेशिक विभाग)— इस विभाग के अध्यक्ष को **विदेश मन्त्री** कहा जाता था। उसका प्रमुख कार्य राजदूतों का स्वागत करना तथा सरकारी पत्र—व्यवहार करना था।

(iv) दीवान—ए—इंशा (सामान्य प्रशासन विभाग)— इस विभाग के मन्त्री का मुख्य कार्य सरकारी घोषणाओं तथा सरकारी आज्ञाओं को लिपिबद्ध करना था।

(v) दीवान—ए—कजा (न्याय विभाग)— इस विभाग का अध्यक्ष **सदर काजी** होता था। वह न्याय करने का कार्य करता था तथा प्रान्तीय काजियों की अपीलें सुनता था।

(vi) दीवान—ए—वरीद (गुप्तचर विभाग)— इस विभाग का अध्यक्ष **वरीद–ए–मुमालिक** कहलाता था। इसका प्रमुख कार्य राज्य की समस्त घटनाओं की सूचना प्राप्त करने की व्यवस्था करना था।

3. शेरशाह के प्रान्तीय शासन–प्रबन्ध और ग्राम–प्रबन्ध में अन्तर स्पष्ट कीजिए।

उ०– **शेरशाह का प्रान्तीय शासन प्रबन्ध–** शेरशाह सूरी की प्रान्तीय शासन व्यवस्था को लेकर इतिहासकारों में अभी भी मतभेद पाया जाता है। शासन—सुविधा के अनुसार शेरशाह का समस्त राज्य 47 भागों में विभाजित था। इन राज्यों को **प्रान्त** या **इक्ता** कहते थे। इनके प्रमुख को **हाकिम** या **फौजदार** कहते थे। इन्हें स्वतंत्र सेना रखने का अधिकार प्राप्त था। ये शासन व्यवस्था के लिए प्रशासनिक अधिकारियों को भी नियुक्त करते थे। कुछ इतिहासकारों के अनुसार शेरशाह ने अपने समस्त साम्राज्य को आधुनिक जिलों की तरह इकाइयों में विभाजित कर रखा था। शेरशाह के साम्राज्य में कुल 66 सरकारें थी। सूरी शासक के द्वारा सरकार के प्रबन्ध की बहुत उत्तम व्यवस्था थी। सरकारों के प्रबन्ध के लिए निम्नलिखित दो अधिकारी नियुक्त होते थे—

मुख्य शिकदार– मुख्य शिकदार सरकार का सैनिक अधिकारी था। उसके पास 2,000 से लेकर 5,000 तक की सेना होती थी। उसके मुख्य कार्य सरकार में शान्ति एवं व्यवस्था स्थापित करना, चोर—डाकुओं को सजा देना, शिकदारों की निगरानी करना आदि थे।

मुख्य मुन्सिफ– मुख्य मुन्सिफ न्याय तथा वित्त—सम्बन्धी कार्यों का अधिकारी था। उसके मुख्य कार्य परगनों के

सीमा—सम्बन्धी झगड़ों को निपटाना, लगान एकत्रित करने वाले कर्मचारियों की निगरानी करना, किसानों के हितों की रक्षा करना और दीवानी मुकदमों का निर्णय करना आदि थे। इन दोनों अधिकारियों की सहायता के लिए कई कर्मचारी एवं लिपिक होते थे। प्रत्येक सरकार में कोतवाल, काजी आदि भी होते थे।

ग्राम प्रबन्ध– शासन की सबसे छोटी इकाई ग्राम थी। ग्राम का प्रबन्ध पंचायत मुकद्दम तथा पटवारी मिलकर करते थे। पंचायत लोगों के झगड़ों का निपटारा करती थीं तथा गाँव की सफाई की व्यवस्था करती थी। मुकद्दम लगान इकट्ठा करता था तथा पटवारी ग्राम भूमि का अभिलेख रखता था। शेरशाह सूरी के शासनकाल से पहले भूमिकर की व्यवस्था सुचारु नहीं थी। सरकार तथा किसानों का सीधा सम्पर्क नहीं हो पाया था। जमींदार, सैनिक तथा मुकद्दम सभी किसानों का शोषण तथा उन पर अत्याचार करते थे। शेरशाह ने प्रचलित भूमिकर प्रणाली में महत्वपूर्ण सुधार किए। उसके द्वारा प्रचलित की गई कर—प्रणाली ने उसे अमर कीर्ति प्रदान की। यह व्यवस्था भारत की कृषि प्रणाली का आधार सिद्ध हुई।

4. शेरशाह के शासन की सैन्य–व्यवस्था पर प्रकाश डालिए।

उ०– **शेरशाह के शासन की सैन्य व्यवस्था–** शेरशाह की सेना में अधिकतर अफगान सैनिक थे, जो भारत के विभिन्न भागों तथा अफगानिस्तान से भी भर्ती किए गए थे। वह सैनिक पदों का वितरण योग्यता के आधार पर करता था। शेरशाह की सेना में अधिकतर घुड़सवार थे, परन्तु पैदल सैनिकों की संख्या भी पर्याप्य थी। उसकी केन्द्र में रहने वाली सेना—डेढ़ लाख घुड़सवार, 25,000 पैदल तथा 5,000 हाथी तथा तोपखाना थी। इसके अतिरिक्त सुल्तान की आवश्यकता पर अमीर भी उसे सैन्य सहायता देते थे। शेरशाह ने अपनी सेना के संगठन के लिए अलाउद्दीन खिलजी की सैन्य व्यवस्था को आदर्श बनाया था। सर्वप्रथम उसने जागीरदारी प्रथा का अन्त करके नगद वेतन की व्यवस्था की और एक विशाल स्थायी सेना का निर्माण किया। जिसके अधिकांश सैनिकों को वेतन राज्य की ओर से मिलता था। इस प्रकार सैनिकों की प्रथम स्वामिभक्ति राज्य के प्रति होती थी, अमीरों अथवा जागीरदारों के प्रति नहीं। शेरशाह सैनिकों की भर्ती स्वयं करता था तथा उनके वेतन भी स्वयं निश्चित करता था। सैनिकों की पदवृद्धि भी स्वयं करता था।

शेरशाह ने सैन्य शिक्षा की समुचित व्यवस्था की थी और सैनिकों को शिक्षित बनाने एवं उनमें अनुशासन रखने के लिए उसने अपनी सेना का विभाजन किया था। उसकी सेना का प्रत्येक भाग एक फौजदार के अधीन रहता था। उसने घोड़े दागने की प्रथा पुन: प्रारम्भ कर दी थी, जिससे उसके अमीर तथा जागीरदार सुल्तान को धोखा न दे सकें। घोड़े दागने की व्यवस्था से सेना एवं अमीरों में प्रचलित भ्रष्टाचार का निराकरण हो गया था। अब अमीरों को सुल्तान द्वारा निश्चित सेना रखनी पड़ती थी तथा उसे प्रशिक्षित भी करना पड़ता था। युद्ध के घोड़े हर समय उपलब्ध रहने लगे, जिनका समय के अनुसार उचित प्रयोग किया जा सकता था। शेरशाह के सुधारों के फलस्वरूप उसके पूर्व सुल्तानों की सैन्य—व्यवस्था के सम्पूर्ण दोष समाप्त हो गए। यद्यपि शेरशाह सैनिकों के साथ दयालुतापूर्ण व्यवहार करता था, किन्तु अनुशाासन भंग करने के अपराध में वह सैनिकों को कठोर दण्ड भी देता था। इस अनुशासित एवं सुव्यवस्थित सेना की सहायता से ही शेरशाह इतने विशाल साम्राज्य में निरन्तर शान्ति स्थापित रखने में सफल रहा।

❖ **मानचित्र सम्बन्धी अभ्यास कार्य**

अध्यापक की सहायता से विद्यार्थी स्वयं करें।

❖ **प्रोजेक्ट कार्य**

अध्यापक की सहायता से विद्यार्थी स्वयं करें।

15 मुगलों का योगदान

(सामाजिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक क्षेत्र में)

अभ्यास

❖ **बहुविकल्पीय प्रश्न**

उ०– बहुविकल्पीय प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्य पुस्तक के पृष्ठ संख्या—134 का अवलोकन कीजिए।

❖ **अतिलघु उत्तरीय प्रश्न**

उ०– अतिलघु उत्तरीय प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्य पुस्तक के पृष्ठ संख्या—134 व 135 का अवलोकन कीजिए।

❖ **लघु उत्तरीय प्रश्न**

1. मुगल वंश की नींव पर प्रकाश डालिए।

उ०– बाबर ने 1526 ई० में पानीपत के प्रथम युद्ध में लोदी वंश के अन्तिा सम्राट इब्राहिम लोदी को हराकर मुगल वंश की नींव रखी। बाबर तुर्की के चगताई वंश का था। भारतीय इतिहास में इस वंश का महत्वपूर्ण स्थान है। मुगलकाल 1526 ई० से आरम्भ होकर

1857 ई० तक रहा। मुगल वंश के महान सम्राट अकबर ने भारत में विशाल साम्राज्य की स्थापना करके देश को न केवल राजनैतिक एकता प्रदान की, अपितु एक राष्ट्रीय साम्राज्य और संस्कृति का भी निर्माण किया।

2. मुगल वंश के शासकों को सूचीबद्ध करते हुए इनके शासनकाल का समय भी बताइए।

उ०– मुगल वंश के निम्नलिखित शासकों ने भारत में शासन किया—

शासक	शासनकाल	अवधि
(i) बाबर	1526 ई०–1530 ई०	4
(ii) हुमायूँ	1530 ई०–1540 ई०	10
	1555 ई०–1556 ई०	1
(iii) अकबर	1556 ई०–1605 ई०	49
(iv) जहाँगीर	1605 ई०–1627 ई०	22
(v) शाहजहाँ	1628 ई०–1658 ई०	30
(vi) औरंगजेब	1658 ई०–1707 ई०	49
(vii) बहादुरशाह प्रथम	1707 ई०–1712 ई०	5
(viii) जहाँदारशाह	1712 ई०–1713 ई०	1
(ix) फर्रुखसियर	1713 ई०–1719 ई०	6
(x) मुहम्मदशाह	1719 ई०–1748 ई०	29
(xi) अहमदशाह	1748 ई०–1754 ई०	6
(xii) आलमगीर द्वितीय	1754 ई०–1759 ई०	5
(xiii) शाहआलम द्वितीय	1759 ई०–1806 ई०	47
(xiv) अकबर द्वितीय	1806 ई०–1837 ई०	31
(xv) बहादुरशाह जफर द्वितीय	1837 ई०–1857 ई०	20

3. मुगलकालीन धार्मिक जीवन को स्पष्ट कीजिए।

उ०– (i) **धर्मों की बहुलता–** समाज में अपनी—अपनी रूचि और विश्वास के अनुसार अनेक धर्म प्रचलित थे। उस समय के प्रमुख धर्म **इस्लाम धर्म, हिन्दू धर्म, सिक्ख धर्म, पारसी धर्म, ईसाई धर्म, बौद्ध धर्म, जैन धर्म** आदि थे। हिन्दू धर्म में अनेक देवी—देवताओं में विश्वास किया जाता था। इसलिए हिन्दू धर्म में अनेक प्रकार के मतमतान्तरों वाले देवी—देवताओं का प्रादुर्भाव हो गया था।

(ii) **मूर्तिपूजा और निराकार उपासना में वृद्धि–** हिन्दुओं में मूर्तिपूजा प्रचलित थी। इस्लाम की प्रतिक्रिया स्वरूप मूर्तिपूजा फूली—फली थी। इस्लाम के प्रभाव से हिन्दू धर्म में एकेश्वरवाद तथा निर्गुण और निराकार ईश्वर की सत्ता की विचारधारा भी विकसित हुई थी। लोग धार्मिक थे और अपने धर्म के प्रति दृढ़ विश्वासी थे।

(iii) **अनुष्ठानों और संस्कारों में रूचि–** हिन्दू धर्म में धार्मिक अनुष्ठानों और संस्कारों में अत्यधिक विश्वास किया जाता था। हिन्दू धर्म में लोग जीवन के प्रत्येक अवसर पर धार्मिक संस्कार सम्पन्न किया करते थे। इन धार्मिक अनुष्ठानों का अपना स्वतन्त्र और पृथक महत्व था। तीर्थ यात्राओं में भी लोगों की गहरी रूचि थी।

(iv) **सूफी मत का प्रभाव–** सूफी मत भी बहुत अधिक विकसित अवस्था में था। सूफी मत का मूल दर्शन एक निराकार ईश्वर की सत्ता के सिद्धान्त पर आधारित था और हिन्दू दर्शन की भक्ति इसका व्यावहारिक पक्ष थी। इसलिए सूफी मत में हिन्दू और मुस्लिम दोनों ही अपना परम विश्वास रखते थे।

(v) **ताबीज और गण्डों में विश्वास–** जनसामान्य, विशेषकर मुसलमान अपने कष्टों को दूर करने के लिए ताबीज और गण्डों के प्रयोग में रूचि रखते थे।

(vi) **धर्म-परिवर्तन–** मुगलकाल में लोग धर्म—परिवर्तन करके दूसरा धर्म स्वीकार कर लेते थे। यह धर्म—परिवर्तन स्वेच्छा से, कभी—कभी बलात् और कभी—कभी प्रलोभन एवं लालच देकर कराया जाता था।

अकबर को छोड़कर लगभग सभी अन्य मुगल बादशाहों ने हिन्दू मन्दिरों, संस्थानों को बहुत अधिक क्षति पहुँचाई थी।

4. मुगलकालीन शिक्षा व्यवस्था पर एक लेख लिखिए।

उ०– **मुगलकालीन शिक्षा व्यवस्था–** शिक्षा के क्षेत्र में मुगल शासकों का महत्वपूर्ण योगदान रहा। इस काल में **मकतब** (प्राथमिक

शिक्षा) और **मदरसों** (उच्च शिक्षा) की व्यवस्था थी। मुगलकाल में **शुहरते आम** विभाग शिक्षा की देखरेख करता था। हुमायुँ द्वारा दिल्ली में **मदरसा–ए–बेगम** की स्थापना का गई थी। हुमायूँ अपने साथ सदैव एक **पुस्तकालय** रखता था। अकबर बहुत अधिक शिक्षित नहीं था परन्तु उसने शिक्षा के विकास के लिए फतेहपुर सीकरी, आगरा, लाहौर आदि स्थानों पर 'मकतब' और 'मदरसों' का निर्माण करवाया था।

शाहजहाँ द्वारा दिल्ली में एक शिक्षण—संस्थान की स्थापना की गई। इस संस्थान का नाम **दारुल बका** था। औरंगजेब भी शिक्षा के लिए आर्थिक सहायता प्रदान करता था। औरंगजेब की पुत्री जेबुन्निसा ने दिल्ली में **बैतुल उल उलूम** नामक स्कूल की स्थापना करवाई। इस स्कूल में अभिजात वर्ग के साथ—साथ मध्य वर्ग के लोग भी शिक्षा प्राप्त कर सकते थे। स्यालकोट का मदरसा व्याकरण शिक्षा के लिए प्रसिद्ध था। स्कूलों में फारसी भाषा के माध्यम से शिक्षा दी जाती थी। जो निम्नवत् हैं—

फाजिल	—	तर्क व दर्शन के विद्यार्थियों को
आमिल	—	धार्मिक शिक्षा के विद्यार्थियों को
काबिल	—	साहित्य के विद्यार्थियों को।

5. मुगल शासकों द्वारा बनाई गई प्रमुख इमारतों के नाम बताइए।

उ०– मुगल शासकों द्वारा बनवाई गई प्रमुख इमारतें– मुगल शासकों द्वारा बनवाई गई कुछ प्रमुख इमारतें निम्नलिखित हैं—

(i) बाबर द्वारा बनवाई गई इमारतें– काबुली बाग मस्जिद, पानीपत की जामा मस्जिद, सम्भल की मस्जिद, दीन पनाह महल आदि।

(ii) हुमायूँ द्वारा बनवाई गई इमारतें– आगरे का लाल किला, सलीम चिश्ती का मकबरा, फिरोजाबाद मस्जिद, आगरा मस्जिद आदि।

(iii) अकबर द्वारा बनवाई गई इमारतें– लाहौर का किला, इलाहाबाद का किला, जोधाबाई महल, जहाँगीर महल, अकबरी महल, बुलन्द दरवाजा आदि।

(iv) जहाँगीर द्वारा बनवाई गई इमारतें– लाहौर का मकबरा, आगरा में एतमादुद्दौला का मकबरा, फतेहपुर सीकरी नगर की स्थापना, दिल्ली की जामा मस्जिद आदि।

(v) शाहजहाँ द्वारा बनवाई गई इमारतें– दिल्ली का लालकिला, आगरा का ताजमहल व आगरा की मोती मस्जिद आदि।

(vi) औरंगजेब द्वारा बनवाई गई इमारतें– रबिया दुर्रानी का मकबरा, बादशाही मस्जिद आदि।

6. मुगलकाल में संगीत की दशा को स्पष्ट कीजिए।

उ०– मुगलकाल में संगीत की दशा– मुगलकाल में संगीत का बहुत प्रचार एवं प्रसार हुआ। मुगल सम्राटों और उनके शहजादों को संगीत में विशेष रूचि थी। हुमायुँ के शासनकाल में संगीत कला का विकास हुआ। हुमायुँ गायन विद्या का प्रेमी था। मांडू पर विजय प्राप्त करने के बाद उसने वहाँ से लाए **बच्चू** को अपने दरबार में गायक के पद पर आसीन किया। हुमायूँ ने सप्ताह के दो दिन सोमवार तथा बुधवार संगीत के लिए निश्चित किए थे। हुमायूँ ने संगीतज्ञों को आश्रय एवं विशेष सम्मान दिया था।

संगीत कला का वास्तविक विकास सम्राट **अकबर** के शासनकाल में हुआ। अकबर स्वयं एक कुशल संगीतकार था। उसके दरबार में हिन्दू, ईरानी, तुरानी तथा कश्मीरी अनेक प्रसिद्ध संगीतकार थे। उसने संगीतकारों के सात वर्ग बनाए थे और प्रत्येक वर्ग के संगीत के लिए सप्ताह का एक दिन निश्चित कर रखा था। उसके दरबार का श्रेष्ठ संगीतज्ञ **तानसेन** था। जिसका नाम संगीत की दुनिया में अमर है। **बाबा रामदास, सूरदास, बैजूबावरा** आदि अन्य प्रसिद्ध संगीतकार थे। अकबर के दरबारी जैसे— अबुल फजल, अब्दुर्रहीम खानखाना, राजा भगवान दास, राजा मानसिंह आदि महान संगीत प्रेमी थे। संगीत के प्रति अकबर की रुचि और संरक्षण के कारण गायन तथा वादन दोनों विधाओं की बड़ी उन्नति हुई। उसके दरबार में हिन्दू तथा मुस्लिम दोनों विधाओं का मुक्त रूप से सम्मिलन हुआ।

जहाँगीर भी संगीत प्रेमी था। उसने अपने पिता की परम्पराओं को जारी रखा। सैकड़ों गायक और नर्तकियाँ उसके दरबार की शोभा बढ़ाते थे। उसके दरबार के कुशल संगीतकारों में **जहाँगीर दाद, परवेज दाद, खुर्रम दाद, मक्खू, हमजा** और **चतुर खाँ** के नाम उल्लेखनीय हैं। **शाहजहाँ** संगीत प्रेमी होने के साथ—साथ स्वयं भी संगीत का उपासक था। दीवाने खास में संगीतवाद्य और गायन का प्रतिदिन आयोजन होता था। संम्राट का प्राय: नित्य संध्या का समय संगीत सुनने में व्यतीत होता था। उसके दरबार के कुशल संगीतज्ञों में **जगन्नाथ, रामदास, महापात्र, सुखसेन, सूरसेन, दुरंग खाँ, लाल खाँ** के नाम उल्लेखनीय हैं।

7. मुगलकालीन मुद्रा को समझाइए।

उ०– मुद्रा– दाम नामक सिक्का जो कि ताँबे की धातु से निर्मित था, मुगलकाल में सबसे अधिक प्रचलित था। इस काल में सोने व चाँदी के सिक्के भी प्रचलित थे। सभी प्रकार के सिक्के सरकार की निगरानी में टकसालों पर तैयार किए जाते थे। सोने से बने सिक्कों को **मुहर** तथा चाँदी से बने सिक्कों को **जलाली** कहते थे।

❖ विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

1. मुगलकालीन सामाजिक जीवन को समझाइए।

उ०– **मुगलकालीन सामाजिक जीवन–** मुगलकालीन सामाजिक जीवन का स्वरूप निम्नवत था—

(i) समाज के वर्ग– मुगलकाल में मुस्लिम और हिन्दू समाज अनेक वर्गों में बँट चुका था। समाज में मुख्यत: निम्न तीन वर्ग थे—
अमीर या उच्च वर्ग— शाही परिवार के व्यक्तियों तथा उच्च पदाधिकारियों की गणना उच्च वर्ग में की जाती थी। इनका जीवन वैभव और ऐश्वर्य से भरपूर था। इन्हें **ख्वाजा–जहाँ, मलिक, इमाद–उल–मुल्क, निजाम–उल–मुल्क, सदर–ए–जहाँ** आदि उपाधियाँ प्राप्त होती थीं। शासन में इनका व्यापक प्रभाव होता था।
मध्यम वर्ग— इस वर्ग के अन्तर्गत व्यापारी तथा सरकारी कर्मचारी आते थे। ये लोग समृद्ध तो थे, किन्तु अधिक वैभवपूर्ण जीवन व्यतीत नहीं करते थे।
निम्न वर्ग— इस वर्ग में किसान, कारीगर तथा दास आदि शामिल थे। इनकी दशा बहुत शोचनीय थी। दासों का क्रय—विक्रय होता था।

(ii) हिन्दुओं की दशा– सल्तनत युग की अपेक्षा मुगलकाल में हिन्दुओं की दशा अच्छी थी। सम्राट अकबर के काल में **टोडरमल, मानसिंह** तथा **बीरबल** जैसे हिन्दू, राज्य के महत्वपूर्ण पदों के अधिकारी थे और हिन्दुओं को **जजिया कर** भी नहीं देना पड़ता था। लेकिन जहाँगीर के काल में हिन्दुओं की दशा गिरने लगी थी और औरंगजेब के काल में हिन्दुओं की दशा काफी खराब हो गई थी।

(iii) स्त्रियों की दशा– मुगलकाल में उच्च वर्ग की स्त्रियों को छोड़कर अन्य वर्गों की स्त्रियों की दशा शोचनीय थी। उस समय कन्या का जन्म अशुभ माना जाता था। पर्दा, बहु—विवाह, बाल—विवाह, जौहर प्रथा आदि प्रथाएँ प्रचलित थी। सम्राटों और अमीरों के हरमों में सैकड़ों स्त्रियाँ नारकीय जीवन व्यतीत करती थीं। विधवाओं को पुन:विवाह करने की अनुमति नहीं थी।

(iv) खान-पान– इस युग मे उच्च वर्ग और मध्यम वर्ग का भोजन उत्तम होता था, निम्न वर्ग में खिचड़ी खाने का अधिक प्रचलन था। उच्च वर्ग के मुसलमानों में मांस, मछली तथा मद्यपान आदि का विशेषत: सेवन किया जाता था।

(v) वस्त्र और आभूषण– मुगलकाल में उच्च वर्ग के लोग बहुमूल्य वस्त्र पहनते थे। इस समय अंगरखे, तातार (गाउन जैसे वस्त्र), टोपी, फरकोट आदि वस्त्र विशेष प्रचलित थे। स्त्रियाँ चोली, लहँगा, धोती, पायजामा, गरारा आदि पहनती थीं। स्त्री और पुरुष दोनों ही आभूषण पहनते थे। पुरुषों के मुख्य आभूषण कण्ठहार, माला, कुण्डल आदि थे, जबकि महिलाएँ चूड़ियाँ, कड़े, पायजेब आदि पहनती थीं। शृंगार की भी बहुत—सी वस्तुओं का उपयोग किया जाता था।

(vi) मनोरंजन के साधन– मुगलकाल में चौगान, आखेट, मछली पकड़ना, पशु—दौड़, पशु—युद्ध, शतरंज, चौपड़, ताश के खेल आदि मनोरंजन के प्रमुख साधन थे। इस काल में **होली, दीवाली, दशहरा, रक्षाबन्धन, शबेरात, ईद, नौरोज** तथा अनेक शाही उत्सव और त्योहार बहुत धूमधाम से मनाए जाते थे। मुगल सम्राटों के जन्मदिन मनाने की प्रथा भी प्रचलित थी।

2. मुगलकाल के राजनीतिक जीवन पर प्रकाश डालिए।

उ०– **मुगलकालीन राजनीतिक जीवन–** मुगलकाल में साम्राज्य का प्रमुख सम्राट ही होता था। सम्राट के द्वारा ही शासन व्यवस्थापक का कार्य होता था। सम्राट ही स्वयं कानून बनाता था तथा न्याय का अधिकार भी उसके पास ही था। अपनी सहायता के लिए वह कुछ मन्त्रियों की नियुक्ति भी करता था। प्रशासनिक सुविधा के लिए उसने साम्राज्य का विभाजन सूबों में किया था। सूबे का सर्वोच्च अधिकारी सूबेदार होता था। सूबों का विभाजन जिलों में किया गया था। जिले के प्रमुख अधिकारी को फौजदार कहते थे। जिले का विभाजन परगने में और परगनों का विभाजन गाँवों में किया गया था।

इस काल का प्रमुख सम्राट अकबर था। अकबर ने अपने शासनकाल के दौरान हिन्दुओं, मुख्यत: राजपूतों के साथ मैत्री सम्बन्ध स्थापित करने का कार्य किया। अकबर ने हिन्दू महिला जोधाबाई को अपनी महारानी बनाया। धार्मिक कट्टरता को समाप्त करने के लिए उसने नए धर्म **'दीन–ए–इलाही'** की स्थापना की। अकबर का शासनकाल जहाँगीर और शाहजहाँ के शासनकाल तक कायम रहा। अकबर का सम्पूर्ण शासनकाल सुव्यवस्था एवं शान्ति का शासनकाल था। मुगलकाल की मनसबदारी प्रथा का आरम्भ सम्राट अकबर ने ही किया।

'मनसब' अरबी भाषा का शब्द है जिसका अर्थ है **स्थान** या **पद**। मनसबदारी का अर्थ होता था— मुगल राज्य की सेवा में रहने का प्रमाण। मनसबदार शब्द का प्रयोग केवल उच्च अधिकारियों के लिए किया जाता था। औरंगजेब ने अपनी धार्मिक कट्टरता के कारण राजपूतों को अपना शत्रु बनाकर मुगल वंश की नींव को खोखला कर दिया।

3. मुगलकाल की स्थापत्य की विवेचना कीजिए।

उ०– **मुगलकाल की स्थापत्य कला**

प्रारम्भिक मुगल शासकों के काल में स्थापत्य कला– यद्यपि बाबर व हुमायूँ दोनों इस कला के शौकीन थे, किन्तु साम्राज्य स्थापना के लिए युद्धों में लीन रहने के कारण उन्हें इस क्षेत्र में अपना योगदान देने का अवसर नहीं मिल सका। बाबर ने अनेक भवनों का निर्माण कराया। **पानीपत** तथा **सम्भल की मस्जिदें** उसकी भवन—निर्माण कला का उदाहरण हैं। इसी प्रकार हुमायूँ ने भी **फतेहाबाद की मस्जिद** बनवाई तथा **सहसराम में शेरशाह का मकबरा** उसी के शासनकाल के उदाहरण हैं।

अकबर के काल में स्थापत्य कला– स्थापत्य कला के क्षेत्र में विशेष उन्नति अकबर के शासनकाल में हुई। **फतेहपुर सीकरी का बुलन्द दरवाजा, पंचमहल,** आगरा के दुर्ग में **जहाँगीर का महल, दीवाने–खास**, अटक तथा इलाहाबाद में उसके बनवाए हुए किले उसकी स्थापत्य कला के उदाहरण हैं।

जहाँगीर के काल में स्थापत्य कला– जहाँगीर के चित्रकला प्रेम के कारण भवन—निर्माण कला का विशेष विकास नहीं हो सका, फिर भी उसके समय के दो भवन प्रसिद्ध हैं। इनमें एक है सिकन्दरा में **अकबर का मकबरा**। दूसरा भवन है आगरा में नूरजहाँ के पिता **एतमादुद्दौला का मकबरा,** जिसे नूरजहाँ ने स्वयं बनवाया। यह सम्पूर्ण संगमरमर से बना है एवं इसमें बहुमूल्य पत्थरों की नक्काशी की गई है।

शाहजहाँ के काल में स्थापत्य कला– शाहजहाँ का काल स्थापत्य कला के चरमोत्कर्ष का युग था। उसके समय में भवन—निर्माण कला में शिल्प तथा सामग्री दोनों ही दृष्टिकोणों से परिपक्वता एवं सौन्दर्य दिखाई पड़ता है। लाल बलुआ पत्थर के स्थान पर संगमरमर का भरपूर प्रयोग प्रारम्भ हो गया। **दिल्ली का लाल किला, दीवान–ए–आम** एवं **दीवान–ए–खास, जामा–मस्जिद** एवं **आगरा की मोती मस्जिद** उसके समय के महत्वपूर्ण भवन हैं परन्तु इन सबसे श्रेष्ठ है **आगरा का ताजमहल,** जो सुन्दरता एवं भव्यता दोनों ही दृष्टिकोणों से अनुपम है । प्रमुखतः इन्हीं सुन्दर भवनों के कारण शाहजहाँ के युग को मुगलकाल का **स्वर्ण युग** कहा जाता है। शाहजहाँ द्वारा बनवाया गया **तख्ते ताऊस** (मयूर सिंहासन)विश्व के श्रेष्ठतम सिंहासनों में से एक तथा स्थापत्य एवं शिल्प कला का अद्भुत नमूना है।

औरंगजेब के काल में स्थापत्य कला– औरंगजेब के काल में अन्य कलाओं की ही भाँति स्थापत्य कला का भी ह्रास हुआ। उसने **रबिया दुर्रानी का मकबरा** व **बादशाही मस्जिद** का निर्माण कराया।

4. मुगलकालीन आर्थिक व्यवस्था को समझाइए।

उ०– **मुगलकालीन आर्थिक दशा–** मुगल सम्राटों ने राज्य के आर्थिक विकास पर पर्याप्त ध्यान दिया। अकबर, जहाँगीर और शाहजहाँ के काल में आर्थिक स्थिति बहुत उन्नत थी तथा प्रजा सुखी थी। संक्षेप में मुलकालीन आर्थिक दशा इस प्रकार थी—

(i) कृषि और पशु पालन– परम्परागत विधि से समाज का एक विशाल भाग कृषि और पशुपालन से जुड़ा हुआ था। कृषि बहुत विकसित हो गयी थी। पशुपालन में गाय—भैंस के अतिरिक्त घोड़े और हाथी का महत्व भी बढ़ गया था, क्योंकि सेना और युद्धों में ये पशु बहुत उपयोगी थे। ऊँट और भेड़ भी इस समय के प्रमुख पशु थे।

(ii) उद्योग धन्धे– देश में कई प्रकार के उद्योग—धन्धे प्रचलित थे जिनमें सबसे बड़ा व्यवसाय सूती वस्त्र का बनाना था। बनारस, आगरा, पटना, बुरहानपुर, मुल्तान, लाहौर, बंगाल व मालवा में सूती वस्त्र उन्नत अवस्था में था। गुजरात, कश्मीर, बंगाल व लाहौर के नगरों में रेशमी कपड़ा तैयार किया जाता था। हस्त उद्योग व्यवसाय चरम सीमा पर विकसित था। इनमें बढ़ईगिरी, लुहारगिरी, चर्मकारी, मालाकारी, रस्सी बटना आदि हस्त उद्योग तथा अन्य प्रकार की हस्तकारियों में कलमदान बनाना, कागज उद्योग, कालीन बुनना आदि थे।

(iii) वाणिज्य एवं व्यापार– वाणिज्य एवं व्यापार पूर्ण प्रगति पर था। स्थानीय व्यापार में ग्रामों में छोटी—छोटी वस्तुओं का व्यापार होता था। शहर के बाजारों और मण्डियों में सभी वस्तुओं का उच्च पैमाने पर व्यापार होता था। सुदूर प्रदेशों और विदेशों में आयात—निर्यात का व्यापार बहुत प्रचलित था। पश्चिमी समुद्र तट पर खम्भात, भड़ौंच, सूरत व मालाबार के बन्दरगाह थे। पूर्वी तट पर मछलीपट्टम व हुगली बन्दरगाह थे।

❖ **मानचित्र सम्बन्धी अभ्यास कार्य**

अध्यापक की सहायता से विद्यार्थी स्वयं करें।

❖ **प्रोजेक्ट कार्य**

अध्यापक की सहायता से विद्यार्थी स्वयं करें।

16 मराठा शक्ति का अभ्युदय

अभ्यास

❖ **बहुविकल्पीय प्रश्न**

उ०– बहुविकल्पीय प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्य पुस्तक के पृष्ठ संख्या—141 का अवलोकन कीजिए।

❖ **अतिलघु उत्तरीय प्रश्न**

उ०– अतिलघु उत्तरीय प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्य पुस्तक के पृष्ठ संख्या—141 व 142 का अवलोकन कीजिए।

❖ **लघु उत्तरीय प्रश्न**

1. मराठा साम्राज्य की स्थापना किस प्रकार हुई?

उ०– सत्रहवीं शताब्दी में औरंगजेब की अयोग्यता व अव्यवस्था के कारण मुगल साम्राज्य का विघटन प्रारम्भ हुआ। उसकी अव्यवस्था से मुस्लिम रियासतों में भी रोष व असन्तोष था। मुगल साम्राज्य के पतन से स्वतन्त्र राज्यों का विभिन्न क्षेत्रों में उदय हुआ। मुस्लिमों का मुगल साम्राज्य से असन्तोष मराठा शक्ति के अभ्युदय में एक महत्वपूर्ण कारक सिद्ध हुआ। मध्य युग के अन्तिम दशक में दक्षिण भारत में एक अजेय मराठा शक्ति का उद्‌गम हुआ। मराठा शक्ति का उत्कर्ष किसी एक व्यक्ति या कुछ व्यक्तियों का कार्य नहीं था अपितु मराठा शक्ति के उत्थान के मूल में महाराष्ट्र के सम्पूर्ण निवासी थे जिनमें जाति, भाषा, साहित्य, निवास स्थान आदि की समानता के आधार पर राष्ट्रीयता की भावना का विकास हुआ। यही राष्ट्रीय भावना स्वतन्त्र मराठा साम्राज्य की स्थापना की इच्छा का कारक बनी।

2. मराठों के उदय में राजनीतिक कारणों की भूमिका को स्पष्ट कीजिए।

उ०– मराठों के उदय में राजनीतिक कारणों की भी प्रमुख भूमिका थी— दक्षिण में विभिन्न राज्यों से हुए मुगलों के युद्धों ने मराठों को अपनी शक्ति संगठित करने का बहुत समय दिया। साथ ही मुगलों के दक्षिणी आक्रमणों से मराठों को युद्ध शिक्षा प्राप्त हुई तथा उन्हें राजनीतिक प्रभाव जमाने का महत्वपूर्ण अवसर प्राप्त हुआ।

3. शिवाजी का प्रारम्भिक विजय के बारे में बताइए।

उ०– **शिवाजी की प्रारम्भिक स्थिति–** बीजापुर का सुल्तान 1646 ई० में बीमार पड़ गया था। शिवाजी ने उसकी बीमारी का लाभ उठाते हुए तोरणा के किले पर अपना अधिकार कर लिया था। इस विजय से शिवाजी को लगभग 2,00,000 हूण मिले जिनकी सहायता से उन्होंने राजगढ़ के किले का निर्माण करवाया और एक विशाल सेना तैयार की। इससे उसके आत्मबल में वृद्धि हुई और शीघ्र ही उसने पुरन्दर, कोंदन, रायगढ़ और सिंहगढ़ के किलों पर अपना अधिकार कर लिया। इससे बीजापुर के सुल्तान ने क्रुद्ध होकर शिवाजी के पिताजी शाहजी को गिरफ्तार कर लिया। इस समय शिवाजी ने अपनी बुद्धि और कौशल का प्रयोग करते हुए शाहजहाँ के पुत्र मुराद को बाजीपुर पर आक्रमण करने की सलाह दी और उसको सहायता करने का वचन भी दिया। इससे बीजापुर का सुल्तान घबरा गया और उसने शाहजी को स्वतन्त्र कर दिया। इसके बाद शिवाजी पाँच—छ: वर्ष तक अपनी शक्ति के विस्तार में लगे रहे।

4. शिवाजी के राज्याभिषेक का संक्षिप्त विवरण दीजिए।

उ०– **शिवाजी का राज्यभिषेक (जून, 1674 ई०)–** दिलेर खाँ को हराने के पश्चात् शिवाजी का जून, 1674 ई० में शानोशौकत के साथ **रायगढ़** में राज्याभिषेक किया गया और उन्होंने **छत्रपति** की उपाधि धारण की। चूँकि औरंगजेब राजपूत समस्या को सुलझाने में लगा हुआ था, इस कारण शिवाजी को अपने राज्य विस्तार का भरपूर अवसर मिला और उन्होंने बीजापुर के क्षेत्रों पर आक्रमण करके वहाँ के शासकों से धन एकत्रित किया। उनका सबसे महत्वपूर्ण आक्रमण कर्नाटक का आक्रमण (1677–78 ई०) था, जिसके दौरान उन्होंने वैलोर, जिन्जी, तन्जौर आदि अनेक किले जीते और अपनी प्रतिष्ठा बढ़ाई।

5. शिवाजी के शासन की राजस्व-व्यवस्था को स्पष्ट कीजिए।

उ०– **राजस्व व्यवस्था–** शिवाजी की राजस्व—व्यवस्था मलिक अम्बर की राजस्व व्यवस्था पर आधारित थी। राजस्व प्राप्ति के उद्देश्य से स्वराज क्षेत्र को प्रान्तों में और प्रत्येक प्रान्त को दो या तीन जिलों में बाँटा गया था, साहू के शासनकाल में इन प्रान्तों की संख्या 37 थी । शिवाजी ने वंशानुगत राजस्व अधिकारियों, कुलकर्णी, पाटिल आदि के पद जिलों में समाप्त कर दिए। और उनके स्थान पर नए अधिकारी नियुक्त किए। सभी जिलों के राजस्व अधिकारियों पर सूबेदारों का नियंत्रण था। शिवाजी ने जमींदारी प्रथा को प्रोत्साहित नहीं किया, बल्कि राजस्व एकत्रित करने के लिए राजकीय व्यवस्था को सुदृढ़ किया। इसके लिए शिवाजी ने राज्य को महल, प्रान्त, तरफ, मौजा आदि में विभाजित किया। उन्होंने मन्दिरों और विद्यालयों को भूमि अनुदान में दी। भूमि को काठी से नापा जाता था जिसका हिसाब रखा जाता था। जो भूमि जोतता था उससे सालाना काबूलियत वसूल की जाती

थी। शिवाजी उपज का 30 प्रतिशत से 40 प्रतिशत तक राजस्व के रूप में लेते थे। शिवाजी किसानों का पूरा ध्यान रखते थे और अकाल के वक्त उनकी मदद करते थे।

6. **शिवाजी की सैन्य-व्यवस्था को समझाइए।**

उ०– **सैन्य-व्यवस्था–** शिवाजी की सैन्य—व्यवस्था में **किलों** का प्रमुख स्थान था। शिवाजी के पास लगभग 280 किले थे। शिवाजी उनके रख—रखाव और उनकी सुरक्षा का विशेष ध्यान रखते थे। सुरक्षा की दृष्टि से पहाड़ों पर बने किलों का अत्यधिक महत्व था। किले का प्रमुख अधिकारी **हवलदार** होता था जिसकी सहायता **सूबेदार** और **प्रभु** करते थे। किले की सेना हवलदार के अधीन रहती थी।

शिवाजी के पास एक नियमित बड़ी सेना थी। सेना में पैदल, घुड़सवार, हाथी, बंदूकची और नौसैनिक शामिल थे। घुड़सवार शिवाजी की सेना के प्रमुख भाग थे जिन्हें **पग** कहा जाता था। उनकी गति काफी तेज थी और मराठों की सफलता उन्हीं पर निर्भर करती थी। पगों की संख्या तीस से चालीस हजार के बीच थी। पच्चीस सैनिकों के ऊपर एक हवलदार था और पाँच हवलदारों के ऊपर एक जुमलादार, तेरह जुमलादारों के ऊपर एक हजारी और पाँच हजारियों के ऊपर पंचहजारी होता था। घुडसवार दो प्रकार के थे— **बारगीर** और **सिलहदार**। बारगीरों को सरकार घोड़े, हथियार आदि उपलब्ध कराती थी, जबकि सिलहदारों को नहीं। मराठा सेना में पैदल सैनिकों की संख्या एक लाख से अधिक थी।

हस्ति सेना– शिवाजी की हस्ति सेना में 1,260 हाथी थे और उनके पास आठ तोपें थीं।

नौसेना– शिवाजी की नौसेना का मुख्यालय कोलाबा में था और उनके पास 200 नावों का बेड़ा था।

अनुशासित सेना– मराठा सेना अत्यधिक अनुशासित थी। सैनिकों को नियमित वेतन दिया जाता था। यदि किसी सैनिक की आकस्मिक मृत्यु हो जाती थी तो उसके परिवार को भी कुछ वेतन दिया जाता था। शिवाजी ने सैन्य नियमों को कठोरता से लागू किया। कोई भी सैनिक युद्ध के मैदान में स्त्री, नर्तकी या नौकरानी को नहीं ले जा सकता था। यदि कोई सैनिक ऐसा करता था तो उसे मृत्युदण्ड दिया जाता था। युद्ध से प्राप्त सभी वस्तुएँ शाही खजाने में जमा की जाती थीं । सैनिकों को स्पष्ट निर्देश दिए गए थे कि वे किसी भी स्त्री, बच्चे तथा धार्मिक स्थल को हानि नहीं पहुँचाएगें।

❖ विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

1. **मराठों के उत्थान के कारणों पर प्रकाश डालिए।**

उ०– **मराठों के उत्थान के कारण–** मराठा राज्य की स्थापना **शिवाजी** ने की थी। मराठों के उत्कर्ष में मराठा—क्षेत्र की भौगोलिक स्थिति, औरंगजेब का हिन्दू विरोधी नीतियों के फलस्वरूप हिन्दू जागरण, मराठा संत कवियों का धार्मिक आन्दोलन आदि महत्वपूर्ण कारकों का योगदान रहा। मराठों के मूल प्रदेश के सन्दर्भ में आधुनिक इतिहासकारों का मत है कि मराठे या मरहठ आंध्र तथा द्रविड़ों के मिश्रण थे। आजकल जिस प्रदेश को '**महाराष्ट्र**' कहा जाता है, उसमें मध्य युग में पश्चिमी समुद्र तट का कोंकण प्रदेश, खानदेश तथा बरार का आधुनिक प्रदेश, नागपुर क्षेत्र, दक्षिण का कुछ हिस्सा तथा निजाम के राज्य का एक तिहाई भाग था। यह हिस्सा मराठवाड़ा कहलाता था, जो बाद में 'महाराष्ट्र' कहलाने लगा।

मराठा शक्ति के उत्कर्ष के निम्नलिखित कारण थे—

(i) महाराष्ट्र की भौगोलिक स्थिति का मराठा शक्ति के उत्थान में बहुत महत्वपूर्ण योगदान था। सह्याद्रि पर्वत श्रेणियों की ऊँची चोटियों एवं स्थूल चट्टानों को मराठों ने अपने परिश्रम से सुरक्षात्मक दुर्गों का रूप दे दिया। इन्हीं दुर्गों की सहायता से मराठों ने उत्तर की ओर से आने वाले आक्रमणकारियों से अपनी रक्षा की।

(ii) मराठों के उत्थान में महाराष्ट्र के धार्मिक जागरण ने भी बहुत सहायता की। 15वीं और 16वीं शताब्दी में हुए भक्ति आन्दोलनों ने लोगों को अत्यन्त प्रभावित किया। समर्थ **गुरुरामदास** और **तुकाराम** ने लोगों में राष्ट्रीय चेतना उत्पन्न की और लोग अपने कर्त्तव्य में बहुत सजग हो गए।

(iii) तत्कालीन महाराष्ट्र के लोगों के सामाजिक जीवन में जात—पात, ऊँच—नीच तथा अमीर—गरीब की भावनाएँ न के बराबर ही थीं। उस समय पर्दा प्रथा का अभाव था, जिससे वहाँ की महिलाएँ भी उनकी शक्ति एवं राष्ट्रभक्ति में सदैव सहयोग देती थीं।

(iv) भाषा की एकता से राजनीतिक एवं सांस्कृतिक एकता को बल मिलता है। महाराष्ट्र में भी मराठी भाषा एवं मराठी साहित्य ने मराठों को राष्ट्रीय प्रेम तथा एकता के बन्धन में बाँधने में महत्वपूर्ण योगदान दिया। **तुकाराम, वामन पण्डित, रामदास, एकनाथ, श्रीधर, रघुनाथ पण्डित तथा मोरोपन्त** जैसे समाज सुधारकों एवं सन्तों के भजन, भक्तिगीत, उपदेश एवं वचन मराठी भाषा में रचे गए थे, जिन्होंने महाराष्ट्र के निवासियों को एकता के सूत्र में बाँध दिया।

(v) मराठों में अदम्य साहस, स्वातन्त्र्य प्रेम, कूटनीतिज्ञता, कठोर परिश्रम आदि बहुत सी विशेषताएँ थीं, जिनके कारण उन्होंने मुगल सेनाओं के दाँत खट्टे कर दिए।

(vi) तत्कालीन साहित्य ने भी मराठा शक्ति के उदय में प्रभावपूर्ण भूमिका निभाई। तुकाराम के भजनों ने शिवाजी को आत्मबल प्रदान करते हुए प्रोत्साहित किया।

(vii) मराठों के उदय में राजनीतिक कारणों की भी प्रमुख भूमिका थी— दक्षिण में विभिन्न राज्यों से हुए मुगलों के युद्धों ने मराठों को अपनी शक्ति संगठित करने का बहुत समय दिया। साथ ही मुगलों के दक्षिणी आक्रमणों से मराठों को युद्ध शिक्षा प्राप्त हुई तथा उन्हें राजनीतिक प्रभाव जमाने का महत्वपूर्ण अवसर प्राप्त हुआ।

(viii) शिवाजी एक वीर योद्धा थे। उन्होंने अपने विवेक एवं शक्ति से जावली, कोकड़ और बीजापुर पर विजय प्राप्त कर ली। उनका यह कार्य 1657 तक पूरा हो गया था। उन्होंने 1659 ई० में बीजापुर के सेनापति अफजल खाँ का वध कर दिया। शिवाजी को 1665 ई० में मिर्जा राजा जयसिंह के हस्तक्षेप से मुगलों से पुरन्दर की सन्धि करनी पड़ी। उस समय औरंगजेब मुगल सम्राट था। सन् 1674 ई० में शिवाजी ने अपना राज्याभिषेक कराया। छ: वर्ष तक शासन करने के बाद सन् 1680 ई० में शिवाजी का निधन हो गया। शिवाजी के समय मराठा साम्राज्य दक्षिण का सशक्त राज्य था।

(ix) शिवाजी के बाद उनके पुत्र शम्भाजी छत्रपति बने। शम्भा जी को मुगल सम्राट औरंगजेब ने बन्दी बनाकर मरवा डाला। शम्भाजी का भाई राजाराम (1689 ई० से 1700 ई० तक) मुगलों का सामना करता रहा। राजाराम के बाद उसकी पत्नी ताराबाई ने अपने अवयस्क पुत्र शिवाजी द्वितीय की संरक्षिका बनकर मराठा राज्य की रक्षा की। शाहू जी के समय पेशवाओं की शक्ति में अपार वृद्धि हुई, जिससे वे ही वास्तविक शासक बन गए। **बालाजी विश्वनाथ, बाजीराव प्रथम, बालाजी बाजीराव** के समय मराठा राज्य का विस्तार अपनी पराकाष्ठा पर था।

(x) शिवाजी के उत्थान के समय तक दक्षिण में बीजापुर व गोलकुण्ड़ा की सल्तनत ही शेष थी। आन्तरिक कलह और दुव्यर्वहार ने शिवाजी के उत्कर्ष का मार्ग प्रशस्त कर दिया था।

(xi) मराठों के अभ्युदय का एक कारण महाराष्ट्र की खराब आर्थिक स्थिति भी थी। आर्थिक तंगी ने राजनीतिक पराधीनता को और अधिक उत्तेजित किया। परिणामस्वरूप 17वीं शताब्दी के आरम्भ में मराठे राजनीतिक क्रान्ति के लिए तैयार हो गए।

2. शिवाजी के बाल्यकाल को समझाइए।

उ०– शिवाजी का बाल्यकाल– मराठा राज्य की स्थापना करने वाले शिवाजी का जन्म 10 अप्रैल, 1627 ई० को शिवनेर (पूना) के दुर्ग में हुआ था। इनके पिता का नाम शाह जी भोंसले और माता का नाम जीजाबाई था। शिवाजी के पिता बीजापुर के सुल्तान के यहाँ कार्यरत थे और अपने कार्य को पूरी कर्तव्यनिष्ठा के साथ करते थे। उनकी सेवाओं से प्रसन्न होकर उन्हें पूना की जागीर पुरस्कार स्वरूप में दी गई। शिवाजी पर उनकी माता जीजाबाई के धार्मिक विचारों का बहुत गहरा प्रभाव पड़ा। शिवाजी के पिता 1636 ई० में मुगलों के विरुद्ध अहमदनगर की ओर से लड़े। इसके बाद वे बीजापुर के सुल्तान की सेवा में आ गए और वे कर्नाटक चले गए और अपनी पत्नी व पुत्र शिवाजी को दादाजी कोंणदेव जो कि एक शिक्षक थे के पास पूना में छोड़ दिया। दादाजी ने शिवाजी को सैन्य शिक्षा में कुशलता प्रदान की। शिवाजी पर उनके गुरु समर्थगुरु रामदास का भी बहुत प्रभाव पड़ा।

3. शिवाजी के उत्कर्ष को समझाइए।

उ०– शिवाजी का उत्कर्ष– शिवाजी जब तक दादाजी के सानिध्य में रहे तब तक वे अपने अनुसार किसी भी कार्य को नहीं कर पाए। शिवाजी ने 12 वर्ष की अल्पायु से ही अपने पिताजी की पूना जागीर का प्रतिनिधित्व आरम्भ कर दिया था। शिवाजी ने अपनी पहली विजय 19 वर्ष की आयु में 1646 ई० में प्राप्त की और यहीं से उन्होंने अपने साम्राज्य का विस्तार आरम्भ किया।

(i) प्रारम्भिक विजय– बीजापुर का सुल्तान 1646 ई० में बीमार पड़ गया था। शिवाजी ने उसकी बीमारी का लाभ उठाते हुए तोरणा के किले पर अपना अधिकार कर लिया था। इस विजय से शिवाजी को लगभग 2,00,000 हूण मिले जिनकी सहायता से उन्होंने राजगढ़ के किले का निर्माण करवाया और एक विशाल सेना तैयार की। इससे उसके आत्मबल में वृद्धि हुई और शीघ्र की उसने पुरन्दर, कोंदन, रायगढ़ और सिंहगढ़ के किलों पर अपना अधिकार कर लिया। इससे बीजापुर के सुल्तान ने क्रुद्ध होकर शिवाजी के पिता जी शाहजी को गिरफ्तार कर लिया। इस समय शिवाजी ने अपनी बुद्धि और कौशल का प्रयोग करते हुए शाहजहाँ के पुत्र मुराद को बाजीपुर पर आक्रमण करने की सलाह दी और उसको सहायता करने का वचन भी दिया। इससे बीजापुर का सुल्तान घबरा गया और उसने शाहजी को स्वतन्त्र कर दिया। इसके बाद शिवाजी पाँच—छ: वर्ष तक अपनी शक्ति के विस्तार में लगे रहे।

(ii) शिवाजी और अफजल खाँ– शिवाजी ने 1656 ई० में जावली को जीतकर पुन: अपना विजय अभियान शुरू किया और कल्याण, भिवंडी, एवं माहुली पर अधिकार कर लिया। शिवाजी की इन गतिविधियों से बीजापुर का सुल्तान आग बबूला हो गया और उसने शिवाजी को दण्ड देने के लिए 1659 ई० में अपने सेनापति **अफजल खाँ** को भेजा और शिवाजी को जिन्दा या मुर्दा लाने का आदेश दिया, लेकिन अफजल खाँ के दूत कृष्णाजी भास्कर की मदद से शिवाजी ने अफजल खाँ को प्रतापगढ़ के किले में मार दिया। इसके बाद भी बीजापुर के सुल्तान ने शिवाजी को पकड़ने के लिए कई असफल प्रयास किए और अन्त में 1662 ई० में मराठा सरदार से शान्ति सन्धि कर ली।

(iii) सूरत की लूट– लगातार सफल हो रहे शिवाजी के हौंसले बुलन्द थे। अपने आत्मबल के आधार पर शिवाजी ने जनवरी 1664 ई० में सूरत पर आक्रमण कर दिया। शिवाजी के आक्रमण के समय सूरत प्रसिद्ध बन्दरगाह और धन—धान्य से

युक्त प्रतिष्ठित व्यापारिक केन्द्र भी था। शिवाजी ने तीन चार दिनों तक सूरत में लूटमार की और वहाँ से करोड़ों रुपए की सम्पत्ति प्राप्त की। इस लूट के बाद औरंगजेब बहुत भयभीत हुआ।

(iv) जयसिंह का आक्रमण– जब शिवाजी ने मुगल अधिकारियों को परेशान किया तब 1665 ई० में औरंगजेब ने महाराजा जयसिंह को मुगल सेनापति बनाकर और समस्त अधिकार देकर शिवाजी का दमन करने के लिए भेजा। जयसिंह ने एक के बाद एक अनेक किले जीतकर मराठा शक्ति को काफी कमजोर कर दिया। अन्त में उसने शिवाजी को पुरन्दर के किले में घेर लिया जहाँ उसकी शिवाजी से जून, 1665 ई० में **पुरन्दर की सन्धि** हुई। इस सन्धि के अनुसार शिवाजी को मुगलों को तेईस किले देने पड़े और स्वयं मुगल दरबार में हाजिर होने को तैयार हुए। बदले में जयसिंह ने शिवाजी को आश्वासन दिया की मुगल दरबार में शिवाजी के साथ उचित व्यवहार किया जाएगा, परन्तु दरबार में शिवाजी को तृतीय श्रेणी के दरबारियों की पंक्ति में खड़ा होने के लिए कहा गया। इस अपमान से क्रुद्ध शिवाजी दरबार छोड़कर बाहर आ गए, परन्तु उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया। चालाकी का परिचय देते हुए वे मिठाई के टोकरे में बैठकर भाग निकले और अपने राज्य को वापस लौट आए।

(v) दिलेर खाँ की पराजय– कुछ वर्षों तक शिवाजी ने किसी भी विजय अभियान की ओर कोई ध्यान नहीं दिया था और अपने प्रशासन की देखरेख की। 13 सितम्बर, 1670 ई० को सूरत पर दूसरी बार आक्रमण करके शिवाजी ने लगभग 65 लाख की सम्पत्ति लूटी। इसके बाद शिवाजी ने नान्देड़, माहुली, पुरन्दर और कोंकण पर विजय प्राप्त की। 1674 ई० में शिवाजी ने मुगल सेनापति दिलेर खाँ को परास्त करके अपनी स्थिति बहुत मजबूत कर ली और दक्षिण में मुगलों की स्थिति दयनीय हो गई।

4. शिवाजी की प्रशासन-व्यवस्था को स्पष्ट कीजिए।

उ०–

शिवाजी की प्रशासन व्यवस्था

शिवाजी एक महान योद्धा होने के साथ—साथ एक कुशल शासक भी थे। शिवाजी का शासनकाल हिन्दू शासन पद्धति पर आधारित था। उनके शासन की विशेषताएँ निम्नवत थी—

(i) अष्ट प्रधान– शिवाजी के प्रशासन का आधार अष्ट प्रधान था। आठ प्रमुख अधिकारियों के समूह को अष्ट प्रधान कहा जाता था। शिवाजी के शासन के आठ प्रमुख अधिकारी निम्नवत थे—

(क) प्रधानमन्त्री या पेशवा– यह राजा का प्रधानमन्त्री था। इसे पेशवा भी कहते थे। इसका कार्य सभी विभागों का निरीक्षण करना था। सभी सरकारी दस्तावेजों और पत्रों पर यह अपने हस्ताक्षर कर मोहर लगाता था। यह सभी विजित क्षेत्रों को सुरक्षित रखने का प्रयास भी करता था।

(ख) अमात्य या मजूमदार– यह राज्य का वित्तमन्त्री होता था। इसका कार्य राज्य की आय तथा व्यय का निरीक्षण करना था। इसके साथ—साथ वह राज्य की सम्पूर्ण आय का विवरण भी रखता था।

(ग) मन्त्री या वाक–यानवीस– इसका कार्य राजदरबार में होने वाली समस्त घटनाओं व राजा के समस्त कार्यों का विवरण रखना था। राजा के विरुद्ध होने वाले षड्यन्त्रों एवं कुचक्रों का पता लगाने का कार्य भी इसी का था। राजा के लिए राजमहल की व्यवस्था करना और उसके खान पान के निरीक्षण का कार्य भी इसी का था।

(घ) सुमन्त या दबीर– इसका कार्य बाह्य नीति में राजा को सलाह देना था।

(ड) सेनापति– इसका प्रमुख कार्य सेना का सुचारु रूप से संगठन करके सैनिकों को भर्ती करना था।

(च) पण्डित राव– यह राज्य का धार्मिक अधिकारी था। इसका प्रमुख कार्य धार्मिक कार्यों में दान, धार्मिक उत्सवों का प्रबन्ध, ब्राह्मणों को दान देना तथा धर्म की अवहेलना करने वालों को दण्ड देना था। इसे सदर मुहतसिब भी कहते थे।

(छ) सचिव या शुरु–नवीस– इसका प्रमुख कार्य सरकारी पत्र व्यवहार का था।

(ज) न्यायधीश– यह राज्य का सर्वोच्च न्यायाधीश होता था। इसका प्रमुख कार्य न्याय की उचित व्यवस्था करना था। हिन्दू शास्त्रों के अनुसार दीवानी तथा फौजदारी के मुकदमों का निर्णय यही करता था। छोटी अदालतों के निर्णयों के विरुद्ध भी अपीलें यही सुनता था।

इन मन्त्रियों की सहायता के लिए **आठ लिपिकों** की भी व्यवस्था की गई थी। ये थे— दीवान, मजूमदार, फडनिस, दफ्तरदार, कारखानी, चिटनिस, जामदार और पोटनिस।

(ii) साम्राज्य का प्रान्तों में विभाजन– प्रशासन को श्रेष्ठ बनाने के लिए शिवाजी ने मराठा साम्राज्य को **चार प्रान्तों** में विभाजित किया था। प्रत्येक प्रान्त को मामलातदार के अधीन रखा गया था जिसकी सहायता अनेक अधिकारी करते थे। राज्य में अठारह विभाग थे जिनका निर्देशन अनेक मन्त्री करते थे। इन प्रान्तों को **परगनों में** और परगनों को **गाँवों में** विभाजित किया गया था। ग्राम—प्रशासन **पटेल** चलाता था। जिसकी सहायता का उत्तरदायित्व **पंचायत** पर था।

(iii) जागीर प्रथा की समाप्ति– शिवाजी ने जागीर प्रथा समाप्त कर दी थी और उसके स्थान पर अपने अधिकारियों को नकद वेतन

देना शुरू कर दिया था। इससे प्रशासन और मजबूत हो गया था। शिवाजी ने अधिकारियों के पदों को आनुवंशिक नहीं बनाया।

(iv) **राजस्व व्यवस्था–** शिवाजी की राजस्व—व्यवस्था मलिक अम्बर की राजस्व व्यवस्था पर आधारित थी। राजस्व प्राप्ति के उद्देश्य से स्वराज क्षेत्र को प्रान्तों में और प्रत्येक प्रान्त को दो या तीन जिलों में बाँटा गया था, साहू के शासनकाल में इन प्रान्तों की संख्या 37 थी । शिवाजी ने वंशानुगत राजस्व अधिकारियों, कुलकर्णी, पाटिल आदि के पद जिलों में समाप्त कर दिए। और उनके स्थान पर नए अधिकारी नियुक्त किए। सभी जिलों के राजस्व अधिकारियों पर सूबेदारों का नियंत्रण था। शिवाजी ने जमींदारी प्रथा को प्रोत्साहित नहीं किया, बल्कि राजस्व एकत्रित करने के लिए राजकीय व्यवस्था को सुदृढ़ किया। इसके लिए शिवाजी ने राज्य को महल, प्रान्त, तरफ, मौजा आदि में विभाजित किया। उन्होंने मन्दिरों और विद्यालयों को भूमि अनुदान में दी। भूमि को काठी से नापा जाता था जिसका हिसाब रखा जाता था। जो भूमि जोतता था उससे सालाना काबूलियत वसूल की जाती थी। शिवाजी उपज का 30 प्रतिशत से 40 प्रतिशत तक राजस्व के रूप में लेते थे। शिवाजी किसानों का पूरा ध्यान रखते थे और अकाल के वक्त उनकी मदद करते थे।

(v) **चौथ तथा सरदेशमुखी (प्रसिद्ध कर)–** मराठों के दो कर, चौथ और सरदेशमुखी अत्यधिक प्रसिद्ध हैं। चौथ की वसूली निर्बल राज्यों से बाह्य सुरक्षा के एवज में दी जाती थी। शिवाजी वंशानुगत सरदेशमुखों से अतिरिक्त कर लेते थे जो उनकी आय का 10% था। लेकिन ईश्वरी प्रसाद के अनुसार सरदेशमुख देशमुखों के कार्यों का निरीक्षण एवं मार्गदर्शन करता था जिसके एवज में उसे जो पारिश्रमिक मिलता था उसे '**सरदेशमुखी**' कहते थे और शिवाजी स्वयं को मराठावाड़ा का सरदेशमुख कहते थे।

(vi) **न्याय-व्यवस्था–** शिवाजी की न्याय—व्यवस्था प्राचीन हिन्दू कानून पर आधारित थी। गाँवों में पंचायतें न्यायालय की भूमिका निभाती थी। गाँवों में फौजदारी के मुकदमे पटेल निपटाता था। दीवानी और फौजदारी की अपीलें न्यायाधीश सुनता था। शिवाजी स्वयं भी न्याय करते थे। अन्तिम न्यायालय को **हाजिर मजलिस** कहा जाता था।

(vii) **सैन्य-व्यवस्था–** शिवाजी की सैन्य—व्यवस्था में **किलों** का प्रमुख स्थान था। शिवाजी के पास लगभग 280 किले थे। शिवाजी उनके रख—रखाव और उनकी सुरक्षा का विशेष ध्यान रखते थे। सुरक्षा की दृष्टि से पहाड़ों पर बने किलों का अत्यधिक महत्व था। किले का प्रमुख अधिकारी **हवलदार** होता था जिसकी सहायता **सूबेदार** और **प्रभु** करते थे। किले की सेना हवलदार के अधीन रहती थी।

शिवाजी के पास एक नियमित बड़ी सेना थी। सेना में पैदल, घुड़सवार, हाथी, बंदूकची और नौसैनिक शामिल थे। घुड़सवार शिवाजी की सेना के प्रमुख भाग थे जिन्हें **पग** कहा जाता था। उनकी गति काफी तेज थी और मराठों की सफलता उन्हीं पर निर्भर करती थी। पगों की संख्या तीस से चालीस हजार के बीच थी। पच्चीस सैनिकों के ऊपर एक हवलदार था और पाँच हवलदारों के ऊपर एक जुमलादार, तेरह जुमलादारों के ऊपर एक हजारी और पाँच हजारियों के ऊपर पंचहजारी होता था। घुड़सवार दो प्रकार के थे— **बारगीर** और **सिलहदार**। बारगीरों को सरकार घोड़े, हथियार आदि उपलब्ध कराती थी, जबकि सिलहदारों को नहीं। मराठा सेना में पैदल सैनिकों की संख्या एक लाख से अधिक थी।

हस्ति सेना– शिवाजी की हस्ति सेना में 1,260 हाथी थे और उनके पास आठ तोपें थीं।

नौसेना– शिवाजी की नौसेना का मुख्यालय कोलाबा में था और उनके पास 200 नावों का बेड़ा था।

अनुशासित सेना– मराठा सेना अत्यधिक अनुशासित थी। सैनिकों को नियमित वेतन दिया जाता था। यदि किसी सैनिक की आकस्मिक मृत्यु हो जाती थी तो उसके परिवार को भी कुछ वेतन दिया जाता था। शिवाजी ने सैन्य नियमों को कठोरता से लागू किया। कोई भी सैनिक युद्ध के मैदान में स्त्री, नर्तकी या नौकरानी को नहीं ले जा सकता था। यदि कोई सैनिक ऐसा करता था तो उसे मृत्युदण्ड दिया जाता था। युद्ध से प्राप्त सभी वस्तुएँ शाही खजाने में जमा की जाती थीं । सैनिकों को स्पष्ट निर्देश दिए गए थे कि वे किसी भी स्त्री, बच्चे तथा धार्मिक स्थल को हानि नहीं पहुचाएँगें।

5. मराठों के पतन के कारणों की विवेचना कीजिए।

उ०– **मराठों के पतन के कारण–** शिवाजी के अधीन मराठों ने एक शक्तिशाली हिन्दू राज्य की स्थापना की थी। परन्तु उनकी मृत्यु के पश्चात शीघ्र ही मराठों का पतन (ह्रास) हो गया। मराठों के पतन के मुख्य कारण निम्नलिखित थे—

(i) मराठों ने शासन—व्यवस्था को सुदृढ़ बनाने की ओर विशेष ध्यान नहीं दिया। वे अपना अधिकांश समय लूटमार में ही बिताते थे। इस कारण उनकी प्रजा उनसे नाराज हो गई । ऐसी स्थिति में मराठा—राज्य का स्थायी रह पाना असम्भव था।

(ii) मराठा सरदारों में एकता का अभाव था। वे आपस में लड़ते—झगड़ते रहते थे। यह बात भी उनके लिए पतन का कारण बनी।

(iii) मराठे गुरिल्ला युद्ध प्रणाली में कुशल थे। उन्हें मैदानी युद्ध लड़ने का अधिक अनुभव नहीं था, परन्तु उन्हें अंग्रेजों के विरुद्ध मैदानी युद्ध करने पड़े। फलस्वरूप वे पराजित हुए और उनका पतन हो गया।

(iv) मराठों के पास अंग्रेजों की तरह अच्छे हथियार नहीं थे। उनकी सेना भी अंग्रेजों जैसी संगठित नहीं थी। इस कारण वे अंग्रेजों के विरुद्ध पराजित हुए।

(v) पानीपत के तीसरे युद्ध में हजारों मराठा सैनिक मारे गए। परिणामस्वरूप उनकी सैनिक शक्ति लगभग नष्ट हो गई और वे स्थायी राज्य स्थापित करने में असमर्थ रहे।

(vi) शिवाजी अपने सैनिकों को नकद वेतन देते थे, परन्तु पेशवा बालाजी विश्वनाथ ने जागीर प्रथा आरम्भ कर दी। इसका परिणाम यह हुआ कि मराठा सरदार शक्तिशाली हो गए और केन्द्रीय सत्ता निर्बल हो गई।

❖ **मानचित्र सम्बन्धी अभ्यास कार्य**

अध्यापक की सहायता से विद्यार्थी स्वयं करें।

❖ **प्रोजेक्ट कार्य**

अध्यापक की सहायता से विद्यार्थी स्वयं करें।

इकाई-3: मानचित्र कार्य

ऐतिहासिक स्थलों का अंकन

अभ्यास

अध्यापक की सहायता से विद्यार्थी स्वयं करें।

अनुभाग-दो : नागरिक जीवन

इकाई-1 (क) : भारतीय संविधान

17 भारतीय संविधान का निर्माण एवं विशेषाएँ

अभ्यास

❖ **बहुविकल्पीय प्रश्न**

उ०– बहुविकल्पीय प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्य पुस्तक के पृष्ठ संख्या—156 का अवलोकन कीजिए।

❖ **अतिलघु उत्तरीय प्रश्न**

उ०– अतिलघु उत्तरीय प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्य पुस्तक के पृष्ठ संख्या—156 व 157 का अवलोकन कीजिए।

❖ **लघु उत्तरीय प्रश्न**

1. संविधान का अर्थ समझाइए।

उ०– **संविधान–** 'संविधान' अंग्रेजी भाषा के 'Constitution' शब्द का हिन्दी पर्याय है, जिसका अर्थ है **संरचना**। संरचना शब्द से बहुधा किसी की आकृति का अर्थ लगाया जाता है किन्तु नागरिकशास्त्र में कॉनस्टिट्यूशन शब्द का अर्थ संविधान है, जिसको राज्य के शारीरिक प्रारूप से लिया जाता है।

संविधान एक आधारभूत कानूनी प्रलेख है, जो इस बात की व्यवस्था करता है कि शासन व्यवस्था का संचालन किस प्रकार किया जाएगा।

अन्य शब्दों में ''संविधान से अभिप्राय उन नियमों, कानूनों एवं परम्पराओं के संकलन से है जिनके अनुसार किसी देश का शासन चलाया जाता हो तथा जो नागरिकों के प्रति राज्य के अधिकारों व कर्तव्यों तथा राज्य के प्रति नागरिकों के अधिकारों एवं कर्तव्यों को स्पष्ट करते हों।''

2. विद्वानों द्वारा दी गई संविधान की परिभाषाएँ बताइए।

उ०– **संविधान की परिभाषाएँ–** संविधान शब्द को विभिन्न विद्वानों द्वारा भिन्न—भिन्न परिभाषाओं द्वारा परिभाषित किया गया है। कुछ विद्वानों द्वारा संविधान की निर्गत परिभाषाएँ निम्नलिखित हैं—

''संविधान आधारभूत राजनीतिक संस्थाओं की व्यवस्था होती है।'' **–हर्पन फाइनर**

''संविधान का आशय उन समस्त नियमों से है, जो प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से राज्य की सार्वभौमिक शक्तियों के वितरण अथवा प्रयोग को निर्धारित करते हैं।'' **–डायसी**

''संविधान ऐसे निश्चित नियमों का संग्रह होता है, जिनसे सरकार की कार्यविधि प्रतिपादित होती है और जिनके द्वारा उसका संचालन होता है।''
–ब्राइस

दी गई उपर्युक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि संविधान सरकार की शक्ति तथा सत्ता का स्रोत है। जिस प्रकार से शरीर का ढाँचा अस्थि–संस्थान पर टिका होता है उसी प्रकार से राज्य का ढाँचा संविधान पर आश्रित होता है।

संविधान वास्तव में एक पुस्तक है जो कि सर्वोच्च कानून की हैसियत रखती है। इस पुस्तक में देश के शासन–प्रशासन, सरकार के विभिन्न अंगों के काम–काज व नागरिकों के अधिकारों के बारे में विस्तार से लिखा होता है।

3. संविधान का प्रारूप स्पष्ट कीजिए।

उ०– **संविधान का प्रारूप–** भारतीय संविधान को एक निश्चित प्रारूप देने के लिए एक समिति का गठन किया गया। इस समिति को प्रारूप समिति का नाम दिया गया। इसके अध्यक्ष डॉ० भीमराव अम्बेडकर थे। इस समिति के अन्य सदस्यों में **श्री डी०पी० खेतान,** (वर्ष 1948 में इनकी मृत्यु के बाद टी०टी० कृष्णामाचारी को सदस्य बनाया गया) **श्री माधवराव, मुहम्मद सादुल्ला खाँ, अल्तादी कृष्णास्वामी अय्यर, श्री गोपालस्वामी आयंगर** व **श्री के०एम० मुन्शी** शामिल थे। संविधान के प्रारूप को तैयार करने के लिए 141 दिन का समय लगा। इस प्रारूप को 26 नवम्बर, 1949 ई० को स्वीकार किया गया। इसके उपरान्त संविधान सभा के **अध्यक्ष** डा० राजेन्द्र प्रसाद ने इस पर हस्ताक्षर किए। इस संविधान के निर्माण में 2 वर्ष, 11 माह तथा 18 दिन लगे। इसे तैयार करने में कुल ₹63,96,729 खर्च हुए थे। इसमें 395 अनुच्छेद तथा 8 अनुसूचियाँ थीं। पश्चातवर्ती संशोधनों के बाद 2009 को यथा–विद्यमान संविधान में 448 अनुच्छेद और 12 अनुसूचियाँ हैं। अब तक भारतीय संविधान में 98 बार संशोधन हो चुका है।

4. भारतीय संविधान की प्रस्तावना स्पष्ट कीजिए।

उ०– **संविधान की प्रस्तावना–** ''प्रस्तावना संविधान का सबसे महत्वपूर्ण अंग है। यह विधान की आत्मा एवं संविधान की कुंजी है।'' यह कहना था पं० ठाकुरदास भार्गव का। इसी प्रकार सर्वोच्च न्यायालय ने प्रस्तावना को स्पष्ट करते हुए **बेसबारी विवाद** में कहा है कि '' प्रस्तावना संविधान के निर्माताओं के आशय को स्पष्ट करने वाली कुंजी है।''

भारतीय संविधान की प्रस्तावना के अनुसार– '' हम भारत के लोग, भारत को एक सम्पूर्ण प्रभुत्वसम्पन्न, समाजवादी, पन्थनिरपेक्ष, लोकतन्त्रात्मक गणराज्य बनाने के लिए तथा उसके समस्त नागरिकों को सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय, विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म और उपासना की स्वतन्त्रता, प्रतिष्ठा और अवसर की समता प्राप्त करने के लिए तथा उन सब में व्यक्ति की गरिमा और राष्ट्र की एकता और अखण्डता सुनिश्चित करने वाली बन्धुता बढ़ाने के लिए दृढ़संकल्प होकर अपनी इस संविधान सभा में आज तारीख 26 नवम्बर, 1949 ई० (मिति मार्ग शीर्ष शुक्ल सप्तमी, संवत् दो हजार छ: विक्रमी) को एतद् द्वारा इस संविधान को अंगीकृत, अधिनियमित और आत्मसमर्पित करते हैं।''

5. आपातकालीन शक्तियों को स्पष्ट कीजिए।

उ०– **आपातकालीन शक्तियाँ–** भारतीय संविधान में राष्ट्रपति को कुछ विशेष परिस्थितियों में आपातकालीन स्थिति की घोषणा करने की शक्तियाँ प्राप्त हैं–

(i) युद्ध, बाह्य आक्रमण अथवा सशस्त्र विद्रोह के कारण अथवा इसमें से किसी भी एक के होने की सम्भावना के कारण (अनुच्छेद 352)

(ii) राज्य में संवैधानिक मशीनरी विफल हो जाने अथवा विफल होने की सम्भावना पर (अनुच्छेद 356)

(iii) देश में वित्तीय संकट की आशंका होने पर (अनुच्छेद 360)

राष्ट्रपति अपनी आपातकालीन शक्तियों का प्रयोग राष्ट्रहित में अपने विवेक तथा मन्त्रिमण्डल के परामर्श से करता है।

❖ विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

1. भारतीय संविधान का अर्थ स्पष्ट करते हुए इसके स्रोतों की विवेचना कीजिए।

उ०– **भारतीय संविधन का अर्थ–** इसके लिए लघु उत्तरीय प्रश्न संख्या–1 के उत्तर का अवलोकन कीजिए।

भारतीय संविधान के स्रोत– वैसे तो भारतीय संविधान का निर्माण बहुत विचार–विमर्श और विभिन्न तथ्यों को ध्यान में रखकर किया गया है। भारत के संविधान में विश्व संविधानों के महत्वपूर्ण प्रावधानों को सम्मिलित किया गया है। भारत के संविधान में अधिकतर प्रारूप **1935 ई०** के अधिनियम से लिए गए हैं। यही कारण है कि इसे 1935 ई० के अधिनियम की **कार्बन कॉपी** भी कहा गया है। भारतीय संविधान के प्रमुख स्रोतों में ब्रिटेन का संविधान, अमेरिका का संविधान, आयरलैण्ड का संविधान, कनाडा का संविधान, आस्ट्रेलिया का संविधान, दक्षिण अफ्रीका का संविधान, जर्मनी का संविधान , जापान का संविधान व रूस का संविधान है। इन स्रोतों का संक्षिप्त विवरण निम्नवत है–

(i) 1935 ई० का भारत सरकार अधिनियम– यह अधिनियम ब्रिटिश भारत के लिए इंग्लैण्ड की संसद ने पारित किया था। भारत के वर्तमान संविधान के अधिकांश भाग इस अधिनियम पर आधारित हैं। **हार्डग्रेव के** विचार में, ''भारतीय संविधान

के 395 अनुच्छेदों में से लगभग 250 अनुच्छेद ऐसे हैं जो 1935 ई० के अधिनियम से या तो शब्दश: लिए गए है या फिर उनमें थोड़ा—बहुत परिवर्तन किया गया है।''

(ii) विदेशी संविधानों का प्रभाव– भारतीय संविधान के निर्माताओं ने विश्व के अनेक देशों के संविधानों का अध्ययन किया और विभिन्न देशों के संविधानों की वे बातें अपनाईं, जो भारत की परिस्थितियों के अनुकूल थीं—

ब्रिटिश संविधान– इंग्लैण्ड के संविधान की हमने अनेक बातें अपनाई हैं, जैसे— भारत के राष्ट्रपति का संवैधानिक मुखिया होना, संसदीय शासन—व्यवस्था, संसद में द्विसदनीय विधानमण्डल, राज्यसभा की तुलना में लोकसभा को अधिक शक्तिशाली बनाना, केन्द्रीय मन्त्रिमण्डल का सामूहिक रूप से लोकसभा के प्रति उत्तरदायी होना, मन्त्रिमण्डल में प्रधानमन्त्री का श्रेष्ठ स्थान होना, कानून के शासन का होना आदि।

संयुक्त राज्य अमेरिका का संविधान– भारतीय संविधान के इन विषयों पर अमेरिका के संविधान का मुख्यत: प्रभाव पड़ा है— प्रस्तावना, मौलिक अधिकार, संविधान संशोधन प्रक्रिया, सर्वोच्च न्यायालय, न्यायायिक पुनर्निरीक्षण का अधिकार, न्यायाधीशों को हटाने की विधि, उपराष्ट्रपति के कार्य व स्थिति इत्यादि।

कनाडा का संविधान– कुछ बातें हमने कनाडा के संविधान से ग्रहण की हैं, जैसे— भारत को राज्यों का संघ (Union of States) कहना, राज्यों की तुलना में केन्द्र को अधिक शक्तिशाली बनाना, शक्तियों के विभाजन में शेष शक्तियाँ (Residuary Powers) केन्द्र को देना आदि।

आयरलैण्ड का संविधान– राज्य के नीति निदेशक सिद्धान्त, राष्ट्रपति की विशेष निर्वाचन—मण्डल द्वारा चुनाव की व्यवस्था, राज्यसभा के कुछ सदस्यों की नियुक्ति की व्यवस्था आदि आयरिश संविधान पर आधारित हैं।

ऑस्ट्रेलिया का संविधान– हमारे संविधान में समवर्ती सूची तथा केन्द्र—राज्यों में झगड़ों की निपटारा—विधि ऑस्ट्रेलिया के संविधान से अपनाई गई हैं।

जर्मनी का संविधान– राष्ट्रपति की संकटकालीन शक्तियों का स्रोत जर्मनी का संविधान है।

दक्षिण अफ्रीका का संविधान– संवैधानिक संशोधन की प्रक्रिया तथा राज्यसभा के सदस्यों की निर्वाचन—विधि दक्षिण अफ्रीका के संविधान से प्रभावित हैं।

जापान का संविधान– भारतीय संविधान के अनुच्छेद 21 में वर्णित **कानून द्वारा स्थापित प्रक्रिया** शब्द को जापान के संविधान से लिया गया है।

रूस का संविधान– संविधान में 42वें संविधान संशोधन द्वारा सम्मिलित किए गए 'मौलिक कर्तव्यों' को रूस के संविधान से लिया गया है।

(iii) 1928 की नेहरू रिपोर्ट– पं० मोतीलाल नेहरू की अध्यक्षता में गठित इस समिति की रिपोर्ट में कुछ ऐसी बातों की सिफारिश की गई थी जो वर्तमान भारतीय संविधान की प्रमुख विशेषताएँ हैं, जैसे— भारत में संघात्मक शासन—व्यवस्था की जाए जिसमें केन्द्र शक्तिशाली हो, केन्द्र में द्विसदनीय विधानमण्डल की व्यवस्था की जाए, साम्प्रदायिक चुनाव—प्रणाली के स्थान पर संयुक्त चुनाव—प्रणाली लागू की जाए, सार्वभौमिक वयस्क मताधिकार अपनाया जाए, भारत को धर्म—निरपेक्ष राज्य घोषित किया जाए, देश में सर्वोच्च न्यायालय की स्थापना की जाए इत्यादि।

2. भारतीय संविधान की प्रमुख विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।

उ०– भारतीय संविधान की प्रमुख विशेषताएँ– भारतीय संविधान 26 नवम्बर, 1949 ई० को बनकर तैयार हुआ था और 26 जनवरी, 1950 ई० को इसे सम्पूर्ण देश में लागू कर दिया गया था। भारतीय संविधान की मूलभूत विशेषताएँ निम्नलिखित हैं—

(i) विस्तृत तथा लिखित संविधान– भारतीय संविधान एक निश्चित लेख के रूप में विद्यमान है। भारतीय संविधान एक विस्तृत संविधान है। इसमें वर्तमान समय में 448 अनुच्छेद (22 भागों में विभाजित), 12 अनुसूचियाँ और 3 परिशिष्ट हैं। भारत के संविधान को इसके विशालतम स्वरूप के कारण **सर आइबर जेनिंग्स** ने इसे विश्व का सबसे बड़ा और विस्तृत संविधान कहा है।

(ii) सम्पूर्ण प्रभुत्वसम्पन्न लोकतन्त्रात्मक गणराज्य की स्थापना– भारतीय संविधान की प्रस्तावना में यह बात स्पष्ट है कि भारत का संविधान भारत में प्रभुत्वसम्पन्न लोकतन्त्रात्मक गणराज्य की स्थापना करता है। प्रभुत्वसम्पन्न का अर्थ है कि भारत अपने आन्तरिक तथा बाह्य मामलों में पूर्ण रूप से स्वतन्त्र तथा सर्वोच्च सत्ताधारी है। लोकतन्त्रात्मक का अर्थ है— भारत में जनता वयस्क मताधिकार के आधार पर प्रत्येक पाँच वर्ष के लिए अपने प्रतिनिधियों का चुनाव करती है। मन्त्रिमण्डल को जनता के प्रतिनिधियों द्वारा हटाया जा सकता है। गणराज्य का अर्थ है कि देश का प्रधान (राष्ट्रपति) प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से निर्वाचित अधिकारी होगा। भारत का राष्ट्रपति 5 वर्ष के लिए जनता के प्रतिनिधियों द्वारा निर्वाचित किया जाता है। इस प्रकार देश का प्रधान वंशानुगत न होकर एक निर्वाचित अधिकारी होता है।

(iii) संघीय सरकार– भारत के संविधान में देश में संघीय शासन प्रणाली की व्यवस्था की गई है। संघीय शासन के अन्तर्गत दो

प्रकार की सरकारें होती हैं— राज्यों की अपनी—अपनी सरकारें तथा केन्द्रीय सरकार। केन्द्र सरकार तथा राज्य सरकारों के मध्य शासन की शक्तियों का बँटवारा किया गया है। इन शक्तियों को तीन सूचियों—संघीय सूची, राज्य सूची तथा समवर्ती सूची में विभाजित किया गया है।

(iv) मौलिक कर्तव्य– भारतीय संविधान में कर्त्तव्यों के महत्व को ध्यान में रखते हुए 42वें संशोधन 1976 द्वारा चतुर्थ अध्याय में अनुच्छेद 51ए जोड़ा गया है जिसमें दस मौलिक कर्त्तव्यों को शमिल किया गया है। 86वें संशोधन में एक मौलिक कर्तव्य को और शामिल किया गया है। यह संशोधन दिसम्बर, 2002 में हुआ था। अब कुल मौलिक कर्त्तव्यों की संख्या 11 है।

(v) इकहरी नागरिकता– भारतीय संविधान में प्रत्येक नागरिक को इकहरी (एकल) नागरिकता प्रदान की गई है। भारत का प्रत्येक नागरिक, चाहे वह देश के किसी भी भाग (या राज्य) में रहता हो, भारत का ही नागरिक है।

(vi) वयस्क मताधिकार– भारतीय संविधान में वयस्क मताधिकार के सिद्धान्त को लागू किया गया है। प्रत्येक व्यक्ति जिसकी आयु 18 वर्ष या उससे अधिक है को मत देने का अधिकार है। इस नियम से अब तक सोलह लोकसभा चुनाव करवाए जा चुके हैं।

(vii) राज्य के नीति– निदेशक सिद्धान्तों का समावेश— भारत में कल्याणकारी राज्य की स्थापना के उद्देश्य से संविधान में राज्य के नीति—निदेशक सिद्धान्तों (तत्वों) का उल्लेख किया गया है। ये नीति—निदेशक सिद्धान्त शासन—नीति के सम्बन्ध में राज्य सरकारों को दिए गए निर्देश हैं।

(viii) लचीला और कठोर संविधान– भारत का संविधान लचीला भी है और कठोर भी। इसके कुछ प्रावधानों में साधारण बहुमत से जब कि कुछ प्रावधानों में 2/3 बहुमत तथा आधे से अधिक विधानसभाओं की स्वीकृति से ही संशोधन किया जा सकता है।

(ix) समान न्याय–व्यवस्था– भारत के सर्वोच्च न्यायालय तथा राज्यों के न्यायालयों में दीवानी और फौजदारी मुकदमों के लिए एक से कानून बनाए गए है। भारत का प्रत्येक नागरिक कानून के समक्ष बराबर है। कानून सर्वोच्च है। कानून का उल्लंघन करने पर सभी के लिए समान दण्ड की व्यवस्था है।

(x) बहुदलीय व्यवस्था– भारत में द्विदलीय पद्धति अथवा एकल पद्धति को न अपनाकर बहुदलीय पद्धति पर आधारित संसदात्मक व्यवस्था को अपनाया गया है। यही कारण है कि आज भारत में राष्ट्रीय तथा क्षेत्रीय दलों की भरमार है।

(xi) न्यायपालिका की श्रेष्ठता– संविधान में एक सर्वोच्च न्यायालय की व्यवस्था की गई है, जो संविधान के रक्षक के रूप में कार्य करता है। स्वतन्त्र और निष्पक्ष न्याय के लिए न्यायपालिका को कार्यपालिका के नियन्त्रण से मुक्त रखा गया है।

(xii) अल्पसंख्यकों के हितों की रक्षा– संविधान में अल्पसंख्यकों के धार्मिक, आर्थिक तथा राजनीतिक हितों की रक्षा के लिए विशेष सुविधाओं की व्यवस्था की गई है, जिससे वे भी एक आदर्श नागरिक का जीवन बिता सकें।

(xiii) अस्पृश्यता की समाप्ति– भारतीय संविधान में मनुष्यों के बीच ऊँच—नीच तथा स्पृश्य—अस्पृश्य का भेदभाव समाप्त करके छुआछूत को अवैध घोषित किया गया है।

(xiv) विश्व–शान्ति का समर्थक– भारतीय जीवन और संस्कृति का आदर्श सदैव **वसुधैव कुटुम्बकम्** रहा है। हमारे संविधान निर्माताओं ने विश्व—शान्ति को बनाए रखने के लिए राज्य के नीति—निदेशक तत्वों में अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति तथा सुरक्षा की व्यवस्था की है। इसी कारण संविधान के नीति—निदेशक तत्वों में कहा गया है 'राज्य अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति तथा सुरक्षा की उन्नति का और राष्ट्रों के बीच न्याय तथा सम्मानपूर्ण सम्बन्धों को बनाये रखने का प्रयत्न करेगा।''

(xv) कुछ स्वतन्त्र संस्थाओं की व्यवस्था– भारतीय संविधान में कुछ स्वतन्त्र संस्थाओं की व्यवस्था की गई है। चुनाव आयोग, लेखा—नियन्त्रक तथा महालेखा परीक्षक, लोक सेवा आयोग तथा महान्यायवादी ऐसे ही उच्च पद व संस्थाएँ हैं।

(xvi) राष्ट्रभाषा– भारतीय संविधान में 22 भाषाओं को मान्यता प्रदान की गई है। हिन्दी भाषा को देवनागरी लिपि में केन्द्र की सरकारी भाषा घोषित किया गया है। राज्य सरकारों तथा केन्द्र सरकार को हिन्दी के विकास का उत्तरदायित्व सौंपा गया है। खेद का विषय है कि स्वतन्त्रता प्राप्ति से लेकर अब तक 68 वर्षों के बाद भी हिन्दी को वांछनीय स्थान प्राप्त नहीं हो पाया है।

(xvii) आपातकालीन शक्तियाँ– भारतीय संविधान में राष्ट्रपति को कुछ विशेष परिस्थितियों में आपातकालीन स्थिति की घोषणा करने की शक्तियाँ प्राप्त हैं—

(क) युद्ध, बाह्य आक्रमण अथवा सशस्त्र विद्रोह के कारण अथवा इसमें से किसी भी एक के होने की सम्भावना के कारण (अनुच्छेद 352)

(ख) राज्य में संवैधानिक मशीनरी विफल हो जाने अथवा विफल होने की सम्भावना पर (अनुच्छेद 356)

(ग) देश में वित्तीय संकट की आशंका होने पर (अनुच्छेद 360)

राष्ट्रपति अपनी आपातकालीन शक्तियों का प्रयोग राष्ट्रहित में अपने विवेक तथा मन्त्रिमण्डल के परामर्श से करता है।

3. सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न लोकतंत्रात्मक गणराज्य को स्पष्ट कीजिए।

उ०– उत्तर के लिए विस्तृत उत्तरीय प्रश्न संख्या—2 के उत्तर का अवलोकन कीजिए।

4. भारतीय संविधान के स्वरूप को स्पष्ट कीजिए।

उ०– भारतीय संविधान का स्वरूप– भारतीय संविधान में संघात्मक तथा एकात्मक दोनों प्रकार के संविधानों के लक्षण पाए जाते हैं। विद्वानों के विचार में भारतीय संविधान संघात्मक होते हुए भी एकात्मकता के लक्षणों से परिपूर्ण है, अर्थात भारत का संविधान एकात्मकता की ओर झुकता हुआ संघात्मक संविधान है। दुर्गादास बसु के मतानुसार,''भारतीय संविधान न तो पूर्णतया संघात्मक है और न ही पूर्णतया एकात्मक वरन् यह दोनों का मिश्रण है।''

भारतीय संविधान की संघात्मक विशेषताएँ– भारतीय संविधान में संघात्मक संविधान के निम्नांकित लक्षण पाए जाते हैं—

(i) लिखित तथा स्पष्ट संविधान– भारतीय संविधान एक लिखित संविधान है जिसमें सरल तथा स्पष्ट अर्थों वाली शब्दावली का प्रयोग किया गया है। इसे देश की संविधान सभा ने तैयार किया था।

(ii) दोहरी शासन-प्रणाली– भारतीय संविधान द्वारा देश में दोहरी शासन-प्रणाली की स्थापना की गई है। भारत 'राज्यों का संघ' है। समस्त देश पर केन्द्र सरकार का तथा राज्यों में राज्य सरकारों का शासन होता है।

(iii) सर्वोच्च तथा कठोर संविधान– भारतीय संविधान को देश के सर्वोच्च कानून की स्थिति प्राप्त है। कोई भी सरकार इसका उल्लंघन नहीं कर सकती। यह कठोर इसलिए है क्योंकि इसमें संशोधन की प्रक्रिया को बहुत जटिल रखा गया है। राज्यों के अधिकार क्षेत्र के सम्बन्ध में तो अकेले केन्द्रीय संसद कोई संशोधन नहीं कर सकती।

संविधान के अनुच्छेद 368 के संघीय उपबन्धों में संशोधन के लिए संसद के दोनों सदनों के 2/3 बहुमत तथा कम से कम आधे राज्यों के विधानमण्डलों की स्वीकृति अनिवार्य है। संविधान-संशोधन की यह जटिलता भारतीय संविधान को संघात्मक श्रेणी प्रदान करती है।

(iv) केन्द्र तथा राज्यों के बीच शक्ति-विभाजन– देश के संविधान के अन्तर्गत केन्द्र और राज्यों के बीच शक्तियों का स्पष्ट विभाजन किया गया है। शासन की शक्तियों के सम्बन्ध में विषयों को निम्न **तीन सूचियों में** बाँट दिया गया है—

संघ सूची– इसमें 97 विषयों को रखा गया है जिन पर **केवल केन्द्र सरकार** को कानून बनाने का अधिकार है।

राज्य सूची– इसमें 66 विषय शामिल किए गए हैं जिन पर **केवल राज्य सरकारों** को कानून बनाने का अधिकार है।

समवर्ती सूची– इसमें 47 विषय रखे गए हैं जिन पर केन्द्र तथा राज्यों की सरकारें कानून बना सकती है किन्तु सर्वोच्चता केन्द्रीय सरकार को प्राप्त है। विरोधाभास की स्थिति में केन्द्रीय सरकार द्वारा बनाया गया कानून ही मान्य होगा और राज्य द्वारा तैयार कानून रद्द माना जाएगा।

अवशिष्ट विषय केन्द्रीय सरकार के अधीन है।

(v) स्वतन्त्र न्यायपालिका– भारतीय संविधान में एक स्वतन्त्र तथा शक्तिशाली न्यायपालिका की व्यवस्था की गई है। देश का सर्वोच्च न्यायालय केन्द्रीय तथा प्रान्तीय सरकारों के नियन्त्रण से मुक्त है। यह संसद तथा राज्य सरकारों द्वारा निर्मित कानूनों को अवैध घोषित कर सकता है। इसे संविधान की व्याख्या तथा रक्षा करने का कार्यभार सौंपा गया है।

भारतीय संविधान की एकात्मक विशेषताएँ– विद्वानों के अनुसार, भारतीय संविधान की प्रकृति संघीय है किन्तु इसकी आत्मा एकात्मक है। नि:सन्देह भारतीय संविधान में संघीय संविधान के अनेक लक्षण विद्यमान हैं, तथापि इसमें ऐसे अनेक एकात्मक लक्षण भी विद्यमान हैं जो केन्द्र को शक्तिशाली बनाने में सहायक हैं। देश के संविधान में एकात्मक शासन के निम्नलिखित लक्षण पाए जाते हैं—

(i) इकहरी या एकल नागरिकता– संविधान में देश के नागरिकों को केवल भारतीय नागरिकता प्रदान की गई है। इसमें राज्यों की पृथक नागरिकता की कोई व्यवस्था नहीं है।

(ii) राज्यों के पृथक संविधान नहीं– भारत में संघ तथा राज्यों के लिए एक ही संविधान है। राज्यों को अपने पृथक संविधान बनाने का अधिकार नहीं है।

(iii) शक्तिशाली केन्द्र– भारतीय संविधान में शक्तियों का विभाजन **केन्द्र के पक्ष में** किया गया है। सभी महत्वपूर्ण विषयों को संघ सूची में रखा गया है। समवर्ती सूची के विषयों पर दोनों ही प्रकार की सरकारों को कानून बनाने का अधिकार है, किन्तु दोनों (केन्द्र व राज्यों) के कानूनों में विरोधाभास की स्थिति में केन्द्र सरकार के कानून मान्य होंगे। अवशिष्ट विषयों पर कानून बनाने का अधिकार संसद को प्राप्त है।

(iv) राज्य-सूची पर कानून-निर्माण– भारतीय संविधान के अन्तर्गत सामान्य तथा आपातकालीन दशाओं में संसद को राज्य—सूची में दिए गए विषयों पर कानून—निर्माण का अधिकार प्राप्त है।

(v) संविधान में संशोधन– राज्यों को संविधान में संशोधन करने का कोई अधिकार नहीं है।

(vi) सीमाओं में परिवर्तन– केन्द्र सरकार को राज्यों की सीमाओं में परिवर्तन करने, नए राज्यों का निर्माण करने तथा राज्यों के नाम बदलने का अधिकार है। राज्यों को केन्द्र (संघ) से अलग होने का अधिकार नहीं है।

(vii) सेना भेजना– केन्द्रीय सरकार प्रान्तीय सरकार के परामर्श के बिना भी राज्य में सेना भेज सकती है।

(viii) **राज्यपाल का पद–** राज्यपाल प्रान्तीय शासन का अध्यक्ष होता है। राज्यपाल की नियुक्ति, स्थानान्तरण तथा पदच्युति का अधिकार राष्ट्रपति को है। वस्तुत: राज्यपाल केन्द्रीय सरकार के एजेण्ट के रूप में कार्य करता है।

(ix) **राज्यों की वित्तीय निर्भरता–** राज्य सरकारें अपने विकासशील कार्यों हेतु केन्द्रीय अनुदानों तथा ऋण पर निर्भर करती हैं।

(x) **समान न्याय–व्यवस्था–** एकात्मक संविधान का एक प्रमुख लक्षण यह होता है कि समूचे देश में समान न्याय—व्यवस्था पाई जाती है। भारतीय संविधान में भी यह विशेषता विद्यमान है। देश के सर्वोच्च न्यायालय तथा राज्यों के न्यायालयों में दीवानी तथा फौजदारी मुकदमों के लिए एक जैसे कानून बनाए गए हैं। साथ ही राज्यों के उच्च न्यायालयों को सर्वोच्च (उच्चतम) न्यायालय के अधीन रखा गया है।

(xi) **राष्ट्रपति की सर्वोच्च शक्तियाँ–** संविधान के अनुसार संकट या आपातकाल में देश की शासन सम्बन्धी समस्त शक्तियाँ राष्ट्रपति के हाथों में आ जाती है। राज्यों की सरकारों को राष्ट्रपति की इच्छानुसार अपने राज्यों का शासन चलाना पड़ता है।

(xii) **राष्ट्रपति पर महाभियोग–** राष्ट्रपति पर महाभियोग लगाने का अधिकार संसद को प्राप्त है।

(xiii) **अन्तर्राष्ट्रीय मामले–** अन्तर्राष्ट्रीय मामलों में संघ या केन्द्र सरकार का एकाधिकार होता है।

निष्कर्ष– भारतीय संविधान की संघात्मक तथा एकात्मक विशेषताओं के सन्दर्भ में **डी०डी० बसु** का यह कथन तर्कसंगत है, ''भारत का संविधान न तो पूर्णतया संघात्मक है और न ही पूरी तरह एकात्मक, वरन् इसमें दोनों स्वरूपों का समन्वय है।''

5. भारतीय संविधान की एकात्मक विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।

उ०– उत्तर के लिए विस्तृत उत्तरीय प्रश्न संख्या—4 के उत्तर का अवलोकन कीजिए।

❖ **मानचित्र सम्बन्धी अभ्यास कार्य**

अध्यापक की सहायता से विद्यार्थी स्वयं करें।

❖ **प्रोजेक्ट कार्य**

अध्यापक की सहायता से विद्यार्थी स्वयं करें।

18 मूल अधिकार और मौलिक कर्तव्य

अभ्यास

❖ **बहुविकल्पीय प्रश्न**

उ०– बहुविकल्पीय प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्य पुस्तक के पृष्ठ संख्या—163 का अवलोकन कीजिए।

❖ **अतिलघु उत्तरीय प्रश्न**

उ०– अतिलघु उत्तरीय प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्य पुस्तक के पृष्ठ संख्या—164 का अवलोकन कीजिए।

❖ **लघु उत्तरीय प्रश्न**

1. मूल अधिकारों का अर्थ स्पष्ट कीजिए।

उ०– **मूल अधिकारों का अर्थ–** प्रजातन्त्र में नागरिकों को उनके सर्वांगिण विकास के लिए जो महत्वपूर्ण सुविधाएँ तथा स्वतन्त्रताएँ प्रदान की जाती हैं, उन्हें मूल अधिकार कहते हैं। अन्य शब्दों में हम कह सकते हैं कि ''जो अधिकार मानव के विकास, कल्याण तथा उन्नति के लिए नितान्त आवश्यक होते हैं, वे 'मूल या मौलिक अधिकार' कहलाते हैं।'' ये अधिकार नागरिकों के सर्वांगीण विकास का आधार माने जाते हैं। व्यवस्थापिका तथा कार्यपालिका द्वारा इनका उल्लंघन नहीं किया जा सकता है। देश की न्यायपालिका का कार्य इन अधिकारों की रक्षा करना होता है। मौलिक अधिकारों के बिना नागरिकों का शारीरिक, मानसिक, नैतिक तथा आध्यात्मिक विकास सम्भव नहीं है। यही कारण है कि संविधान द्वारा भी इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए नागरिकों को मौलिक अधिकार प्रदान किए गए हैं।

2. मूल अधिकारों का महत्व बताइए।

उ०– **मूल अधिकारों का महत्व–** भारतीय संविधान में मूल अधिकारों के माध्यम से उन सुविधाओं की व्यवस्था करने का प्रयत्न किया गया है जो भारतीय लोगों के विकास के लिए अनिवार्य है।

डॉ० भीमराव अम्बेडकर के अनुसार—''मूल अधिकारों के अनुच्छेदों के बिना संविधान अधूरा रह जाएगा। ये संविधान की आत्मा और हृदय हैं।''

इस सन्दर्भ में **प्रो० लास्की** का कथन है, ''अधिकार उन सामाजिक अवस्थाओं का नाम है जिनके बिना कोई भी व्यक्ति पूर्ण

रूप से विकास नहीं कर सकता।'' मूल अधिकारों के महत्व निम्नलिखित है—

(i) मूल अधिकार नागरिकों को न्याय तथा उचित व्यवहार की सुरक्षा प्रदान करते हैं। ये राज्य के बढ़ते हुए हस्तक्षेप तथा व्यक्ति की स्वतन्त्रता के मध्य उचित सन्तुलन स्थापित करते हैं।

(ii) मूल अधिकार प्रजातन्त्र के आधार-स्तम्भ हैं। ये व्यक्ति के सामाजिक, आर्थिक तथा नागरिक जीवन के प्रभावात्मक उपयोग के एकमात्र साधन हैं। मूल अधिकारों द्वारा उन आधारभूत स्वतन्त्रताओं तथा स्थितियों की व्यवस्था की गई है, जिनके अभाव में व्यक्ति उचित रूप से अपना जीवनयापन नहीं कर सकता है।

(iii) मूल अधिकार किसी व्यक्ति विशेष, वर्ग अथवा दल की तानाशाही को रोकने का प्रमुख साधन है। मूल अधिकार सरकार एवं बहुमत के अत्याचारों से व्यक्ति की रक्षा करते हैं। अल्पसंख्यकों की सुरक्षा की दृष्टि से भी मूल अधिकार महत्वपूर्ण हैं।

(iv) मूल अधिकार व्यक्ति की स्वतन्त्रता तथा सामाजिक नियन्त्रण के मध्य उचित सामंजस्य स्थापित करने का प्रयास करते हैं।

3. शोषण के विरूद्ध अधिकार को समझाइए।

उ०– **शोषण के विरुद्ध अधिकार (अनुच्छेद 23 से 24 तक)–** साधन-सम्पन्न और धनवान व्यक्ति तो धनहीनों का सदा से शोषण करते रहे हैं। पूँजीवाद के आगमन के बाद तो शोषण में और भी वृद्धि हुई है। प्रगतिशील भारतीय संविधान ने शोषण को समाप्त करने का प्रयत्न किया है। शोषण के विरुद्ध अधिकारों को निम्नलिखित रूप में रखा जा सकता है—

बेगार और बलात श्रम का अन्त– संविधान के अनुच्छेद 23 के अनुसार मनुष्यों से बेगार तथा बलपूर्वक बिना मूल्य चुकाए लिया गया श्रम गैर कानूनी तथा दण्डनीय होगा।

मानव-व्यापार का अन्त– संविधान के अनुच्छेद 23 के अनुसार मनुष्यों, स्त्रियों तथा बालक-बालिकाओं का क्रय-विक्रय अवैध है। इस प्रकार स्त्रियों का दुराचार और वेश्यावृत्ति भी गैर कानूनी है। ऐसा करने वालों को अपराधी समझा जाएगा और उन्हें दण्डित किया जाएगा।

कम आयु के बालक-बालिकाओं द्वारा मजदूरी का निषेध– संविधान के अनुच्छेद 24 के अनुसार— चौदह वर्ष से कम आयु वाले बालकों को किसी जोखिम के काम या खान में नियुक्त नहीं किया जाएगा।

4. नागरिकों के मौलिक कर्तव्यों का महत्व बताइए।

उ०– **मौलिक कर्तव्यों का महत्व–** मौलिक कर्तव्य मौलिक अधिकारों के पूरक हैं। इस दृष्टि से इनका बहुत महत्व अधिक है; जैसे—

(i) इनका पालन करने से देश में एकता तथा अखण्डता की स्थापना की जा सकती है।

(ii) इनका पालन करने से देश की सुरक्षा व्यवस्था सुदृढ़ हो सकती है।

(iii) इन कर्तव्यों का पालन करने से राष्ट्र की सम्पत्ति की सुरक्षा की जा सकती है।

(iv) ये कर्तव्य लोकतन्त्र को सफल बनाने में सहायक होंगे।

(v) इनका पालन करना, प्रदूषण को दूर करने तथा स्वास्थ्य की रक्षा के लिए बहुत महत्वपूर्ण है।

❖ विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

1. भारतीय संविधान द्वारा प्रदत्त मूल अधिकारों पर प्रकाश डालिए।

उ०– **भारतीय संविधान द्वारा प्रदत्त मूल अधिकार–** भारतीय संविधान में नागरिकों को सात मौलिक आधार प्रदान किए गए थे। 44वें संविधान संशोधन 1979 ई० अनुच्छेद 31 में दिया गया सम्पत्ति का अधिकार वर्तमान में केवल कानूनी अधिकार रह गया है। भारतीय संविधान के तृतीय भाग में अनुच्छेद 12 से 35 तक मौलिक अधिकारों का विशिष्ट विवेचन किया गया है। वर्तमान में भारतीयों को प्राप्त छः मौलिक अधिकार निम्नलिखित हैं—

(i) समानता का अधिकार (अनुच्छेद 14 से 18 तक)– मौलिक अधिकारों में समानता का अधिकार सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। यह प्रजातन्त्र का आधार-स्तम्भ है। इस अधिकार से आशय यह है कि किसी भी भारतीय नागरिक के साथ किसी भी आधार पर, किसी भी प्रकार का कोई भेदभाव नहीं किया जाएगा। संविधान द्वारा निम्नलिखित पाँच प्रकार की समानताएँ प्रदान की गई हैं—

(क) कानून के क्षेत्र में समानता (अनुच्छेद 14)– संविधान में, कानून के क्षेत्र में सभी नागरिकों को समान अधिकार दिए गए हैं। कानून की दृष्टि में न कोई छोटा है न बड़ा। वह निर्धन को हीन दृष्टि से नहीं देखता और धनवान को भी विशेष महत्व नहीं देता। तात्पर्य यह है कि वह सभी को समान दृष्टि से देखता है। धर्म, लिंग के आधार पर भी किसी से किसी प्रकार का भेद-भाव नहीं करता ।

(ख) सार्वजनिक स्थानों के उपयोग में समानता (अनुच्छेद 15)– संविधान में यह स्पष्ट लिखा है कि सार्वजनिक स्थानों; जैसे- तालाबों, नहरों, पार्कों आदि सभी का, सभी नागरिक बिना किसी भेदभाव के उपभोग करने के समान अधिकारी हैं। अत: इस अनुच्छेद के आधार पर सामाजिक समानता की व्यवस्था की गई है।

(ग) सरकारी नौकरियों में समानता (अनुच्छेद 16)– सरकारी नौकरियों में नियुक्ति के समय किसी के साथ धर्म,

लिंग, जाति आदि के आधार पर भेदभाव नहीं किया जाएगा और नियुक्ति या पदोन्नति का आधार केवल योग्यता को माना जाएगा; परन्तु इस अधिकार का अपवाद यह है कि अनुसूचित जाति तथा जनजातियों के लिए नौकरियों में कुछ स्थान सुरक्षित कर दिए गए हैं। राज्य पिछड़े वर्गों के लिए भी स्थानों का आरक्षण कर सकता है।

(घ) अस्पृश्यता का अन्त (अनुच्छेद 17)– अनुसूचित जातियों के उत्थान और उनमें स्वाभिमान की भावना जगाने तथा उनका विकास करने के उद्देश्य से अस्पृश्यता को अपराध घोषित किया गया है और किसी भी रूप में अस्पृश्यता का प्रसार कानून के अनुसार दण्डनीय होगा। इसे और प्रभावी बनाने के लिए सन 1976 ई० मे भारतीय संसद द्वारा 'अस्पृश्यता अपराध अधिनियम' को भी स्वीकृति प्रदान की गई है।

(ड) उपाधियों का अन्त (अनुच्छेद 18)– व्यक्तियों में पारस्परिक भेदभाव, ऊँच-नीच की भावना को समाप्त कर, समाज में समानता स्थापित करने के उद्देश्य से, संविधान ने अंग्रेजी शासन द्वारा दी जाने वाली सभी उपाधियों को निरस्त कर दिया है। अब केवल शैक्षिक और सैनिक उपाधियाँ ही दी जाती हैं।

(ii) स्वतन्त्रता का अधिकार (अनुच्छेद 19 से 22 तक)– भारतीय संविधान के अनुच्छेद 19 से 22 तक में इस अधिकार का विवरण दिया गया है। अनुच्छेद 19 के अन्तर्गत नागरिकों को निम्न छ: प्रकार की स्वतन्त्रताएँ प्रदान की गई हैं–

(क) भाषण तथा विचार की स्वतन्त्रता– संविधान ने प्रत्येक व्यक्ति को भाषण के रूप में अपने विचार व्यक्त करने तथा अपने विचारों को पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित कराने की स्वतन्त्रता प्रदान की है।

(ख) यह स्वतन्त्रता असीमित नहीं है क्योंकि इस स्वतन्त्रता पर सरकार इन आधारों पर प्रतिफल लगा सकती है– निरादरी, अपमानजनक शब्द तथा झूठा अभियोग, न्यायालय का अपमान, शालीनता तथा नैतिकता, राज्य की सुरक्षा, विदेशों से मित्रतापूर्ण सम्बन्ध, अपराध के लिए उत्तेजित करना इत्यादि।

(ग) शस्त्रों के बिना शान्तिपूर्ण ढंग से एकत्रित होने की स्वतन्त्रता– संविधान ने नागरिकों को शान्तिपूर्वक सभा व सम्मेलन करने की स्वतन्त्रता प्रदान की है। इस स्वतन्त्रता पर भी राज्य सार्वजनिक हित में रोक लगा सकता है।

(घ) समूह या संघ के निर्माण की स्वतन्त्रता– नागरिकों को मानव हितों के लिए समुदाय या संघ के निर्माण की स्वतन्त्रता है। नागरिकों की यह स्वतन्त्रता भी असीमित नहीं है क्योंकि सरकार भारत की प्रभुसत्ता तथा अखण्डता या सार्वजनिक व्यवस्था के हितों को सम्मुख रखकर उचित बन्धन लगा सकती है।

(ड.) अबाध भ्रमण की स्वतन्त्रता– नागरिकों को देश की सीमाओं के अन्दर स्वतन्त्रतापूर्वक एक स्थान से दूसरे स्थान पर भ्रमण की स्वतन्त्रता प्रदान की गई है। इस स्वतन्त्रता पर भी राज्य द्वारा साधारण जनता या किसी अनुसूचित कबीले के हितों की रक्षा के लिए बन्धन लगाए जा सकते हैं। सैनिक दृष्टि से किसी क्षेत्र को सुरक्षित किया जा सकता है।

(च) आवास की स्वतन्त्रता– भारतीय नागरिक देश के किसी भी भाग में रह सकते हैं तथा अपना निवास स्थान बना सकते हैं।

(छ) व्यवसाय की स्वतन्त्रता– प्रत्येक नागरिक किसी भी रोजगार या व्यवसाय को ग्रहण करने के लिए स्वतन्त्र है। इस स्वतन्त्रता पर राज्य कानून द्वारा साधारण जनता के हितों के लिए प्रतिबन्ध लगा सकता है।

संविधान के अनुच्छेद 20, 21 तथा 22 में व्यक्तिगत स्वतन्त्रता सम्बन्धी कुछ व्याख्याएँ दी गई हैं, जो निम्न प्रकार हैं—

(ज) अपराधों के लिए दोषसिद्धि के सम्बन्ध में संरक्षण– अनुच्छेद 20 के अनुसार—

(1) व्यक्ति को किसी ऐसे कानून का उल्लंघन करने पर दण्ड नहीं दिया जा सकता, जो कानून उसके अपराध करते समय क्रियान्वित नहीं हुआ था।

(2) किसी व्यक्ति को एक ही अपराध के लिए एक बार से अधिक दण्ड नहीं दिया जा सकता।

(3) किसी अपराधी को स्वयं अपने विरुद्ध गवाही देने के लिए विवश नहीं किया जा सकता।

जीवन तथा व्यक्तिगत स्वतन्त्रता की सुरक्षा– अनुच्छेद 21 के अनुसार— किसी व्यक्ति को कानून द्वारा स्थापित प्रक्रिया के अतिरिक्त उसे जीवन या व्यक्तिगत स्वतन्त्रता से वंचित नहीं किया जा सकता है।

कुछ दशाओं में गिरफ्तारी और निरोध से संरक्षण– अनुच्छेद 22 के अनुसार— किसी भी व्यक्ति को उसके अपराध के सम्बन्ध में बताए बिना बन्दी नहीं बनाया जा सकता। अपराधी को अपनी इच्छानुसार किसी वकील से परामर्श लेने की छूट है। अपराधी को कैद करने से 24 घण्टों के अन्दर किसी निकटवर्ती न्यायाधीश के सम्मुख पेश करना आवश्यक है। न्यायालय की आज्ञा के बिना किसी दोषी को 24 घण्टों से अधिक बन्दी नहीं रखा जा सकता है।

उपर्युक्त अधिकार दो प्रकार के व्यक्तियों को प्राप्त नहीं हैं– (क) विदेशी दुश्मन, (ख) ऐसे व्यक्ति जो किसी ऐसे कानून के अधीन बन्दी बनाए गए हैं, जो निवारक नजरबन्दी की व्यवस्था करता है।

(iii) शोषण के विरुद्ध अधिकार (अनुच्छेद 23 से 24 तक)– साधन-सम्पन्न और धनवान व्यक्ति तो धनहीनों का सदा से शोषण करते रहे हैं। पूँजीवाद के आगमन के बाद तो शोषण में और भी वृद्धि हुई है। प्रगतिशील भारतीय संविधान ने शोषण को समाप्त करने का प्रयत्न किया है। शोषण के विरुद्ध अधिकारों को निम्नलिखित रूप में रखा जा सकता है—

(क) बेगार और बलात श्रम का अन्त– संविधान के अनुच्छेद 23 के अनुसार मनुष्यों से बेगार तथा बलपूर्वक बिना मूल्य चुकाए लिया गया श्रम गैर कानूनी तथा दण्डनीय होगा।

(क) मानव-व्यापार का अन्त– संविधान के अनुच्छेद 23 के अनुसार मनुष्यों, स्त्रियों तथा बालक-बालिकाओं का क्रय-विक्रय अवैध है। इस प्रकार स्त्रियों का दुराचार और वेश्यावृत्ति भी गैर कानूनी है। ऐसा करने वालों को अपराधी समझा जाएगा और उन्हें दण्डित किया जाएगा।

(ग) कम आयु के बालक-बालिकाओं द्वारा मजदूरी का निषेध– संविधान के अनुच्छेद 24 के अनुसार— चौदह वर्ष से कम आयु वाले बालकों को किसी जोखिम के काम या खान में नियुक्त नहीं किया जाएगा।

(iv) धार्मिक स्वतन्त्रता का अधिकार (अनुच्छेद 25 से 28 तक)– संविधान के अनुच्छेद 25 से 28 तक अन्तर्गत नागरिकों को निम्न धार्मिक स्वतन्त्रताएँ प्रदान की गई हैं—

(क) किसी भी धर्म को मानने तथा प्रचार करने की स्वतन्त्रता– सब व्यक्तियों को समान रूप से किसी भी धर्म को मानने, ग्रहण करने तथा उसका प्रचार करने का अधिकार है, किन्तु वह धर्म, सार्वजनिक व्यवस्था, नैतिकता, स्वास्थ्य तथा संविधान में वर्णित मूल अधिकारों के विरुद्ध न हो। (अनुच्छेद 25)

(ख) धार्मिक कार्यों का प्रबन्ध करने की स्वतन्त्रता– प्रत्येक धार्मिक सम्प्रदाय या उसके किसी वर्ग को धार्मिक तथा धर्मार्थ उद्देश्यों के लिए संस्थाएँ स्थापित करने का अधिकार है। उन्हें अपने धर्म के कार्यों का प्रबन्ध करने, चल तथा अचल सम्पत्ति प्राप्त करने व रखने तथा ऐसी सम्पत्ति का कानूनानुसार प्रबन्ध करने का भी अधिकार प्राप्त है। (अनुच्छेद 26)

(ग) विशेष धर्म की अभिवृद्धि के लिए कर देने की स्वतन्त्रता– किसी भी व्यक्ति को कोई ऐसा कर देने के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता जिसकी एकत्रित की गई रकम किसी विशेष धर्म या धार्मिक सम्प्रदाय की उन्नति के लिए व्यय की जानी हो। (अनुच्छेद 27)

(घ) धार्मिक शिक्षा का निषेध– अनुच्छेद 28 के अनुसार किसी भी सरकारी शैक्षणिक संस्था में कोई धार्मिक शिक्षा नहीं दी जाएगी।

(ड) ऐसी निजी शिक्षण– संस्थाओं में जो राज्य द्वारा स्वीकृत है या राज्य से वित्तीय सहायता प्राप्त करती है किसी व्यक्ति को ऐसी सस्थाओं में दी जा रही धार्मिक शिक्षा या धार्मिक पूजा में शामिल होने के लिए विवश नहीं किया जा सकता।

(च) धर्म निरपेक्ष राज्य– संविधान के अनुच्छेद 25 से 28 में वर्णित अधिकार भारत में धर्म निरपेक्ष राज्य स्थापित करते हैं।

(v) सांस्कृतिक तथा शिक्षा सम्बन्धी अधिकार (अनुच्छेद 29 से 30 तक)– किसी भी देश की संस्कृति का उसके सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक विकास की दृष्टि से विशेष महत्व है। संस्कृति और शिक्षा की उन्नति करने में नागरिकों को सहयोग देना सरकार का कर्तव्य होता है। इसी उद्देश्य को ध्यान में रखकर संविधान की 29वीं एवं 30वीं धाराओं में नागरिकों की संस्कृति एवं शिक्षा की उन्नति करने से सम्बन्धित अधिकार वर्णित हैं। इस अधिकार के अनेक रूप हैं, जो निम्न प्रकार हैं—

(क) प्रत्येक वर्ग को अपनी भाषा, लिपि एवं संस्कृति-विशेष (रीति-रिवाज)की रक्षा करने तथा उनकी उन्नति करने का अधिकार है, किन्तु शर्त यह है कि ऐसा करने से किसी अन्य वर्ग को हानि न पहुँचे।

(ख) सरकारी सहायता प्राप्त विद्यालयों में किसी नागरिक को प्रवेश लेने से जाति, भाषा, धर्म के आधार पर रोका नहीं जा सकता है। अनुसूचित जातियों को प्रोत्साहन देने के उद्देश्य से सरकार इन संस्थाओं में अनुसूचित जातियों के लिए भी कुछ स्थान सुरक्षित कर सकती है।

(ग) अनुच्छेद 30 के अनुसार सभी अल्पसंख्यक वर्गों को शिक्षण संस्थाओं की स्थापना तथा उनके प्रशासन का अधिकार प्राप्त है।

(घ) सरकार सब विद्यालयों को चाहे वे अल्पसंख्यकों द्वारा स्थापित किए गए हों या बहुसंख्यकों द्वारा, समान अनुदान देती है तथा प्रत्येक को समान रूप से प्रोत्साहित करती है।

(vi) संवैधानिक उपचारों का अधिकार (अनुच्छेद 32)– संविधान के अनुच्छेद 32 के अनुसार संवैधानिक उपचारों के अधिकार की व्यवस्था की गई है। यह अन्तिम और सबसे महत्वपूर्ण अधिकार है क्योंकि इसके अस्तित्व पर ही सब अधिकारों का अस्तित्व निर्भर है। इस अधिकार द्वारा नागरिक न्यायालयों से अपने अधिकारों की रक्षा करा सकते हैं। इन संवैधानिक उपचारों को लागू कराने के लिए उच्चतम न्यायालय जो आदेश या निर्देश देता है उसे **रिट** कहते हैं। रिट जारी करने के निम्नलिखित पाँच प्रकार हैं—

(क) बन्दी प्रत्यक्षीकरण– इसका अर्थ बन्दी को न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत करना है। यह उस व्यक्ति की प्रार्थना पर

जारी किया जाता है, जो यह समझता है कि उसे अवैध रूप से बन्दी बनाया गया है। इसके द्वारा न्यायालय तुरन्त उसे अपने सामने उपस्थित करने का आदेश देता है और उसे अवैध रूप से बन्दी बनाए जाने की स्थिति का सही मूल्यांकन करता है। इसके अतिरिक्त बन्दी बनाने की विधि (ढंग) का अवलोकन भी करता है और अवैध ढंग से बनाए गए बन्दी को तुरन्त छोड़ने का आदेश देता है।

(ख) परमादेश– जब कोई संस्था या अधिकारी अपने उन कर्तव्यों का पालन नहीं करता है, जिनसे मौलिक अधिकारों का उल्लंघन होता है, तब न्यायपालिका 'परमादेश' द्वारा उन्हें कर्तव्यों को पूरा करने का आदेश देती है।

(घ) प्रतिषेध– प्रतिषेध लेख मुख्यतया अधीनस्थ न्यायालयों या न्यायधिकरणों को अपने क्षेत्राधिकार से बाहर जाने या प्राकृतिक न्याय के नियमों के विरुद्ध कार्य करने से रोकने के लिए जारी किया जाता है। इस लेख का उद्देश्य अधीनस्थ न्यायालयों द्वारा की गई न्यायिक त्रुटियों को ठीक करना है। यह लेख दो अवस्थाओं में जारी किया जाता है, जहाँ अधिकार-क्षेत्र से बाहर कार्य किया गया है और जहाँ अधिकारिता है ही नहीं।

(ङ) उत्प्रेषण– यह लेख उच्च न्यायालयों द्वारा उस समय जारी किया जाता है, जबकि अधीनस्थ न्यायालय का न्यायाधीश किसी ऐसे विवाद की सुनवाई कर रहा है, जो वास्तव में उसके अधिकार-क्षेत्र से बाहर है। इस लेख द्वारा उसके फैसले को रद्द कर दिया जाता है और उस मुकदमें से सम्बन्धित कागजात अधीनस्थ न्यायालय को उच्चतम न्यायालय को भेजने की आज्ञा दी जाती है।

(च) अधिकार पृच्छा– यदि कोई नागरिक कोई पद या अधिकार अवैधानिक रूप से प्राप्त कर लेता है तो उसकी जाँच हेतु यह 'अधिकार पृच्छा' लेख जारी किया जाता है।

प्रतिषेध और उत्प्रेषण में अन्तर यह है कि प्रतिषेध लेख याचिका की कार्यवाही के मध्य में जारी होता है, जिससे उस कार्यवाही को रोका जा सके ओर उत्प्रेषण याचिका की कार्यवाही की समाप्ति पर अन्तिम निर्णय के विरुद्ध निर्णय को रद्द करने के लिए जारी किया जाता है। इस प्रकार प्रतिषेध लेख का उद्देश्य न्यायिक त्रुटि को रोकना है, उसको सुधारना नहीं, जबकि उत्प्रेषण लेख का मुख्य उद्देश्य उस त्रुटि को सुधारना है।

2. मूल अधिकारों की विशेषताएँ बताइए।

उ०– **मूल अधिकारों की विशेषताएँ–** भारतीय संविधान में प्रदत्त मूल अधिकारों की निम्नलिखित विशेषताएँ हैं—

(i) संविधान द्वारा मौलिक अधिकारों की सुरक्षा का दायित्व न्यायपालिका को सौंपा गया है। संविधान द्वारा न्यायालयों को आज्ञा दी गई हैं कि वे देखें की नागरिकों के मौलिक अधिकारों का अतिक्रमण न होने पाए।

(ii) अन्य देशों की तुलना में भारतीय नागरिकों को विस्तृत मूल अधिकार प्राप्त हैं, जिनका उल्लेख संविधान के 18 अनुच्छेदों में किया गया है।

(iii) मौलिक अधिकार व्यावहारिक सिद्धान्तों पर आधारित होने के कारण सम्पूर्ण समाज के लिए आवश्यक एवं उपयोगी है।

(iv) मौलिक अधिकारों की प्रकृति नकारात्मक है, क्योंकि राज्य से यह आशा की जाती है कि वह मौलिक अधिकारों में किसी प्रकार का हस्तक्षेप न करे। अत: मौलिक अधिकारों को राज्य की नियन्त्रण शक्ति से मुक्त रखा गया है।

(v) भारतीय संविधान में प्राकृतिक अधिकारों का कोई उल्लेख नहीं किया गया है। संविधान केवल उन्हीं अधिकारों को मान्यता प्रदान करता है जिनका वर्णन संविधान के भाग 3 में किया गया है।

(vi) यदि मौलिक अधिकारों के विरुद्ध केन्द्रीय अथवा राज्य की व्यवस्थापिका के द्वारा कोई कानून पारित किया जाता है, तो उसे सर्वोच्च न्यायालय में चुनौती दी जा सकती है तथा सर्वोच्च न्यायालय उसे अवैध घोषित कर सकता है।

(vii) मूल अधिकार भारत के प्रत्येक नागरिक को प्रदान किए गए है। इन अधिकारों के सम्बन्ध में जाति, धर्म, लिंग, नस्ल, रंग, जन्म के आधार पर किसी भी प्रकार का कोई भेदभाव नहीं किया गया है।

(viii) संविधान के अनुच्छेद 33 के अन्तर्गत भारतीय संसद को सशस्त्र सेनाओं के मूल अधिकारों को सीमित करने की शक्ति दी गई है, जिनसे सेनाएं अपने कर्तव्यों को उचित रूप से निभा सकें। अगस्त 1984 में एक संवैधानिक संशोधन द्वारा गुप्त एजेंसियों, जासूसी कार्य में लगे व्यक्तियों आदि को भी इस व्यवस्था के अधीन लाया गया है।

3. नागरिकों के मौलिक कर्तव्यों को बताते हुए इनकी आलोचनात्मक समीक्षा कीजिए।

उ०– **नागरिकों के मौलिक कर्तव्य–** भारतीय मूल संविधान में मौलिक कर्तव्यों का कोई विवरण नहीं था। सन 1976 में 42वें संविधान संशोधन में **सरदार स्वर्ण सिंह** की अनुशंसा पर दस मौलिक कर्तव्यों को जोड़ा गया। इसके बाद दिसम्बर 2002 में 86वें संशोधन द्वारा एक मौलिक कर्तव्य की और वृद्धि हो गई है और मौलिक कर्तव्यों की कुल संख्या बढकर 11 हो गई है। ये मौलिक कर्तव्य निम्नलिखित हैं—

(i) संविधान, राष्ट्रीय ध्वज तथा राष्ट्र-गान का सम्मान करना।

(ii) राष्ट्रीय स्वतन्त्रता आन्दोलन के उद्देश्यों का आदर करना और उनका अनुगमन करना।

(iii) भारतीय प्रभुसत्ता, एकता और अखण्डता का समर्थन व रक्षा करना।
(iv) देश की रक्षा करना और राष्ट्रीय सेवाओं में आवश्यकता के समय भाग लेना।
(v) भारत में सभी नागरिकों में भ्रातृत्व भावना को विकसित करना।
(vi) वैज्ञानिक तथा मानवतावादी दृष्टिकोण को अपनाना।
(vii) प्राचीन सभ्यता व संस्कृति को सुरक्षित रखना।
(viii) वनों, झीलों तथा जंगली जानवरों की रक्षा करना तथा उनकी उन्नति के लिए प्रयत्न करना।
(ix) हिंसा को रोकना तथा राष्ट्रीय सम्पत्ति की रक्षा करना।
(x) व्यक्तिगत तथा सामूहिक प्रयासों द्वारा उच्च राष्ट्रीय लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए प्रयत्न करना।
(xi) 6-14 वर्ष की आयु के बच्चों के माता-पिता या संरक्षक का यह दायित्व है कि वह अपने बच्चों को ऐसी सुविधाएँ एवं अवसर उपलब्ध कराए, जिनके फलस्वरूप बच्चे शिक्षा ग्रहण कर सकें।

आलोचना– इन मौलिक कर्तव्यों की आलोचना निम्नलिखित आधारों पर की जाती है—
(i) मौलिक कर्तव्य स्पष्ट नहीं हैं।
(ii) इन कर्तव्यों में आदर्शवाद बहुत अधिक है।
(iii) अनेक कर्तव्यों का पालन कराने के लिए कानूनी व्यवस्था का अभाव है।

❖ **मानचित्र सम्बन्धी अभ्यास कार्य**

अध्यापक की सहायता से विद्यार्थी स्वयं करें।

❖ **प्रोजेक्ट कार्य**

अध्यापक की सहायता से विद्यार्थी स्वयं करें।

19 राज्य के नीति निदेशक सिद्धान्त

अभ्यास

❖ **बहुविकल्पीय प्रश्न**

उ०– बहुविकल्पीय प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्य पुस्तक के पृष्ठ संख्या—169 का अवलोकन कीजिए।

❖ **अतिलघु उत्तरीय प्रश्न**

उ०– अतिलघु उत्तरीय प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्य पुस्तक के पृष्ठ संख्या—169 का अवलोकन कीजिए।

❖ **लघु उत्तरीय प्रश्न**

1. राज्य के नीति निदेशक सिद्धान्त का अर्थ बताइए।

उ०– **राज्य के नीति निदेशक सिद्धान्त का अर्थ–** राज्य के नीति निदेशक तत्व वे सिद्धान्त हैं, जो राज्य की नीति का निर्देशन करते हैं। दूसरे शब्दों में, राज्य जिन सिद्धान्तों को अपनी शासन—नीति का आधार बनाता है, वे ही राज्य के नीति निदेशक तत्व या सिद्धान्त कहे जाते हैं। ये तत्व राज्य के प्रशासन के पथ—प्रदर्शक हैं। राज्य के नीति निदेशक तत्वों के अन्तर्गत उन आदेशों एवं निर्देशों का समावेश है, जो भारतीय संविधान ने भारत—राज्य तथा इसके विभिन्न राज्यों को अपनी सामाजिक तथा आर्थिक नीति का निर्धारण करने के लिए दिए हैं।

राज्य के नीति निदेशक तत्वों के पीछे कोई कानूनी सत्ता नहीं है। यह राज्य की इच्छा पर निर्भर है कि वह इनका पालन करे या न करे। फिर भी इनका पालन करना सरकार का नैतिक कर्तव्य है। ये नीति निदेशक तत्व राज्य के लिए नैतिकता के सूत्र हैं। तथा देश में स्वस्थ एवं वास्तविक प्रजातन्त्र की स्थापना की दिशा में प्रेरणा देने वाले हैं।

डॉ० ए०पी० शर्मा के अनुसार— ''ये सिद्धान्त उन लक्ष्यों को निर्देशित करते हैं जिनकी प्राप्ति के लिए विधायिका तथा कार्यपालिका को अपनी नीतियों का संचालन करना चाहिए।''

2. राज्य के नीति निदेशक सिद्धान्त की वैधानिक स्थिति स्पष्ट कीजिए।

उ०– **वैधानिक स्थिति– एन०आर० राघवाचारी** के अनुसार, ''कोई भी दल राजनीतिक शक्ति प्राप्त करे, किन्तु उसे इन निर्देशों का पालन करना पड़ेगा। कोई इनकी अवहेलना नहीं कर सकेगा, क्योंकि चाहे उसे न्यायालय में कानून भंग करने के लिए उत्तरदायी न होना पड़े किन्तु उसे निर्वाचन में मतदाताओं के समक्ष अवश्य उत्तर देना पड़ेगा।''

अन्य शब्दों में हम कह सकते हैं कि—''ये सिद्धान्त या तत्व केन्द्र और राज्य सरकारों के लिए बाध्यकारी आदेश नहीं है अत:

इन्हें न्यायालय द्वारा लागू नहीं कराया जा सकता। वैसे इन्हें लागू करना सरकारों का नैतिक कर्तव्य होगा।

3. राज्य के नीति निदेशक सिद्धान्तों के अन्तर्गत सांस्कृतिक विकास सम्बन्धी तत्वों को समझाइए।

उ०– **सांस्कृतिक विकास सम्बन्धी तत्व–** सांस्कृतिक क्षेत्र में नागरिकों के विकास हेतु राज्य निम्नलिखित नीतियों के पालन हेतु प्रयासरत रहेगा–

(i) राष्ट्रीय महत्व के घोषित स्मारकों, स्थानों तथा वस्तुओं की देखभाल एवं संरक्षण की राज्य अनिवार्य रूप से व्यवस्था करेगा।

(ii) संविधान के अनुच्छेद 46 के अनुसार दलित वर्ग का आर्थिक और शैक्षिक विकास करना राज्य का कर्तव्य होगा।

❖ **विस्तृत उत्तरीय प्रश्न**

4. राज्य के नीति निदेशक सिद्धान्तों पर एक संक्षिप्त लेख लिखिए।

उ०– राज्य के नीति निदेशक तत्व आर्थिक लोकतन्त्र का आधार हैं। नीति निदेशक तत्वों की सहायता से हम संविधान की प्रस्तावना में वर्णित समाजवादी लक्ष्यों की प्राप्ति कर सकते हैं। इन तत्वों से संविधान शक्ति प्राप्त करता है। भारत के संविधान–निर्माताओं ने भारत की केन्द्रीय सरकार और राज्य सरकारों को नीतियों के निर्माण के सम्बन्ध में कुछ बहुमूल्य निर्देश दिए हैं जिन्हें राज्य के नीति निदेशक सिद्धान्त कहते हैं। नीति निदेशक तत्वों या सिद्धान्तों का वर्णन संविधान के चतुर्थ भाग में अनुच्छेद 36 से 51 तक किया गया है।

भारतीय संविधान में उल्लेखित राज्य के नीति निदेशक सिद्धान्त– भारतीय संविधान में राज्य के नीति निदेशक सिद्धान्तों का वर्गीकरण अग्रलिखित वर्गों में किया जाता है–

(i) आर्थिक व्यवस्था सम्बन्धी तत्व– भारतीय संविधान बनाने वालों का उद्देश्य भारत में एक लोककल्याणकारी राज्य की स्थापना करना था। इस दृष्टि से अधिकांश नीति निदेशक तत्वों के अन्तर्गत आर्थिक सुरक्षा और आर्थिक न्याय के सम्बन्ध में व्यवस्था की गई है। आर्थिक सुरक्षा सम्बन्धी नीति निदेशक तत्व निम्नांकित हैं–

(क) भारतीय संविधान में यह उल्लेख किया गया है कि राज्य अपनी आर्थिक सामर्थ्य के अनुसार बेकारी का अन्त करने और वृद्ध व सेवानिवृत्त लोगों को आर्थिक सहायता देने का पूरा–पूरा प्रयत्न करेगा।

(ख) देश में आर्थिक विषमता को दूर करने के लिए सरकार राष्ट्रीय आय को समान रूप से वितरित करने का प्रयत्न करेगी।

(ग) उत्पादन के समस्त साधन एक ही स्थान पर केन्द्रित होकर राष्ट्रीय विकास में बाधा उत्पन्न न करें, इसलिए राष्ट्र का यह कर्तव्य है कि वह उत्पादन के समस्त साधनों को एक ही स्थान पर केन्द्रित न होने दें तथा सार्वजनिक हित को किसी प्रकार की हानि न पहुँचने दें।

(घ) संविधान के अनुसार राज्य को ऐसी व्यवस्था करनी होगी, जिसमें श्रमिकों को उनके श्रम के अनुपात में पारिश्रमिक मिले तथा स्त्रियों को प्रसूति की अवस्था में सरकारी सहायता प्राप्त हो सके।

(ङ) राज्य प्रत्येक नागरिक को, चाहे वह स्त्री हो या पुरुष, समान कार्य के लिए समान वेतन प्रदान करने का प्रयत्न करेगा।

(च) राज्य का कर्तव्य होगा कि वह गाँवों में व्यक्तिगत अथवा सहकारी आधार पर कुटीर उद्योगों को प्रोत्साहन दे।

(छ) वैज्ञानिक आधार पर कृषि का संचालन करना भी राज्य का कर्तव्य होगा।

(ज) 42वें संविधान संशोधन के आधार पर यह व्यवस्था की गई है कि राज्य समाज के कमजोर वर्गों के लिए नि:शुल्क कानूनी सहायता प्रदान करे।

(झ) राज्य पशुपालन की अच्छी प्रणालियों का प्रचलन करेगा और गायों तथा अन्य दुधारू पशुओं की नस्ल सुधारने और उनके वध को रोकने का प्रयत्न करेगा।

(ण) 42वें संविधान संशोधन के आधार पर यह व्यवस्था भी की गई है कि राज्य उचित व्यवस्थापन या अन्य प्रकार से औद्योगिक संस्थानों के प्रबन्ध में कर्मचारियों को भागीदार बनाने के लिए कदम उठाएगा।

(ट) 44वें संविधान संशोधन के आधार पर यह व्यवस्था की गई है कि राज्य विभिन्न समुदायों को प्राप्त होने वाली आय, सामाजिक स्तर, सुविधाओं और अवसरों सम्बन्धी भेदभाव को भी कम–से–कम करने का प्रयत्न करेगा।

(ii) सामाजिक व्यवस्था सम्बन्धी तत्व– राज्य द्वारा नागरिकों को सामाजिक उत्थान के लिए निम्न व्यवस्थाएँ करनी होंगी–

(क) राज्य देश के पर्यावरण के संरक्षण तथा संवर्धन और वन तथा वन्य जीवों की रक्षा के लिए प्रयासरत रहेगा।

(ख) राज्य काम की न्यायसंगत और मानवोचित दशाओं को सुनिश्चित करने के लिए और प्रसूति सहायता के लिए प्रावधान करेगा।

(ग) राज्य जनता के दुर्बल वर्गों के, विशेषकर अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के शिक्षा और आर्थिक हितों की विशेष रूप से अभिवृद्धि करेगा और सामाजिक अन्याय तथा सभी प्रकार के शोषण से उनकी रक्षा करेगा।

(घ) राज्य यह सुनिश्चित करेगा कि बालकों को गरिमामय वातावरण में स्वस्थ विकास के अवसर और सुविधाएँ दी जाएँ तथा बालकों और अल्पवय व्यक्तियों की शोषण से तथा नैतिक और आर्थिक परित्याग से रक्षा की जाए।

(ङ) राज्य विशिष्टतया आय की असमानताओं को कम करने के लिए प्रयासरत रहेगा और न केवल व्यक्तियों के बीच अपितु विभिन्न क्षेत्रों में रहने वाले और विभिन्न व्यवसायों में लगे लोगों के समूहों के बीच भी प्रतिष्ठा, सुविधाओं और अवसरों की असमानता समाप्त करने का प्रयास करेगा।

(iii) सांस्कृतिक विकास सम्बन्धी तत्व– सांस्कृतिक क्षेत्र में नागरिकों के विकास हेतु राज्य निम्नलिखित नीतियों के पालन हेतु प्रयासरत रहेगा—

(क) राष्ट्रीय महत्व के घोषित स्मारकों, स्थानों तथा वस्तुओं की देखभाल एवं संरक्षण की राज्य अनिवार्य रूप से व्यवस्था करेगा।

(ख) संविधान के अनुच्छेद 46 के अनुसार दलित वर्ग का आर्थिक और शैक्षिक विकास करना राज्य का कर्तव्य होगा।

(iv) शासन तथा न्याय सम्बन्धी तत्व– न्यायिक क्षेत्र में सुधार लाने के लिए राज्य निम्नलिखित सिद्धान्तों का पालन करेगा—

(क) देश के सभी गाँवों में राज्य के द्वारा ग्राम पंचायतों की स्थापना की जाएगी। राज्य उन्हें (ग्राम पंचायतों को) ऐसे अधिकार प्रदान करेगा, जिनसे देश में स्वायत्त शासन सुदृढ़ हो सके।

(ख) राज्य देश के समस्त नागरिकों के लिए समस्त राज्य क्षेत्र में एक समान कानून तथा न्यायालय की व्यवस्था करेगा। राज्य की लोक—सेवाओं में न्यायपालिका को कार्यपालिका से अलग करने के लिए राज्य कदम उठाएगा, क्योंकि न्यायपालिका का स्वतंत्र होना नागरिकों के अधिकारों के रक्षार्थ आवश्यक है।

(v) अन्तर्राष्ट्रीय एवं सुरक्षा सम्बन्धी तत्व– इस वर्ग में ऐसे सिद्धान्तों को शामिल किया गया है जिनका उद्देश्य केवल विश्व शान्ति की स्थापना करना है। अनुच्छेद ५१ के अनुसार राज्य को ऐसे कार्यों को करने के लिए कहा गया है कि जिनसे—

(क) मध्यस्थता द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय विवादों को निपटाने के लिए प्रोत्साहन मिले।

(ख) अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति एवं सुरक्षा का विकास हो।

(ग) विभिन्न राष्ट्रों के मध्य न्याय एवं सम्मानपूर्ण सम्बन्ध स्थापित हो।

(घ) संगठित लोगों के परस्पर सम्बन्धों को नियमित करने के लिए अन्तर्राष्ट्रीय कानूनों तथा सन्धियों के लिए सम्मान उत्पन्न हो।

राज्य के नीति निदेशक सिद्धान्तों का महत्व– राज्य के नीति निदेशक सिद्धान्तों का महत्व निम्नलिखित है—

(i) कल्याणकारी राज्य की रूपरेखा प्रस्तुत करना– संविधान का उद्देश्य (वयस्क मताधिकार की व्यवस्था करने और कार्यपालिका को व्यवस्थापिका के प्रति उत्तरदायी ठहराकर) ऐसे कल्याणकारी राज्य की स्थापना करना है, जिसमें आर्थिक तथा सामाजिक लोकतन्त्र का भी समावश हो। राज्य के नीति निदेशक तत्व इस आदर्श की पूर्ति का साधन हैं।

(ii) नैतिक आदर्शों के रूप में महत्व– यदि निदेशक तत्वों को केवल नैतिक धारणाएँ ही मान लिया जाए, तो भी इनका महत्व कम नहीं होता है। ब्रिटेन में **मैग्नाकार्टा**, फ्रांस में मानवीय तथा नागरिक अधिकारों की घोषणा तथा अमेरिकी संविधान की प्रस्तावना को कोई वैधानिक शक्ति प्राप्त नहीं है, फिर भी इन देशों के इतिहास पर इनका पर्याप्त प्रभाव पड़ा है। इसी प्रकार यह भी आशा की जा सकती है कि ये निदेशक तत्व भारतीय शासन की नीति को निर्देशित और प्रभावित करेंगे।

(iii) सत्तारूढ़ दल के लिए आचार–संहिता– राज्य के नीति निदेशक सिद्धान्त सत्तारूढ़ दल के लिए आचार—संहिता हैं। देश के प्रत्येक राजनीतिक दल को सत्तारूढ़ होने पर अवश्य ही इन सिद्धान्तों के अनुसार अपनी नीतियों को निर्धारित करना चाहिए। यद्यपि सत्तारूढ़ दल को वैधानिक दृष्टि से इन सिद्धान्तों के अनुसार शासन चलाने के लिए विवश नहीं किया जा सकता तथा न्यायालयों को भी इस सम्बन्ध में कोइ शक्ति प्राप्त नहीं होती, तथापि कोई भी उत्तरदायी सरकार इनकी अवहेलना नहीं कर सकती, क्योंकि इन तत्वों के पीछे जनमत की शक्ति है।

(iv) वास्तविक लोकतन्त्र के विकास में विश्वासवर्द्धक– नीति निदेशक सिद्धान्तों का महत्व इस तथ्य में भी निहित है कि ये भारत में एक वास्तविक लोकतन्त्र के विकास का आश्वासन दिलाते हैं। **डॉ० अम्बेडकर** ने कहा था कि, ''राजनीतिक लोकतन्त्र की उपलब्धि के बाद हमारी अभिलाषा आर्थिक लोकतन्त्र की स्थापना करने की है। नीति निदेशक सिद्धान्तों का उद्देश्य भारत में धीरे—धीरे आर्थिक लोकतन्त्र की स्थापना करना है। अत: ये लोकतन्त्र का एक महत्वपूर्ण स्तम्भ है और इसके समृद्धिशाली होने की आशा दिलाते हैं।

(v) सरकार की सफलताओं के परीक्षण के मापदण्ड– नीति निदेशक सिद्धान्तों का एक बहुत बड़ा लाभ यह है कि ये भारतीय जनता के पास सरकार की सफलताओं को जाँचने के मापदण्ड हैं। मतदाता इन सिद्धान्तों को दृष्टि में रखते हुए अनुमान लगाते हैं कि सत्तारूढ़ दल ने अपनी नीति की रूपरेखा देने में किस सीमा तक इन सिद्धान्तों को महत्व दिया है। इन तत्वों के अस्तित्व से एक दल से दूसरे दल को सत्ता हस्तान्तरित हो जाने की स्थिति में राष्ट्र—कल्याण की गति में अवरोध उत्पन्न नहीं होगा।

श्री एम०सी० शीतलवाड के अनुसार, ''ये तत्व प्रज्वलित शक्ति के रूप में राज्य के सभी प्राधिकारियों के राष्ट्र—निर्माण के प्रयास में मार्गदर्शन करेंगे, जिससे राष्ट्र शनै:—शनै: समृद्धशाली बन सके तथा विश्व के अन्य राष्ट्रों में अपना योग्य स्थान प्राप्त कर सके।''

श्री एम०सी० छागला ने नीति निदेशक सिद्धान्तों की प्रशंसा करते हुए कहा था कि, '' इनका पालन करके भारत की भूमि पर स्वर्ग बनाया जा सकता है और एक ऐसे कल्याणकारी राज्य की स्थापना की जा सकती है जिसके नागरिकों में आर्थिक समानता होगी और प्रत्येक नागरिक को कार्य करने, शिक्षा प्राप्त करने और अपने परिश्रम का फल प्राप्त करने का अधिकार होगा।''

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि इन तत्वों के पीछे किसी प्रकार की कानूनी शक्ति न होने पर भी सरकार इनका पालन करने के लिए विवश हो सकती है, परन्तु शर्त यह है कि देश के नागरिक जागरूक रहें और राज्य को उसके कर्तव्यों का स्मरण कराते रहें।''

राज्य के नीति निदेशक सिद्धान्तों की आलोचना– नीति निदेशक सिद्धान्तों की आलोचना भी की गई। कुछ विद्वानों ने निम्न तथ्यों को आधार मानकर राज्य के नीति निदेशक की आलोचना की है—

(i) व्यावहारिकता का अभाव– कुछ सिद्धान्तों को कार्यान्वित करना यदि असम्भव नहीं तो, अन्यन्त कठिन अवश्य है। उदाहरणार्थ, जिन राज्यों में मद्य—निषेध लागू किया गया वहाँ न केवल राज्य के राजस्व में भारी कमी आई वरन् वहाँ भ्रष्टाचार में भी अधिक वृद्धि हुई है।

(ii) रूढ़िवादी सिद्धान्त– गत वर्षों में मानव—विचारधारा में क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए हैं, जिस कारण कई सिद्धान्त रूढ़िवादी हो गए हैं। अत: आने वाली पीढ़ी को इनके साथ बाँधना न्यायोचित नहीं होगा।

(iii) साधनों की व्यवस्था नहीं– इन सिद्धान्तों को व्यावहारिक रूप देने के लिए संविधान के अन्तर्गत आवश्यक साधनों की कोई व्यवस्था नहीं की गई है।

(iv) वैधानिक शक्ति का अभाव– संविधान में दिए गए नीति निदेशक सिद्धान्तों का कोई वैधानिक महत्व (मान्यता) नहीं है क्योंकि किसी न्यायालय द्वारा किसी सरकार को इन्हें अपनाने के लिए विवश नहीं किया जा सकता।

(v) संवैधानिक गतिरोध उत्पन्न होने का भय– राज्य द्वारा इन तत्वों के अनुरूप अपनी नीतियों का निर्माण करने पर मूल अधिकारों के अतिक्रमण की आशंका बढ़ जाएगी।

(vi) केवल खोखले वायदे– डॉ० व्हीयर के अनुसार, ''राज्य के नीति निदेशक तत्व उद्देश्यों तथा कामनाओं की घोषणा से अधिक नहीं है। संविधान नैतिक आदर्शों के रखने योग्य स्थान नहीं है वरन् इसमें केवल उन बातों का समावेश होना चाहिए, जिनका कोई वैधानिक महत्व हो।

(vii) अनिश्चित तथा अस्पष्ट– इन तत्वों (सिद्धान्तों) का उचित ढंग से वर्गीकरण नहीं किया गया है। देश की महत्वपूर्ण समस्याओं को साधारण समस्याओं के साथ जोड़ दिया गया है । फिर इन तत्वों के कई विषय अनिश्चित तथा अस्पष्ट हैं।

2. भारतीय संविधान में उल्लिखित राज्य के नीति निदेशक सिद्धान्तों पर प्रकाश डालिए।

उ०– उत्तर के लिए विस्तृत उत्तरीय प्रश्न संख्या—1 के उत्तर का अवलोकन कीजिए।

3. राज्य के नीति निदेशक सिद्धान्तों का महत्व बताते हुए इनकी आलोचनात्मक समीक्षा कीजिए।

उ०– उत्तर के लिए विस्तृत उत्तरीय प्रश्न संख्या—1 के उत्तर का अवलोकन कीजिए।

4. मौलिक सिद्धान्तों तथा राज्य के नीति निदेशक सिद्धान्तों में अन्तर स्पष्ट कीजिए।

उ०– मौलिक अधिकारों तथा राज्य के नीति निदेशक सिद्धान्तों में अन्तर– मौलिक अधिकारों तथा राज्य के नीति निदेशक सिद्धान्तों में निम्नलिखित अन्तर है—

मौलिक अधिकार	राज्य के नीति निदेशक सिद्धान्त
1. मौलिक अधिकारों का अपेक्षाकृत अधिक महत्व है क्योंकि ये मनुष्य के विकास के लिए अनिवार्य हैं।	1. राज्य के नीति निदेशक सिद्धान्त का अपेक्षाकृत कम महत्व है। इनका मुख्यतया आर्थिक व सामाजिक महत्व है।
2. इन्हें संयुक्त राज्य अमेरिका के संविधान से लिया गया है।	2. इनका स्रोत आयरलैण्ड का संविधान है।
3. मौलिक अधिकार लोगों को प्राप्त हो चुके हैं, ये अधिकार वास्तविक तथा व्यावहारिक हैं।	3. ये सिद्धान्त भविष्य से सम्बन्धित हैं। सरकार अब भी इन्हें व्यावहारिक रूप देने का प्रयास कर रही है।
4. मौलिक अधिकार भारतीय संविधान द्वारा नागरिकों को दिए गए हैं।	4. नीति निदेशक तत्व केन्द्र द्वारा राज्य सरकारों के मार्गदर्शन के लिए निर्देश मात्र हैं।
5. मौलिक अधिकारों का हनन होने पर न्यायालय की शरण ली जा सकती है।	5. नीति निदेशक तत्वों की रक्षा के लिए न्यायालय की शरण नहीं ली जा सकती है।
6. मौलिक अधिकारों का उद्देश्य राजनीतिक लोकतन्त्र की स्थापना करना होता है।	6. नीति निदेशक तत्वों का उद्देश्य सामाजिक और आर्थिक लोकतन्त्र की स्थापना करना है।
7. मौलिक अधिकार नागरिक के व्यक्तिगत विकास तथा स्वतन्त्रता पर अधिक बल देते हैं।	7. नीति निदेशक तत्व आर्थिक और सामाजिक स्वतन्त्रता पर अधिक बल देते हैं।
8. मौलिक अधिकार निषेधात्मक आदेश है।	8. नीति निदेशक तत्व सकारात्मक निर्देश मात्र हैं।
9. मौलिक अधिकारों के पीछे न्यायिक शक्ति होती है।	9. नीति निदेशक तत्वों के पीछे जनमत की शक्ति होती है।

❖ **मानचित्र सम्बन्धी अभ्यास कार्य**

अध्यापक की सहायता से विद्यार्थी स्वयं करें।

❖ **प्रोजेक्ट कार्य**

अध्यापक की सहायता से विद्यार्थी स्वयं करें।

इकाई-1 (ख) : भारत में लोकतन्त्र

20 लोकतन्त्र सार्वभौम वयस्क मताधिकार एवं निर्वाचन-प्रक्रिया

अभ्यास

❖ **बहुविकल्पीय प्रश्न**

उ०– बहुविकल्पीय प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्य पुस्तक के पृष्ठ संख्या—176 का अवलोकन कीजिए।

❖ **अतिलघु उत्तरीय प्रश्न**

उ०– अतिलघु उत्तरीय प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्य पुस्तक के पृष्ठ संख्या—177 का अवलोकन कीजिए।

❖ **लघु उत्तरीय प्रश्न**

1. विभिन्न विद्वानों द्वारा दी गई लोकतन्त्र की कुछ परिभाषाओं को लिखिए।

उ०– **लोकतन्त्र की परिभाषाएँ–** विद्वानों द्वारा लोकतन्त्र को अनेक रूपों में परिभाषित किया गया है। कुछ प्रमुख विद्वानों की परिभाषाएँ निम्नलिखित हैं—

(i) **डॉ० बेनीप्रसाद** के शब्दों में, ''यह जीवन का एक ढंग है। यह इस मान्यता पर आधारित है कि प्रत्येक व्यक्ति के सुख का महत्व उतना ही है, जितना कि अन्य किसी के सुख का हो सकता है तथा किसी को भी अन्य किसी के सुख का साधन—मात्र नहीं समझा जा सकता।''

(ii) लोकतन्त्र की एकदम सरल एवं स्पष्ट व्याख्या अमेरिका के सुप्रसिद्ध भूतपूर्व राष्ट्रपति **अब्राहम लिंकन** ने दी है। उनके अनुसार, ''लोकतन्त्र जनता का, जनता द्वारा और जनता के लिए शासन है।''

(iii) **हेरोडोट्स** के अनुसार, ''प्रजातन्त्र सरकार का वह स्वरूप है, जिसमें राज्य की सर्वोच्च सत्ता सम्पूर्ण समाज के हाथों में होती है।''

(iv) **सीले** के शब्दों में, ''लोकतन्त्र वह शासन व्यवस्था है, जिसमें प्रत्येक व्यक्ति भागीदार होता है।''

(v) **डायसी** के विचार में, ''लोकतन्त्र शासन का वह स्वरूप है, जिसमें शासक—वर्ग सम्पूर्ण राष्ट्र का अपेक्षाकृत एक बड़ा भाग है।''

(vi) **लॉर्ड ब्राइस** के अनुसार, ''लोकतन्त्र एक ऐसी शासन प्रणाली का नाम है, जिसमें शासन—सत्ता किसी वर्ग—विशेष अथवा वर्गों में नही बल्कि सम्पूर्ण समाज के सदस्यों में निहित होती है।''

(vii) **प्रो० हार्नशॉ** के शब्दों में, ''राज्य के प्रकार के रूप में लोकतन्त्र, शासन की ही एक विधि नहीं है, वरन् सरकार की नियुक्ति करने, उस पर नियन्त्रण करने तथा उसे अपदस्थ करने की विधि है।''

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर हम कह सकते हैं कि लोकतन्त्र शासन की वह व्यवस्था है, जिसका उद्देश्य सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में अधिकाधिक समानता की स्थिति उत्पन्न करना है। इसमें जनता को सर्वोच्च माना गया है और शासन की सर्वोच्च शक्ति भी जनता में ही निहित होती है।

2. आर्थिक लोकतन्त्र और सामाजिक लोकतन्त्र में अन्तर बताइए।

उ०– **आर्थिक लोकतन्त्र और सामाजिक लोकतन्त्र में अन्तर–**

आर्थिक लोकतन्त्र	सामाजिक लोकतन्त्र
(i) आर्थिक लोकतन्त्र में समाज के प्रत्येक सदस्य को उसके विकास के लिए समान आर्थिक सुविधाएँ प्राप्त होनी चाहिए।	(i) सामाजिक लोकतन्त्र के लिए आवश्यक है कि समाज का संगठन समानता और भाई-चारे की भावना पर आधारित हो।
(ii) लोगों के बीच आर्थिक असमानता की खाई अधिक चौड़ी न हो और एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति का शोषण न करता हो।	(ii) सामाजिक लोकतन्त्र में लोगों के बीच नस्ल, रंग, धर्म, वंश, लिंग भेद आदि के आधार पर भेदभाव न हो।
(iii) आर्थिक लोकतन्त्र में प्रत्येक व्यक्ति को उसकी योग्यता के अनुसार काम और काम के अनुसार वेतन मिलना चाहिए।	(iii) सामाजिक लोकतन्त्र में उसी व्यक्ति को विशेष सुविधाएँ प्राप्त होती हैं, जो अपने चरित्र, योग्यता आदि के कारण समाज की अधिक सेवा करता है।

3. लोकतन्त्र के पहलुओं को स्पष्ट कीजिए।

उ०– **लोकतन्त्र के पहलू–** लोकतन्त्र के कई पहलू हैं। मैक्सी के अनुसार–''लोकतन्त्र केवल एक राजनीतिक व्यवस्था नहीं है, यह एक सरकार का नाम नहीं है, अपितु पूर्ण सामाजिक व्यवस्था से भी ऊपर है। यह एक ऐसे जीवन की खोज है, जिसमें मनुष्य अपने जीवन को स्वतन्त्रतापूर्वक व्यतीत कर सके।'' लोकतन्त्र के कुछ प्रमुख पहलू निम्नलिखित हैं–

(i) सामाजिक पहलू– समानता सामाजिक लोकतन्त्र का मूल मन्त्र है। स्त्री एवं पुरुष, निर्धन एवं अमीर, सबल व निर्बल सभी को समान माना जाए और उनके प्रति एक-सा व्यवहार हो। समाज में किसी भी प्रकार का भेदभाव नहीं होना चाहिए। पिछड़े वर्गों को कुछ रियायत दी जा सकती है, जिससे कि वे भी प्रगति की दौड़ में शामिल हो सकें।

(ii) आर्थिक पहलू– आर्थिक पहलू से आशय यह है कि समाज में धन के वितरण में अधिक विषमता न हो, अर्थात् लोगों में यथासम्भव आर्थिक समानता हो। सच्चे लोकतन्त्र में शोषण के लिए कोई स्थान नहीं होता है।

(iii) राजनीतिक पहलू– राजनीति की दृष्टि से लोकतन्त्र का अर्थ है बहुसंख्या का शासन। जिस समाज में मताधिकार, चुनाव लड़ने के अधिकार तथा मन्त्री पद प्राप्त करने के अधिकार होंगे वह लोकतन्त्रीय समाज कहलाएगा।

(iv) नैतिक पहलू– नैतिक लोकतन्त्र के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति का व्यक्तित्व पवित्र और सम्माननीय है, अर्थात् किसी मनुष्य को दूसरे के सुख और उन्नति का साधन नहीं माना जा सकता है।

4. लोकतन्त्र की सफलता के लिए आवश्यक शर्तें लिखिए।

उ०– लोकतन्त्र की सफलता के लिए निम्नलिखित शर्तें आवश्यक हैं–

(i) आर्थिक सुरक्षा
(ii) स्वतन्त्र न्यायपालिका
(iii) नागरिकों का उच्च चरित्र
(iv) अल्पसंख्यकों को उचित प्रतिनिधित्व
(v) शक्तिशाली विरोधी दल
(vi) जनमत का निर्माण एवं अभिव्यक्ति
(vii) जनसम्पर्क के माध्यमों की स्वतन्त्रता
(viii) नागरिक स्वतन्त्रताएँ
(ix) स्वतन्त्र तथा निष्पक्ष चुनाव
(x) अच्छी दल प्रणाली
(xi) राजनीतिक जागृति।

5. सीमित मताधिकार और सार्वभौम मताधिकार में अन्तर स्पष्ट कीजिए।

उ०– सीमित मताधिकार के अनुसार समाज के कल्याण को ध्यान में रखकर मत देने का अधिकार केवल शिक्षित और ऐसे व्यक्तियों को दिया जाना चाहिए जिनके पास कुछ सम्पत्ति हो जबकि सार्वभौम मताधिकार के अनुसार पागल, दिवालिया या अन्य किसी प्रकार की अयोग्यता वाले नागरिकों के अतिरिक्त सभी व्यस्क नागरिकों को लिंग, भाषा, जाति, धर्म, क्षेत्र के भेदभाव को समाप्त कर मतदान का अधिकार प्राप्त होना चाहिए।

❖ विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

1. लोकतन्त्र को परिभाषित करते हुए इसके गुणों व कमियों पर प्रकाश डालिए।

उ०– **लोकतन्त्र की परिभाषा–** इसके लिए लघु उत्तरीय प्रश्न संख्या–1 के उत्तर का अवलोकन कीजिए।

लोकतन्त्र के गुण– समस्त शासन प्रणालियों में लोकतन्त्र को उसके निम्नलिखित गुणों के कारण श्रेष्ठ माना जाता है–

(i) जनता का नैतिक उत्थान– प्रो० अपादोराय के मत में, ''लोकतन्त्र में शासन की पूरी जिम्मेदारी नागरिकों पर आ पड़ती है। इससे उनमें बुद्धिमत्ता और आत्मनिर्भरता के गुण आते हैं तथा नए–नए प्रयोग की प्रवृत्ति का उदय होता है।'' लोकतन्त्रीय देश के नागरिको में उदारता और सहनशीलता के भावों का उदय होता है। **मिल** के अनुसार, ''लोकतन्त्र किसी भी अन्य शासन की अपेक्षा उच्च और श्रेष्ठ राष्ट्रीय चरित्र का विकास करता है।''

(ii) देशभक्ति की भावना का विकास– लोकतन्त्रीय शासन जनता में देशभक्ति तथा राष्ट्रीय एकता की भावना को बढ़ाती है। **जे०एस० मिल** के अनुसार, ''लोकतन्त्र में लोगों में देश–प्रेम की भावना बढ़ती है। सभी नागरिक यह अनुभव करते हैं कि सरकार उनकी अपनी बनाई हुई है और अधिकारी उनके स्वामी नहीं बल्कि सेवक हैं।'' संकटकालीन दशाओं में जनता देश के हित के लिए बड़े से बड़ा बलिदान करने के लिए तैयार रहती है।

(iii) विद्रोह या क्रान्ति का भय नहीं– लोकतन्त्र में समय–समय पर चुनाव होते रहते हैं तथा सत्ता–प्राप्ति के लिए खुलकर प्रतियोगिता होती है। लोगों को चुनाव में वोट के द्वारा अयोग्य शासकों को हटाने का मौका मिल जाता है। सत्ता परिवर्तन वैधानिक तरीके से शन्तिपूर्वक हो जाता है। सरकारों को बदलने के लिए साजिशों या षड्यंत्र की आवश्यकता नहीं होती। इस प्रकार क्रान्ति से बचाव हो जाता है।

(iv) देश की प्रतिभा का पूर्ण उपयोग– लोकतन्त्रीय व्यवस्था में देश के लोगों की प्रतिभा का भरपूर उपयोग होता है। समाज के लोगों को अपनी प्रतिभा दिखाने का मौका मिलता रहता है। विभिन्न पदों के लिए बहुत से लोगों की आवश्यकता पड़ती है।

(v) समानता पर आधारित प्रणाली– लोकतन्त्रीय सरकार समानता और भाईचारे की भावना पर आधारित होती है। इसमें

प्रत्येक व्यक्ति को जाति, धर्म, रंग, लिंग, कुल, अमीर व गरीब आदि के भेदभाव के बिना अधिकार प्राप्त होते हैं। किसी भी भेदभाव के बिना कोई व्यक्ति सरकार की सभी संस्थाओं में भाग ले सकता है, चुनावों में वोट दे सकता है तथा कोई भी पद प्राप्त कर सकता है। लोकतन्त्र में विशेषाधिकारों के लिए कोई स्थान नहीं होता। बच्चों, बूढ़ों, अपाहिजों और पिछड़े वर्गों को जो विशेष सुविधाएँ दी जाती हैं उनके तर्कसंगत आधार होते हैं।

(vi) उत्तरदायी और स्थिर सरकार– लोकतन्त्र में उत्तरदायी शासन व्यवस्था होती है, जो जनता के विश्वास पर आधारित होती है। निर्वाचित प्रतिनिधि जनता के प्रति उत्तरदायी होते हैं। इससे सरकार की स्थिरता एवं दक्षता बनी रहती है।

(vii) सर्वाधिक कुशल शासन– प्रजातन्त्रीय सरकार को सर्वाधिक कुशल सरकार माना गया है। शासन जनता द्वारा निर्वाचित योग्य प्रतिनिधियों द्वारा चलाया जाता है, प्रतिनिधि मतदाताओं के प्रति उत्तरदायी होते हैं। **गार्नर** ने लिखा है, ''सार्वजनिक चुनाव, सार्वजनिक नियन्त्रण तथा सार्वजनिक उत्तरदायित्व द्वारा लोकतन्त्र में किसी भी अन्य शासन—प्रणाली की अपेक्षा अधिक दक्षता की सम्भावना होती है।''

लोकतन्त्र की कमियाँ– कुछ विद्वानों ने लोकतन्त्र की आलोचना करते हुए इसकी निम्नलिखित कमियाँ बताई हैं—

(i) ढीली और अकुशल शासन–व्यवस्था– लोकतन्त्रीय सरकारें शीघ्रता से कोई निर्णय नहीं ले पाती है और न ही सरकारी निर्णयों को शीघ्रता से लागू कर पाती हैं। शासन का पहिया बहुत धीरे—धीरे चलता है। युद्धों के संचालन के लिए गोपनीयता और तत्काल कार्यवाही की आवश्यकता होती है। संकटकाल में लोकतन्त्रीय सरकारें प्राय: कमजोर सिद्ध होती है।

(ii) अस्थाई सरकारें– लोकतन्त्र में अनेक बार मिल—जुली सरकारें बनती है अर्थात् किसी एक राजनीतिक दल को स्पष्ट बहुमत प्राप्त न होने पर, उस दशा में कई दलों के तालमेल से सरकार बनाई जाती है। विभिन्न घटक (दल) अपनी मनमानी करने का प्रयास करते हैं, जिससे सरकार के सम्मुख स्थायित्व का संकट मँडराता रहता है। ऐसी स्थिति में सरकार जनहित में शासन नहीं कर पाती।

(iii) दलगत राजनीति के दोष– दलबन्दी सामाजिक जीवन में विष घोल देती है क्योंकि दलगत राजनीति के कारण लोगों का दृष्टिकोण अत्यन्त संकुचित हो जाता है। वे केवल अपने दल के हित में ही सोचते हैं, समूचे राष्ट्र के हित में नहीं। फिर चुनावों के मौके पर राजनीतिक दल जनता को झूठे आश्वासन देते हैं। राजनैतिक दलों का उद्देश्य येन—केन प्रकरेण सत्ता प्राप्त करना होता है। इसके लिए वे एक—दूसरे पर झूठे दोषारोपण द्वारा जनता को गुमराह करते हैं।

(iv) भ्रष्टाचार को बढ़ावा– लोकतन्त्र में भ्रष्टाचार का बोलबाला रहता है। निर्वाचन में योग्य एवं विद्वान लोगों की अपेक्षा धन—बल वाले स्वार्थी लोग अधिक भाग लेते हैं। ऐसे लोगों का उद्देश्य हर प्रकार से राजसत्ता प्राप्त करना होता है। चुनाव में जो भी लोग सत्ताधारी की सहायता करते हैं, वे चुनाव के बाद शासकों को ऐसे कार्य करने के लिए मजबूर कर देते हैं जो जनहित में नहीं होते हैं।

2. मताधिकार की परिभाषा देते हुए व्यस्क मताधिकार के पक्ष और विपक्ष में तर्क दीजिए।

उ०– मताधिकार– आप पूर्ववत् पढ़ चुके हैं कि अप्रत्यक्ष लोकतन्त्र में जनता अपने प्रतिनिधियों के माध्यम से शासन करती है। नागरिकों का वह अधिकार जिसके माध्यम से वे एक निर्धारित अवधि के लिए अपने प्रतिनिधि का चुनाव करते हैं, उसे **मताधिकार** कहते हैं। इन अधिकारों का प्रयोग करने वाले लोगों को **मतदाता** कहते हैं। कई मतदाताओं को सामूहिक रूप से **निर्वाचकगण** कहते हैं।

वयस्क मताधिकार के पक्ष में तर्क– वयस्क मताधिकार के पक्ष में विद्वानों द्वारा निम्नलिखित तर्क दिए गए हैं—

(i) वयस्क मताधिकार के आधार पर राजनीतिक जागृति उत्पन्न होती है।

(ii) वयस्क मताधिकार राष्ट्र की एकता का प्रतीक है।

(iii) मताधिकार की दृष्टि से शिक्षा, सम्पत्ति तथा लिंग—भेद अनुचित हैं, इसलिए सभी को मताधिकार प्राप्त होना चाहिए।

(iv) प्रभुसत्ता का स्रोत जनता है, इसलिए सभी को समान रूप से मताधिकार प्राप्त होना चाहिए। वस्तुत: वयस्क मताधिकार लोकतन्त्र की आधारशिला है।

(v) वयस्क मताधिकार शासन की निरंकुशता पर रोक लगाने में सहायक होता है।

(vi) सभी नागरिक मानव होने के कारण समान हैं। इसके अतिरिक्त वयस्क मताधिकार एक प्राकृतिक अधिकार भी है। अत: प्रत्येक वयस्क को मताधिकार प्रदान किया जाना आवश्यक है। वस्तुत: लोकसत्ता की वास्तविक अभिव्यक्ति इसी से होती है। **गार्नर** के मतानुसार, ''जनता में सत्ता निहित होने की सर्वश्रेष्ठ अभिव्यक्ति वयस्क मताधिकार प्रदान करने पर ही हो सकती है।''

(vii) राज्य के कार्यों, कानूनों व नीतियों का प्रभाव सब पर पड़ता है। इसलिए सभी को मताधिकार प्राप्त होना चाहिए।

(viii) वयस्क मताधिकार प्राप्त व्यक्ति स्वयं को सम्मानित अनुभव करते हैं।

(ix) सभी व्यक्ति समान हैं। सभी को अपने हितों की रक्षा के लिए मताधिकार मिलना चाहिए।

(x) सभी नागरिक अधिकारों की रक्षा के लिए वयस्क मताधिकार होना आवश्यक है।
(xi) सभी को मताधिकार मिलने से अल्पसंख्यक भी प्रतिनिधित्व प्राप्त कर लेते हैं तथा अल्पसंख्यकों के अधिकार सुरक्षित रहते हैं।

वयस्क मताधिकार के विपक्ष में तर्क– वयस्क मताधिकार के विपक्ष में दिए गए तर्क निम्नलिखित हैं—

(i) वयस्क मताधिकार से धनिकों की हानि हो सकती है।
(ii) इसके फलस्वरूप पारिवारिक शान्ति भंग हो जाने की सम्भावना बनी रहती है।
(iii) मताधिकार एक पवित्र कर्तव्य है, जो केवल समझदार व बुद्धिमानों को ही प्राप्त होना चाहिए।
(iv) साधारण जनता राजनीति के जटिल प्रश्नों को नहीं समझती है। इसीलिए सबको मताधिकार प्राप्त नहीं होना चाहिए।
(v) अधिकारों की सुरक्षा के लिए सबको मताधिकार देना अनुचित है, क्योंकि यह अधिकार सुरक्षा की कोई गारण्टी नहीं है।
(vi) यह एक विचारहीन तथा भयावह दृष्टिकोण अथवा सिद्धान्त है, क्योंकि इसके फलस्वरूप निरक्षर, निर्धन तथा पिछड़े व अज्ञानी लोग सत्ता में आ जाएँगे।
(vii) इससे शासन की सत्ता निरक्षर व अज्ञानियों के हाथों में आ जाएगी।
(viii) वयस्क मताधिकार रूढ़िवादिता को जन्म देता है, क्योंकि जनता अनुदारवादी होती है और प्रगतिशील विधेयकों को शंका की दृष्टि से देखती है। **सर हेनरीमेन** के अनुसार,''वयस्क मताधिकार सम्पूर्ण प्रगति का अन्त कर देगा।''
(ix) वयस्क मताधिकार भ्रष्टाचार को जन्म देता है, क्योंकि निर्वाचन के समय धन, धर्म व जाति के आधार पर मतदान होता है।

आधुनिक युग में वयस्क मताधिकार का महत्व सर्वविदित है। आज मताधिकार के लिए शिक्षा, सम्पत्ति अथवा लिंग—भेद हमें चाहे कितना भी रुचिकर लगे, वह अनुचित है। **गार्नर** के मतानुसार, ''क्या यह उचित है कि वह व्यक्ति, जो दुर्भाग्य तथा परिस्थिति का शिकार होकर धन खो बैठा हैं, सब योग्यताओं के होते हुए भी मताधिकार से वंचित कर दिया जाए।'' इसी प्रकार शिक्षा भी राजनीतिक जागरूकता होने अथवा न होने का मापदण्ड नहीं है। आज के प्रगतिशील समाज में सभी को बिना भेदभाव के मताधिकार देना होगा। **लास्की** का मत है, '' वयस्क मताधिकार का कोई विकल्प नहीं है।'' यही कारण है कि आधुनिक युग में संसार के सभी प्रगतिशील देशों में वयस्क मताधिकार ही प्रदान किया जाता है।

2. निर्वाचन की परिभाषा बताते हुए निर्वाचन प्रक्रिया के स्वरूप को स्पष्ट कीजिए।

उ०– निर्वाचन– वह प्रक्रिया जिसके द्वारा मतदाता अपने प्रतिनिधि का चुनाव करते हैं, निर्वाचन कहलाती है। अन्य शब्दों में हम कह सकते हैं कि निर्वाचन एक ऐसी क्रिया है जिसमें मतदाता संसद, विधानमण्डल, विधान परिषद, पंचायत या अन्य संगठन के लिए अनेक उम्मीदवारों में से अपनी पसन्द के उम्मीदवार चुनते हैं। निर्वाचन को मुख्य रूप से निम्नलिखित दो प्रकारों में बाँटा गया है—

(i) प्रत्यक्ष निर्वाचन– इस प्रक्रिया में मतदाता प्रत्यक्ष रूप से मतदान में भाग लेकर विधानमण्डल के लिए प्रतिनिधियों का चुनाव करते हैं। भारत में लोकसभा और राज्यों की विधानसभाओं के प्रतिनिधियों का चयन इसी पद्धति से होता है।

(ii) अप्रत्यक्ष निर्वाचन– अप्रत्यक्ष निर्वाचन में मतदाता विधानमण्डल के सदस्यों का प्रत्यक्ष रूप से चयन नहीं करते, अपितु वे पहले कुछ प्रतिनिधियों का चयन करते हैं और फिर ये चयनित प्रतिनिधि विधानमण्डल के सदस्यों का चुनाव करते हैं। भारत में राज्यसभा तथा राज्यों में स्थित विधानपरिषद्‌ों के चुनाव इसी पद्धति से होते हैं।

निर्वाचन प्रक्रिया का स्वरूप– आधुनिक युग में लगभग सभी प्रजातान्त्रिक देशों में प्रत्यक्ष मतदान प्रणाली प्रचलित है। प्रत्येक देश में चुनाव आयोग का अध्यक्ष अथवा चुनाव आयुक्त चुनाव सम्बन्धी प्रक्रियाओं का संचालन करता है। सर्वप्रथम चुनाव आयोग जनसंख्या के आधार पर प्रतिनिधियों के चुनाव के लिए निर्वाचन क्षेत्रों का निर्धारण करता है। चुनाव आयोग मतदान क्षेत्र के मतदाताओं की सूची तैयार कराता है और अन्तिम संशोधित सूची को तैयार कराकर प्रकाशित करवाता है। चुनाव सम्बन्धी तैयारियाँ पूरी होने पर सरकार चुनाव सम्बन्धी आवश्यक तिथियों की विधिवत् घोषणा कर देती है। इसके साथ ही नामांकन—पत्र प्रस्तुत करने, उसकी जाँच करने, नाम वापस लेने आदि की प्रकियाएँ प्रारम्भ हो जाती हैं। एक निश्चित तिथि तक चुनाव में भाग लेने वाले सभी प्रत्याक्षी अपना नामांकन—पत्र भरकर जमा कर देते हैं। निर्धारित समय में नामांकन—पत्रों की चुनाव आयोग द्वारा जाँच की जाती है और अशुद्ध तथा अपूर्ण नामांकन—पत्रों को रद्द कर दिया जाता है। निर्धारित तिथि तक चुनाव न लड़ने की इच्छा होने पर प्रत्याशी अपना नामांकन पत्र वापस ले सकते हैं। जो प्रत्याशी स्वतन्त्र रूप से चुनाव लड़ते हैं, उन्हें चुनाव आयोग चुनाव चिह्न आवंटित करता है। स्वीकृत नामांकन पत्रों के आधार पर चुनाव आयोग मत—पत्रों का प्रकाशन करता है। इसमें प्रत्याशियों के नाम व उनके चुनाव चिह्न मुद्रित किए जाते हैं। चुनाव आयोग सम्पूर्ण निर्वाचन क्षेत्र में जनता की सुविधा को ध्यान में रखकर स्थान—स्थान पर विभिन्न मतदान केन्द्रों की स्थापना करता है। निश्चित तिथि को मतदान होता है। मतदान प्रत्यक्ष किन्तु गुप्त रूप से मतपत्र पर इच्छित, प्रत्याशी के नाम के सामने निशान लगाकर मतपत्र को मतपेटियों में डालकर किया जाता है। वर्तमान में मतपेटियों के स्थान पर इलेक्ट्रॉनिक वोटिंग मशीन का उपयोग किया जाने लगा है। मतदान के बाद चुनाव अधिकारियों के संरक्षण में मतों की गणना होती है। जो प्रत्याशी सर्वाधिक मत प्राप्त करता है, उसे विजयी घोषित

कर दिया जाता है।

3. **निर्वाचन आयोग क्या है? निर्वाचन आयुक्तों की नियुक्ति के लिए योग्यताओं को बताते हुए निर्वाचन आयोग के कार्यों की समीक्षा कीजिए।**

उ०– **निर्वाचन अयोग–** संविधान के भाग—15 के अनुच्छेद 324 में भारत में संसद, राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति, राज्यों के विधालमण्डल आदि के चुनावों को संचालित एवं नियन्त्रित करने के लिए **निर्वाचन आयोग के गठन** की व्यवस्था की गई है। संविधान के अनुसार निर्वाचन आयोग में मुख्य चुनाव आयुक्त और जितने चुनाव आयुक्त होंगे उतने समय—समय पर राष्ट्रपति निश्चिय करेगा। संविधान में चुनाव आयुक्तों की संख्या निश्चित नहीं की गई है वरन् यह दायित्व राष्ट्रपति को सौंपा गया है।

निर्वाचन आयुक्तों की नियुक्ति एवं योग्यताएँ– सविधान के अनुच्छेद 324 (2) के अनुसार मुख्य निर्वाचन आयुक्त तथा अन्य निर्वाचन आयुक्तों की नियुक्ति भारत के **राष्ट्रपति** द्वारा की जाती है। निर्वाचन आयुक्तों की नियुक्ति सम्बन्धी योग्यताओं का भारतीय संविधान में कोई उल्लेख नहीं किया गया है। इस सम्बन्ध में संविधान मौन है।

कार्यकाल– मुख्य निर्वाचन आयुक्त तथा अन्य निर्वाचन आयुक्तों का कार्यकाल उनके पद सँभालने की तिथि से लेकर छ: वर्ष तक अथवा 65 वर्ष की आयु तक (दोनों में जो पहले हो) होता है।

वेतन तथा सेवा-शर्तें– 1 अक्टूबर, 1993 को संसद द्वारा पारित किए गए विधेयक द्वारा निर्वाचन आयुक्तों को सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश के वेतन (90 हजार रुपए मासिक) के समान वेतन दिए जाने की व्यवस्था की गई है। इनके वेतन व भत्ते भारत सरकार की संचित निधि से दिए जाते है।

मुख्य निर्वाचन आयुक्त को पद से हटाना– संविधान के अनुच्छेद 324 (5) के अनुसार मुख्य निर्वाचन आयुक्त को उसी विधि द्वारा पद से हटाया जा सकता है, जिस विधि द्वारा सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों को हटाया जा सकता है। इसका अर्थ यह हुआ कि मुख्य निर्वाचन आयुक्त को तभी हटाया जा सकता है, जब संसद के दोनों सदन (लोकसभा व राज्यसभा) अलग—अलग अपने कुल सदस्यों के बहुमत से तथा उपस्थित व मतदान करने वाले सदस्यों के 2/3 बहुमत से महाभियोग को पारित कर दें।

निर्वाचन आयुक्तों को पद से हटाना– अन्य निर्वाचन आयुक्तों तथा क्षेत्रीय निर्वाचन आयुक्तों को राष्ट्रपति मुख्य निर्वाचन आयुक्त की सलाह से उनके पद से हटा सकता है।

निर्वाचन आयोग की कार्यप्रणाली– निर्वाचन आयोग अपनी कार्यप्रणाली स्वयं निर्धारित करेगा। आयोग का कार्य सर्वसम्मति से किया जाएगा। यदि मुख्य निर्वाचन आयुक्त तथा अन्य निर्वाचन आयुक्तों में किसी विषय के सम्बन्ध में मतभेद है तो उस विषय का निर्णय बहुमत से किया जाएगा।

निर्वाचन आयोग के लिए कर्मचारी– संविधान के अनुच्छेद 324 (6) के अनुसार आयोग अपने कार्यों को पूरा करने के लिए राष्ट्रपति एवं राज्यों के राज्यपालों से आवश्यकतानुसार कर्मचारियों की माँग कर सकता है। राष्ट्रपति तथा राज्यपालों का यह कर्तव्य है कि वे आयोग की प्रार्थना पर उचित स्टाफ का प्रबन्ध करें।

निर्वाचन आयोग के कार्य– भारतीय निर्वाचन आयोग के निम्नलिखित कार्य निर्धारित किए गए हैं—

(i) चुनाव क्षेत्रों का परिसीमन करना।
(ii) मतदाता सूची को तैयार करना व उनका प्रकाशन करना भी निर्वाचन आयोग का ही कार्य है।
(iii) यह चुनाव याचिकाओं के सन्दर्भ में सरकार को परामर्श देने का कार्य करता है।
(iv) यह चुनाव कर्मचारियों को चुनाव का प्रशिक्षण देता है।
(v) यह राजनीतिक दलों के विवादों को समाप्त करने का कार्य करता है।
(vi) यह राजनीतिक दलों के लिए आचार संहिता का निर्माण भी करता है।
(vii) यह राजनीतिक दलों को चुनाव चिह्न प्रदान करने का कार्य करता है।
(viii) यह चुनाव व्यवस्था का कार्य करता है।
(ix) आवश्यकतानुसार चुनाव रद्द करने और पुन: चुनाव कराने का कार्य भी चुनाव आयोग का ही है।
(x) संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि भारत में चुनावों को सुचारु रूप से करवाने से लेकर मतदान की गिनती तक का सभी कार्य चुनाव आयोग का ही होता है।

❖ **मानचित्र सम्बन्धी अभ्यास कार्य**

अध्यापक की सहायता से विद्यार्थी स्वयं करें।

❖ **प्रोजेक्ट कार्य**

अध्यापक की सहायता से विद्यार्थी स्वयं करें।

21 भारतीय लोकतन्त्र में राजनीतिक दलों की भूमिका

अभ्यास

❖ **बहुविकल्पीय प्रश्न**

उ०– बहुविकल्पीय प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्य पुस्तक के पृष्ठ संख्या—190 का अवलोकन कीजिए।

❖ **अतिलघु उत्तरीय प्रश्न**

उ०– अतिलघु उत्तरीय प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्य पुस्तक के पृष्ठ संख्या—191 का अवलोकन कीजिए।

❖ **लघु उत्तरीय प्रश्न**

1. राजनीतिक दल क्या हैं?

उ०– **राजनीतिक दल–** राजनीतिक दल ऐसे व्यक्तियों का समुदाय होता है, जो सार्वजनिक महत्व के प्रश्नों पर एक समान विचार रखता है तथा अपने विचारों को क्रियान्वित कराने के लिए कानूनी रूप से शासन पर अपना प्रभुत्व या नियन्त्रण स्थापित करना चाहता है। कुछ विद्वानों द्वारा राजनीतिक दलों को निम्न प्रकार परिभाषित किया है—

गिलक्राइस्ट के अनुसार, ''राजनीतिक दल नागरिकों के उस संगठित समूह को कहते हैं, जिसके सदस्य समान राजनीतिक विचार रखते हों और एक राजनीतिक इकाई के रूप में कार्य करते हुए सरकार पर नियन्त्रण करना चाहते हों।''

बर्क के अनुसार, ''राजनीतिक दल मनुष्यों के उस समूह को कहते हैं, जो किसी स्वीकृत सिद्धान्त के आधार पर सामूहिक प्रयासों द्वारा राष्ट्रीय हितों की वृद्धि के लिए संगठित होता है।''

मैकाइवर के शब्दों में, ''राजनीतिक दल किसी नीति या सिद्धान्त के लिए संगठित एक संस्था है, जो उस नीति को संवैधानिक साधनों से शासन का आधार बनाना चाहती है।''

2. दल प्रणाली कितने प्रकार की होती है? सभी को बताइए।

उ०– विश्व में दलीय प्रणाली मुख्य रूप से तीन प्रकार की प्रचलित है— (i) एकदलीय प्रणाली (ii) द्विदलीय प्रणाली (iii) बहुदलीय प्रणाली।

3. राजनीतिक दलों के प्रमुख कार्य बताइए।

उ०– **राजनीतिक दलों के कार्य–** राजनीतिक दलों का मुख्य कार्य देश का विकास करना है। इस उद्देश्य की पूर्ति को ध्यान में रखकर राजनीतिक दलों के निम्न कार्य निर्धारित किए गए हैं—

(i) राजनीतिक दल सभाओं, भाषणों, समाचारपत्रों, पत्रिकाओं तथा अन्य संचार माध्यमों से जनता को अपनी समस्त नीतियों तथा सिद्धान्तों से अवगत कराते हैं।
(ii) राजनीतिक दल लोकतन्त्र में जनता का पथ—प्रदर्शन करते हैं।
(iii) राजनीतिक दल सरकार के विभिन्न विभागों में समन्वय और सामंजस्य स्थापित करते हैं।
(iv) राजनीतिक दल जनता में राजनीतिक चेतना का विकास करते हैं।
(v) राजनीतिक दल समय—समय पर सार्वजनिक सभाओं और वार्षिक अधिवेशनों का आयोजन करते हैं।
(vi) राजनीतिक दल सामाजिक और सांस्कृतिक विकास का कार्य करते हैं।
(vii) राजनीतिक दल जनता को राजनीतिक गतिविधियों से परिचित कराते हैं।
(viii) राजनीतिक दलों से विरोधी सत्ता दल का भी निर्माण होता है, जो सरकार की आलोचना कर उस पर नियन्त्रण रखते हैं।
(ix) राजनीतिक दल अपने कार्यकर्ताओं में अनुशासन एवं संयम जैसे नैतिक गुणों का संचार करते हैं।

4. प्रजातन्त्र में विपक्षी दलों की भूमिका स्पष्ट कीजिए।

उ०– **प्रजातन्त्र में विपक्षी दलों की भूमिका–** विपक्षी दल वो राजनीतिक दल होते हैं, जो चुनाव में बहुमत प्राप्त करने में असफल होते हैं तथा सरकार बनाने में असमर्थ होते हैं। अन्य शब्दों में विपक्षी दल द्वितीय विजेता दल होता है। प्रजातन्त्र में विपक्षी दलों की भूमिका निम्नवत होती है—

(i) विरोधी दल सत्तारूढ़ दल पर अंकुश रखते हैं। विरोधी दलों के कारण सरकार कोई भी ऐसा कार्य करने का साहस नहीं करती, जो तर्क संगत न हो।
(ii) विरोधी दल सदन में तथा सदन के बाहर सरकार की गलत नीतियों तथा कार्यों की आलोचना करते हैं।
(iii) विरोधी दल चुनाव घोषणा पत्र, प्रसार, प्रदर्शन, आन्दोलन आदि के द्वारा आगामी चुनावों के लिए जनमत का प्रयत्न करते हैं।

(iv) विरोधी दल संसद में मन्त्रियों से प्रश्न पूछकर, काम रोको प्रस्ताव रखकर तथा वाद—विवाद द्वारा सरकार की भूलों को प्रकाश में लाते हैं तथा सरकार को सही मार्ग बताते हैं।

(v) सरकार द्वारा प्रस्तुत विधेयकों की कमियों को स्पष्ट करने तथा उसमें आवश्यक संशोधन करवाना भी विरोधी दल का ही कार्य है।

5. भारत के किन्ही दो क्षेत्रीय राजनीतिक दलों के विषय में बताइए।

उ०– **(i) राष्ट्रीय लोकदल–** यह भी उत्तर प्रदेश का क्षेत्रीय दल है। इस दल की स्थापना भारत के भूतपूर्व प्रधानमन्त्री **चौ० चरण सिंह** के सुपुत्र **श्री अजित सिंह** ने की है। यह दल चौ० चरण सिंह के भारतीय लोकदल के सिद्धान्तों को मान्यता देता है, वस्तुत: यह उसी का नवोदित रूप है। इस पार्टी के अध्यक्ष **चौ० अजित सिंह** हैं।

चुनाव चिह्न– इस दल का चुनाव चिह्न **हैण्डपम्प** है।

नीतियाँ एवं कार्यक्रम– यह दल किसानों का हिमायती है और यह किसानों की समस्याओं के समाधान के लिए कार्यरत रहता है। यह दल कृषि के विकास तथा उद्योगों के विकास के मध्य समन्वय स्थापित करना चाहता है। पश्चिमी उत्तर प्रदेश में इस दल का विशेष महत्व है। वर्तमान में इस दल का प्रमुख उद्देश्य पश्चिमी उत्तर प्रदेश को **हरित प्रदेश** बनाना है।

(ii) द्रविड़ मुनेत्र कड़गम– यह दल केवल तमिलनाडु तक सीमित है। इसकी स्थापना **17 दिसम्बर, 1949 ई०** को **श्री अन्नादुरई** द्वारा की गई थी। यह दल हिन्दी का कट्टर विरोधी है तथा इसने हिन्दी, महँगाई और भ्रष्टाचार के विरुद्ध चेन्नई में आन्दोलन किया था। यह पृथक् द्रविड़ राज्य बनाने का पक्षपाती रहा है। तेरहवीं लोकसभा के चुनाव में द्रविड़ मुनेत्र कड़गम ने राष्ट्रीय जनतान्त्रिक गठबन्धन के घटक दल के रूप मे चुनाव लड़ा था और संसद में 12 स्थान प्राप्त किए थे। सोलहवीं लोकसभा (2014) में इस पार्टी को एक भी स्थान प्राप्त नहीं हुआ। इस दल का चुनाव चिह्न **उगता सूरज** है। वर्तमान में इसके राष्ट्रीय अध्यक्ष **एम० करुणानिधि** हैं।

राष्ट्रीय स्तर पर यह दल संयुक्त प्रगतिशील गठबन्धन (UPA) का एक घटक है और वर्ष 2009 में सम्पन्न हुए लोकसभा चुनाव के बाद डा० मनमोहन सिंह के नेतृत्व में गठित सरकार में यह दल शामिल हो गया।

❖ विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

1. विभिन्न विद्वानों द्वारा दी गई राजनीतिक दलों की परिभाषाओं द्वारा राजनीतिक दल का अर्थ स्पष्ट कीजिए।

उ०– **राजनीतिक दल–** राजनीतिक दल ऐसे व्यक्तियों का समुदाय होता है, जो सार्वजनिक महत्व के प्रश्नों पर एक समान विचार रखता है तथा अपने विचारों को क्रियान्वित कराने के लिए कानूनी रूप से शासन पर अपना प्रभुत्व या नियन्त्रण स्थापित करना चाहता है। कुछ विद्वानों द्वारा राजनीतिक दलों को निम्न प्रकार परिभाषित किया है—

गिलक्राइस्ट के अनुसार, ''राजनीतिक दल नागरिकों के उस संगठित समूह को कहते हैं, जिसके सदस्य समान राजनीतिक विचार रखते हों और एक राजनीतिक इकाई के रूप में कार्य करते हुए सरकार पर नियन्त्रण करना चाहते हों।''

बर्क के अनुसार, ''राजनीतिक दल मनुष्यों के उस समूह को कहते हैं, जो किसी स्वीकृत सिद्धान्त के आधार पर सामूहिक प्रयासों द्वारा राष्ट्रीय हितों की वृद्धि के लिए संगठित होता है।''

मैकाइवर के शब्दों में, ''राजनीतिक दल किसी नीति या सिद्धान्त के लिए संगठित एक संस्था है, जो उस नीति को संवैधानिक साधनों से शासन का आधार बनाना चाहती है।''

गैटिल के अनुसार, ''राजनीतिक दल न्यूनाधिक संगठित उन नागरिकों का एक समूह है, जो एक राजनीतिक इकाई के रूप में कार्य करते हैं और जिनका उद्देश्य अपने मताधिकार के प्रयोग द्वारा सरकार पर अधिकार जमाना तथा अपनी सामान्य नीति को लागू करना होता है।''

प्रो० लास्की के अनुसार, ''राजनीतिक दल से हमारा तात्पर्य नागरिकों के उस संगठित समूह से है, जो एक संगठन के रूप में कार्य करते हैं।''

लीकॉक के अनुसार, ''राजनीतिक दल संगठित मानवों के उन समुदायों को कहते हैं, जो इकट्ठे मिलकर एक राजनीतिक समुदाय के रूप में रहते हैं। उनके विचार राजनीतिक प्रश्नों पर समान होते हैं और वे एक सामान्य उद्देश्य की पूर्ति के लिए मतदान की शक्ति का प्रयोग करके सरकार पर अपना आधिपत्य स्थापित करना चाहते हैं।''

डब्लू०बी० मुनरो के अनुसार, ''राजनीतिक दल का अर्थ है— सार्वजनिक प्रश्नों पर समान रूप से सोचने वाले लोगों का समूह। यह राजनीतिक जीवन की वास्तविकताओं की अपेक्षा उसके आदर्श को अधिक अभिव्यक्त करता है।''

आज राजनीतिक दल हमारे जीवन का अंग बन चुके हैं। इन्हें लोकतन्त्र रूपी गाड़ी के पहिए कहा गया है। राजनीतिक दलों की परिभाषा करते हुए **एडमण्ड बर्क** ने कहा है, ''राजनीतिक दल ऐसे लोगों का एक समूह होता है, जो किसी ऐसे सिद्धान्त के आधार पर जिस पर वे एकमत हों, अपने सामूहिक प्रयत्न द्वारा जनता के हित में काम करने के लिए एकता में बँधे होते हैं।''

राजनीतिक दल लोकतन्त्र में जनमत को अभिव्यक्त करते हैं। ये अपने सिद्धान्तों और कार्यक्रमों के आधार पर जनता के समक्ष

चुनाव के समय जाकर वोट माँगते हैं तथा बाद में विजयी दल सरकार बनाते हैं।

2. लोकतन्त्र में राजनीतिक दलों का महत्व बताते हुए इसके गुण व दोषों की विवेचना कीजिए।

उ०– लोकतन्त्र में राजनीतिक दलों का महत्व– राजनीतिक दलों की प्रजातन्त्र में बहुत अहम भूमिका है। कुछ विद्वानों ने लोकतन्त्र में राजनीतिक दलों का महत्व बताते हुए कहा है–

गिलक्राइस्ट के मतानुसार, ''प्रजातन्त्र शासन जनता का शासन न होकर जनता के प्रतिनिधियों का ही शासन होता है।''

लॉर्ड ब्राइस के अनुसार, ''प्रजातन्त्र में राजनीतिक दल अनिवार्य हैं। कोई भी विशाल स्वतन्त्र देश उनके बिना नहीं रह सकता है। कोई भी यह स्पष्ट नहीं कर सकता है कि उनके अभाव में प्रतिनिध्यात्मक शासन किस प्रकार चलाया जा सकता है।''

लीकॉक के अनुसार, '' केवल दलीय प्रणाली ही ऐसी वस्तु है, जो लोकतन्त्रीय शासन को सम्भव बनाती है। प्रजातन्त्ररूपी इंजन को चलाने के लिए राजनीतिक दल पटरी के रूप में कार्य करते हैं।''

मैकाइवर के अनुसार, ''राजनीतिक दल किसी नीति या सिद्धान्त के लिए संगठित एक संस्था है, जो उस नीति को संवैधानिक साधनों से शासन का आधार बनाना चाहती है।''

डब्लू० बी० मुनरो के अनुसार, ''राजनीतिक दल का अर्थ है– सार्वजनिक प्रश्नों पर समान रूप से सोचने वाले लोगों का समूह। यह राजनीतिक जीवन की वास्तविकताओं की अपेक्षा उसके आदर्श को अधिक अभिव्यक्त करता है।''

एडमण्ड बर्क के अनुसार, '' राजनीतिक दल ऐसे लोगों का एक समूह होता है, जो किसी ऐसे सिद्धान्त के आधार पर जिस पर वे एकमत हों, अपने सामूहिक प्रयत्न द्वारा जनता के हित में काम करने के लिए एकता में बँधे होते हैं।''

राजनीतिक दल लोकतन्त्र में जनता को अभिव्यक्त करते हैं। ये अपने सिद्धान्तों और कार्यक्रमों के आधार पर जनता के समक्ष चुनाव के समय वोट माँगकर अपने को विजयी बनाने का आग्रह करते हैं।

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि प्रजातन्त्र में राजनीतिक दलों का महत्व इसलिए है, क्योंकि वे स्वस्थ लोकमत की रचना, निर्वाचनों का संचालन, सभी वर्गों के हितों का प्रतिनिधित्व, मतों एवं सिद्धान्तों का प्रचार, सरकार का गठन और संचालन, शासन सत्ता को मर्यादित रखते हैं तथा शासन के विभिन्न अंगों में समन्वय स्थापित करते हैं।

राजनीतिक दलों के गुण व दोष– राजनीतिक दलों के गुण व दोष निम्नलिखित हैं–

गुण–

(i) राजनैतिक विचारों को कार्यरूप देना– राजनैतिक दल विभिन्न राजनैतिक विचारों की अभिव्यक्ति में सहायता करते हैं। अलग–अलग राजनैतिक दल विभिन्न विचारों एवं विचारधाराओं का प्रतिनिधित्व करते हैं। इनके माध्यम से अनेक लोग अपने–अपने विचार व्यक्त कर पाते हैं।

(ii) जनमत–निर्माण में सहायक– राजनैतिक दल जनमत–निर्माण में सहायता करते हैं। ये लोगों को राजनैतिक शिक्षा देते हैं, इससे जनता में राजनैतिक चेतना उत्पन्न होती है। राजनैतिक दल कई प्रकार से साधारण जनता को देश–विदेश में हो रही राजनैतिक घटनाओं की जानकारी देते हैं। यह समस्त ज्ञान जनमत–निर्माण में काफी सहायक होता है।

(iii) अनुशासन कायम करना– किसी राजनीतिक दल की लोकप्रियता तथा सफलता के लिए उसके कार्यकर्ताओं का अनुशासन में रहना परमावश्यक होता है। अत: राजनीतिक दल के सदस्य अनुशासन में रहते हैं और अपने दल के नियमों का पालन करते हैं। लोकतन्त्र में अनुशासन बलपूर्वक नहीं लाया जा सकता। अनुशासन लोगों की सद्भावना पर ही आधारित होता है।

(iv) व्यवस्थापिका में महत्वपूर्ण भूमिका निभाना– राजनैतिक दलों का योगदान व्यवस्थापिकाओं में महत्वूपर्ण होता है। ये कानून–निर्माण में सहायता करते हैं, देश का बजट पास करते हैं, नीति–निर्माण में सहायता करते हैं, जन–समस्याओं पर वाद–विवाद करते हैं और उनका निराकरण करने में सहायता करते हैं। व्यवस्थापिकाओं में अनुशासन बनाए रखने में राजनीतिक दलों की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण होती है।

(v) शासन की निरंकुशता पर नियन्त्रण– राजनैतिक दल शासन की निरंकुशता को रोकते हैं। जब भी सत्तारूढ़ दल या सरकारी तन्त्र अपनी मनमानी करने का प्रयत्न करता है तो विरोधी दल उसकी कड़ी आलोचना करते हैं और शासक वर्ग को मनमानी नहीं करने देते। इससे जनता के अधिकारों की सुरक्षा होती है।

(vi) श्रेष्ठ कानूनों का निर्माण करना– राजनैतिक दल अच्छे कानूनों के निर्माण में सहायता करते हैं। व्यवस्थापिकाओं में सत्तारूढ़ दल एवं विरोधी दल आपसी वाद–विवाद के बाद ही कानूनों को बनने देते हैं। कानून निर्माण प्रक्रिया में भी शासक–वर्ग अपनी मनचाही नहीं कर पाता है।

(vii) राष्ट्रीय एकता में सहायक– राजनैतिक दल राष्ट्रीय एकता में सहायक होते हैं। वे समाज में व्याप्त जाति, धर्म, भाषा और क्षेत्र की संकीर्ण भावनाओं के प्रभाव को सीमित करने का प्रयास करते हैं। राजनैतिक दल समाज के सभी वर्गों के लोगों को अपने साथ जोड़ने का प्रयास करते हैं। इससे राष्ट्रीय एकता में काफी सहायता मिलती है।

दोष–

(i) योग्य व्यक्तियों की उपेक्षा– राजनैतिक दल देश के राजनैतिक वातावरण को इतना दूषित कर चुके हैं कि योग्य व्यक्ति उनसे बचता है। राजनैतिक दलों के उम्मीदवार या तो अयोग्य व्यक्ति होते हैं अथवा अपराधी प्रवृत्ति के होते हैं या फिर नेताओं के प्रति अन्ध–भक्ति रखने वाले होते हैं। योग्य व्यक्ति निर्वाचन में बहुत कम भाग लेते हैं। शायद राजनैतिक दल चाहते भी नहीं है कि योग्य व्यक्ति राजनीति में आएँ। भारत में योग्य व्यक्तियों की कमी नहीं है परन्तु दलगत राजनीति में प्रवेश पाना उनके लिए कठिन हो गया है।

(ii) समय और धन की बर्बादी– राजनैतिक दल चुनाव में धन की बहुत बर्बादी करते हैं। व्यवस्थापिकाओं में भी समय और धन की बहुत बर्बादी होती है क्योंकि सदन को चलाने में काफी धन खर्च होता है। वाद–विवाद का स्तर निरन्तर गिरता जा रहा है। सत्तारूढ़ दल द्वारा सरकार की नीतियाँ और योजनाएँ भी प्राय: दल को लाभ पहुँचाने के लिए ही बनाई जाती हैं।

(iii) जनता का नैतिक पतन– आजकल 'जैसा राजा वैसी प्रजा' वाली कहावत चरितार्थ हो रही है। राजनैतिक दलों ने भ्रष्टाचार फैलाकर साधारण व्यक्ति को भी भ्रष्ट बना दिया है। भ्रष्टाचार शायद हमारी जीवन–शैली बन गया है।

(iv) बहुदलीय व्यवस्था में स्थिरता का अभाव– जिन देशों में बहुदलीय राजनैतिक प्रणाली है, वहाँ राजनैतिक स्थिरता का भी अभाव रहता है। सरकार कब अल्पमत में आ जाए, कौन–सा दल कब अपना समर्थन वापस ले ले, यह कहना कठिन होता है। इससे विकास–कार्यों में बाधा पड़ती है। यद्यपि भारत में दल–बदल विरोधी अधिनियम लागू किया जा चुका है तथापि विभिन्न राजनीतिक दल इसका अनेक ढंगों से उल्लंघन करते रहे हैं।

(v) राष्ट्रीय हितों को हानि पहुँचाना– राजनैतिक दल अनेक बार राष्ट्रीय हितों को हानि भी पहुँचाते हैं। वे वोट–बैंक की घृणित राजनीति में इतने उलझे रहते हैं कि देश–हित की सोच ही नहीं पाते। अनेक दल जनता में जाति, धर्म, भाषा, नस्ल, क्षेत्र, आदि की संकीर्ण भावनाएँ भड़काते हैं और स्थानीय (क्षेत्रीय) एवं संकीर्ण मामलों को उठाकर राष्ट्रीय हितों को हानि पहुँचाते हैं।

(vi) व्यक्तिगत स्वतन्त्रता नष्ट करना– राजनैतिक दल प्राय: व्यक्तिगत स्वतन्त्रता को नष्ट कर देते हैं। प्रत्येक दल के अन्दर कुछ नेता बहुत महत्वाकांक्षी होते हैं। वे ही दल के महत्वपूर्ण निर्णय लेते हैं। उनके चारों ओर ही दल की राजनीति घूमने लगती है। दल में **आन्तरिक लोकतन्त्र** समाप्त हो जाता है। दलीय अनुशासन की दुहाई दी जाती है, जिससे व्यक्तिगत स्वतन्त्रता समाप्त हो जाती है।

(vii) भ्रष्टाचार फैलाना– राजनैतिक दल भ्रष्टाचार के केन्द्र बन चुके हैं। चुनाव में मत प्राप्त करने के लिए धन पानी की तरह बहाया जाता है। वोटों की खरीद–फरोख्त होती है। वोट–बैंक कायम करने के लिए स्थानीय नेताओं को तरह–तरह के प्रलोभन दिए जाते हैं। चुनाव जीतने के बाद राजनेता इस धन की वसूली जनता से ही करते हैं। यही कारण है कि जो धन सरकार द्वारा विकास कार्यों के लिए आवंटित किया जाता है, उसका बड़ा भाग राजनेताओं के पास रिश्वत के रूप में पहुँच जाता है।

3. भारत में दलीय व्यवस्था पर प्रकाश डालिए।

उ०– भारत में दलीय व्यवस्था– भारत में फ्रांस तथा इटली की भाँति बहुदलीय प्रणाली का विकास हुआ है। यही कारण है कि देश की लोकसभा तथा विधानसभाओं में अनेक राष्ट्रीय तथा क्षेत्रीय दलों ने स्थान प्राप्त कर लिया है। भारत में बहुदलीय पद्धति के विकास का कारण यहाँ की राजनीतिक स्थिति तथा देश की विभिन्न क्षेत्रों में विद्यमान अनेकता है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद कांग्रेस दल देश के सुसंगठित व लोकप्रिय दल के रूप में उभरकर सामने आया था, किन्तु कालान्तर में कांग्रेस की आन्तरिक फूट के कारण इसके अनेक गुटों ने अलग होकर नए राजनीतिक दलों का रूप धारण कर लिया है। इस प्रकार भारत में राजनीतिक दलों की बाढ़ सी आ गई है। फरवरी–मार्च 1998 ई० के लोकसभा चुनाव में भाजपा ने 13, कांग्रेस ने 5 और संयुक्त मोर्चा ने 9 घटक दलों की सहायता से चुनाव लड़ा। इनमें तृणमूल कांग्रेस, लोकशक्ति, हरियाणा विकास पाटी (हविपा), आदि कई नए दल भी सम्मिलित थे। नवम्बर 1999 ई० तक देश में 7 राष्ट्रीय और 48 राज्यस्तरीय दल थे। वर्ष 2004 के आम चुनाव में 6 राष्ट्रीय दल तथा 45 राज्यस्तरीय दल और 702 पंजीकृत पार्टियाँ चुनाव मैदान में थीं। वर्ष 2009 के लोकसभा चुनावों में 7 राष्ट्रीय दल, 46 क्षेत्रीय दल एवं 1000 पंजीकृत पार्टियाँ चुनाव मैदान में थीं। वर्ष 2014 के लोकसभा चुनावों में 6 राष्ट्रीय दल, 55 क्षेत्रीय दल एवं लगभग 1627 पंजीकृत पार्टियाँ चुनाव मैदान में थीं।

भारतीय दल प्रणाली के स्वरूप की विशेषताएँ निम्नवत हैं–

(i) गैर-मान्यता प्राप्त राजनीतिक दल– मई, 2009 में 15वीं लोकसभा के चुनाव के समय देश में 697 गैर–मान्यता प्राप्त राजनैतिक दल थे। ऐसे दलों को चुनावों में भाग लेने का अधिकार होता है। मान्यता–प्राप्त राजनैतिक दलों के चुनाव–चिह्न आरक्षित होते है, किन्तु गैर–मान्यता प्राप्त राजनैतिक दलों के चुनाव–चिह्न आरक्षित नहीं होते अपितु ऐसे दलों को प्रत्येक चुनाव के समय चुनाव चिह्न निर्वाचन आयोग द्वारा दिए जाते हैं।

(ii) राजनीतिक दलों का पंजीकरण अनिवार्य– भारत में प्रत्येक राजनीतिक दल का निर्वाचन आयोग के पास पंजीकृत होना आवश्यक है। जो दल चुनाव आयोग के पास पंजीकृत नहीं होता उसे राजनीतिक दल नहीं माना जाता।

(iii) दो प्रकार के मान्यता-प्राप्त राजनीतिक दल– भारत में दो प्रकार के मान्यता–प्राप्त राजनीतिक दल हैं– राष्ट्रीय

राजनीतिक दल और राज्य स्तरीय राजनीतिक दल।

(iv) **दलों में आन्तरिक गुटबन्दी–** यह भारतीय दल—प्रणाली की एक आम विशेषता बन चुकी है। आन्तरिक गुटबन्दी तथा मतभेदों के कारण ही कांग्रेस, जनता पार्टी, जनता दल आदि का कई बार विभाजन हुआ है। आन्तरिक गुटबन्दी के कारण राजनीतिक दलों मे कठोर अनुशासन की कमी है। राजनीतिक दल अपनी घोषित नीतियों को व्यावहारिक स्वरूप देने में असमर्थ होते हैं।

(v) **दलों की नीतियाँ एवं कार्यक्रम स्पष्ट नहीं–** वर्तमान समय में तो सभी दलों की एक स्पष्ट नीति और कार्यक्रम है—राजसत्ता प्राप्त करना। चुनाव के समय प्रत्येक राजनीतिक दल अपना चुनाव घोषणा पत्र अवश्य जारी करता है, जिसमें जनता के कल्याण हेतु बड़े—बड़े कार्यक्रमों और योजनाओं का उल्लेख होता है। किन्तु सत्ता—प्राप्ति के बाद वह चुनावी वायदों को भूल जाता है और 'वोट—बैंक' की संकीर्ण राजनीति में लिप्त हो जाता है।

(vi) **अपराधी एवं असामाजिक तत्वों का दलों में प्रवेश–** वर्तमान समय में अधिकांश दलों में अपराधिक एवं असामाजिक प्रवृत्ति के लोगों को भागीदारी दी जा रही है। ऐसे लोग चुनाव जीतकर व्यवस्थापिकाओं में पहुँच रहे हैं और सरकारी तन्त्र की मदद से साधारण जनता का शोषण कर रहे हैं। ये असामाजिक तत्व दलीय उम्मीदवारों की चुनाव जीतने में सहायता करते हैं, जिस कारण राजनैतिक कार्यकर्ताओं की अपेक्षा अब असामाजिक तत्वों को अधिक महत्व दिया जाता है।

(vii) **असरवादी दल–बदल–** देश में 'आया राम—गया राम' का ऐसा युग आया कि अनेक राज्यों में राजनैतिक अस्थिरता, भ्रष्टाचार, अवसरवादिता एवं सत्ता—लोलुपता का साम्राज्य छा गया था। दल—बदल की बुराई को दूर करने के लिए जनवरी, 1985 में संविधान का 52वाँ संशोधन संसद के द्वारा पारित किया गया। इस प्रकार अब भारत में सांसदों तथा विधायकों के दल—बदल पर संवैधानिक प्रतिबन्ध है। इस वैधानिक पाबन्दी के कारण दल—बदल काफी हद तक रुक तो गया है किन्तु यह अभी भी पूर्णतया समाप्त नहीं हो पाया है।

(viii) **एक दल के प्रभुत्व का युग समाप्त–** सन् 1977 तक भारतीय राजनीति में कांग्रेस का प्रभुत्व रहा और केन्द्र में कांग्रेस दल की सरकारें रहीं। वैसे कुछ राज्यों में सन् 1967 के बाद गैर—कांग्रेसी सरकारें अवश्य बनीं। सन् 1977 से 1979 तक अल्पकाल के लिए जनता पार्टी की सरकार बनी। किन्तु सन् 1980 से 1989 तक पुन: कांग्रेस की राजनीतिक प्रभुता स्थापित हो गई। नवम्बर, 1989 में नौवी लोकसभा के चुनाव के बाद एक दल के प्रभुत्व का युग समाप्त हो गया और गठबन्धन की राजनीति (गठबन्धन की सरकारें) का युग प्रारम्भ हो गया जो आज तक जारी है।

(ix) **गठबन्धनों की राजनीति–** वर्तमान में भारतीय दल—प्रणाली स्पष्ट रूप से गठबन्धनों की राजनीति पर आधारित हो गई है। प्रत्येक राष्ट्रीय राजनीतिक दल का यह विश्वास बन चुका है कि वह अकेले लोकसभा में स्पष्ट बहुमत प्राप्त नहीं कर सकता। इसलिए प्रत्येक राष्ट्रीय दल क्षेत्रीय राजनीतिक दलों के साथ चुनावी गठबन्धन करने के लिए विवश है। क्षेत्रीय दलों का भी यह विश्वास बन गया है कि वह राष्ट्रीय राजनीतिक दलों के साथ गठबन्धन करके केन्द्र में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं।

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि भारतीय दल प्रणाली का कोई निश्चित रूप नहीं है। इसका स्वरूप गतिशील और परिवर्तनशील है। ऐसा कहना गलत न होगा कि भारत में बहुदलीय प्रणाली ही बनी रहेगी और भविष्य में किसी भी एक राजनीतिक दल का प्रभुत्व स्थापित होने की सम्भावना नहीं है।

4. भारत के राष्ट्रीय राजनीतिक दलों की विवेचना कीजिए।

उ०– **भारत के प्रमुख राजनीतिक दल–** भारत में राजनीतिक दलों की संख्या बहुत अधिक है। 2014 लोकसभा चुनावों में 6 राष्ट्रीय राजनीतिक दल, 55 राज्यस्तरीय तथा क्षेत्रीय दल और लगभग 1627 पंजीकृत पार्टियों ने भाग लिया था।

राष्ट्रीय राजनीतिक दल– यदि किसी राजनीतिक दल को कम से कम चार राज्यों में मान्यता प्राप्त है और उसे किसी आम चुनाव में कुल पड़े वैध मतों के किन्हीं चार राज्यों में कम से कम चार प्रतिशत या उससे अधिक मत प्राप्त हो जाते हैं तो उसे **राष्ट्रीय राजनीतिक दल** की श्रेणी में माना जाता है।

भारत के 6 दलों को राष्ट्रीय राजनीतिक दलों की मान्यता प्राप्त हैं। ये राजनीतिक दल निम्नलिखित हैं—

(i) **भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस–** भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस भारत का सबसे पुराना राष्ट्रीय राजनीतिक दल है। इस दल की स्थापना 28 दिसम्बर, 1885 को बम्बई (मुम्बई) में एक अंग्रेज अधिकारी **ए०ओ० ह्यूम** के प्रयासों के फलस्वरूप हुई। इस दल ने आरम्भ से ही राष्ट्रीय स्वतन्त्रता आन्दोलन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। सन् 1947 में स्वतन्त्रता—प्राप्ति के बाद कांग्रेस दल ने शासन—सत्ता सम्भाली। वर्ष 1977 तक कांग्रेस श्री जवाहरलाल नेहरू, श्री लाल बहादुर शास्त्री, श्रीमती इन्दिरा गाँधी आदि के नेतृत्व में शासन में बनी रही। सन् 1969 और 1978 में कांग्रेस का विभाजन हुआ।

सन् 1977 में हुए आम चुनाव में कांग्रेस की पराजय हुई किन्तु वर्ष 1980 में आम चुनाव में कांग्रेस पूर्ण बहुमत से जीतकर पुन: सत्तारूढ़ हो गई। सन् 1984 के आम चुनाव में भी कांग्रेस को पूर्ण बहुमत प्राप्त हुआ। जब राजीव गाँधी प्रधानमन्त्री बने, इससे पहले इन्दिरा गाँधी की हत्या हो चुकी थी। सन् 1989 के आम चुनाव में कांग्रेस हार गई और सत्ता गैर—कांग्रेसी

अल्पमत राष्ट्रीय मोर्चे के पास पहुँच गई। सन् 1991 के चुनाव में कांग्रेस सबसे बड़ी पार्टी के रूप मे उभरी और पी० वी० नरसिम्हा राव के नेतृत्व में कांग्रेस की सरकार बनी जो पूरे 5 वर्ष (1991–96) तक चली। सन् 1996 के आम चुनाव में कांग्रेस हार गई और भाजपा की अल्पमत सरकार बनी। वर्ष 1998 और 1999 के आम चुनावों में भी यह दल बहुतमत प्राप्त न कर सका और सत्ता से दूर रहा।

वर्ष 2004 में हुए 14वीं लोकसभा के चुनाव में कांग्रेस सबसे बड़े दल के रूप में उभरी। कांग्रेस के नेतृत्व में 14 दलों का संयुक्त प्रगतिशील गठबन्धन (U.P.A.) बनाया गया। डॉ० मनमोहन सिंह के नेतृत्व में यू०पी०ए० गठबन्धन की सरकार बनी। मई, 2009 में 15वीं लोकसभा के चुनाव जिसमें यू०पी०ए० गठबन्धन को सर्वाधिक स्थान प्राप्त हुए और डॉ० मनमोहन सिंह पुन: प्रधानमन्त्री बने। वर्ष 2014 में हुए 16वीं लोकसभा के चुनाव में भारतीय जनता पार्टी को बहुमत प्राप्त हुआ और श्री नरेंद्र मोदी प्रधानमंत्री बने।

चुनाव चिह्न– भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का चुनाव—चिह्न **हाथ का पंजा** है।

अध्यक्षा– कांग्रेस पार्टी की अध्यक्षा **श्रीमती सोनिया गाँधी** हैं।

नीतियाँ एवं कार्यक्रम– कांग्रेस पार्टी का मुख्य लक्ष्य लोकतान्त्रिक समाजवाद की स्थापना, देश की एकता व अखण्डता को सुरक्षित बनाए रखना, देश के धर्म—निरपेक्ष ढाँचे को सुदृढ़ करना, अनुसूचित तथा पिछड़ी जातियों के हितों की रक्षा करना, पड़ोसी देशों के साथ सम्बन्ध सुधारना, देश का तीव्रता से आर्थिक विकास करना आदि है। इस दल का लोकतान्त्रिक समाजवाद लक्ष्य है और धर्म—निरपेक्षता इसका आदर्श है। गरीबी दूर करने के लिए यह दल ग्रामीण रोजगार कार्यक्रमों के विस्तार पर बल देता है। देश के तीव्र औद्योगिक विकास के लिए यह विदेशी पूँजी को बढ़ावा देता है।

(ii) भारतीय जनता पार्टी– श्री अटलबिहारी वाजपेयी के नेतृत्व में अप्रैल 1980 ई० में **भारतीय जनता पार्टी** के नाम से एक नए दल की स्थापना की गई थी। भारतीय जनता पार्टी ने अपने दलीय कार्यक्रम में राष्ट्रीयता और राष्ट्रीय एकीकरण पर बल दिया और प्रान्तीय, क्षेत्रीय अथवा जातीय हितों को, राष्ट्रीय हितों के सम्मुख गौण माना। यह दल प्रजातन्त्र और नागरिकों के मौलिक अधिकारों की सुरक्षा के लिए सदैव कटिबद्ध रहा है। यह दल सकारात्मक धर्मनिरपेक्षता की नीति अपनाने पर जोर देता रहा है। इस दल की नीति के अन्तर्गत अल्पसंख्यकों के हितों का भी पूरा ध्यान रखा जाएगा तथा उनके जीवन और सम्पत्ति को पूर्ण सुरक्षा प्रदान की जाएगी। इस दल ने गाँधीवादी समाज के लक्ष्य को अपनाना निश्चित किया। इसके अन्तर्गत आर्थिक व्यवस्था के प्रत्येक क्षेत्र में सहकारी पद्धति और न्याय पद्धति का प्रयोग किया जाएगा। प्रत्येक व्यक्ति को जीविका के साधन उपलब्ध कराए जाएँगे तथा नागरिकों को चहुँमुखी विकास के लिए अपेक्षित स्वतन्त्रताएँ प्रदान की जाएँगी। समाजवाद के लक्ष्य को प्राप्त करने हेतु दल अहिंसात्मक साधनों को अपनाने पर भी जोर देता रहा है।

इस दल के नेताओं का कहना है कि निर्धनता तथा व्यक्ति द्वारा व्यक्ति के शोषण को दूर किया जाना अति आवश्यक है तथा ऐसी सामाजिक और राजनीतिक व्यवस्था पर बल दिया जाना चाहिए, जिससे जीवन कुछ मानकों तथा मूल्यों द्वारा मार्गदर्शित हो।

बारहवीं लोकसभा के चुनावों में भाजपा को 179 स्थानों पर तथा उसके सहयोगी दलों को 73 सीटों पर सफलता प्राप्त हुई। सन् 1999 में हुए तेरहवीं लोकसभा के चुनावों में भी भाजपा को केवल 182 सीटें प्राप्त हुईं। किन्तु उसने अपने सहयोगी दलों की सीटों के आधार पर लोकसभा में पूर्ण बहुमत प्राप्त करने में सफलता प्राप्त की। तेरहवीं लोकसभा के गठन के पूर्व इस दल ने राष्ट्रीय जनतान्त्रिक गठबन्धन का गठन किया था। चौदहवीं लोकसभा के चुनावों में इस गठबन्धन को मात्र 188 स्थान प्राप्त हुए थे। पन्द्रहवीं लोकसभा 2009 में भारतीय जनता पार्टी को 116 स्थान प्राप्त हुए। वर्ष 2014 में सम्पन्न 16वीं लोकसभा के चुनाव में भाजपा को 282 स्थान प्राप्त हुए।

चुनाव चिह्न– भारतीय जनता पार्टी का चुनाव चिह्न **कमल का फूल** है।

अध्यक्ष– वर्तमान में भारतीय जनता पार्टी के राष्ट्रीय अध्यक्ष **श्री अमित शाह** हैं।

नीतियाँ एवं कार्यक्रम–

(क) इस दल ने राष्ट्रीय सुरक्षा तथा राष्ट्रीय एकीकरण पर बल पर दिया है, इसने राष्ट्रीय हितों के सम्मुख प्रान्तीय, क्षेत्रीय तथा जातीय हितों को गौण माना है।

(ख) दल सभी के लिए खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित करने और गरीबी मिटाने के लिए प्रयास करेगा।

(ग) दल सकारात्मक धर्म—निरपेक्षता की नीति अपनाएगा। इसके अन्तर्गत अल्पसंख्यकों के हितों का पूरा ध्यान रखा जाएगा और उनके जीवन व सम्पत्ति को सुरक्षा प्रदान की जाएगी।

(घ) प्रत्येक व्यक्ति को जीविका के साधन उपलब्ध कराए जाएँगे तथा नागरिकों को चहुँमुखी विकास के लिए अपेक्षित स्वतन्त्रताएँ प्रदान की जाएँगी। व्यक्ति के शोषण को दूर किया जाएगा।

(ड) समाजवाद के लक्ष्य की प्राप्ति हेतु अहिंसात्मक साधनों को अपनाया जाएगा।

(च) भाजपा सत्तारूढ़ होने पर विश्व के देशों के साथ समान शर्तों पर सार्थक रूप से कूटनीति करेगा।

(iii) भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी– भारतीय कम्युनिस्ट दल का गठन 26 दिसम्बर, 1924 को हुआ। यह दल मार्क्सवाद—लैनिनवाद के सिद्धान्तों पर आधारित था और सोवियत संघ से अपनी वैचारिक शक्ति प्राप्त करता था। राष्ट्रीय स्वतन्त्रता आन्दोलन के दिनों में यह दल कांग्रेस का आलोचक बना रहा। ब्रिटिश सरकार ने साम्यवादी दल को अवैध घोषित करके इस पर प्रतिबन्ध लगा दिया था। सन् 1942 में ब्रिटिश सरकार ने प्रतिबन्ध वापिस ले लिया था। वर्ष 1964 में साम्यवादी दल के दो गुटों में विभक्त हो जाने के बाद इसकी राजनीतिक स्थिति कमजोर हो गई। वर्ष 1952 में हुए प्रथम लोकसभा चुनाव में इस दल को 23 स्थान प्राप्त हुए थे किन्तु वर्ष 2009 में 15वीं लोकसभा के चुनाव में इसे केवल 4 स्थान ही मिल पाए।

चुनाव चिह्न– इस पार्टी का चुनाव चिह्न **दराँती और गेहूँ की बाली** है।

महासचिव– श्री एस० सुधाकर रेड्डी इस दल के महासचिव हैं।

नीतियाँ एवं कार्यक्रम– इस राजनीतिक दल की नीतियों तथा क्रार्यक्रमों सम्बन्धी प्रमुख बातें इस प्रकार हैं—

(क) राष्ट्रीय सुरक्षा को सर्वोच्च प्राथमिकता
(ख) संघवाद को मजबूत करना
(ग) भूमि—सुधार पर बल
(घ) कृषि में वृद्धि के लिए विभिन्न उपाय करना
(ड) श्रमिक—वर्ग के अधिकारों की सुरक्षा के लिए कदम उठाना
(च) विकास बढ़ाना
(छ) खाद्य सुरक्षा और जन वितरण प्रणाली में सुधार करना
(ज) संस्थागत सुधार
(झ) धर्म निरपेक्षता इत्यादि।

(iv) मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी– वर्ष 1964 में भारतीय कम्युनिस्ट दल दो गुटों में विभक्त हो गया जिसके परिणामस्वरूप 8 दिसम्बर, 1964 को भारतीय कम्युनिस्ट दल (मार्क्सवादी) का जन्म हुआ। इस पार्टी का मुख्य जनाधार कामगार वर्ग है। इस दल का प्रभाव मुख्यतया पश्चिम बंगाल, केरल और त्रिपुरा राज्यों में हैं।

चुनाव चिह्न– इस राजनीतिक दल का चुनाव—चिह्न **दराँती, हथौड़ा और तारा** है।

महासचिव– इस दल के महासचिव **श्री प्रकाश करात** हैं।

नीतियाँ एवं कार्यक्रम– 18 मार्च, 2009 को इस पार्टी द्वारा जारी घोषणा—पत्र की मुख्य बातें इस प्रकार हैं—

(क) धर्म—निरपेक्ष मूल्यों को प्रोत्साहन
(ख) कृषि के पुनरुत्थान पर बल
(ग) खाद्य सुरक्षा और जन वितरण प्रणाली में सुधार
(घ) भूमि—सुधार उपायों पर बल
(ड) सार्वजनिक क्षेत्र का विस्तार और निजीकरण व विनिवेश पर रोक
(च) संघवाद को सुदृढ़ करना
(छ) श्रमिकों, महिलाओं तथा बच्चों के कल्याण पर बल
(ज) अल्पसंख्यकों के हितों की रक्षा
(झ) स्वतन्त्र विदेश नीति अपनाना इत्यादि।

चुनाव उपलब्धियाँ- भारतीय कम्युनिस्ट दल की अपेक्षा इस दल (मार्क्सवादी दल) की चुनावी उपलब्धियाँ अपेक्षाकृत अधिक रही हैं। वर्ष 1967 के लोकसभा चुनाव में इसे 19 स्थान प्राप्त हुए। तत्पश्चात 1971, 1977, 1980, 1989 तथा 1991 के लोकसभा चुनावों में इसे क्रमश: 24, 22, 35, 32 तथा 35 स्थान मिले। जून, 1996 में केन्द्र में संयुक्त मोर्चा की सरकार बनी, जिसमें इस दल की विशेष भूमिका थी। मई, 2004 में 14वीं लोकसभा चुनाव में इसे 43 सीटें प्राप्त हुईं। इस दल ने कांग्रेस के नेतृत्व में गठित गठबन्धन सरकार को बाहर से समर्थन किया। पार्टी के वरिष्ठ सांसद श्री सोमनाथ चटर्जी को 14वीं लोकसभा का अध्यक्ष बनाया गया।

मई, 2006 में हुए केरल और पश्चिम बंगाल की विधानसभाओं के चुनावों में इस दल के साथ इस गठबन्धन को स्पष्ट बहुमत प्राप्त हुआ। किन्तु मई, 2011 में सम्पन्न हुए राज्य के चुनाव में इस दल को पराजय का सामना करना पड़ा। ममता बनर्जी के नेतृत्व वाले तृणमूल कांग्रेस गठबन्धन ने तीन—चौथाई बहुमत (227 सीटों पर विजय) प्राप्त करके कम्युनिस्टों के 34 वर्षों के शासन को समाप्त कर दिया। 20 मई, 2011 को ममता बनर्जी पश्चिम बंगाल की पहली महिला मुख्यमन्त्री बनीं।

मई, 2009 में 15वीं लोकसभा के चुनावों में इस पार्टी को काफी पराजय का सामना करना पड़ा और इसकी सीटों की संख्या

घटकर 16 रह गईं।

(v) बहुजन समाज पार्टी– बहुजन समाज पार्टी की स्थापना 14 अप्रैल, 1984 ई० को भारतीय संविधान की प्रारूप समिति के अध्यक्ष स्व० डॉ० भीमराव अम्बेडकर के जन्म दिवस पर उत्तर प्रदेश में हुई थी। प्रारम्भ में इस पार्टी के प्रमुख नेता और अध्यक्ष श्री कांशीराम और उपाध्यक्षा सुश्री मायावती थीं लेकिन वर्तमान में सुश्री मायावती इसकी अध्यक्षा हैं। श्री कांशीराम जी का लम्बी बीमारी के बाद निधन हो चुका है। स्वास्थ्य सम्बन्धी कारणों से श्री कांशीराम सक्रिय राजनीति से कुछ समय से अलग थे। बसपा ने अनुसूचित जाति तथा निम्नवर्ग के हितों को हमेशा महत्व प्रदान किया है। वर्ष 2007 में उत्तर प्रदेश में सम्पन्न विधानसभा चुनाव में पार्टी ने बहुजन के स्थान पर सर्वजन को महत्व दिया। बहुजन समाज पार्टी ने समाज के निम्नवर्ग के उत्थान में बहुत योगदान दिया। मई 2007 में सम्पन्न उत्तर प्रदेश के विधानसभा चुनाव में भी इस पार्टी ने उत्तर प्रदेश में 206 सीटों पर विजयश्री प्राप्त करके पूर्ण बहुमत प्राप्त किया। वर्ष 2012 में सम्पन्न विधानसभा चुनावों में इस दल को मात्र 80 सीटें ही प्राप्त हुईं। वर्ष 2012 में सम्पन्न विधानसभा चुनावों में इस दल को मात्र 19 सीटें ही प्राप्त हुईं। सोलहवीं लोकसभा (2014) में इस दल को एक भी स्थान प्राप्त नहीं हुआ।

चुनाव चिह्न– बहुजन समाज पार्टी का चुनाव चिह्न **हाथी** है।

महासचिव– बहुजन समाज पार्टी की अध्यक्षा **सुश्री मायावती** हैं।

नीतियाँ एवं कार्यक्रम– बहुजन समाज पार्टी की मुख्य नीतियाँ तथा कार्यक्रम निम्नांकित हैं—

(क) इस दल का प्रमुख उद्देश्य सर्वजनहिताए एवं सर्वजनसुखाय है। (मनुवादी व्यवस्था को समाप्त करके मानवतावादी एवं समतामूलक समाज स्थापित करना)।

(ख) सदियों से दबे—कुचले और भेदभावपूर्ण जीवन व्यतीत करने वाले नागरिकों के सम्मान को वापिस दिलवाना।

(ग) अल्पसंख्यक समुदाय के हितों की रक्षा के लिए कदम उठाना।

(घ) अनुसूचित जातियों व जनजातियों तथा पिछड़े वर्गों को दी जाने वाली आरक्षण सुविधाएँ सुनिश्चित करवाना।

(ड) आर्थिक नीतियाँ–

(1) आर्थिक असमानता कम करना।

(2) अनुसूचित जातियों के जीवन स्तर में सुधार करना।

(3) अनुसूचित जातियों के लिए विशेष ऋण की व्यवस्था करना आदि।

(च) शिक्षा नीति–

(1) अनुसूचित जातियों/ जनजातियों, पिछड़े वर्गों, गरीबी की रेखा के नीचे रहने वाले तथा अल्पसंख्यक समुदाय के बच्चों के लिए छात्रवृत्तियों की व्यवस्था करना।

(2) तकनीकी और व्यावसायिक शिक्षा को बढ़ावा देना आदि।

(छ) विविध कार्यक्रम–

(1) सरकारी सेवाओं में महिलाओं की हिस्सेदारी बढ़ाना।

(2) हिंसा, गुण्डागर्दी तथा माफियागर्दी को समाप्त करना।

(3) राजनीतिक और प्रशासनिक भ्रष्टाचार का समापन करना आदि।

(vi) राष्ट्रवादी कांग्रेस पार्टी– नेशनलिस्ट कांग्रेस पार्टी (N.C.P.) का गठन **27 मई, 1999** को हुआ था। इसके तीन प्रमुख नेता **श्री शरद पवार**, **श्री पी०ए० संगमा** और **तारिक अनवर** कांग्रेस पार्टी छोड़कर आए थे। इस दल ने 13वीं लोकसभा का चुनाव लड़ा और महाराष्ट्र, अरुणाचल प्रदेश, मणिपुर और मेघालय में चार प्रतिशत से अधिक मत प्राप्त किए। निर्वाचन आयोग ने **11 जनवरी, 2000** को इस दल को राष्ट्रीय राजनीतिक दल के रूप में मान्यता प्रदान की। इस दल का प्रमुख प्रभाव क्षेत्र महाराष्ट्र राज्य है।

चुनाव चिह्न– इस दल का चुनाव—चिह्न **घड़ी** है।

अध्यक्ष– वर्तमान में **श्री शरद पवार** इस दल के राष्ट्रीय अध्यक्ष हैं।

चुनाव उपलब्धियाँ– सन् 1999 में सम्पन्न हुए 13वीं लोकसभा के चुनावों में इस दल को 7 सीटें मिलीं। लोकसभा के चुनावों के साथ—साथ महाराष्ट्र की विधानसभा के लिए भी चुनाव हुए। चुनावों के बाद कांग्रेस तथा राष्ट्रवादी कांग्रेस ने मिली—जुली सरकार का **18 अक्टूबर, 1999** को गठन किया।

अप्रैल—मई, 2004 में 14वीं लोकसभा चुनाव हुए जिसमें एन०सी०पी० को 9 स्थान प्राप्त हुए। यह दल केन्द्र में कांग्रेस के नेतृत्व में गठित साँझा सरकार में शामिल हुआ। अक्टूबर, 2004 में महाराष्ट्र राज्य विधानसभा के चुनाव हुए। इस दल ने पुन: कांग्रेस नेता श्री विलास राव देशमुख के नेतृत्व में साँझा सरकार का नेतृत्व किया।

अप्रैल—मई, 2009 में 15वीं लोकसभा चुनाव हुए, जिसमें एन०सी०पी० को पुन: 9 स्थान प्राप्त हुए। 22 मई, 2009 को

कांग्रेस के नेतृत्व में संयुक्त प्रगतिशील गठबन्धन (U.P.A.) की सरकार गठित हुई, जिसमें यह पार्टी (N.C.P.) भी शामिल हुई।

नीतियाँ एवं कार्यक्रम-

(क) पार्टी मानवीय संसाधन विकास के लिए शिक्षा को सबसे महत्वपूर्ण साधन मानती है। अत: पार्टी प्राथमिक शिक्षा का सार्वभौमिकरण, माध्यमिक शिक्षा का व्यवसायीकरण और उच्चतर शिक्षा का आधुनिकीकरण करेगी।

(ख) पार्टी गाँवों में पीने का पानी तथा बिजली की व्यवस्था करेगी।

(ग) गरीबी की रेखा से नीचे रहने वाले लोगों की न्यूनतम आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए प्रबन्ध करेगी।

(घ) जनता के स्वास्थ्य की रक्षा के लिए विभिन्न उपाय करेगी।

(ड) पार्टी गैर—परम्परागत ऊर्जा के क्षेत्रों को प्राथमिकता देगी।

(च) ग्रामीण क्षेत्रों के विकास को प्रमुखता दी जाएगी।

(छ) कृषि—उत्पादन में वृद्धि की जाएगी और कृषि को लाभप्रद बनाया जाएगा।

❖ **मानचित्र सम्बन्धी अभ्यास कार्य**

अध्यापक की सहायता से विद्यार्थी स्वयं करें।

❖ **प्रोजेक्ट कार्य**

अध्यापक की सहायता से विद्यार्थी स्वयं करें।

22 जनमत-निर्माण, मानवाधिकार एवं सूचना का अधिकार

अभ्यास

❖ **बहुविकल्पीय प्रश्न**

उ०– बहुविकल्पीय प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्य पुस्तक के पृष्ठ संख्या—197 का अवलोकन कीजिए।

❖ **अतिलघु उत्तरीय प्रश्न**

उ०– अतिलघु उत्तरीय प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्य पुस्तक के पृष्ठ संख्या—197 व 198का अवलोकन कीजिए।

❖ **लघु उत्तरीय प्रश्न**

1. जनमत का अर्थ बताइए।

उ०– साधरणत: जनमत का अर्थ 'बहुमत' या 'जनता के मत' से लगाते हैं किन्तु जनमत का सही अर्थ जनता की उस राय से होता है, जो समाज के हित या समाज को प्रभावित करने वाले विषयों के सम्बन्ध में होती है। 'जनमत' मात्र कल्याणकारी कार्यों के सम्बन्ध में बहुमत द्वारा व्यक्त किया गया मत होता है। जनमत को स्पष्ट करते हुए लेखक **जौहरी और जौहरी** ने बताया है कि "**जनमत** शब्द दो शब्दों से मिलकर बना है—जनता तथा मत। जबकि मानपरक अर्थ में जनता शब्द का अर्थ लोगों तथा उनके प्रबुद्ध वर्ग से है, व्यवहारपरक अर्थ में 'मत' शब्द उस विश्वास की ओर संकेत करता है जो किसी अल्पाधिक राष्ट्रीय महत्व के मामले पर उनकी अभिवृत्ति व व्यक्ति को प्रतिबिम्बित करें अर्थात् जनमत सारी जनसंख्या का मत नहीं होता, यह जनसंख्या के योग्य भाग का ही दृष्टिकोण होता है। इसमें वे लोग सम्मिलित हैं जो सार्वजनिक मुद्दों के विषय में जानने की सूझबूझ रखते हैं तथा जो इतने प्रबुद्ध होते हैं कि विवेकशीलता से सोच सकें तथा उसके बाद निर्लिप्त रूप में अपने विषय को अभिव्यक्त कर सकें।"

2. विभिन्न विद्वानों द्वारा जनमत की दी गई परिभाषाओं को लिखिए।

उ०– विद्वानों ने जनमत को अपने-अपने मतों द्वारा स्पष्ट किया है। कुछ विद्वानों के मत निम्नलिखित हैं—

विलोबी के शब्दों में, "जनमत उन व्यक्तियों के विचारों का परिणाम होता है, जोकि सामान्य हित से सम्बन्धित समस्याओं पर निर्णय देते हैं।"

डब के अनुसार— "जनमत का अर्थ है— एक ही सामाजिक समूह के रूप में जनता का किसी प्रश्न या समस्या के प्रति रुख या विचार।"

डॉ० एच० एस० चटर्जी के शब्दों में," जनमत एक महत्वपूर्ण प्रश्न पर सामान्य जनता का मत होता है। यह एक ऐसा मत होता है जो तर्क पर आधारित होता है तथा जिसका उद्देश्य समस्त जनसमुदाय का हित होता है।"

डॉ०बेनी प्रसाद के अनुसार, " जो मत लोक कल्याण की भावना से प्रेरित होता है, उसे जनमत कहते हैं।"

3. जनमत के आवश्यक लक्षण बताइए।

उ०– जनमत के आवश्यक लक्षण–

(i) नैतिक मूल्यों के अनुकूल– लोकमत सदैव मान्य नैतिक मूल्यों के अनुकूल होता है। मान्य नैतिक मूल्यों का उल्लंघन करने वाले मत को लोकमत नहीं कहा जा सकता।

(ii) विस्तृत क्षेत्र– जनमत केवल राज्य की गतिविधियों अथवा राजनीतिक समस्याओं तक ही सीमित नहीं होता बल्कि इसका क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत होता है। जीवन के प्रत्येक पक्ष से सम्बन्धित समस्याओं या पहलुओं के प्रति जनमत का निर्माण अनिवार्य है।

(iii) जन-समुदाय का कल्याण (सार्वभौमिक स्वरूप)– किसी विशेष समुदाय अथवा वर्ग-विशेष के हितों तक ही सीमित होने वाला मत लोकमत नहीं कहा जा सकता। लोकमत का उद्देश्य सभी वर्गों, जातियों आदि से सम्बन्धित लोगों का कल्याण करना होना चाहिए।

(iv) तर्क पर आधारित– कोई मत लोकमत (जनमत) का स्वरूप तभी धारण कर पाता है जब उसके विषय में सामान्य सहमति होती है। सामान्य सहमति प्राप्त करने के लिए किसी मत का तर्कपूर्ण या विवेकशील होना आवश्यक है।

4. मानवाधिकार को समझाइए।

उ०– **मानवाधिकार–** मानवाधिकार का अर्थ है प्रकृति द्वारा मनुष्य को दिए गए वो अधिकार जो व्यक्ति की नैतिक एवं आत्मा की उन्नति में सहायक होते हैं और स्वत: ही सिद्ध हो जाते हैं।

लास्की के अनुसार– ''अधिकार राज्य की आधारशिला है। ये वो गुण हैं जो राज्य शक्ति के प्रयोग को नैतिक रूप देते हैं; ये प्राकृतिक अधिकार इस अर्थ में हैं कि अच्छे जीवन के लिए उनका अस्तित्व आवश्यक है।''

'अधिकार' सामाजिक जीवन की वे दशाएँ तथा सुविधाएँ हैं जिनके अभाव में कोई भी व्यक्ति अपना समुचित विकास नहीं कर सकता। अधिकारों के प्राप्त होने से नागरिकों के चहुँमुखी विकास का मार्ग खुल जाता है। जब मानव के सर्वांगीण विकास के लिए आवश्यक दशाएँ तथा सुविधाएँ राज्य (सरकार) द्वारा स्वीकार कर ली जाती हैं तो वे मानवाधिकर का रूप धारण कर लेती हैं। इस प्रकार 'मानवाधिकार' से तात्पर्य उन अधिकारों (दशाओं एवं उन सविधाओं) से हैं जिसमें मानव का सर्वोच्च कल्याण निहित है।

5. राज्य मानवाधिकार आयोग से आप क्या समझते हैं ?

उ०– **राज्य मानवाधिकार आयोग–** राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग की तरह ही देश के प्रत्येक राज्य में राज्य मानवाधिकार आयोग का गठन किया गया है। उत्तर प्रदेश राज्य में मानवाधिकार आयोग का मुख्य कार्यालय लखनऊ में स्थित है। इस प्रकार भारत में संघीय स्तर एवं राज्य स्तर दोनों पर ही कानूनी शक्ति से सम्पन्न मानवाधिकार आयोगों का गठन किया गया है। इन आयोगों को किसी भी प्रकरण की सुनवाई करने और दण्ड देने का अधिकार प्राप्त हैं।

6. सूचना किसे कहते हैं।

उ०– सूचना किसी भी प्रकार की कोई सामग्री हो सकती है जिसमें अभिलेख, दस्तावेज, मेमो, ई-मेल, विचार-विमर्श, प्रेस रिलीज, परिपत्र, आदेश, संविदा, प्रतिवेदन, कागजात, बानगी, नमूने, किसी रूप में रखी गई इलेक्ट्रॉनिक सांख्यिकी सामग्री व निजी संकाय से सम्बन्धित ऐसी सूचना, जो लोक प्राधिकरण द्वारा किसी भी कानून में प्राप्त की जा सकती है।

7. सूचना आयोग के कार्य एवं शक्तियाँ बताइए।

उ०– **सूचना आयोग के कार्य व शक्तियाँ–** किसी भी व्यक्ति द्वारा की गई शिकायत की भली-भाँति जाँच करना सूचना आयोग का प्रमुख कार्य है। अगर आयोग को लगता है कि शिकायत का आधार सही है तो वह आगे की कार्यवाही कर सकता है। यदि आयोग के संज्ञान में यह तथ्य आता है किसी अधिकारी ने जानबूझकर सूचना नहीं दी है या झूठी सूचना दी है या किसी तथ्य को छुपाया है तो अधिकारी पर ₹ 250 प्रतिदिन के हिसाब से अधिकतम ₹ 25000 तक जुर्माना किया जा सकता है।

यदि सूचना अधिकार अधिनियम 2005 को पूरी तरह लागू किया जाए तो भारत में भ्रष्टाचार में लिप्त नौकरशाही से मुक्ति मिल सकती है तथा एक पारदर्शी प्रशासन का नया अध्याय प्रारम्भ हो सकता है। इससे भारत के लोग स्वयं को सशक्त मानेंगे।

❖ विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

1. जनमत को परिभाषित करते हुए जनमत के निर्माण तथा अभिव्यक्ति के साधनों पर प्रकाश डालिए।

उ०– **जनमत की परिभाषा–** इसके लिए लघुउत्तरीय प्रश्न संख्या-2 के उत्तर का अवलोकन कीजिए।

जनमत के निर्माण तथा अभिव्यक्ति के साधन– जनमत के निर्माण तथा अभिव्यक्ति के लिए निम्नलिखित साधनों को आवश्यक माना गया है–

(i) सभाएँ व भाषण– जनमत के निर्माण में सभाएँ और उनमें होने वाले भाषणों की बहुत अहम भूमिका होती है। जननेताओं व विद्वानों की बातों को सुनकर राजनीतिक दल तथा सरकार कार्यकलापों के लिए अपनी रूपरेखा बनाते हैं।

(ii) **शिक्षण संस्थाएँ–** जनमत के बेहतर निर्माण में शिक्षण संस्थाओं की भी बहुत अहम् भूमिका होती हैं। शिक्षण संस्थाओं में होने वाली गतिविधियों और सांस्कृतिक कार्यक्रमों से विद्यार्थियों में जन-चेतना का उद्‌गम होता है । शिक्षकों द्वारा बताई गई ज्ञानवर्धक बातें भी विद्यार्थियों के मस्तिष्क के विकास में सहायक होती हैं।

(iii) **निर्वाचन–** निर्वाचन जनमत की अभिव्यक्ति के लिए सबसे अनिवार्य एवं महत्वपूर्ण साधन है। चुनाव में जिस दल के अधिक उम्मीदवार विजयी होते हैं, यह माना जाता है कि जनमत उसी के सिद्धान्तों के पक्ष में है।

(iv) **जनसंचार के साधन (इलेक्ट्रॉनिक मीडिया)–** आधुनिक युग में आकाशवाणी तथा दूरदर्शन जनमत के निर्माण का एक महत्वपूर्ण साधन हैं। ये साधन देश विदेश की घटनाओं को जनता तक पहुँचाते हैं तथा संसद समीक्षा, प्रमुख समस्याओं पर विचार गोष्ठी, आँखो देखा हाल, नाटक, राष्ट्रपति व प्रधानमन्त्री के राष्ट्र के नाम संदेश इत्यादि के द्वारा जनमत के निर्माण में सहायता करते हैं। सिनेमा के माध्यम से समाज में व्याप्त बुराइयों एवं कुरीतियों को जनता के सामने प्रदर्शित करके उनके निराकरण के उपाय सुझाए जाते हैं।

(v) **साहित्य–** साहित्य की भी जनमत के निर्माण में बहुत महत्वपूर्ण भूमिका होती है। साहित्य के द्वारा अनेक देशों में वहाँ के विचारकों तथा विद्वानों ने अपने विचारों से जनमत को अत्यधिक प्रभावित किया है। रूस, फ्रांस, यूनान आदि इसके उदाहरण हैं।

(vi) **सांस्कृतिक समुदाय–** देश में विभिन्न प्रकार की सांस्कृतिक संस्थाओं ने सांस्कृतिक कार्यक्रमों के द्वारा समाज में उत्पन्न बुराइयों तथा मौजूद समस्याओं से परिचित कराकर सुदृढ़ जनमत निर्माण में सहायता की है।

(vii) **समाचारपत्र तथा पत्रिकाएँ (प्रेस)–** समाचारपत्र तथा पत्रिकाएँ जनमत के निर्माण तथा अभिव्यक्ति का अत्यन्त महत्वपूर्ण साधन हैं। इन्हें पढ़ने से देश-विदेश की घटनाओं, नीतियों आदि की जानकारी मिलती है तथा विभिन्न राजनीतिक दलों व विचारधाराओं तथा सरकार के कार्यकलापों का ज्ञान होता है। समाचारपत्र लोगों का मार्गदर्शन करते हैं और उन्हें अपना मत बनाने तथा उसे व्यक्त करने में बड़ी सहायता करते हैं। समाचारपत्रों का पढ़ना आजकल लोगों के दैनिक जीवन का अभिन्न अंग बन गया है। इसलिए प्रेस को **लोकतन्त्र का प्रकाश स्तम्भ** कहा जाता है।

(viii) **राजनीतिक दल–** निर्वाचन के अवसर पर सभी राजनीतिक दल प्रसार के समस्त साधनों द्वारा जनमत को अपने-अपने पक्ष में करने का प्रयत्न करते हैं। वस्तुत: निर्वाचन के अवसर पर जनमत बनाना अपेक्षाकृत अधिक तीव्र गति से होता है। इस प्रकार राजनीतिक दल भी एक प्रगतिशील जनमत के बनाने में सहायता देते हैं। **लॉड ब्राइस** के अनुसार, '' जनमत को प्रशिक्षित करने, उसके निर्माण और अभिव्यक्ति में राजनीतिक दलों द्वारा अत्यधिक महत्वपूर्ण कार्य किया जाता है।'' राजनीतिक दल जनमत बनाने एवं अपने दल के उद्देश्यों, नीतियों, कार्यक्रमों आदि के प्रचार व प्रसार के लिए अनेक कार्य सम्पादित करते हैं। राजनीतिक दलों द्वारा किए जाने वाले कार्यों के सम्बन्ध में **लास्की** का कथन है, '' वह (राजनीतिक दल) जलसे एवं अधिवेशन आयोजित करता है तथा एजेण्ट, व्याख्यानदाताओं और प्रचारकों के माध्यम से जनता को शिक्षित करने का प्रयास करता है। राजनीकि दल स्थानीय एवं राष्ट्रीय समाचारपत्रों एवं प्रचार के आधार पर अपनी नीति जनता के सम्मुख रखते हैं।''

2. स्वस्थ जनमत के निर्माण के लिए आवश्यक दशाएँ व इसमें बाधाएँ उत्पन्न करने वाले कारकों की विवेचना कीजिए।

उ०– स्वस्थ जनमत के निर्माण के लिए आवश्यक दशाएँ निम्नलिखित हैं–

(i) स्वस्थ जनमत के निर्माण के लिए सामाजिक भाईचारा अति आवश्यक है।

(ii) समाज के सभी वर्गों का विकास होना चाहिए।

(iii) स्वस्थ एवं प्रबुद्ध जनमत के निर्माण के लिए देश में शक्ति एवं सुरक्षा की दशाएँ विद्यमान होनी चाहिए। जिससे जनता अपनी बुद्धि के समुचित प्रयोग द्वारा तर्कपूर्ण चिन्तन पर आधारित आदर्श जनमत का निर्माण कर सकें।

(iv) स्वस्थ लोकमत के निर्माण के लिए जनता का शिक्षित होना अति आवश्यक है, क्योंकि अशिक्षित व्यक्ति प्राय: मिथ्या प्रचार का शीघ्र ही शिकार हो जाता है।

(v) स्वस्थ लोकतंत्र के निर्माण के लिए यह भी आवश्यक है कि समाचारपत्र स्वतन्त्र एवं निष्पक्ष हों। स्वतन्त्र समाचारपत्र ही सही जानकारी जनता के पास पहुँचा सकते हैं। जब जनता को सही सूचना मिलेगी तभी वह तर्कपूर्ण चिन्तन कर पाएगी और स्वस्थ लोकमत का निर्माण होगा।

(vi) स्वस्थ लोकमत के लिए यह भी आवश्यक है कि धार्मिक भावना से अलग हटकर, समाज के बारे में सोचना आरम्भ किया जाए।

(vii) स्वस्थ लोकमत के निर्माण में अच्छी शिक्षा प्रणाली का भी बहुत महत्वपूर्ण योगदान होता है। शिक्षण संस्थाओं से धार्मिक कट्टरवाद को दूर रखा जाना चाहिए। अच्छे विद्यार्थी ही स्वस्थ लोकमत के निर्माण में सहायक हो सकते हैं।

स्वस्थ जनमत के निर्माण में बाधाएँ– आमतौर पर स्वस्थ जनमत के निर्माण में निम्नलिखित बाधाएँ होती हैं—

(i) स्वस्थ जनमत के निर्माण में निरक्षरता बहुत बड़ी बाधा है।
(ii) निर्धनता स्वस्थ जनमत के निर्माण में बाधा है।
(iii) स्वस्थ जनमत के निर्माण में साम्प्रदायिकता बहुत बड़ी बाधा है।
(iv) दलीय समाचारपत्र स्वस्थ जनमत के निर्माण में बाधक होते हैं।
(v) सरकारों का निरंकुश होना, स्वस्थ जनमत के निर्माण में बड़ी बाधा है।
(vi) जनता का राजनीतिक दृष्टिकोण के प्रति उदासीन होना भी स्वस्थ जनमत में बाधक है।
(vii) दोषपूर्ण शिक्षापद्धति भी स्वस्थ लोकमत के निर्माण में बाधाएँ उत्पन्न करती है।

3. मानवाधिकार का अर्थ बताते हुए इसके अधिकार बताइए।

उ०– **मानवाधिकार–** इसके लिए लघु उत्तरीय प्रश्न संख्या-2 के उत्तर का अवलोकन कीजिए।

मानवाधिकार के प्रकार–

(i) जीवन का अधिकार– प्रत्येक व्यक्ति के पास अपना स्वतन्त्र जीवन जीने का जन्मसिद्ध अधिकार है। हर इंसान को किसी अन्य व्यक्ति द्वारा नहीं मारे जाने का भी अधिकार है।

(ii) उचित परीक्षण का अधिकार– प्रत्येक व्यक्ति को निष्पक्ष न्यायालय द्वारा निष्पक्ष सुनवाई का अधिकार है। इसमें उचित समय के भीतर सुनवाई, जन सुनवाई और वकील के प्रबन्ध आदि के अधिकार शामिल हैं।

(iii) सोच, विवेक और धर्म की स्वतंत्रता– प्रत्येक व्यक्ति को विचार और विवेक की स्वतंत्रता है उसे अपने धर्म को चुनने की भी स्वतंत्रता है और वह इसे किसी भी समय बदलना चाहे तो उसके लिए भी स्वतंत्र है।

(iv) दासता से स्वतंत्रता– गुलामी और दास प्रथा पर कानूनी रोक है। हालांकि यह अभी भी दुनिया के कुछ हिस्सों में इसका अवैध रूप से पालन किया जा रहा है।

4. सूचना अधिकार अधिनियम, 2005 को स्पष्ट करते हुए सूचना प्राप्त करने सम्बन्धी प्रक्रिया को स्पष्ट कीजिए।

उ०– **सूचना का अधिकार अधिनियम, 2005 के मुख्य प्रावधान–** सूचना का अधिकार अधिनियम, 2005 के मुख्य प्रावधान निम्नलिखित हैं–

(i) सूचना का अर्थ– सूचना किसी भी प्रकार की कोई सामग्री हो सकती है जिसमें अभिलेख, दस्तावेज, मेमो, ई-मेल, विचार-विमर्श, प्रेस रिलीज, परिपत्र, आदेश, संविदा, प्रतिवेदन, कागजात, बानगी, नमूने, किसी रूप में रखी गई इलेक्ट्रॉनिक सांख्यिकी सामग्री व निजी संकाय से सम्बन्धित ऐसी सूचना, जो लोक प्राधिकरण द्वारा किसी भी कानून में प्राप्त की जा सकती है।

(ii) सूचना का अधिकार– इस अधिकार में निम्न अधिकार शामिल हैं–

(क) कार्यों, दस्तावेजों और अभिलेखों का निरीक्षण करना।
(ख) दस्तावेजों या अभिलेखों की प्रमाणित प्रतिलिपियाँ या सारांश या उद्धरण या टिप्पणी लेना।
(ग) सामग्री के प्रमाणित नमूने लेना।
(घ) यदि सूचना कम्प्यूटर व अन्य तरीके से रखी गई है तो फ्लॉपी, सीडी, टेप, वीडियो कैसेट या प्रिन्ट आउट आदि के रूप में सूचना प्राप्त करना।

(iii) सूचना प्राप्त करने सम्बन्धी प्रक्रिया– प्रश्न उठता है किसी विभाग या इकाई से सूचना किस प्रकार प्राप्त की जा सकती है? इस सम्बन्ध में सूचना प्राप्ति की प्रक्रिया के विभिन्न चरणों की जानकारी होनी चाहिए जिनका संक्षिप्त विवरण नीचे प्रस्तुत है–

प्रथम चरण– सूचना प्राप्त करने के लिए निर्धारित शुल्क (₹10 नकद, ड्राफ्ट या चैक) के साथ सम्बन्धित अधिकारी के समक्ष आवेदन करना होगा। आवेदक को सूचना प्राप्ति का कारण तथा व्यक्तिगत विवरण देना आवश्यक नहीं होगा, केवल अपना नाम व पता देना होगा।

द्वितीय चरण– सूचना अधिकारी 30 दिनों के अन्दर वांछित सूचना उपलब्ध करवाएगा। यदि सूचना किसी व्यक्ति के जीवन या स्वतन्त्रता से सम्बन्धित है तो इसे आवेदन के 48 घण्टों के भीतर प्राप्त किया जा सकता है।

तृतीय पक्षकार को सूचना– यदि केन्द्रीय या राज्य लोक सूचना अधिकारी को यह प्रतीत होता है कि वांछित सूचना के प्रकटीकरण में किसी तृतीय पक्षकार का हित है तो ऐसा अधिकारी उस तृतीय पक्षकार को सूचना देगा तथा तृतीय पक्षकार को अपना पक्ष रखने का अवसर देगा।

तृतीय चरण– यदि आवेदन अस्वीकृत किया जाता है तो लोक सूचना अधिकारी को यह बताना आवश्यक होगा–

(क) अस्वीकृति के कारण
(ख) अस्वीकृति के विरुद्ध अपील का समय जो विदित हो तथा

(ग) अपील अधिकारी के बारे में जानकारी।

चतुर्थ चरण– यदि सूचना अधिकारी विहित समय पर सूचना उपलब्ध नहीं करवाता है या आवेदक सूचना अधिकारी के निर्णय से सन्तुष्ट नही है तो वह ऐसे निर्णय या आदेश के 30 तीन के अन्दर उसके उच्चस्थ अधिकारी के समक्ष अपील कर सकेगा। ऐसी अपील को निपटाने की अवधि 30 दिन निर्धारित की गई है, जो किसी भी परिस्थिति में 45 दिन से अधिक नहीं होगी।

5. केन्द्रीय सूचना आयोग व राज्य सूचना आयोग में अन्तर स्पष्ट करते हुए सूचना आयोग के कार्य व शक्तियाँ बताइए।

उ०– **केन्द्रीय सूचना आयोग–** केन्द्रीय सूचना आयोग की नियुक्ति भारत के राष्ट्रपति द्वारा एक समिति की संस्तुति पर की जाती है। इस आयोग में एक आयुक्त व अधिकतम 10 सह आयुक्त होंगे। इनकी नियुक्ति राष्ट्रपति के माध्यम से होती है। आयुक्तों की नियुक्ति 5 वर्ष के लिए होती है, परन्तु यदि 5 वर्ष से पूर्व ही ये 65 वर्ष की आयु पूरी कर लेते हैं तो ये अवकाश ग्रहण कर लेते हैं।

राज्य सूचना आयोग– राज्य सूचना आयोग की नियुक्ति सम्बन्धित राज्य के राज्यपाल द्वारा एक समिति की संस्तुति पर की जाती है। इस समिति का अध्यक्ष मुख्यमन्त्री होता है। समिति में विपक्षी दल के नेता एवं मुख्यमन्त्री द्वारा निर्देशित एक कैबिनेट मंत्री भी सदस्य होता है। राज्य सूचना आयोग के आयुक्त तथा सूचना सह-आयुक्त अपने पद ग्रहण की तिथि से पाँच वर्ष की अवधि तक अपने पद पर बने रहते हैं उन्हें पुनर्नियुक्ति का अधिकार नहीं होगा।

राज्य सूचना आयोग का **मुख्यालय** उस स्थान पर स्थित होगा जहाँ राज्य सरकार शासकीय गजट में अधिसूचना द्वारा निश्चित करती है।

सूचना आयोग के कार्य व शक्तियाँ– किसी भी व्यक्ति द्वारा की गई शिकायत की भली-भाँति जाँच करना सूचना आयोग का प्रमुख कार्य है। अगर आयोग को लगता है कि शिकायत का आधार सही है तो वह आगे की कार्यवाही कर सकता है। यदि आयोग के संज्ञान में यह तथ्य आता है किसी अधिकारी ने जानबूझकर सूचना नहीं दी है या झूठी सूचना दी है या किसी तथ्य को छुपाया है तो अधिकारी पर ₹ 250 प्रतिदिन के हिसाब से अधिकतम ₹ 25000 तक जुर्माना किया जा सकता है।

यदि सूचना अधिकार अधिनियम 2005 को पूरी तरह लागू किया जाए तो भारत में भ्रष्टाचार में लिप्त नौकरशाही से मुक्ति मिल सकती है तथा एक पारदर्शी प्रशासन का नया अध्याय प्रारम्भ हो सकता है। इससे भारत के लोग स्वयं को सशक्त मानेंगे।

❖ **मानचित्र सम्बन्धी अभ्यास कार्य**

अध्यापक की सहायता से विद्यार्थी स्वयं करें।

❖ **प्रोजेक्ट कार्य**

अध्यापक की सहायता से विद्यार्थी स्वयं करें।

इकाई-2 (क) : स्थानीय स्तर पर शासन

23 स्थानीय स्तर के शासन का महत्व

(पंचायती राज-व्यवस्था)

अभ्यास

❖ **बहुविकल्पीय प्रश्न**

उ०– बहुविकल्पीय प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्य पुस्तक के पृष्ठ संख्या—201 का अवलोकन कीजिए।

❖ **अतिलघु उत्तरीय प्रश्न**

उ०– अतिलघु उत्तरीय प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्य पुस्तक के पृष्ठ संख्या—201 का अवलोकन कीजिए।

❖ **लघु उत्तरीय प्रश्न**

1. स्थानीय स्वशासन के सन्दर्भ में तीन विद्वानों के मतों को स्पष्ट कीजिए।

उ०– स्थानीय स्वशासन के सन्दर्भ में तीन विद्वानों के मत निम्न प्रकार हैं—

बी०के० गोखले के अनुसार, ''स्थानीय स्वशासन किसी विशिष्ट क्षेत्र का स्थानीय लोगों द्वारा एवं उनके द्वारा ही निर्वाचित प्रतिनिधियों के माध्यम से प्रशासन है।''

पी० स्टोनस के शब्दों में, ''स्थानीय स्वशासन किसी देश के शासन का वह भाग है, जो किसी विशेष क्षेत्र में जनता से सम्बन्धित मामलों का प्रशासन करता है।''

ए० लाल के अनुसार, '' स्थानीय स्वशासन सरकार के कानून द्वारा निर्मित एक लघु शासकीय इकाई है, जिसमें नगर या गाँव की

जनता द्वारा चुने हुए प्रतिनिधि होते हैं और जो अपने क्षेत्र की सीमा में जनकल्याण के लिए प्राप्त अधिकारों का प्रयोग करते हैं।''

2. स्थानीय स्वशासन का महत्व स्पष्ट कीजिए।

उ०– **स्थानीय स्वशासन का महत्व–** प्रजातन्त्र का आधार स्थानीय स्वशासन को माना गया है। स्थानीय स्वशासन लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण पर आधारित है। स्थानीय स्वशासन के महत्व को अग्रलिखित बिन्दुओं के आधार पर समझा जा सकता है—

(i) स्थानीय स्वशासन स्वस्थ लोकतान्त्रिक परम्पराओं को स्थापित करने के लिए ठोस आधार प्रदान करता है।

(ii) केन्द्र और राज्य सरकारों का कार्य—भार कम हो जाता है।

(iii) स्थानीय शासन से स्थानीय स्तर पर लोकतान्त्रिक शासन की स्थापना होती है।

(iv) स्थानीय शासन द्वारा स्थानीय समस्याओं का समाधान स्थानीय साधनों एवं आवश्यकताओं के अनुसार किया जा सकता है तथा स्थानीय विकास की योजनाओं को लागू किया जा सकता है।

(v) स्थानीय शासन से गाँवों और नगरों में रहने वाले लोगों में राजनीतिक चेतना उत्पन्न होती है और उन्हें प्रशासन में भाग लेने का अवसर प्राप्त होता है।

(vi) स्थानीय स्वशासन केन्द्र व राज्य सरकारों की तुलना में शीघ्रता से कार्यों का संपादन करने में सक्षम होती हैं।

(vii) इन महत्वों के साथ—साथ स्थानीय शासन नागरिकों में कर्तव्य भावना को भरता है। वह जनता में जनभावना एवं उदार दृष्टिकोण का विकास करता है जो कि उसके राजनैतिक विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

❖ **विस्तृत उत्तरीय प्रश्न**

1. स्थानीय स्वशासन की विशेषताएँ बताइए।

उ०– **स्थानीय स्वशासन की विशेषताएँ–** स्थानीय स्वशासन की विशेषताएँ निम्नलिखित हैं—

(i) स्थानीय क्षेत्र– स्थानीय क्षेत्र के अन्तर्गत आने वाली प्रत्येक इकाई का एक सुभाषित क्षेत्र होता है, जिसका निर्धारण राज्य द्वारा किया जाता है। यह निर्धारित क्षेत्र एक शहर, नगर, गाँव या गाँव का समूह हो सकता है।

(ii) स्थानीय सत्ता– स्थानीय शासन का संचालन एक स्थानीय सत्ता द्वारा होता है जो अपने स्थानीय क्षेत्रों की संचालन निकाय होती है। इस निकाय में स्थानीय नागरिकों द्वारा चुने हुए प्रतिनिधि होते हैं जो स्थानीय क्षेत्र के नागरिकों के प्रति उत्तरदायी होते हैं।

(iii) स्थानीय सत्ता का उद्देश्य– स्थानीय शासन का प्रमुख उद्देश्य उन कार्यों को करना होता है जिनसे प्राथमिक रूप से स्थानीय लोग लाभ उठाते हैं।

(iv) स्थानीय वित्त– स्थानीय निकाय प्राय: अपने स्थानीय स्रोतों से ही वित्त के साधन जुटाते हैं और धनराशि को स्थानीय मदों पर ही व्यय करते हैं। कर लगाने के लिए स्थानीय शासन को राज्य सरकार से अनुमति लेनी पड़ती है। इसके अतिरिक्त स्थानीय निकायों को राज्य सरकार से अनुदान भी प्राप्त होते हैं और वे राज्य सरकार से ऋण ले सकते हैं।

(v) जनता का राज– स्थानीय शासन को जनता स्वयं अथवा अपने निर्वाचित प्रतिनिधियों के माध्यम से चलाती हैं। इससे स्थानीय स्तर पर प्रत्यक्ष रूप से लोकतन्त्र की स्थापना होती है। भारत में वह प्रत्येक नागरिक जिसकी आयु कम से कम 18 वर्ष है, स्थानीय स्वशासन की संस्थाओं के चुनावो में भाग लेने का अधिकारी है।

(vi) दो भागों में विभाजन– भारत में स्थानीय स्वशासन की संस्थाओं (निकायों) को दो भागों में विभाजित किया गया है—(क) शहरी स्थानीय स्वशासन जिसमें नगर निगम, नगर परिषद, नगर पंचायत आदि आते हैं तथा (ख) ग्रामीण स्वशासन जिसमें जिला पंचायत, क्षेत्र पंचायत, ग्राम पंचायत आदि निकाय होते हैं।

(vii) स्थानीय स्वायत्तता– 'स्थानीय स्वायत्तता' से अभिप्राय स्थानीय शासन को अपने कार्यों एवं क्रियाओं में अपने निर्धारित क्षेत्र में निर्णय लेने एवं कार्य करने की स्वतन्त्रता से है। स्थानीय शासन अपने निर्धारित क्षेत्र के निवासियों की इच्छाओं और आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए स्वतन्त्रतापूर्वक कार्य करता है; किन्तु इसका अर्थ यह कदापि नहीं लगाना चाहिए कि स्थानीय संस्थाएँ अपनी इच्छा से प्रत्येक कार्य कर सकती हैं। वास्तविकता तो यह है कि स्थानीय शासन की संस्थाएँ अपनी उत्पत्ति, शक्तियों, कार्यों, उत्तरदायित्वों आदि के लिए राज्य सरकार पर निर्भर करती हैं।

3. स्थानीय स्वशासन के कार्यों की विवेचना कीजिए।

उ०– **स्थानीय स्वशासन के कार्य–** स्थानीय स्वशासन द्वारा निम्नलिखित कार्यों को पूरा किया जाता है—

(i) जल और प्रकाश व्यवस्था– पेय जल और पथ प्रकाश व्यवस्था स्थानीय स्वशासन का कार्य है। स्थानीय शासन द्वारा छोटे नगरों में नलकूप की व्यवस्था की जाती है। गाँवों में कुओं की व्यवस्था भी इसी के द्वारा की जाती है। गलियों और बाजारों में प्रकाश की व्यवस्था का कार्य भी इसी के द्वारा ही किया जाता है।

(ii) शिक्षा सम्बन्धी कार्य– इन संस्थाओं के द्वारा शिक्षा की व्यवस्था का कार्य होता है। ये संस्थाएँ प्राइमरी स्कूल खोलती हैं। इन संस्थाओं के द्वारा प्राइवेट विद्यालयों को आर्थिक सहायता प्रदान की जाती हैं। नि:शुल्क समाचारपत्र पुस्तकें व

पत्रिकाओं को पढ़ने के लिए पुस्तकालय खोलने का कार्य भी स्थानीय स्वशासन के द्वारा ही किया जाता है।

(iii) **सफाई व्यवस्था–** गन्दगी से बीमारी फैलती है। इससे बचने के लिए यह संस्थाएँ सफाई का कार्य भी करती हैं। इन संस्थाओं द्वारा नाली बनवाने तथा उनकी सफाई की व्यवस्था भी की जाती है।

(iv) **परिवहन की व्यवस्था–** परिवहन के क्षेत्र में भी स्थानीय संस्थाएँ ही व्यवस्था करती हैं। सड़कों का निर्माण व देखरेख का कार्य स्थानीय स्वशासन के द्वारा ही किया जाता है। इसके अतिरिक्त स्थानीय बसों को चलवाने और ट्राम, गाड़ियों का प्रबन्ध भी इन्हीं संस्थाओं का कार्य है।

(v) **दुर्घटनाओं से रक्षा–** किसी भी प्रकार की दुर्घटना जैसे आग लगना, बाढ़ आना इत्यादि से रक्षा का कार्य भी इस संस्था के द्वारा ही किया जाता है।

(vi) **विविध कार्य–** उपर्युक्त कार्यों के अतिरिक्त स्थानीय संस्थाएँ और भी कई प्रकार के कार्य करती हैं, जैसे– मार्केट खोलना, होटल व रेस्टोरेन्ट खोलना, सड़कों के दोनों ओर वृक्ष लगाना, कला—केन्द्रों की स्थापना करना, कृषि को उन्नत करना, पशुओं की नस्ल सुधारना, छोटे—छोटे उद्योग—धन्धों को बढ़ावा देना, जर्जर मकानों को गिराना, नए मकान बनवाना, घाटों का निर्माण करवाना, नगर विकास की योजना बनाना, जन्म व मृत्यु के आँकड़े इकट्ठा करना, बूचड़खाने खोलने के लिए लाइसेन्स देना, शमशान भूमि का प्रबन्ध करना इत्यादि।

3. सफल स्थानीय स्वशासन के लिए आवश्यक शर्तों का उल्लेख कीजिए।

उ०– **सफल स्थानीय स्वशासन के लिए आवश्यक शर्तें–** सफल स्थानीय स्वशासन के लिए आवश्यक शर्तें निम्नलिखित हैं—

(i) अपने प्रतिनिधियों के निर्वाचन के समय नागरिकों को जातीय तथा साम्प्रदायिक भावनाओं से प्रभावित होकर मतदान नहीं करना चाहिए। केवल योग्य, कुशल, कर्तव्यनिष्ठ तथा शिक्षित प्रत्याशियों को ही निर्वाचित करना चाहिए।

(ii) स्थानीय स्वशासन—संस्थाओं को धन के अपव्यय, कुप्रबन्ध, शक्तियों के दुरुपयोग आदि बुराइयों से बचाने के लिए इनके कार्यकलापों पर किसी न किसी रूप में केन्द्रीय या प्रान्तीय शासन का उचित नियन्त्रण आवश्यक है। किन्तु केन्द्रीय या प्रान्तीय शासन को हस्तक्षेप तभी करना चाहिए जबकि स्थानीय संस्थाओं का प्रबन्ध इतना अधिक दूषित हो जाए कि और कोई उपाय शेष न रहा हो, अर्थात् स्थानीय संस्थाओं के कार्यकरण में अनावश्यक हस्तक्षेप नहीं किया जाना चाहिए।

(iii) स्थानीय संस्थाएँ अपने वैधानिक कार्यों तथा कर्तव्यों को तभी पूरा कर सकती हैं, जब उनके पास पर्याप्त वित्तीय साधन उपलब्ध होंगे।

(iv) स्थानीय संस्थाओं के कार्यकलापों की रचनात्मक आलोचना की जानी चाहिए। इसके लिए सम्बन्धित क्षेत्र के निवासियों द्वारा स्वस्थ जनमत का निर्माण किया जाना चाहिए। निवासियों को चाहिए कि वे अपने क्षेत्र की आवश्यकताओं से इन संस्थाओं को भली भाँति परिचित कराएँ।

(v) स्वस्थ जनमत के निर्माण के लिए लोगों में ईमानदारी, कर्त्तव्यपरायणता, परस्पर सहयोग आदि गुणों का होना आवश्यक है।

❖ **मानचित्र सम्बन्धी अभ्यास कार्य**

अध्यापक की सहायता से विद्यार्थी स्वयं करें।

❖ **प्रोजेक्ट कार्य**

अध्यापक की सहायता से विद्यार्थी स्वयं करें।

24 ग्राम पंचायत, क्षेत्र पंचायत तथा जिला पंचायत

अभ्यास

❖ **बहुविकल्पीय प्रश्न**

उ०– बहुविकल्पीय प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्य पुस्तक के पृष्ठ संख्या—207 का अवलोकन कीजिए।

❖ **अतिलघु उत्तरीय प्रश्न**

उ०– अतिलघु उत्तरीय प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्य पुस्तक के पृष्ठ संख्या—207 का अवलोकन कीजिए।

❖ **लघु उत्तरीय प्रश्न**

1. भारत में पंचायती राज की अवधारणा को स्पष्ट कीजिए।

उ०– **भारत में पंचायती राज की अवधारणा–** पंचायती राज व्यवस्था लोकतन्त्र का जीवन तथा प्राण है। जब शासन व्यवस्था का

संचालन पंचायतों के माध्यम से किया जाता है तो उसे **पंचायती राज व्यवस्था** के नाम से जाना जाता है। स्वतन्त्रता प्राप्ति से पहले भी ग्राम स्तर पर पंचायतों के माध्यम से स्वशासन की व्यवस्था की गई थी। राष्ट्रीय आन्दोलन के समय महात्मा गाँधी ने ग्राम स्तर तक पंचायती राज व्यवस्था को अपनाने पर बल दिया था। गाँधी जी के मतानुसार जब तक ग्रामीण जीवन को लोकतान्त्रिक नहीं बनाया जाता, तब तक भारत में वास्तविक लोकतन्त्र की स्थापना नहीं हो सकती है। गाँधी जी के विचारों पर आधारित पंचायती राज व्यवस्था को संविधान के नीति–निदेशक सिद्धान्तों में स्थान दिया गया है। **बलवन्त राय मेहता** की अध्यक्षता में गठित समिति ने भारत के ग्रामीण क्षेत्रों के विकास के लिए स्वशासन की स्थापना करने की सिफारिश की थी। उन्होंने पंचायती राज व्यवस्था के लिए **त्रिस्तरीय व्यवस्था** का विचार व्यक्त किया था। **पं० जवाहरलाल नेहरू** का भी यह विश्वास था कि पंचायती राज व्यवस्था ग्रामीण गरीबी को समाप्त करने में सहायक होगी। यदि गाँवों में भी शासन का संचालन **एक व्यक्ति एक मत** के आधार पर संचालित होने लगे तो गरीब लोगों का बहुमत धनी वर्गों की आर्थिक तथा सामाजिक शक्ति को चुनौती दे सकता है।

किसी भी लोकतन्त्र की सफलता अधिकाधिक लोगों की शासन में सहभागिता पर निर्भर करती है। इस सन्दर्भ में **महात्मा गाँधी** ने कहा भी है— ''स्वतन्त्रता का प्रारम्भ धरातल से होना चाहिए। प्रत्येक गाँव एक छोटा गणराज्य होना चाहिए, जिसके हाथ में सभी अधिकार हों।'' बौद्ध धर्म के 'जातकों', कौटिल्य के 'अर्थशास्त्र' तथा शंकराचार्य के 'नीतिशास्त्र' में भी ग्राम पंचायतों का उल्लेख मिलता है किन्तु मुस्लिम शासनकाल तथा ब्रिटिश शासनकाल में इनका पतन हो गया था।

2. ग्राम पंचायत का संगठन समझाइए।

उ०– **ग्राम पंचायत का संगठन–** ग्राम पंचायत में ग्राम प्रधान के अतिरिक्त 9 से 15 सदस्य होते हैं। इसमें 1,000 की जनसंख्या पर 9 सदस्य, 1000–2000 की जनसंख्या तक 11 सदस्य, 2000–3000 की जनसंख्या तक 13 सदस्य तथा 3000 से ऊपर की जनसंख्या पर सदस्यों की संख्या 15 होती है। ग्राम पंचायत के सदस्य के रूप में निर्वाचित होने की न्यूनतम आयु 21 वर्ष है। ग्राम पंचायत में नियमानुसार सभी वर्गों तथा महिलाओं को आरक्षण प्रदान किया गया है।

3. क्षेत्र पंचायत का सदस्य चुने जाने के लिए योग्यताएँ बताइए।

उ०– **क्षेत्र पंचायत का सदस्य चुने जाने के लिए योग्यता–** क्षेत्र पंचायत का सदस्य निर्वाचित होने के लिए निम्नाकिंत योग्यताएँ होनी आवश्यक हैं–

(i) उसका नाम क्षेत्र पंचायत की प्रादेशिक निर्वाचन क्षेत्र की निर्वाचक नामावली में हो।
(ii) वह विधानमण्डल का सदस्य निर्वाचित होने की योग्यता रखता हो।
(iii) उसकी आयु 21 वर्ष हो।
(iv) वह लाभ के किसी सरकारी पद पर न हो।

4. जिला पंचायत के अधिकारी कौन–कौन होते हैं? इनके चुनाव की प्रक्रिया स्पष्ट कीजिए।

उ०– **जिला पंचायत के अधिकारी और उनका चुनाव–** प्रत्येक जिला पंचायत में दो अधिकारी होते हैं– **अध्यक्ष** तथा **उपाध्यक्ष**, जिनका चुनाव निर्वाचित सदस्यों द्वारा गुप्त मतदान प्रणाली के आधार पर होता है। अध्यक्ष बनने के लिए यह आवश्यक है कि वह जिले में रहता हो। उसकी आयु 21 वर्ष से कम न हो और उसका नाम मतदाता सूची में हो। इन दोनों का निर्वाचन पाँच वर्ष के लिए किया जाता है। राज्य सरकार पाँच वर्ष की अवधि से पूर्व भी इन्हें पदच्युत कर सकती है। ये पद भी अनुसूचित जातियों, जनजातियों तथा पिछड़ें वर्गों के लिए आरक्षित होते हैं। अध्यक्ष पंचायतों की बैठकों का सभापतित्व करता है, पंचायत के कार्यों का निरीक्षण करता है एवं कर्मचारियों पर नियन्त्रण रखता है। अध्यक्ष की अनुपस्थिति में उसका पदभार उपाध्यक्ष सँभालता है। इन अधिकारियों के अतिरिक्त अनेक छोटे–बड़े, स्थायी–अस्थायी वैतनिक कर्मचारी भी होते हैं, जो इन अधिकारियों के प्रति जिम्मेदार होते हैं तथा जिला पंचायत के कार्य निष्पादित करते हैं।

❖ विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

1. पंचायती राज के सन्दर्भ में गाँधी जी के कथन की व्याख्या करते हुए पंचायती राज का महत्व बताइए।

उ०– **पंचायती राज के सन्दर्भ में गाँधी जी के कथन की व्याख्या–** किसी भी लोकतन्त्र की सफलता अधिकाधिक लोगों की शासन में सहभागिता पर निर्भर करती है। इस सन्दर्भ में गाँधी जी ने कहा है कि – ''स्वतन्त्रता का प्रारम्भ धरातल से होना चाहिए। प्रत्येक गाँव एक छोटा गणराज्य होना चाहिए, जिसके हाथों में सभी अधिकार हो। जब तक ग्रामीण जीवन को लोकतान्त्रिक नहीं बनाया जाता, तब तक भारत में वास्तविक लोकतन्त्र की स्थापना नहीं हो सकती है।''

आधुनिक युग में महात्मा गाँधी ने ग्रामीण स्वराज्य का सपना देखा था। वह ग्रामीण स्वराज्य, पंचायती राज और राम राज्य को लगभग समानार्थी मानते थे। वह भारतीय गाँवों का पुनरोद्धार भारतीय ढ़ंग से करना चाहते थे। प्राचीन भारतीय व्यवस्था के अनुरूप ही भारतीय गाँवों को वह आत्मनिर्भर, स्वशासित और स्वावलम्बी गणतन्त्र के रूप में विकसित होते देखना चाहते थे जिसमें उनकी आवश्यकता की सब चीजों का उत्पादन व सर्वांगीण विकास के लिए समुचित अवसर तथा उनके मनोरंजन की

सुविधाओं से लेकर दैनिक जीवन से सम्बद्ध सभी समस्याओं का समाधान गाँव में ही सुलभ हो, यही उनका सच्चे अर्थ में स्वराज था। ग्रामीण स्वराज्य की प्रकृति की विवेचना करते हुए उन्होने कहा था कि सम्पूर्ण व्यवस्था विकेन्द्रीकरण रहेगी। वयस्क मताधिकार के आधार पर प्रत्यक्ष रूप से निर्वाचित ग्राम पंचायत सबसे निम्न स्तर की इकाई होगी। इसके ऊपर क्रमश: तहसील, जिला पंचायत (सभा), प्रान्तीय परिषदें और केन्द्रीय शासन होगा। प्रत्येक निम्न स्तर की इकाई अपने से ऊपर की इकाई के सदस्यों का निर्वाचन करेगी। इस प्रकार सारी शक्ति का स्रोत गाँव ही होगा। महात्मा गाँधी का कहना था कि ग्राम पंचायतों को अपने गाँवों का प्रबन्ध और प्रशासन करने के सब अधिकार दे दिए जाएँ। इनके मामलों में राष्ट्रीय अथवा प्रान्तीय सरकारों का हस्तक्षेप और नियन्त्रण बहुत कम हो जाए। सभी गाँव आर्थिक दृष्टि से स्वावलम्बी और राजनीतिक दृष्टि से स्वशासन का पूर्ण अधिकार रखने वाले हों। गाँधी जी के शब्दों में मेरे ग्राम स्वराज्य का आदर्श यह है कि प्रत्येक गाँव का एक पूर्ण गणराज्य हो। अपनी आवश्यक वस्तुओं के लिए अपने पड़ोसियों पर निर्भर न रहें। इस प्रकार प्रत्येक गांव का पहला काम होगा खाने के लिए अन्न और कपड़ों के लिए रूई की फ़सलों को उत्पन्न करना। पशुओं के लिए वहाँ गोचर भूमि होनी चाहिए और लोगों के खेलकूद व मनोरंजन के लिए खेल के मैदान। यदि और भूमि को तो रुपया पैदा करने वाली लाभदायक फसलें उत्पन्न की जाएँ, परन्तु उनमें गांजा, अफीम, तम्बाकू आदि सम्मिलित न समझे जाने चाहिए। स्वच्छ जल के जलाशयों का प्रबन्ध भी आवश्यक है, चाहे वे सुरक्षित कूप हों या जलाशय। प्रारम्भिक शिक्षा अनिवार्य होगी। गाँव की अपनी नाट्यशाला, सार्वजनिक भवन और पाठशाला भी होनी चाहिए यथा सम्भव प्रत्येक कार्य सहकारिता के आधार पर किया जाएगा.......। दण्ड के स्थान पर ग्राम समाज अहिंसामूलक सत्याग्रह तथा असहयोग से काम लेगा। ग्राम रक्षकों का एक दल रहेगा जो ग्रामवासियों में से ही बारी—बारी से चुना जाएगा। ग्राम का शासन पांच व्यक्तियों की पंचायत के द्वारा संचालित होगा। इन पंचों में निर्धारित न्यूनतम योग्यता का होना आवश्यक होगा। उन्हें स्वार्थ रहित, योग्य तथा भ्रष्टचार से मुक्त, आत्म विज्ञापन से दूर रहने वाला, पदलोलुपता से रहित, विरोधियों की कटु आलोचना तथा छिद्रान्वेषण के दूषण से मुक्त होना चाहिए। वोट प्रचार द्वारा नहीं, बल्कि सेवा द्वारा प्राप्त किए जाने चाहिए। मतदाताओं के लिए आवश्यक योग्यता की शर्त सामाजिक स्थिति अथवा सम्पत्ति की नहीं अपितु शारीरिक श्रम की होनी चाहिए। पंचायत के सदस्यों का चुनाव प्रतिवर्ष ग्रामवासी सभी वयस्क स्त्री—पुरूषों द्वारा होगा। सभी आवश्यक अधिकार इन्ही के हाथ में होंगे। आजकल की तरह दण्ड व्यवस्था होगी ही नहीं। पंचायत ही गाँव की व्यवस्थापिका सभा, कार्यकारिणी सरकार व न्यायपालिका, सभी कुछ होगी। कोई भी गाँव चाहे तो आज इस प्रकार का गणराज्य बन सकता है। इसमें व्यक्ति स्वातंत्रय के आधार पर बना लोकतंत्र होगा।

इस प्रकार महात्मा गाँधी ने पंचायती राज व्यवस्था का एक समग्र चित्र प्रस्तुत किया था। उनके विचारों को व्यवहार में यथाशक्य, उनके उत्तराधिकारी पं. नेहरू द्वारा लाया गया।

पंचायती राज का महत्व– भारत में पंचायती राज के महत्व को निम्नलिखित बिन्दुओं के अन्तर्गत समझा जा सकता है—

(i) पंचायती राज की संस्थाएँ जनता तथा सरकार के मध्य एक कड़ी का काम करती हैं। ग्रामीण उत्थान के लिए जनता तथा सरकार के मध्य सम्पर्क तथा सहयोग परमावश्यक है।

(ii) पंचायती राज से स्वतन्त्रता तथा स्वाधीनता को बढ़ावा मिलता है। इसके अभाव में ग्रामों का प्रबन्ध पूर्णतया केन्द्रीय अथवा प्रान्तीय सरकार के पास होने से देश में अधिनायकवाद में वृद्धि होगी।

(iii) भारत एक विशाल देश है। केन्द्रीय सरकार के लिए यह सम्भव नहीं है कि वह इतने बड़े देश पर प्रत्यक्ष नियन्त्रण रख सके तथा सभी ग्रामीण समस्याओं का समाधान कर सके। इस दृष्टि से पंचायती राज संस्थाएँ केन्द्रीय तथा राज्य सरकारों को स्थानीय समस्याओं के भारत से हल्का कर देती है।

(iv) पंचायती राज—व्यवस्था ग्रामवासियों को अपने राजनीतिक अधिकारों के प्रयोग की शिक्षा देती है तथा उन्हें अपने कर्तव्यों का बोध कराती है।

(v) ग्राम पंचायतें ग्रामीण जनता को राजनीतिक अनुभव तथा राजनीतिक प्रशिक्षण प्रदान करती हैं। बाद में ऐसे कुछ व्यक्ति विधायक तथा मंत्री बनते हैं जिन्हें ग्रामीण भारत की समस्याओं का पर्याप्त ज्ञान होता है । ऐसे राजनेता ग्रामीण भारत का विकास करने में कहीं अधिक सक्षम होते हैं। इस प्रकार ग्राम पंचायतें देश में उचित नेतृत्व के निर्माण में सहायक सिद्ध होती हैं।

2. ग्राम पंचायत के स्वरूप को समझाइए।

उ०– ग्राम पंचायत– ग्राम सभा के निर्देशन तथा मार्गदर्शन में कार्य करती हुई **ग्राम पंचायत**, पंचायती राज व्यवस्था की सबसे छोटी आधारभूत इकाई है। ग्राम सभा गाँव की छोटी विधायिका के रूप में कार्य करती है। गाँव के सभी वयस्क पुरुष तथा स्त्री ग्राम सभा के सदस्य होते हैं। ग्राम पंचायत सरकार की कार्यपालिका के रूप में कार्य करती है।

संगठन– ग्राम पंचायत में ग्राम प्रधान के अतिरिक्त 9 से 15 सदस्य होते हैं। इसमें 1,000 की जनसंख्या पर 9 सदस्य, 1000–2000 की जनसंख्या तक 11 सदस्य, 2000–3000 की जनसंख्या तक 13 सदस्य तथा 3000 से ऊपर की जनसंख्या पर सदस्यों की संख्या 15 होती है। ग्राम पंचायत के सदस्य के रूप में निर्वाचित होने की न्यूनतम आयु 21 वर्ष है। ग्राम पंचायत में नियमानुसार सभी वर्गों तथा महिलाओं को आरक्षण प्रदान किया गया है।

आरक्षण– ग्राम पंचायत में अनुसूचित जातियों, जनजातियों, अन्य पिछड़े वर्गों तथा महिलाओं के लिए भी स्थान आरक्षित होते हैं। अनुसूचित जातियों, जनजातियों तथा अन्य पिछड़े वर्गों के लिए आरक्षित स्थानों में से एक तिहाई इन जातियों व वर्गों की महिलाओं के लिए आरक्षित होते हैं। इसके अतिरिक्त ग्राम पंचायत के कुल स्थानों में से एक तिहाई स्थान महिलाओं के लिए आरक्षित होंगे।

कार्यकाल– ग्राम पंचायत का कार्यकाल 5 वर्ष का होता है, किन्तु विशेष परिस्थितियों में सरकार इसे समय से पूर्व भी विघटित कर सकती है।

पदाधिकारी– ग्राम पंचायत का प्रमुख पदाधिकारी प्रधान होता है तथा एक उपप्रधान होता है। ग्राम प्रधान का निर्वाचन ग्राम सभा के सदस्य 5 वर्षों के लिए करते हैं। उप–प्रधान का निर्वाचन पंचायत के सदस्य 5 वर्ष के लिए करते हैं।

बैठकें– प्रत्येक माह ग्राम पंचायत की कम–से–कम एक बैठक होनी आवश्यक है, एक से अधिक बैठकें भी एक माह में हो सकती हैं।

अनिवार्य कार्य– 73वें संवैधानिक संशोधन द्वारा ग्राम पंचायतों को संवैधानिक दर्जा प्रदान किया गया है तथा 29 विषय प्रदान किए गए हैं, जो स्थानीय स्तर के कार्यों एवं योजनाओं से सम्बन्धित हैं।

ग्राम पंचायत निम्नलिखित अनिवार्य कार्यों को सम्पादित करती हैं–

(i) गाँव की सफाई की व्यवस्था करना।
(ii) रोशनी का प्रबन्ध करना।
(iii) संक्रामक रोगों की रोकथाम करना।
(iv) गाँव की इमारतों की रक्षा करना।
(v) कृषि और बागवानी का विकास करना।
(vi) बालक एवं बालिकाओं की शिक्षा की समुचित व्यवस्था करना।
(vii) खेलकूद की व्यवस्था करना।
(viii) कृषि की उन्नति का प्रयत्न करना आदि।

ऐच्छिक कार्य– ग्राम पंचायत के ऐच्छिक कार्य निम्नलिखित हैं–

(i) सड़कें तथा सार्वजनिक स्थानों पर वृक्ष लगवाना।
(ii) पुस्तकालय, वाचनालय क्लब तथा अखाड़ों का प्रबन्ध करना।
(iii) अकाल के समय किसानों की सहायता करना।
(iv) सार्वजनिक उपयोगिता तथा मनोरंजन के कार्य करना– जैसे–रेडियो, दूरदर्शन आदि की व्यवस्था करना।
(v) मवेशियों की नस्ल सुधारना।
(vi) सरकार से ऋण प्राप्त करना, उसके वितरण तथा भुगतान के सम्बन्ध में किसानों का मार्गदर्शन करना।
(vii) गाँव के गड्ढों को भरवाकर समतल भूमि की व्यवस्था करना।
(viii) सहकारिता सम्बन्धी कार्य, जैसे– अच्छे बीज तथा यन्त्रों के गोदाम स्थापित करना।

3. क्षेत्र पंचायत पर एक विस्तृत लेख लिखिए।

उ०– उत्तर के लिए विस्तृत उत्तरीय प्रश्न संख्या–2 के उत्तर का अवलोकन कीजिए।

4. जिला पंचायत की भूमिका बताइए।

उ०– जिला पंचायत की भूमिका– जिले के समस्त ग्रामीण क्षेत्र की व्यवस्था तथा विकास का उत्तरदायित्व जिला पंचायत पर होता है। इस दायित्व को पूरा करने के लिए जिला पंचायत निम्नलिखित कार्य करती है–

(i) सार्वजनिक सड़कों, पुलों तथा निरीक्षण–गृहों का निर्माण एवं मरम्मत करवाना।
(ii) प्रबन्ध हेतु सड़कों का ग्राम सड़कों, अन्तर्ग्राम सड़कों तथा जिला सड़कों में वर्गीकरण करना।
(iii) तालाब, नाले आदि बनवाना।
(iv) पीने के पानी की व्यवस्था करना।
(v) रोशनी का प्रबन्ध करना।
(vi) जन–स्वास्थ्य के लिए महामारियों और संक्रामक रोगों की रोकथाम की व्यवस्था करना।
(vii) अकाल के दौरान सहायता हेतु राहत कार्य चलाना।
(viii) क्षेत्र समिति एवं ग्राम पंचायतों के कार्यों में तालमेल स्थापित करना।
(ix) ग्राम पंचायतों तथा क्षेत्र समितियों के कार्यों का निरीक्षण करना।

(x) प्राइमरी स्तर से ऊपर की शिक्षा का प्रबन्ध करना।
(xi) सड़कों के किनारे छायादार वृक्ष लगवाना।
(xii) कांजी हाऊस तथा पशु चिकित्सालय की व्यवस्था करना।
(xiii) जन्म—मृत्यु का हिसाब रखना।
(xiv) परिवार नियोजन कार्यक्रम लागू करना।

❖ **मानचित्र सम्बन्धी अभ्यास कार्य**
अध्यापक की सहायता से विद्यार्थी स्वयं करें।

❖ **प्रोजेक्ट कार्य**
अध्यापक की सहायता से विद्यार्थी स्वयं करें।

25 नगर प्रशासन-नगर पंचायत, नगरपालिका परिषद्, नगर निगम

अभ्यास

❖ **बहुविकल्पीय प्रश्न**

उ०– बहुविकल्पीय प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्य पुस्तक के पृष्ठ संख्या—213 का अवलोकन कीजिए।

❖ **अतिलघु उत्तरीय प्रश्न**

उ०– अतिलघु उत्तरीय प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्य पुस्तक के पृष्ठ संख्या—213 व 214 का अवलोकन कीजिए।

❖ **लघु उत्तरीय प्रश्न**

1. नगरपालिका परिषद् के गठन को समझाइए।

उ०– **नगर पालिका परिषद् का गठन–** नगरपालिका परिषद् में एक अध्यक्ष, एक उपाध्यक्ष और निम्नलिखित तीन प्रकार के सदस्य होंगे—

(i) निर्वासित सदस्य– किसी भी नगरपालिका परिषद् में निर्वाचित सदस्यों की संख्या 25 से कम तथा 55 से अधिक नहीं होगी। सदस्यों की संख्या को नगर की जनसंख्या के अनुसार राज्य सरकार निश्चित करके सरकारी गजट में अधिसूचना द्वारा प्रकाशित करेगी।

(ii) पदेन सदस्य–

(क) इसमें लोकसभा और राज्य विधानसभा के ऐसे सभी सदस्य शामिल होते हैं, जो उन निर्वाचन—क्षेत्रों का प्रतिनिधित्व करते हैं जिनमें पूर्णतया अथवा अंशतया वे नगरपालिका—क्षेत्र सम्मिलित हैं।

(ख) इसमें राज्यसभा और विधान परिषद् के ऐसे सभी सदस्य सम्मिलित होते हैं, जो उस नगरपालिका—क्षेत्र के अन्तर्गत निर्वाचक के रूप में पंजीकृत हैं।

(iii) मनोनीत सदस्य– प्रत्येक नगरपालिका परिषद् में राज्य सरकार द्वारा ऐसे सदस्यों को मनोनीत किया जाएगा, जिन्हें नगरपालिका प्रशासन का विशेष ज्ञान तथा अनुभव हो। मनोनीत सदस्यों की संख्या 3 से कम तथा 5 से अधिक नहीं होगी। मनोनीत सदस्यों को भी निर्वाचित सदस्यों की भाँति **सभासद** कहा जाएगा।

2. नगर निगम में आरक्षण को समझाइए।

उ०– **नगर निगम में आरक्षण–** प्रत्येक नगर निगम में अनुसूचित जातियों, जनजातियों के लिए सीटों का आरक्षण किया जाएगा। यह आरक्षण उस नगर निगम के क्षेत्र में उन वर्गों की जनसंख्या के अनुपात में होगा तथा आरक्षित सीटों का बारी—बारी से आवर्तन होगा। उपर्युक्त रीति से इन वर्गों के लिए आरक्षित की गई कुल सीटों के 1/3 स्थान इन वर्गों की महिलाओं हेतु आरक्षित किए जाएगे। इसी प्रकार प्रत्यक्ष रूप निर्वाचित कुल सीटों के कम—से—कम 1/3 स्थान (अनुसूचित जाति व जनजाति की महिलाओं हेतु आरक्षित स्थानों सहित) महिलाओं के लिए आरक्षित होंगे और इन स्थानों का भी बारी—बारी से आवर्तन किया जाता रहेगा। नगर निगम की कार्यावधि 5 वर्ष निर्धारित है इससे पूर्व भंग किए जाने पर भंग की तिथि से 6 माह के भीतर उसके चुनाव होंगे। **नगर प्रमुख** एवं उप नगर प्रमुख निर्वाचित अधिकारी होते हैं— नगर प्रमुख निगम की सभाओं की अध्यक्षता करता है। उसकी अनुपस्थिति या पद रिक्त होने पर **उप नगर प्रमुख** उसके कार्यों का सम्पादन करता है। उप नगर प्रमुख का चुनाव सभासद एक वर्ष के लिए करते हैं।

3. सभासदों के निर्वाचन के लिए आवश्यक योग्यताएँ बताइए।

उ०– सभासद निर्वाचित होने की योग्यता– नगर पंचायत का सदस्य निर्वाचित होने के लिए निम्नलिखित योग्यताएँ आवश्यक हैं–

(i) उसका नाम नगर की निर्वाचक सूची में हो।

(ii) वह 21 वर्ष की आयु पूर्ण कर चुका हो।

(iii) वह केन्द्र सरकार अथवा राज्य सरकार के अधीन किसी लाभ के पद पर न हो।

(iv) आयु के अतिरिक्त वह अन्य सभी बातों की दृष्टि से राज्य विधानमण्डल का सदस्य निर्वाचित होने की योग्यता रखता हो।

❖ **विस्तृत उत्तरीय प्रश्न**

1. उत्तर प्रदेश में नगर स्वाायत्त शासन अधिनियम 1994 पर प्रकाश डालिए।

उ०– उत्तर प्रदेश में नगर स्वाायत्त शासन अधिनियम 1994– भारतीय संविधान के 74वें संशोधन के परिणामस्वरूप विधानमण्डल में उत्तर प्रदेश नगर स्वायत्त शासन विधि अधिनियम, 1994 ई० पारित हुआ। इस अधिनियम के पारित होने से पूर्व स्थानीय स्वायत्त शासन की पाँच संस्थाएँ थी। इस अधिनियम के प्रावधान निम्नवत थे–

(i) प्रत्येक राज्य में नगर पंचायत, नगरपालिका परिषद् तथा नगर निगम का गठन किया जाएगा। नगर पंचायत का गठन उस क्षेत्र के लिए होगा, जो ग्रामीण क्षेत्र से नगरीय क्षेत्र में परिवर्तित हो रहा है। नगरपालिका परिषद् का गठन छोटे नगरीय क्षेत्रों के लिए किया जाएगा, जबकि बड़े नगरों के लिए नगर निगम का गठन होगा।

(ii) तीन लाख या अधिक जनसंख्या वाली नगरपालिका के क्षेत्र में एक या अधिक वार्ड समितियों का गठन होगा।

(iii) प्रत्येक प्रकार के नगर निकायों के स्थानों के लिए अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जनजातियों के सदस्यों के लिए उनके जनसंख्या के अनुपात में स्थानों को आरक्षित किया जाएगा तथा महिलाओं के लिए कुल स्थानों का 30 प्रतिशत आरक्षित होगा।

(iv) नगरीय सस्थाओं की अवधि 5 वर्ष होगी, लेकिन इन संस्थाओं का 5 वर्ष के पहले भी विघटन किया जा सकता है और विघटन की स्थिति में 6 मास के अन्दर चुनाव कराना आवश्यक होगा।

(v) नगरीय संस्थाओं की शक्तियाँ और उत्तरदायित्व क्या होगा, इसका निर्धारण राज्य विधानमण्डल कानून बनाकर कर सकती है। राज्य विधानमण्डल कानून बनाकर नगरीय संस्थाओं को निम्नलिखित के सम्बन्ध में उत्तरदायित्व और शक्तियाँ प्रदान कर सकती हैं–

(क) नगर में निवास करने वाले व्यक्तियों के सामाजिक न्याय तथा आर्थिक विकास के लिए योजना तैयार करने के लिए।

(ख) ऐसे कार्यों को करने तथा ऐसी योजनाओं को क्रियान्वित करने के लिए, जो उन्हें सौंपा जाए।

इसके अतिरिक्त निम्नलिखित विषयों, जो संविधान की बारहवीं अनुसूची में शामिल किए गए हैं, के सम्बन्ध में राज्य विधानमण्डल कानून बनाकर नगरीय संस्थाओं को अधिकार एवं दायित्व सौंप सकते हैं–

(क) नगरीय योजना (इसमें शहरी योजना भी सम्मिलित है)

(ख) भूमि उपयोग का विनिमय और भवनों का निर्माण

(ग) आर्थिक और सामाजिक विकास की योजना

(घ) सड़कें और पुल

(ङ) घरेलू, औद्योगिक और वाणिज्यिक प्रयोजनों के निमित्त जल की आपूर्ति

(च) लोक स्वास्थ्य, स्वच्छता, सफाई तथा कूड़ा–करकट का प्रबन्ध

(छ) अग्निशमन सेवाएँ

(ज) नगरीय वानिकी, पर्यावरण का संरक्षण और पारिस्थितिक पहलुओं की अभिवृद्धि

(झ) समाज के कमजोर वर्गों (जिसके अन्तर्गत विकलांग और मानसिक रूप से मन्द व्यक्ति सम्मिलित हैं) के हितों का संरक्षण

(ञ) गन्दी बस्तियों में सुधार

(ट) नगरीय निर्धनता में कमी

(ठ) नगरीय सुख–सुविधाओं, जैसे– पार्क, उद्यान, खेल का मैदान इत्यादि की व्यवस्था

(ड) सांस्कृतिक, शैक्षणिक और सौन्दर्यपरक पहलुओं की अभिवृद्धि

(ढ) कब्रिस्तान, शव गाड़ना, शमशान और शवदाह तथा विद्युत शवदाह

(ण) पशु–तालाब तथा जानवरों के प्रति क्रूरता को रोकना

(त) जन्म–मरण सांख्यिकी (जन्म–मरण पंजीकरण सहित)।

इस अधिनियम के बाद निम्नलिखित तीन संस्थाएँ शेष बचीं–

(i) नगर पंचायत– 30 हजार से 1 लाख तक की जनसंख्या वाले क्षेत्र को **'संक्रमणशील क्षेत्र'** का नाम देकर इसके प्रबन्ध के लिए 'नगर पंचायत' के गठन की व्यवस्था की गई है।

(ii) नगरपालिका परिषद्– 1 लाख से 5 लाख तक जनसंख्या वाले नगर को **'लघुत्तर नगरीय क्षेत्र'** का नाम दिया गया है तथा इसके प्रबन्ध के लिए 'नगरपालिका परिषद्' के संगठन की व्यवस्था की गई है।

(iii) नगर निगम– 5 लाख से अधिक जनसंख्या वाले नगरों को **'वृहत्तर नगरीय क्षेत्र'** का नाम दिया गया है तथा इसके प्रबन्ध के लिए 'नगर निगम' के संगठन की व्यवस्था की गई है।

2. नगरपालिका परिषद् का विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिए।

उ०– **नगरपालिका परिषद्–** उत्तर प्रदेश नगरीय स्वायत्त शासन विधि (संशोधन) अधिनियम, 1994 के अन्तर्गत 1 लाख से 5 लाख तक की जनसंख्या वाले नगर को **लघुत्तर नगरीय क्षेत्र** का नाम दिया गया है और इनके प्रबन्ध के लिए 'नगरपालिका परिषद्' के गठन की व्यवस्था की गई है।

गठन– नगरपालिका परिषद् में एक अध्यक्ष, एक उपाध्यक्ष और निम्नलिखित तीन प्रकार के सदस्य होंगे–

(i) निर्वासित सदस्य– किसी भी नगरपालिका परिषद् में निर्वाचित सदस्यों की संख्या 25 से कम तथा 55 से अधिक नहीं होगी। सदस्यों की संख्या को नगर की जनसंख्या के अनुसार राज्य सरकार निश्चित करके सरकारी गजट में अधिसूचना द्वारा प्रकाशित करेगी।

(ii) पदेन सदस्य–

(क) इसमें लोकसभा और राज्य विधानसभा के ऐसे सभी सदस्य शामिल होते हैं, जो उन निर्वाचन–क्षेत्रों का प्रतिनिधित्व करते हैं जिनमें पूर्णतया अथवा अंशतया वे नगरपालिका–क्षेत्र सम्मिलित हैं।

(ख) इसमें राज्यसभा और विधान परिषद् के ऐसे सभी सदस्य सम्मिलित होते हैं, जो उस नगरपालिका–क्षेत्र के अन्तर्गत निर्वाचक के रूप में पंजीकृत हैं।

(iii) मनोनीत सदस्य– प्रत्येक नगरपालिका परिषद् में राज्य सरकार द्वारा ऐसे सदस्यों को मनोनीत किया जाएगा, जिन्हें नगरपालिका प्रशासन का विशेष ज्ञान तथा अनुभव हो। मनोनीत सदस्यों की संख्या 3 से कम तथा 5 से अधिक नहीं होगी। मनोनीत सदस्यों को भी निर्वाचित सदस्यों की भाँति **सभासद** कहा जाएगा।

सदस्यों की योग्ताएँ– नगरपालिका परिषद् का सदस्य बनने के लिए व्यक्ति में ये योग्यताएँ होनी चाहिए–

(i) वह भारत का नागरिक हो।
(ii) वह 21 वर्ष की आयु पूर्ण कर चुका हो।
(iii) वह पागल, दिवालिया या अपराधी न हो।
(iv) वह किसी सरकारी पद पर न हो।
(v) उसका नाम मतदाता सूची में हो।
(vi) उस पर नगरपालिका परिषद् का कोई ऋण बकाया न हो।

निर्वाचन पद्धति– निर्वाचन के लिए समस्त नगर को चुनाव–क्षेत्रों में बाँट दिया जाता है, जिन्हें **वार्ड** कहते हैं। उसके बाद प्रत्येक वार्ड के मतदाताओं की सूची तैयार की जाती है। ऐसी सूची में उन्हीं व्यक्तियों के नाम लिखे जाते हैं जो– भारत के नागरिक हों, 18 वर्ष की आयु पूर्ण कर चुके हों तथा पागल या दिवालिया न हों। किसी नगर से कितने सदस्यों का निर्वाचन होगा, इसका निर्णय राज्य सरकार करती है। सदस्यों का चुनाव गुप्त मतदान प्रणाली द्वारा होता है। जिस प्रत्याशी को सर्वाधिक मत प्राप्त होते हैं, उसे निर्वाचित घोषित किया जाता है। सदस्यों का चुनाव 5 वर्ष के लिए होता है।

स्थानों का आरक्षण– अनुसूचित जातियों एवं अनुसूचित जनजातियों के लिए आरक्षित स्थानों की संख्या का अनुपात प्रत्यक्ष चुनाव से भरे जाने वाले स्थानों की संख्या में यथासम्भव वही होगा, जो अनुपात **नगरपालिका परिषद्** क्षेत्र की कुल जनसंख्या में इन जातियों का है। पिछड़ी जातियों के लिए 27 प्रतिशत स्थान आरक्षित किए गए हैं। इन जातियों तथा वर्गों की महिलाओं के लिए स्थान आरक्षित किए गए हैं।

कार्यकाल– नगरपालिका परिषद् का कार्यकाल 5 वर्ष का होता है, किन्तु राज्य सरकार इसे इस अवधि से पहले भी विघटित कर सकती है।

पदाधिकारी–

(i) अध्यक्ष– नगरपालिका का सर्वोच्च अधिकारी **अध्यक्ष** कहलाता है। इसका निर्वाचन नगर के मतदाताओं द्वारा प्रत्यक्ष निर्वाचन–प्रणाली के आधार पर किया जाता है। अध्यक्ष का कार्यकाल 5 वर्ष का होता है। अध्यक्ष का पद अवैतनिक होता है।

(ii) उपाध्यक्ष– अध्यक्ष के अतिरिक्त एक उपाध्यक्ष होता है जिसका निर्वाचन सभासद एक वर्ष के लिए करते हैं।

(iii) अन्य अधिकारी– ऐसी संस्था में कुछ पद वैतनिक अधिकारियों तथा कर्मचारियों के भी होते हैं।

अधिकारी और कर्मचारी– उपर्युक्त पदाधिकारियों के अतिरिक्त परिषद् के कुछ वैतनिक अधिकारी तथा कर्मचारी भी होते हैं, जिनमें प्रशासनिक अधिकारी सबसे प्रमुख होता है। जिन परिषद् में प्रशासनिक अधिकारी नहीं होता है, वहाँ परिषद् विशेष

प्रस्ताव पारित करके एक या एक से अधिक **सचिव** नियुक्त कर सकती है।

समितियाँ– नगरपालिका परिषद् अपने कार्यों को ठीक प्रकार से सम्पन्न करने के लिए अनेक समितियाँ बना लेती हैं और प्रत्येक समिति को एक विशिष्ट विभाग/कार्य सौंप दिया जाता है। प्रमुख समितियों के नाम इस प्रकार हैं—

(i)	स्थायी समिति,	(ii)	वित्त समिति,	(iii)	शिक्षा समिति,
(iv)	जल समिति,	(v)	स्वास्थ्य समिति,	(vi)	निर्माण समिति इत्यादि।

नगरपालिका परिषद् के कार्य– इस नगरीय संस्था द्वारा किए जाने वाले विभिन्न कार्यों को निम्नलिखित दो वर्गों में विभक्त किया जा सकता है—

अनिवार्य कार्य–

(i) सड़कों का निर्माण तथा उनकी मरम्मत व सफाई करवाना।
(ii) नगर में प्रकाश की व्यवस्था करना।
(iii) सड़कों के किनारे छायादार वृक्ष लगवाना।
(iv) नगर में जल—पूर्ति की व्यवस्था करना।
(v) नगर की सफाई की व्यवस्था करना।
(vi) औषधालय तथा चिकित्सालय खोलना।
(vii) संक्रामक रोगों से बचाव के लिए टीके लगवाना।
(viii) जन्म तथा मृत्यु का विवरण रखना।
(ix) शवों को जलाने व दफनाने की उचित व्यवस्था करना।
(x) बूचड़खाने बनवाना तथा उनकी व्यवस्था करना।
(xi) आग बुझाने के लिए फायर ब्रिगेड की व्यवस्था करना।
(xii) नगर में शिक्षा की व्यवस्था करना।
(xiii) सड़कों तथा मोहल्लों का नाम रखना तथा मकानों पर नम्बर डालना।
(xiv) अकाल तथा अन्य विपत्ति में लोगों की सहायता करना।

ऐच्छिक कार्य–

(i) नगर को सुन्दर एवं स्वच्छ रखना।
(ii) प्रारम्भिक शिक्षा से ऊपर की शिक्षा की व्यवस्था करना।
(iii) पुस्तकालय, वाचनालय, अजायबघर, घाट, मेले, नुमाइश, पार्क, बगीचे आदि की व्यवस्था करना।
(iv) दुग्ध—वितरण की व्यवस्था करना।
(v) नगर में नए—नए उद्योग—धन्धों के विकास हेतु सुविधाएँ प्रदान करना।
(vi) बाजार तथा पैंठ की व्यवस्था करना।
(vii) बीमारी, बाढ़, सूखा, अकाल आदि दैवी आपदाओं के समय लोगों की सहायता करना।
(viii) पागलखाना, कोढ़ियों के रहने के स्थानों आदि की व्यवस्था करना।
(ix) अनाथों के रहने तथा बेरोजगारों के लिए रोजगार का प्रबन्ध करना।
(x) नगर बस—सेवा चलवाना।
(xi) पागल तथा आवारा कुत्तों को पकड़वाना।

आय के स्रोत– नगरपालिका परिषद् अपने विभिन्न कार्यों तथा दायित्वों को पूरा करने के लिए विभिन्न साधनों से आय प्राप्त करती है—

(i) भवन कर, जल कर, सम्पत्ति कर, सीवरेज कर, छज्जा कर आदि विभिन्न कर लगाना।
(ii) बाजार, हाट, मेलों आदि से तहबाजारी वसूल करना।
(iii) सरकार से अनुदान प्राप्त करना।
(iv) सरकार से ऋण लेना।

3. नगर पंचायत पर प्रकाश डालिए।

उ०– नगर पंचायत–

उत्तर प्रदेश नगरीय स्वायत्त शासन विधि (संशोधन) अधिनियम, 1994 के अनुसार 30 हजार से एक लाख की जनसंख्या वाले क्षेत्रों को **संक्रमणशील क्षेत्र** घोषित किया गया है तथा ऐसे प्रत्येक क्षेत्र के लिए एक **नगर पंचायत** की व्यवस्था की गई है।

संक्रमणशील क्षेत्र– 'संक्रमणशील क्षेत्र' से आशय ऐसे क्षेत्र से है, जो ग्रामीण क्षेत्र से नगर बनने की ओर बढ़ रहा है। नवगठित **उत्तराखण्ड** राज्य के जिलों में 15 हजार से अधिक जनसंख्या वाले स्थानों पर भी नगर पंचायत की स्थापना की जा सकती है।

नगर पंचायत का गठन– प्रत्येक नगर पंचायत में एक अध्यक्ष तथा तीन निम्न प्रकार के सदस्य होते हैं—

(i) निर्वाचित सदस्य– नगर पंचायत में निर्वाचित सदस्यों की संख्या कम से कम 10 तथा अधिकतम संख्या 24 होती है। नगर पंचायत के सदस्यों की संख्या राज्य सरकार द्वारा निश्चित की जाती है तथा यह संख्या सरकारी गजट में अधिसूचना द्वारा प्रकाशित की जाती है।

(ii) पदेन सदस्य–

(क) लोकसभा तथा विधानसभा के ऐसे सदस्य, जो उन निर्वाचन क्षेत्रों का प्रतिनिधित्व करते हैं, जिनमें पूर्णत: अथवा अंशत: वे नगर पंचायत क्षेत्र सम्मिलित हैं।

(ख) राज्यसभा और विधान परिषद् के ऐसे सभी सदस्य जो उस नगर पंचायत—क्षेत्र के अन्तर्गत पंजीकृत हैं।

(iii) मनोनीत सदस्य– प्रत्येक नगर पंचायत में राज्य सरकार 2 या 3 ऐसे सदस्यों को मनोनीत करेगी, जिन्हें नगरपालिका प्रशासन का विशेष ज्ञान अथवा अनुभव हो। यह संख्या राज्य सरकार द्वारा निश्चित की जाती है।

इन मनोनीत सदस्यों को नगर पंचायत में मत देने का अधिकार नहीं होता। नगर पंचायत के सदस्यों को भी **सभासद** कहा जाता है।

नगर पंचायत के सभासदों का निर्वाचन– नगर पंचायत के सभासदों के निर्वाचन के लिए नगर को लगभग समान जनसंख्या वाले **प्रादेशिक क्षेत्रों** में विभाजित किया जाता है। ऐसे प्रत्येक प्रादेशिक क्षेत्र को **कक्ष (वार्ड)** कहा जाता है तथा प्रत्येक कक्ष 'एक—सदस्य निर्वाचन क्षेत्र' होता है। सभासदों का निर्वाचन; वयस्क मताधिकार तथा प्रत्यक्ष निर्वाचन पद्धति के आधार पर होता है।

सभासद निर्वाचित होने की योग्यता– नगर पंचायत का सदस्य निर्वाचित होने के लिए निम्नलिखित योग्यताएँ आवश्यक हैं—

(i) उसका नाम नगर की निर्वाचक सूची में हो।

(ii) वह 21 वर्ष की आयु पूर्ण कर चुका हो।

(iii) वह केन्द्र सरकार अथवा राज्य सरकार के अधीन किसी लाभ के पद पर न हो।

(iv) आयु के अतिरिक्त वह अन्य सभी बातों की दृष्टि से राज्य विधानमण्डल का सदस्य निर्वाचित होने की योग्यता रखता हो।

स्थानों का आरक्षण– प्रत्येक नगर पंचायत के निर्वाचित सभासदों में अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों, अन्य पिछड़े वर्गों तथा महिलाओं के लिए स्थान आरक्षित किए गए हैं। ये आरक्षित स्थान नगरपालिका परिषद् के नियमत: आरक्षित स्थानों के समान ही होते हैं।

नगर पंचायत के पदाधिकारी एवं अधिकारी– नगर पंचायत के अध्यक्ष और उपाध्यक्ष तथा अधिकारी व कर्मचारी, नगरपालिका परिषद् की व्यवस्था के समान ही होते हैं। इसके अतिरिक्त नगर पंचायत के विघटन के सन्दर्भ में भी वही व्यवस्था है, जो नगरपालिका परिषद् के सन्दर्भ में हैं।

नगर पंचायत की समितियाँ– नगर पंचायत; विभिन्न समितियों के माध्यम से अपने समस्त कार्यों की पूर्ति करती है। इन समितियों में **स्थायी समिति** सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है। इस समिति के अतिरिक्त इसकी वित्त समिति, शिक्षा समिति, स्वास्थ्य समिति तथा जल समिति आदि अन्य समितियाँ भी हैं।

नगर पंचायत के कार्य– नगर पंचायत अपने क्षेत्र में वे सभी कार्य करती है, जो कार्य नगरपालिका परिषद् द्वारा अपने क्षेत्र में किए जाते हैं। नगर पंचायत के प्रमुख कार्य इस प्रकार हैं— सार्वजनिक सड़कों, स्थानों व नालियों की सफाई तथा रोशनी का प्रबन्ध, पर्यावरण की रक्षा, समाज के कमजोर व्यक्तियों के हितों की रक्षा, पार्क, उद्यान तथा खेल के मैदान आदि नगरीय सुख—सुविधाओं की व्यवस्था, शमशान—गृहों की व्यवस्था, स्वच्छ पेयजल की व्यवस्था, जन्म तथा मृत्यु का पंजीयन, प्रसूति केन्द्रों तथा शिशु—गृहों की व्यवस्था, पशु चिकित्सालयों तथा प्राथमिक स्कूलों की व्यवस्था, अग्नि—शमन की व्यवस्था तथा कानून द्वारा सौंपे गए अन्य समस्त दायित्वों की पूर्ति।

❖ **मानचित्र सम्बन्धी अभ्यास कार्य**

अध्यापक की सहायता से विद्यार्थी स्वयं करें।

❖ **प्रोजेक्ट कार्य**

अध्यापक की सहायता से विद्यार्थी स्वयं करें।

इकाई-2 (ख) : राष्ट्रीय चुनौतियाँ एवं अपेक्षाएँ

26 राष्ट्रीय चुनौतियाँ

(बढ़ती जनसंख्या, बेरोजगारी, निरक्षरता, पर्यावरण असन्तुलन, साम्प्रदायिकता, जातिवाद एवं क्षेत्रवाद, महिलाओं की सुरक्षा व कल्याण सम्बन्धी विभिन्न कानून)

अभ्यास

❖ **बहुविकल्पीय प्रश्न**

उ०– बहुविकल्पीय प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्य पुस्तक के पृष्ठ संख्या—227 का अवलोकन कीजिए।

❖ **अतिलघु उत्तरीय प्रश्न**

उ०– अतिलघु उत्तरीय प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्य पुस्तक के पृष्ठ संख्या—228 का अवलोकन कीजिए।

❖ **लघु उत्तरीय प्रश्न**

1. भारत में जनसंख्या वृद्धि के कारणों को बताइए।

उ०– भारत में जनसंख्या वृद्धि के निम्नलिखित कारण हैं—

(i) विवाह की अनिवार्यता तथा कम उम्र में विवाह
(ii) संयुक्त परिवार प्रणाली
(iii) प्रचलित धार्मिक विश्वास
(iv) गर्म जलवायु
(v) मनोरंजन के साधनों की कमी
(vi) जन्म—दर में वृद्धि
(vii) गर्भ—निरोधक सुविधाओं की कमी
(viii) भारतीय समाज में बड़े परिवार की मान्यता
(ix) मृत्यु—दर का घटना।

2. भारत में बेरोजगारी के स्वरूप को स्पष्ट कीजिए।

उ०– **भारत में बेरोजगारी का स्वरूप–** भारत में निम्न प्रकार की बेरोजगारी पाई जाती हैं—

(i) छुपी हुई बेरोजगारी– सीमांत भौतिक उत्पादकता शून्य अथवा ऋणात्मकता होने की स्थिति में छुपी हुई बेरोजगारी उत्पन्न होती है। भारत में छुपी हुई बेरोजगारी 25% से 30% तक है। छुपी हुई बेरोजगारी की स्थिति कृषि में सामान्य है। इसमें आवश्यकता से अधिक व्यक्ति एक खेत पर कार्य करते हैं।

(ii) मौसमी बेरोजगारी– कृषि एक मौसमी उद्योग है एवं भारत एक कृषिप्रधान अर्थव्यवस्था है। इसलिए भारत में लगभग 170 लाख व्यक्ति मौसमी बेरोजगारी के शिकार है।

(iii) औद्योगिक बेरोजगारा– भारत में यूरोपीय तथा अन्य पश्चिमी देशों की भाँति **श्रम प्रधान** तकनीकी का उपयोग किया जाता है, जिसके कारण कर्मचारी बेरोजगार हो जाते हैं।

(iv) शिक्षित बेरोजगार– हमारे देश में लाखों शिक्षित व्यक्ति बेरोजगार हैं। इनमें लगभग 5000 डॉक्टर, 73 हजार डिप्लोमा प्राप्त करने वाले, 19 हजार डिग्री रखने वाले, 27 लाख स्नातक एवं 44 लाख दसवीं पास हैं।

(v) घर्षणात्मक बेरोजगारी– श्रम बाजार की अपूर्णताओं के कारण लोग अस्थाई रूप से बेकार हो जाते हैं। ऐसी अस्थाई बेरोजगारी 'घर्षणात्मक बेरोजगारी' कहलाती है। ऐसी बेरोजगारी मुख्यत: श्रम की गतिहीनता, कच्चे माल की कमी, रोजगार—अवसरों सम्बन्धी अनभिज्ञता, बिजली की कमी, मशीनों की टूट—फूट आदि के कारण उत्पन्न होती है। ऐसी बेरोजगारी अस्थायी स्वभाव की होती है।

3. निरक्षरता पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

उ०– **निरक्षरता–** किसी व्यक्ति की वो स्थिति जिसमें उसे पढ़ने—लिखने का ज्ञान न हो, उसे 'निरक्षरता' कहते हैं। भारत में साक्षर व्यक्ति 7 वर्ष से अधिक आयु वाले उस व्यक्ति को कहते हैं, जो किसी भी भाषा को लिख व पढ़ सकता है। इस दृष्टि से भारत में निरक्षर व्यक्ति 7 वर्ष से अधिक आयु वाले उस व्यक्ति को कहेंगे, जो किसी भी भाषा को न लिख सके और न ही पढ़ सके। निरक्षरता भारत की प्रमुख समस्या है। 2011 की जनगणना के अनुसार भारत की 74.04% जनसंख्या ही शिक्षित हो पाई है जिसमें पुरुष साक्षरता 82.14% तथा महिला साक्षरता केवल 65.46% है। ग्रामीण क्षेत्रों में साक्षरता प्रतिशत 59.40 है, जिसमें महिला साक्षरता प्रतिशत मात्र 46.70 प्रतिशत ही है।

निरक्षरता के कारण– निरक्षरता के प्रमुख कारण निम्नवत हैं—

(i) निर्धनता निरक्षरता का प्रमुख कारण है। गरीबी के कारण लोग अपने बच्चों को विद्यालय नहीं भेज पाते हैं।

(ii) भारत में सभी को शिक्षा की दृष्टि से शिक्षण संस्थाएँ पर्याप्त नहीं है।

(iii) भारतीयों में भाग्यवाद की भावना भी निरक्षरता का एक कारण है। लोगों का मानना है कि जो भाग्य में है वो मिलेगा, पढ़—लिखकर क्या लाभ।

(iv) जनसंख्या वृद्धि भी निरक्षरता का एक कारण है। अधिक जनसंख्या के कारण लोग शिक्षा पर उचित व्यय नहीं कर पाते हैं।

4. प्रदूषण को नियन्त्रित करने के उपाय सुझाइए।

उ०– **प्रदूषण नियन्त्रण के उपाय–** नि:सन्देह प्रदूषण मनुष्यों पर ही नहीं वरन समस्त जीव जगत पर दुष्प्रभाव डाल रहा है। प्रदूषण को फैलाने में यदि मनुष्य सबसे आगे है तो इसकी रोकथाम के प्रयास भी उसे ही करने होंगे। सर्वप्रथम घरेलू गन्दगी को इधर—उधर फैलाने की आदत पर रोकथाम लगानी होगी। प्रदूषण फैलाने में इसकी मुख्य भूमिका है। वाहनों को धुआँ मुक्त बनाने के लिए उन्हें नियमित रूप से जाँच करवाने के लिए मैकेनिक के पास ले जाना चाहिए, ताकि उनके दोषों का निवारण समय—समय पर किया जा सके। संगीत के उपकरणों की आवाज धीमी रखनी चाहिए, जिससे शोर न फैले। हरे—भरे वृक्ष लगाकर भी वातावरण को प्रदूषण मुक्त रखा जा सकता है। हवन—यज्ञ आदि से भी वायु प्रदूषण दूर होता है।

5. साम्प्रदायिकता से होने वाली हानियाँ बताइए।

उ०– **साम्प्रदायिकता से हानियाँ–** साम्प्रदायिकता लोकतन्त्र के मार्ग में सबसे बड़ी बाधा है। इसे निम्न बिन्दुओं के आधार पर स्पष्ट किया जा सकता है—

(i) साम्प्रदायिकता जनसमुदाय के मन तथा मस्तिष्क में निहित संकीर्ण मनोवृत्ति है जो लोकतन्त्र के सफल संचालन को बाधित करती है।

(ii) साम्प्रदायिकता के कारण समाज में अनेक प्रकार के दंगे तथा उपद्रव होते हैं। यह लोकतन्त्र के अहिंसात्मक स्वरूप को छिन्न—भिन्न कर देता है। साम्प्रदायिक परिस्थितियों में लोकतन्त्र कुशलतापूर्वक कार्य नहीं कर सकता है।

(iii) साम्प्रदायिकता घृणा, द्वेष, तनाव, संघर्ष तथा विवादों के लिए उत्तरदायी होती है। इससे समाज एवं राष्ट्र की एकता, अखण्डता तथा भाई—चारे को गहरा आघात लगता है। इस प्रकार का परिवेश लोकतन्त्र के लिए खतरा बन जाता है।

(iv) साम्प्रदायिकता लोकतन्त्र के स्तम्भों—सहनशीलता, स्वतन्त्रता, समानता तथा बन्धुत्व को धराशायी करने का प्रयास करती है।

(v) जब मतदाता साम्प्रदायिक भावना से प्रेरित होकर मतदान करते हैं तो योग्य तथा कुशल उम्मीदवार का चयन बाधित हो जाता है।

6. जातिवाद को समाप्त करने के कुछ उपाय बताइए।

उ०– **जातिवाद को समाप्त करने के उपाय–** भारतीय समाज में जातिवाद को समाप्त करने के लिए निम्न उपायों को अपनाया जा सकता है—

(i) जातिवाद के विरुद्ध जागरूक तथा प्रबुद्ध जनमत का निर्माण किया जाना चाहिए तथा इसे जनसंचार के साधनों द्वारा व्यक्त किया जाना चाहिए।

(ii) शिक्षा का व्यापक प्रचार तथा प्रसार किया जाना चाहिए। विद्यार्थियों का जाति की बुराइयों की ओर ध्यान आकर्षित कराना चाहिए।

(iii) कानून का निर्माण करके नाम के साथ जातिसूचक शब्दों के प्रयोग को प्रतिबन्धित किया जाना चाहिए।

(iv) सरकार को आरक्षण का आधार जाति का आधार नहीं बनाना चाहिए अपितु इसे आर्थिक स्थिति के अनुसार लागू किया जाना चाहिए।

(v) राष्ट्रीयता की भावना का प्रसार किया जाए, जिससे जन सामान्य जातिगत कल्याण के स्थान पर राष्ट्रीय हित में लग जाए।

7. महिलाओं के प्रति होने वाले अपराधों को बताइए।

उ०– **महिलाओं के प्रति अपराध–** महिलाओं के प्रति होने वाले अपराधों का संक्षिप्त विवरण निम्नवत है—

(i) घरेलू हिंसा– घरेलू हिंसा किसी भी विवाहित स्त्री के लिए सबसे कठोर अनुभव है। इसमें पति द्वारा पत्नी के साथ मारपीट करना सबसे बर्बर कृत्य है।

(ii) बलात्कार– महिलाओं के प्रति बलात्कार एक ऐसा कृत्य है, जिसकी पीड़ा को वह सम्पूर्ण जीवन महसूस करती रहती है। इसके कारण उसे सामाजिक प्रतिष्ठा तो गँवानी ही पड़ती है, साथ—साथ वह आत्मग्लानि की अग्नि में झुलसती रहती है। गत वर्षों में महिलाओं के विरुद्ध बलात्कार के मामलों में बहुत तेजी से वृद्धि हुई है।

(iii) अपहरण– अपरहण का शिकार प्राय: लड़कियाँ होती हैं । अपहरण के बाद लड़कियों को देह—व्यापार के लिए मजबूर किया जाता है।

(iv) कन्या भ्रूण हत्या– महिलाओं के विरुद्ध होने वाले अपराधों में कन्या भ्रूण हत्या ऐसा जघन्य अपराध है, जिसके कारण भारत में स्त्री व पुरुष के लिंगानुपात में असन्तुलन की स्थिति बन गई है।

(v) **दहेज हत्या–** शादी के बाद महिलाओं को दहेज लाने के लिए विवश किया जाता है। ससुराल पक्ष की दहेज की माँग पूरी न होने के कारण महिलाओं को अनेक यातनाएँ झेलनी पड़ती हैं और कई बार तो काल का ग्रास भी बनना पड़ता है।

(vi) **छेड़खानी–** महिलाओं और लड़कियों के साथ होने वाले अपराधों में छेड़खानी भी प्रमुख है। प्राय: लड़कों द्वारा अश्लील हरकतें, अपशब्दों का प्रयोग आदि लड़कियों और महिलाओं के साथ किया जाता है । काम—काजी महिलाएँ प्राय: इसका शिकार होती है।

❖ विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

1. भारत में जनसंख्या वृद्धि के दुष्परिणामों को बताते हुए इसे नियन्त्रित करने के कुछ उपाय बताइए।

उ०– **भारत में जनसंख्या वृद्धि के दुष्परिणाम–** भारत में जनसंख्या वृद्धि के निम्नलिखित दुष्परिणाम हैं—

(i) **आवास की समस्या–** महानगरों की जनसंख्या तीव्र गति से बढ़ने के कारण आवास की बड़ी गंभीर समस्या हो गई है। अधिकतर लोग तंग, अँधेरे तथा दूषित वातावरण में जीवन व्यतीत कर रहे हैं। आवास की समस्या मजदूर वर्ग में तो और भी गंभीर है। झुग्गी—झोपड़ियों में और खुले आकाश के नीचे लोग अपनी रातें बिता रहे हैं।

(ii) **रोजगार की समस्या–** रोजगार पाने के लिए गाँवों से लोग नगरों में आ रहे हैं। जनसंख्या वृद्धि के अनुपात में रोजगार साधन नहीं बढ़ रहे हैं। अत: नगरों में रोजगार की समस्या बढ़ रही है। भिखारियों की संख्या बढ़ रही है। चोर—गिरहकटों की संख्या बढ़ रही है। लूट—पाट के मामले बढ़ रहे हैं।

(iii) **लिंग अनुपात का बिगड़ना–** रोजगार की तलाश में पहले पुरुष वर्ग नगरों की ओर जाता है। फलत: नगरों में लिंग अनुपात में बहुत अंतर पाया जाता है। इस विषय अनुपात से अनेक सामाजिक कुरीतियाँ एवं बुरी आदतें पड़ जाती हैं, जिससे सामाजिक और आर्थिक स्थिति और भी बिगड़ जाती है।

(iv) **अन्य समस्याएँ–** उपर्युक्त समस्याओं के अतिरिक्त और भी अनेक समस्याएँ हैं, जैसे— पेयजल की समस्या, सफाई की समस्या और स्वास्थ्य की समस्या, वायु—प्रदूषण, जल प्रदूषण, ध्वनि प्रदूषण की समस्या, शिक्षा की समस्या, आवश्यक वस्तुओं की उपलब्धि की समस्या तथा परिवहन की समस्या नगरों में जुड़ गई हैं।

जनसंख्या–वृद्धि को नियन्त्रित करने के उपाय– भारत की जनसंख्या बहुत तेजी से बढ़ रही है। जनसंख्या की तीव्र वृद्धि को जन्म—दर को कम करके ही रोका जा सकता है। जन्म—दर को कम करने के उपाय निम्नलिखित हैं—

(i) भारत में दो बच्चों के परिवार को राष्ट्रीय आदर्श माना गया है, उसका दृढ़ता से पालन किया जाना चाहिए।

(ii) भारतीय संविधान में निर्धारित विवाह की न्यूनतम आयु लड़कियों की 18 व लड़कों की 21 वर्ष को, व्यावहारिक रूप दिया जाना चाहिए।

(iii) स्त्री शिक्षा पर अधिक जोर दिया जाए।

(iv) दो या दो से कम बच्चों वाले माता—पिता को सरकारी नियुक्तियों एवं पदोन्नतियों में प्राथमिकता दी जाए। इसके साथ—साथ वेतन—वृद्धि का विशेष प्रावधान भी लागू किया जाना चाहिए।

(v) परिवार कल्याण सुविधाओं को देशभर में विस्तारित किया जाए।

(vi) देश में अधिक से अधिक लोगों को सामाजिक सुरक्षा प्रदान की जानी चाहिए, जिससे बीमारी, बुढ़ापा, बेरोजगारी आदि के कठिन समय में उन्हें किसी पर आश्रित न रहना पड़े। इससे लोगों में परिवार बढ़ाने की अभिलाषा कम हो जाएगी और जन्म—दर घटेगी।

2. पर्यावरण पर एक निबन्ध लिखिए।

उ०– **पर्यावरण–** हमारे चारों ओर का भौतिक परिवेश पर्यावरण कहलाता है। पर्यावरण वह सब कुछ है, जो हमें चारों ओर से ढके हुए है और हमारे दैनिक जीवन पर प्रभाव डालता है।

पर्यावरण प्रदूषण से तात्पर्य– प्रकृति के किसी भी घटक का अस्वच्छता के कारण दूषित हो जाना पर्यावरण प्रदूषण कहलाता है। जिस प्रात:कालीन सुखद वायु के गुण कवि और विद्वान प्राय: गाते आए हैं, आज उस स्वच्छ वायु का कहीं कोई अता—पता नहीं मिलता। जिस अन्न को ब्रहम कह कर प्रतिष्ठा की जाती थी, आज प्रदूषित खाद व पानी ने उसे विष तुल्य बना डाला है। कान के नाजुक परदे ध्वनि प्रदूषण से फटने को आते हैं। सुरीली तानों के प्रति उनकी संवेदना को ट्रैफिक के शोर ने समाप्त कर डाला है।

पर्यावरण प्रदूषण के प्रकार– साधारणत: प्रदूषण के निम्न प्रकार माने जाते हैं—

(i) **वायु प्रदूषण–** वाहनों के, मिलों से निकलते निरन्तर धुएँ से वायु में कार्बनडाइ—ऑक्साइड की मात्रा बहुत अधिक बढ़ चुकी है, जिसमें व्यक्ति सही व स्वस्थ ढंग से साँस नहीं ले पाते। अत: उन्हें फेफड़ों सम्बन्धी व श्वास सम्बन्धी रोग हो जाते हैं।

(ii) **जल प्रदूषण–** बढ़ती जनसंख्या के द्वारा फेंके गए कूड़े—करकट से नदियों का जल निरन्तर दूषित हो रहा है। फलस्वरूप स्वच्छ पेय जल का निरन्तर अभाव होता जा रहा है । प्रदूषित जल के उपयोग से अनेकों बीमारियाँ जैसे— हैजा, टाइफाइड, आंत्रशोथ आदि फैलती है। स्वच्छ पानी का संकट निरन्तर बढ़ता ही जा रहा है।

(iii) ध्वनि प्रदूषण– आज के युग में वाहनों की संख्या द्रुत गति से बढ़ रही है। तेज बजते हॉर्नों और शोर मचाते विज्ञापनों से ध्वनि प्रदूषण तीव्र होता जा रहा है। फलस्वरूप व्यक्तियों में विविध रोग जैसे— बहरापन, उच्च रक्तचाप, हृदयाघात आदि निरन्तर बढ़ रहे हैं। शोर की तीव्रता से झुँझलाहट एवं चिड़चिड़ेपन में भी तीव्र वृद्धि हुई है।

(iv) रासायनिक प्रदूषण– मनुष्य की बढ़ती आवश्यकताओं के कारण आज कृषक फसलों को शीघ्रता से उगाने के लिए अनेक रसायनों का छिड़काव करते हैं। फसलों को कीड़ों से बचाने के लिए भी भारी मात्रा मे कीटनाशकों का छिड़काव किया जाता है। इस कारण से रासायनिक प्रदूषण तीव्रता से फैल रहा है।

पर्यावरण संरक्षण हेतु सरकार द्वारा उठाए गए कदम– पर्यावरण संरक्षण हेतु सरकार द्वारा निम्न कदम उठाए गए हैं—

(क) विभिन्न अधिनियमों का पारित किया जाना– देश में पर्यावरण की सुरक्षा तथा प्रदूषण की रोकथाम के लिए मुख्यत: निम्न अधिनियम पारित किए गए हैं—

(i) वन्य जीव (संरक्षण) अधिनियम, 1974
(ii) जल प्रदूषण (निवारण एवं नियन्त्रण) अधिनियम, 1974
(iii) वन संरक्षण अधिनियम, 1980
(iv) वायु प्रदूषण (निवारण एवं नियन्त्रण) अधिनियम, 1981
(v) पर्यावरण संरक्षण अधिनियम, 1986
(vi) मोटर वाहन प्रदूषण नियन्त्रण अधिनियम, 1989

(ख) संविधान में संशोधन– सन् 1976 में 42वें संविधान—संशोधन द्वारा संविधान में एक नया 'नीति निदेशक सिद्धान्त' (अनुच्छेद 48—अ) जोड़ा गया, जिसके अनुसार राज्य का यह कर्तव्य होगा कि वह पर्यावरण को बनाए रखे और उसे सुधारे तथा देश के वनों एवं वन्य जीवन की रक्षा करें।

संविधान में 42वें संशोधन के अन्तर्गत ही **नागरिकों के 10 मूल कर्तव्यों** का समावेश किया गया, जिसमें कहा गया, ''प्रत्येक नागरिक का यह कर्तव्य होगा कि वह वनों, झीलों, नदियों, एवं वन्य जीव सहित समस्त प्राकृतिक पर्यावरण की रक्षा करे और उसे बेहतर बनाए तथा सभी जीवधारियों के प्रति करुणा—भाव रखे।''

(ग) गंगा कार्य योजना– 2,525 किमी० लम्बी गंगा नदी को प्रदूषण मुक्त करने का कार्य 14 जून, 1986 को प्रारम्भ किया गया। यह एक दुष्कर कार्य था; इसलिए इसे दो चरणों में पूरा करने का निर्णय लिया गया । इस कार्य के अन्तर्गत 25 नगरों के प्रदूषण को दूर करने हेतु 261 परियोजनाएँ प्रारम्भ की गईं।

(घ) राष्ट्रीय नदी संरक्षण योजना– सन् 1995 में प्रारम्भ की गई इस योजना का उद्देश्य प्रदूषण रोकथाम योजनाओं को लागू करके देश में स्वच्छ पानी के मुख्य स्रोत नदियों के पानी की गुणवत्ता में सुधार लाना है। इस कार्यक्रम के अन्तर्गत अब तक 31 नदियों को शामिल किया जा चुका है, जो 18 राज्यों के 157 शहरों में फैली हुई हैं।

(ड) पर्यावरण सम्बन्धी शिक्षा एवं प्रशिक्षण–

(i) केन्द्र तथा राज्य सरकारों ने 'पर्यावरणीय संरक्षण' विषय को विभिन्न पाठ्यक्रमों में शामिल किया है, जिससे छात्र प्रारम्भ से ही पर्यावरण प्रदूषण की हानियों तथा पर्यावरणीय सुरक्षा की आवश्यकता से भली भाँति परिचित हो जाएँ।

(ii) केन्द्र तथा राज्य स्तर के सरकारी अधिकारियों तथा कर्मचारियों को दिए जाने वाले विभिन्न प्रकार के प्रशिक्षण में पर्यावरण विषय को भी शामिल किया गया है।

(च) पर्यावरणीय शिक्षा, प्रशिक्षण तथा अनुसंधान हेतु विभिन्न संस्थाएँ– इन कार्यों के लिए देश में विभिन्न संस्थाओं की स्थापना की गई है।

3. जातिवाद को समझाते हुए इससे होने वाली हानियों व इसकी रोकथाम के उपायों पर प्रकाश डालिए।

उ०– जातिवाद– जातिवाद का अर्थ है कि एक ही जाति के लोगों द्वारा अपनी जाति के सदस्यों से अच्छी भावना रखना तथा दूसरी जाति के लोगों को हानि पहुँचाने की भावना रखना। दूसरे शब्दों में, अपनी जाति के प्रति निष्ठा रखते हुए दूसरी जाति से घृणा करने तथा हानि पहुँचाने की भावना जातिवाद कहलाती है। भारतीय समाज में जातिवाद की जड़ें बहुत गहरी हैं। व्यक्तियों का सामाजिक जीवन जातिवाद से प्रभावित होता है। परन्तु अब जातिवाद ने राजनीति को प्रभावित करना आरम्भ कर दिया है। वोटों की राजनीति ने जातिवाद को प्रोत्साहित किया है तथा प्रत्येक राजनीतिक दल ने जाति के आधार पर वोट बैंकों का निर्माण करना प्रारम्भ कर दिया है।

जातिवाद से हानियाँ– जातिवाद से लोकतन्त्र को निम्नलिखित हानियाँ हैं—

(i) जातिगत भावनाओं के आधार पर समाज का विभाजन हो जाता है, जो सामाजिक एकता को छिन्न—भिन्न कर देता है। जातिवाद ने समाज में ऊँच—नीच का भेद स्थापित किया है। सवर्ण जातियों ने इसी आधार पर पिछड़ी जातियों, दलितों तथा निम्न जातियों का शोषण किया।

(ii) ग्रामीण क्षेत्रों में दबंग जाति के लोगों ने दलितों को मताधिकार से काफी समय तक वंचित रखा। उन्हें मतदान केन्द्रों में मत डालने के लिए जाने नहीं दिया। यह लोकतन्त्र के लिए दु:खद स्थिति है।

(iii) राजनीतिक दल अब चुनावों के लिए उम्मीदवारों का चयन करते समय जातिगत समीकरणों को ध्यान मे रखते हैं, जिससे योग्य, सक्षम तथा कुशल प्रत्याशी टिकट प्राप्त करने से वंचित हो जाते हैं।

(iv) मतदाताओं को भी जातिगत आधार पर मतदान करने के लिए प्रेरित किया जाता है। मतदाता भी जातिगत भावनाओं में बहकर ऐसे उम्मीदवारों के पक्ष में मतदान करते हैं, जो सर्वथा उपेक्षित हैं।

(v) यह जातिगत भावनाओं का ही परिणाम है कि जेलों के सींखचों में बन्द अपराधी भी चुनाव जीतने में सफल हो जाते हैं। अत: जातिवाद ने राजनीति में अपराधीकरण की प्रवृत्ति में वृद्धि की है। यह प्रवृत्ति लोकतन्त्र के लिए हानिकारक है।

(vi) जाति प्रथा के कारण लोग विभिन्न समूहों में बँट जाते हैं तथा उनमें मतभेद उत्पन्न होने लगते हैं, जो राष्ट्र की एकता के लिए खतरा बन जाते हैं। देश की आपसी फूट लोकतन्त्र के सफल संचालन के मार्ग में अनेक प्रकार की बाधाएँ खड़ी कर देती है।

4. महिलाओं की सुरक्षा व कल्याण हेतु पारित अधिनियमों का वर्णन कीजिए।

उ०– महिलाओं की सुरक्षा व कल्याण हेतु पारित अधिनियम– सरकार द्वारा महिलाओं की सुरक्षा व कल्याण हेतु अधिनियम पारित किए गए हैं, जिनका संक्षिप्त विवरण निम्नलिखित है—

(i) अनैतिक व्यापार (निवारण) अधिनियम, 1956– इस विधान का प्रमुख उद्देश्य वेश्यावृत्ति की रोकथाम करना तथा पीड़ित महिलाओं (लड़कियों) को संरक्षण प्रदान करना है। धारा 5 के अनुसार, किसी लड़की को वेश्यावृत्ति के लिए प्राप्त करना, लगाना अथवा ले जाना दण्डनीय अपराध है।

(ii) दहेज प्रतिशोध अधिनियम 1961– दहेज प्रथा तथा उसके लिए उत्पीड़न को रोकने के लिए भारत में कई कानून अस्तित्व में है। दहेज प्रतिषेध अधिनियम, 1961 के अन्तर्गत दहेज का देना व लेना दण्डनीय अपराध है। इस कानून के अन्तर्गत दहेज लेने या देने वाले को छह माह से दो वर्ष तक की सजा का प्रावधान किया गया है। भारतीय दण्ड सहिंता तथा साक्ष्य अधिनियम के अन्तर्गत भी दहेज लेना व देना दण्डनीय अपराध है।

आई०पी०सी० की धारा 304 (बी) के अनुसार यदि किसी महिला की मौत उसकी शादी के सात वर्ष के अन्दर असाधरण परिस्थिति में या जलाकर या शारीरिक आघात के कारण हुई है तो उसे दहेज हत्या माना जाएगा तथा इसका उत्तरदायी उसका पति या परिवार के अन्य सदस्य होंगे। भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 133 (बी) के तहत न्यायालय उस व्यक्ति को अपराधी मान लेगा, यदि वह यह सिद्ध नहीं कर पाता कि हत्या किसी अन्य कारण से हुई है। ऐसे मामलों में दोषी को जमानत नहीं दी जाती है। अब स्वयंसेवी संगठनों को भी इन मामलों में एफ०आई०आर दर्ज करने का अधिकार दे दिया गया है।

(iii) कुटुम्ब न्यायालय अधिनियम, 1984– इस अधिनियम के अन्तर्गत विवाह तथा पारिवारिक बातों से सम्बन्धित विवादों में सुलह कराने और उनका शीघ्र निपटारा सुनिश्चित करने हेतु कुटुम्ब न्यायालय स्थापित करने की व्यवस्था की गई है। इस अधिनियम के अनुसार, राज्य सरकार उच्च न्यायालय से परामर्श करने के पश्चात राज्य के किसी नगर या कस्बे के ऐसे प्रत्येक क्षेत्र के, जिसकी जनसंख्या दस लाख से अधिक है, कुटुम्ब न्यायालय स्थापित करेगी। आवश्यक समझने पर राज्य अन्य क्षेत्रों के लिए भी कुटुम्ब न्यायालय स्थापित कर सकता है।

(iv) महिलाओं का अशिष्ट–रूपण प्रतिषेध अधिनियम, 1986– 'महिलाओं के अशिष्ट—रूपण' से अभिप्राय ऐसे रूपण से है, जो स्त्री की आकृति, उसके रूप या शरीर अथवा उसके किसी भाग का ऐसी रीति से वर्णन करता हो, जो उसके अशिष्ट होने या अल्पीकृत करने अथवा महिलाओं के चरित्र को कलंकित करने के प्रभाव के रूप में हो या जिससे लोक नैतिकता को हानि पहुँचने की सम्भावना हो।

यह अधिनियम महिलाओं का अशिष्ट—रूपण करने वाले विज्ञापनों पर प्रतिबन्ध लगाता है। इसके अतिरिक्त धारा—3 के तहत महिलाओं का अशिष्ट—रूपण करने वाली पुस्तकों व पुस्तिकाओं के प्रकाशन, स्लाईड, लेखन, फिल्म, रेखाचित्र, रंगचित्र और छायाचित्र आदि को प्रतिबन्धित किया गया है।

(v) सती निषेध अधिनियम, 1987– इस अधिनियम का प्रमुख उद्देश्य सती—प्रथा पर प्रतिबन्ध लगाना है।

(vi) राष्ट्रीय महिला आयोग अधिनियम 1990– इस अधिनियम के तहत राष्ट्रीय महिला आयोग का गठन 31 जनवरी, 1992 को किया गया। आयोग में एक अध्यक्ष, पाँच सदस्य और एक सदस्य—सचिव होता है। इसका मुख्यालय नई दिल्ली में है। इस आयोग के प्रमुख कार्य निम्नलिखित हैं—

(क) महिलाओं के अधिकारों एवं उनकी उन्नति को सुरक्षा प्रदान करना।

(ख) कानून की समीक्षा करना।

(ग) अत्याचारों से सम्बन्धित व्यक्ति विशेष की शिकायतों के मामले में हस्तक्षेप करने और उचित होने पर महिलाओं के

हितों की रक्षा के लिए उपचारात्मक कार्यवाही करना।

(घ) पारिवारिक महिला लोक अदालतें लगाना।

(ड) महिलाओं को शीघ्र न्याय दिलवाना।

(च) पारिवारिक विवादों में परामर्श सेवाएँ देना।

(छ) महिलाओं में कानून के प्रति जागरूकता लाने के लिए प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित करना।

(vii) गर्भधारण पूर्व और प्रसव पूर्व निदान तकनीक (लिंग–चयन प्रतिषेध) अधिनियम 1994– इस अधिनियम का प्रमुख उद्देश्य लिंग—सन्तुलन को प्रोत्साहित करना है, जिसके लिए लिंग—चयन को प्रतिबन्धित करना आवश्यक है। साथ ही ऐसी प्रसवपूर्व निदान तकनीकों का नियमन अनिवार्य है, जिनसे स्त्री—लिंग भ्रूणवध हो सकता हो। इस अधिनियम के प्रावधानों को राज्यों द्वारा प्रभावशाली ढंग से लागू करने की आवश्यकता है।

(viii) किशोर न्याय (बालकों की देखरेख और संरक्षण) अधिनियम, 2000– यह अधिनियम उस बालक या किशोर पर लागू होता है, जिसने अठारह वर्ष की आयु पूरी नहीं की है। 'विधि विवादित किशोर' से अभिप्राय ऐसे किशोर से है, जिसने कोई अपराध किया है और ऐसा अपराध करने की तारीख पर उसने अठारह वर्ष की आयु पूरी न की हो।

(ix) घरेलू हिंसा से महिलाओं का संरक्षण अधिनियम, 2005– यह अधिनियम ऐसी महिलाओं को संरक्षण प्रदान करता है, जो कुटुम्ब के भीतर होने वाली किसी किस्म की हिंसा से पीड़ित हैं। इसका प्राथमिक उद्देश्य पत्नी को पति की हिंसा से बचाना है। यह अधिनियम उन महिलाओं की भी रक्षा करता है जो बहन, विधवा या माता हैं। इस विधान के अन्तर्गत शारीरिक हिंसा, आर्थिक हिंसा, यौन हिंसा, मौखिक हिंसा आदि को 'घरेलू हिंसा' के रूप में परिभाषित किया गया है। दहेज माँगकर प्रताड़ित करना भी उत्पीड़न में शामिल किया गया है। पीड़ित महिला को 'रहने के अधिकार' के तहत संयुक्त परिवार या ससुराल में रहने का प्रावधान किया गया है। इस कानून में उन महिलाओं को भी शामिल किया गया है, जिनका दुर्व्यवहार करने वाले व्यक्ति से कोई सम्बन्ध रहा हो। इस अधिनियम के तहत संरक्षण आदेश, आवास आदेश, आर्थिक राहत आदेश, क्षतिपूर्ति आदेश तथा अभिरक्षा आदेश आदि की व्यवस्था की गई है।

(x) बाल–विवाह प्रतिषेध अधिनियम, 2006– यह कानून बाल—विवाह पर प्रतिबन्ध लगाता है। बालक से अभिप्राय ऐसे व्यक्ति से है, जिसने यदि पुरुष है तो इक्कीस वर्ष की आयु पूरी नहीं की है और यदि नारी है तो अठारह वर्ष की आयु पूरी नहीं की है। 'बाल विवाह' से तात्पर्य ऐसे विवाह से है, जिसके बन्धन में आने वाले दोनों पक्षकारों में से कोई बालक है। इस अधिनियम में ऐसे व्यक्ति के लिए कारावास तथा जुर्माने का प्रावधान है, जो बाल—विवाह सम्पन्न करता है, संचालित करता है या निर्दिष्ट या दुष्प्रेरित करता है।

(xi) लैंगिक अपराधों से बालकों का संरक्षण अधिनियम, 2012– इस अधिनियम का उद्देश्य बालकों को लैंगिग हमले, लैंगिग उत्पीड़न तथा अश्लील साहित्य के अपराधों से संरक्षण प्रदान करना तथा ऐसे अपराधों का विचारण करने के लिए विशेष अदालतों की स्थापना करना है। 'बालक' से अभिप्राय ऐसे व्यक्ति से है, जिसकी आयु अठारह वर्ष से कम है। इस अधिनियम के तहत बालक पर लैंगिग हमला, बालक का लैंगिग उत्पीड़न, अश्लील साहित्य के प्रयोजनों के लिए बालक का उपयोग आदि दण्डनीय अपराध हैं।

(xii) कार्यस्थल पर महिलाओं का लैंगिग उत्पीड़न (निवारण, प्रतिषेध और प्रतितोष) अधिनियम 2013– इस अधिनियम का उद्देश्य कार्यस्थल पर महिलाओं के लैंगिग उत्पीड़न के विरुद्ध संरक्षण प्रदान करना तथा लैंगिग उत्पीड़न सम्बन्धी शिकायतों का निवारण तथा प्रतितोष करना है।

लैंगिग उत्पीड़न का अर्थ– 'लैंगिग उत्पीड़न' में इन अशोभनीय कार्यों को शामिल किया गया है—

(क) शारीरिक स्पर्श एवं चेष्टाएँ

(ख) यौन स्वीकृति की माँग अथवा अनुरोध

(ग) कामरंजित टिप्पणियाँ करना

(घ) किसी कामोत्तेजक सामग्री का प्रदर्शन

(ड) यौन सम्बन्धी कोई अन्य अशोभनीय शारीरिक, मौखिक, सांकेतिक आचरण आदि।

व्यथित महिला का अर्थ– व्यथित महिला में शामिल है—

(i) कार्यस्थल के सम्बन्ध में किसी आयु की महिला, चाहे नियोजित हो या नहीं, अभिप्रेत है, जो प्रत्यत्तरदाता द्वारा लैंगिग उत्पीड़न के किसी कार्य के अधीन रखे जाने का अभिकथन करती है।

(ii) निवास—स्थान या गृह के सम्बन्ध में किसी आयु की महिला अभिप्रेत है, जो ऐसे निवास स्थल या गृह में नियोजित की गई है। धारा 3 के अनुसार, कोई महिला किसी कार्यस्थल पर लैंगिग उत्पीड़न के अधीन नहीं रखी जाएगी।

आन्तरिक परिवाद समिति का गठन– कार्यस्थल का प्रत्येक कर्मचारी, लिखित में आदेश द्वारा आन्तरिक परिवाद समिति का गठन करेगा। **(धारा 4)**

स्थानीय परिवाद समिति का गठन– प्रत्येक जिला अधिकारी, उन संस्थापनों से, जहाँ आन्तरिक परिवाद समिति का गठन दस से कम कर्मकार होने के कारण नहीं किया गया या परिवाद स्वयं नियोजक के विरुद्ध है, लैंगिग उत्पीड़न के परिवादों को प्राप्त करने के लिए सम्बद्ध जिले में स्थानीय परिवाद समिति का गठन करेगा। **(धारा 6)**

लैंगिग उत्पीड़न का परिवाद– कोई व्यथित महिला कार्यस्थल पर लैंगिग उत्पीड़न का परिवाद लिखित में, घटना की तारीख से तीन मास की अवधि के अन्तर्गत और घटनाओं की श्रृंखला के मामले में अन्तिम घटना की तारीख के तीन मास की अवधि के अन्दर आन्तरिक समिति (यदि गठित है) या स्थानीय समिति को कर सकेगी।

(xiii) **दण्ड विधि (संशोधन) अधिनियम, 2013–** इस अधिनियम को राजधानी दिल्ली में 16 दिसम्बर, 2012 को हुई नृशंस सामूहिक बलात्कार की घटना के विरुद्ध राष्ट्रीय स्तर पर प्रदर्शित आक्रोश की पृष्ठभूमि में पारित किया गया है। 3 अप्रैल 2013 से यह कानून देश में लागू हो गया था। इस कानून के द्वारा लैंगिग अपराधों से सम्बन्धित भारतीय दण्ड संहिता, दण्ड प्रक्रिया संहिता, भारतीय साक्ष्य अधिनियम तथा लैंगिग अपराधों से बालकों का संरक्षण अधिनियम, 2012 के प्रावधानों में संशोधन किया गया है। इस अधिनियम की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं—

(क) भारतीय दण्ड संहिता में पहली बार तेजाब द्वारा हमले की अपराध के रूप में व्याख्या की गई है। तेजाबी हमला करने वालों को 10 वर्ष की सजा का प्रावधान किया गया है।

(ख) बलात्कार के मामले में यदि पीड़ित महिला की मृत्यु हो जाती है या वह सतत् निष्क्रिय अवस्था में पहुँच जाती है तो न्यूनतम सजा 20 वर्ष के कारावास की होगी जो कारागार में दोषी की स्वाभाविक मृत्यु या फाँसी की सजा तक बढ़ाई जा सकती है।

(ग) 'आजीवन कारावास' का अभिप्राय दोषी के प्राकृतिक जीवन—काल तक है तथा इसमें जुर्माना भी भरना होगा।

(घ) ऐसे अपराधों के लिए पहले भी दोषी ठहराए गए अपराधियों को मौत की सजा दी जा सकती है।

(ड) पीड़िता की मौत या उसके स्थायी रूप से मृत प्राय: हो जाने के मामलों में सजा को बढ़ाकर मृत्युदण्ड का प्रावधान किया गया है।

(च) सभी निजी तथा सरकारी अस्पताल बलात्कार या तेजाब—हमला पीड़ितों को तुरन्त प्राथमिक सहायता या नि:शुल्क उपचार कराएँगे, मना करने पर एक वर्ष तक के कारावास की सजा हो सकती है।

(छ) भारतीय साक्ष्य अधिनियम में संशोधन किया गया है, जिसके तहत बलात्कार—पीड़िता को, यदि वह स्थायी या अस्थायी रूप से मानसिक या शारीरिक रूप से अक्षम हो जाती है तो उसे अपना बयान दुभाषिए या एजुकेटर की सहायता से न्यायिक मजिस्ट्रेट के समक्ष दर्ज कराने की अनुमति दी गई है। इसमें कार्यवाही की वीडियोग्राफी करने का प्रावधान किया गया है।

(ज) महिला अपराध की सुनवाई बन्द कमरे में की जाएगी। कार्यवाही की वीडियोग्राफी करने का भी प्रावधान किया गया है।

(झ) कानून में न्यूनतम सात वर्ष की सजा का प्रावधान किया गया है, जो प्राकृतिक जीवन—काल तक बढ़ाया जा सकता है। यदि दोषी व्यक्ति पुलिस अधिकारी, लोक सेवक, सशस्त्र बलों या प्रबन्धन या अस्पताल का कर्मचारी है तो उसे जुर्माने का भी सामना करना होगा।

(ञ) महिलाओं के विरुद्ध अपराध की एफआईआर दर्ज नहीं करने वाले पुलिसकर्मी को दण्डित करने का भी प्रावधान है।

(ट) इस कानून में पीछा करने और घूर—घूरकर देखने को गैर—जमानती अपराध घोषित किया गया है, बशर्तें अपराधी दूसरी बार यह अपराध करते पकड़ा गया हो।

(ठ) कानून में सहमति से यौन—सम्बन्ध बनाने की उम्र 18 वर्ष तय की गई है। उल्लेखनीय है कि 15 वर्ष से कम उम्र की पत्नी के साथ यौन सम्बन्ध बनाने को कानून में बलात्कार माना गया है।

❖ मानचित्र सम्बन्धी अभ्यास कार्य

अध्यापक की सहायता से विद्यार्थी स्वयं करें।

❖ प्रोजेक्ट कार्य

अध्यापक की सहायता से विद्यार्थी स्वयं करें।

27 निर्बल वर्ग एवं महिलाओं का विकास

अभ्यास

❖ **बहुविकल्पीय प्रश्न**

उ०– बहुविकल्पीय प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्य पुस्तक के पृष्ठ संख्या—233 का अवलोकन कीजिए।

❖ **अतिलघु उत्तरीय प्रश्न**

उ०– अतिलघु उत्तरीय प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्य पुस्तक के पृष्ठ संख्या—233 का अवलोकन कीजिए।

❖ **लघु उत्तरीय प्रश्न**

1. श्रमिकों पर एक संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

उ०– **श्रमिक–** श्रमिक उस व्यक्ति को कहा जाता है, जो अपने श्रम के आधार पर धन कमाता है और अपना जीवन यापन करता है। श्रमिक संगठित और असंगठित औद्योगिक क्षेत्रों में कार्य करते हैं। गाँवों में जमीदारों और साहूकारों द्वारा श्रमिकों का शोषण होता रहा है। कार्लमार्क्स के द्वारा श्रमिकों पर होने वाले अत्याचारों के विरुद्ध आवाज उठाई गई थी। स्वाधीनता के बाद सरकार ने संगठित तथा असंगठित क्षेत्रों में काम करने वाले श्रमिकों की दशा को सुधारने के लिए कुछ महत्वपूर्ण अधिनियम पारित किए हैं, जोकि निम्नलिखित हैं—

(i) वेतन अधिनियम, 1948

(ii) कर्मचारी जीवन बीमा अधिनियम, 1948

(iii) कारखाना अधिनियम, 1948

(iv) महिलाओं के लिए प्रसूति अधिनियम, 1968

(v) बन्धुआ मजदूर प्रथा उन्मूलन अधिनियम, 1976

2. पिछड़ा वर्ग के उत्थान के लिए सरकार द्वारा उठाए गए कदम बताइए।

उ०– **पिछड़ा वर्ग–** समाज के वे लोग जो सामाजिक, शैक्षणिक और आर्थिक अयोग्यता के कारण अन्य वर्गों के समकक्ष नहीं होते हैं, अर्थात उनका स्तर निम्न होता है, पिछड़ा वर्ग में आते हैं। पिछड़ा वर्ग में कुम्हार, कहार, चर्मकार, बढ़ई आदि आते हैं। सरकार द्वारा इनकी उन्नति और विकास के लिए निम्न प्रयास किए गए हैं—

(i) बेगार प्रथा का उन्मूलन कर दिया गया है।

(ii) वर्ष 1976 में बन्धक श्रम उन्मूलन अधिनियम द्वारा श्रमिकों का शोषण समाप्त हो गया है।

(iii) कर्मचारी क्षतिपूर्ति अधिनियम 1923, ट्रेड यूनियन अधिनियम 1926, व कर्मचारी भविष्य निधि अधिनियम 1952 इस वर्ग की दशा को सुधारने के लिए उठाए गए उल्लेखनीय कदम हैं।

(iv) भूमिहीन श्रमिकों को भूमि उपलब्ध कराई जा रही है।

(v) अस्पृश्यता अपराध अधिनियम, 1955 पारित करके समाज में छुआछूत के भेदभाव को समाप्त कर दिया गया है तथा भेदभाव के व्यवहार को दण्डनीय अपराध माना गया है।

3. महिलाओं के प्रति अपराध सम्बन्धी अधिनियमों की सूची बनाइए।

उ०– **महिलाओं के प्रति अपराध सम्बन्धी नियम–** महिलाओं के प्रति होने वाले विभिन्न अपराधों की रोकथाम के लिए निम्न अधिनियम पारित किए गए है—

(i) अनैतिक व्यापार अधिनियम, 1956

(ii) दहेज प्रतिषेध अधिनियम, 1961

(iii) महिलाओं का अशिष्ट— रूपण प्रतिषेध अधिनियम, 1986

(iv) घरेलू हिंसा से महिलाओं का संरक्षण अधिनियम, 2005

(v) बाल—विवाह प्रतिषेध अधिनियम, 2006

(vi) कार्यस्थल पर महिलाओं का लैंगिग उत्पीड़न अधिनियम, 2013

(vii) दण्ड विधि अधिनियम, 2013

❖ विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

1. अनुसूचित जाति व अनुसूचित जनजाति में अन्तर कीजिए।

उ०– **अनुसूचित जातियाँ–** 'अनुसूचित जाति' समाज के उस वर्ग को कहा जाता है, जिन्हें पहले अछूत माना जाता था और अन्य जातियों के समान उन्हें सामाजिक व नागरिक अधिकार प्राप्त नहीं थे। भारत का संविधान लागू होने के बाद इन जातियों को 'अनुसूचित जाति' का नाम दिया गया। हमारे संविधान ने इनको अन्य जातियों के समकक्ष लाने हेतु अनेक सुविधाएँ दी हैं। वर्ष 2001 की जनगणना के आधार पर भारत की आबादी का 16.5 प्रतिशत भाग अनुसूचित जाति वर्ग है। वर्ष 1955 में 'नागरिक अधिकार संरक्षण अधिनियम' पारित किया गया तथा छुआछूत को गम्भीर अपराध घोषित किया गया।

भारतीय संविधान में अनुसूचित जातियों को पाँचवीं सूची में सूचीबद्ध किया गया है। ये जातियाँ भारतीय समाज का अभिन्न अंग हैं और प्राचीन वर्ण व्यवस्था के अनुसार चौथे वर्ण का अंग है।

अनुसूचित जनजातियाँ– भारत के संविधान में 'अनुसूचित जाति' का उल्लेख समाज के दुर्बल वर्गों के संदर्भ में किया गया है। अनुसूचित जातियों में आर्थिक दृष्टि से दुर्बल जातियों को सम्मिलित किया जाता है जबकि 'अनुसूचित जनजातियों' के अन्तर्गत वे जातियाँ आती हैं जो उन क्षेत्रों की निवासी हैं जहाँ विकास की किरण अभी तक नहीं पहुँची है, अर्थात् जो अभी तक आधुनिक सभ्यता से अछूते हैं। **गिलिन तथा गिलिन** के अनुसार, ''स्थानीय आदिम् समुदायों का समूह जो एक सामान्य तथा निश्चित क्षेत्र का वासी हो, जिसकी एक सामान्य भाषा हो और जो एक सामान्य संस्कृति का अनुयायी हो एक 'जनजाति' कहलाता है।'' उन्हें भारत के संविधान की छठी सूची में सूचीबद्ध किया गया है। ये अधिकांश वन्य—जातियाँ हैं, जिनका अपना अलग समाज तथा अपने अलग रीति—रिवाज हैं, जिनका सम्पर्क बाहरी दुनिया से यदा—कदा ही होता है। इनकी भाषा भी अपनी ही होती है और ये एक निश्चित क्षेत्र के वासी होते हैं। प्रमुख जनजातियों के नाम हैं— भील, कोल, गोड़, भूटिया, बुल्सा, रानी, जौनसारी, थारू, शौका, खरकार, माहीगीर, नागा आदि।

2. श्रमिक तथा बाल श्रमिक में क्या अन्तर हैं ? विस्तार से समझाइए।

उ०– **श्रमिक–** श्रमिक उस व्यक्ति को कहा जाता है, जो अपने श्रम के आधार पर धन कमाता है और अपना जीवन यापन करता है। श्रमिक संगठित और असंगठित औद्योगिक क्षेत्रों में कार्य करते हैं। गाँवों में जमीदारों और साहूकारों द्वारा श्रमिकों का शोषण होता रहा है। कार्लमार्क्स के द्वारा श्रमिकों पर होने वाले अत्याचारों के विरुद्ध आवाज उठाई गई थी। स्वाधीनता के बाद सरकार ने संगठित तथा असंगठित क्षेत्रों में काम करने वाले श्रमिकों की दशा को सुधारने के लिए कुछ महत्वपूर्ण अधिनियम पारित किए हैं, जोकि निम्नलिखित हैं—

(i) वेतन अधिनियम, 1948
(ii) कर्मचारी जीवन बीमा अधिनियम, 1948
(iii) कारखाना अधिनियम, 1948
(iv) महिलाओं के लिए प्रसूति अधिनियम, 1968
(v) बन्धुआ मजदूर प्रथा उन्मूलन अधिनियम, 1976

बाल श्रमिक– 14 वर्ष से कम उम्र के बच्चे जो कारखानों, मिलों, खानों, खेतों, औद्योगिक संस्थाओं में कार्य करते हैं, 'बाल श्रमिक' कहे जाते हैं। कालीन, हथकरघा उद्योग, आतिशबाजी, बीड़ी, खेलकूद के सामान, कटलरी बनाने, होटलों, चूड़ी कारखानों में काम करते, स्कूटर, साइकिल, कारों की मरम्मत में बाल श्रमिक हैं। पढ़ने—लिखने खेलने—कूदने की उम्र में ये कठिन कार्यों में लगे होते हैं इससे स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव तो पड़ता ही है, इनका शारीरिक, मानसिक व बौद्धिक विकास भी अवरुद्ध होता है। बाल श्रमिकों की शोचनीय स्थिति को देखते हुए इनकी स्थिति में सुधार के लिए सरकारी एवं स्वयंसेवी संस्थाओं द्वारा अनेक स्तर पर प्रयास किए जा रहे हैं। संविधान में मौलिक अधिकारों में, शोषण के विरुद्ध अधिकार में स्पष्ट है कि 14 वर्ष से कम आयु के बच्चों को ऐसे कार्यों में नहीं लगाया जाएगा, जिससे उनके स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव पड़े। मानवाधिकार अयोग भी बाल श्रम पर निर्यजन हेतु अपने विचार प्रस्तुत कर रहा है। संवैधानिक रूप से अब स्थिति यह है कि बाल श्रम वर्जित है और अब अपराध की श्रेणी में है। बाल श्रम निषेध अधिनियम, 1986 द्वारा बालकों के संरक्षण की व्यवस्था की गई है। राष्ट्रीय बाल श्रमिक परियोजना के अन्तर्गत बाल श्रम उन्मूलन तथा अनेक सुधार कार्यक्रम चलाए गए हैं। कानून निर्माण के साथ ही सरकार द्वारा कानूनों के अनुपालन को भी सुनिश्चित किया जाना चाहिए। कानून का पालन न करने वाले को कठोर दण्ड दिए जाए। बाल श्रम का कारण गरीबी है, अत: गरीबी उन्मूलन हेतु पर्याप्त कदम उठाए जाने चाहिए। सामान्य जन का भी दायित्व है कि बाल श्रम प्रथा की समाप्ति हेतु पर्याप्त सहयोग करें। बाल श्रमिकों की दशा सुधारने के लिए भारत सरकार द्वारा निम्नलिखित प्रयास किए गए हैं—

(i) बाल श्रमिकों की दशा सुधारने के लिए सरकार ने बाल श्रमिक निषेध कानून पारित किया है।
(ii) बाल श्रमिकों की दशा सुधारने के लिए सरकार ने उनके लिए नि:शुल्क शिक्षा, पौष्टिक आहार और स्वास्थ्य सम्बन्धी व्यवस्थाएँ की हैं।

(iii) सरकार ने व्यावसायिक प्रतिष्ठानों में बाल श्रमिकों के काम करने पर रोक लगा दी है।

3. महिलाओं की दशा में सुधार हेतु सरकार द्वारा किए गए प्रयासों की विवेचना कीजिए।

उ०– महिलाओं की दशा में सुधार हेतु सरकार द्वारा किए गए प्रयास एवं महिलाओं के लिए बने प्रमुख कानून–

कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम, 1948– इस नियम के अन्तर्गत महिला एवं पुरुष दोनों प्रकार के कर्मचारियों के लिए बीमारी लाभ, चिकित्सा लाभ, आश्रित लाभ, आदि की व्यवस्था की गई है। इस अधिनियम में महिलाओं के लिए मातृत्व लाभ की भी व्यवस्था की गई है।

मातृत्व लाभ अधिनियम, 1961– यह नियम विशेषत: उन महिलाओं के लिए लागू होता है, जो संगठित क्षेत्रों में कार्य करती हैं। इसके अन्तर्गत 3 माह या इससे अधिक समय का गर्भधारण करने वाली महिलाओं को सेवायोजित करने पर प्रतिबन्ध लगाया है। 'मातृत्व अवकाश अवधि' में पूरा वेतन देने का प्रावधान है। इसके साथ—साथ बोनस भी उपलब्ध कराने की व्यवस्था की गई है।

महिलाओं के प्रति अपराध सम्बन्धी नियम— महिलाओं के प्रति होने वाले विभिन्न अपराधों की रोकथाम के लिए निम्न अधिनियम पारित किए गए है—

(i) अनैतिक व्यापार अधिनियम, 1956
(ii) दहेज प्रतिषेध अधिनियम, 1961
(iii) महिलाओं का अशिष्ट— रूपण प्रतिषेध अधिनियम, 1986
(iv) घरेलू हिंसा से महिलाओं का संरक्षण अधिनियम, 2005
(v) बाल—विवाह प्रतिषेध अधिनियम, 2006
(vi) कार्यस्थल पर महिलाओं का लैंगिग उत्पीड़न अधिनियम, 2013
(vii) दण्ड विधि अधिनियम, 2013

विवाह एवं तलाक से सम्बन्धित विधान– भारत में कोई सामान्य नागरिक संहिता लागू न होने के कारण विवाह एवं तलाक प्रत्येक समुदाय के वैयक्तिक विधानों के अनुसार नियमित एवं नियन्त्रित होते हैं। वैसे समय—समय पर विवाह तथा तलाक सम्बन्धी निम्नलिखित अधिनियम पारित किए गए हैं—

(i) भारतीय ईसाई अधिनियम, 1892
(ii) हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955
(iii) विशेष विवाह अधिनियम, 1954
(iv) मुस्लिम स्त्री (विवाह विच्छेद पर अधिकार संरक्षण) अधिनियम, 1986
(v) बाल—विवाह प्रतिषेध अधिनियम, 2006 इत्यादि।

हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 में पति तथा पत्नी दोनों को तलाक लेने के अधिकार दिए गए हैं।

इनके अतिरिक्त महिलाओं की दशा में और अधिक सुधार और विकास के लिए कुछ योजनाओं को भी शुरू किया गया है, जिनका संक्षिप्त विवरण अग्रलिखित है—

इन्दिरा गाँधी मातृत्व सहयोग योजना– 20 अक्टूबर, 2010 को प्रारम्भ की गई इस योजना का उद्देश्य देश के दूर—दराज क्षेत्रों में गर्भवती महिलाओं एवं छोटे बच्चों की उचित देखभाल के लिए सहायता प्रदान करना है।

सबला योजना– इस योजना का शुभारम्भ 19 नवम्बर, 2010 को किया गया। इस योजना के अन्तर्गत 11–18 वर्ष की आयु की किशोरियों के उपयुक्त मानसिक एवं शारीरिक विकास में सहायता मिलेगी।

स्वावलम्बन योजना– वर्ष 2010–11 में प्रारम्भ की गई इस योजना का मुख्य उद्देश्य महिलाओं को प्रशिक्षण प्रदान करना है, जिससे वे पोषणीय स्तर पर रोजगार या स्वरोजगार प्रदान कर सकें।

जननी शिशु सुरक्षा योजना– इस योजना की शुरूआत 1 जून, 2011 से की गई। इस योजना के अन्तर्गत गर्भवती महिलाओं को प्रसव से पहले तथा बाद में विभिन्न सुविधाएँ प्रदान की जाती हैं।

ज्योति योजना– इस योजना के अन्तर्गत एक या दो बच्चे होने पर स्वेच्छा से नसबन्दी कराने वाली महिलाओं को स्वास्थ्य—सेवाओं, शिक्षा तथा रोजगार के अवसरों में प्राथमिकता प्रदान की जाती है।

बालिका समृद्धि योजना– इस योजना को वर्ष 1997 में प्रारम्भ किया गया है। इसका उद्देश्य गरीबी रेखा से नीचे के परिवारों में जन्म लेने वाली बालिका की माँ को पौष्टिक आहार प्रदान करना तथा बालिका की शिक्षण—व्यवस्था करना है।

महिला सुशक्ति योजना– सन् 1998 में प्रारम्भ की गई इस योजना का उद्देश्य महिलाओं को स्वयं सहायता समूह के माध्यम से आर्थिक व सामाजिक रूप से सशक्त बनाना है।

किशोरी शक्ति योजना– यह योजना वर्ष 2000 में किशोरियों के लिए स्वास्थ्य व पोषण की उचित व्यवस्था का विकास करने के उद्देश्य से प्रारम्भ की गई।

स्त्री पुरस्कार योजना– महिलाओं के अधिकारों के लिए संघर्ष करने वाली महिलाओं को राष्ट्रीय पुरस्कार तथा प्रोत्साहन देने हेतु 2000 में यह योजना प्रारम्भ की गई।

महिला सशक्तिकरण वर्ष– वर्ष 2001 को महिला सशक्तिकरण के रूप में मनाया गया। इस वर्ष महिलाओं के कल्याण हेतु विशेष योजनाएँ प्रारम्भ की गईं।

महिला स्वयं सिद्ध योजना– 12 जुलाई, 2001 को प्रारम्भ की गई इस योजना का प्रमुख उद्देश्य महिलाओं को सामाजिक व आर्थिक रूप से सशक्त बनाना है। इस योजना को 'स्वयं सहायता समूहों' के माध्यम से संचालित किया जाता है।

नि:सन्देह महिलाओं की स्थिति सुधारने और उन्हें उन्नति के आयाम प्राप्त कराने के लिए सरकार द्वारा अनेक प्रयास किए जा रहे हैं। वास्तव में सामाजिक जाग्रति, महिला साक्षरता, आर्थिक स्वावलम्बन तथा सामाजिक दृष्टिकोण में सकारात्मक परिवर्तन ही महिलाओं के प्रति पुरुषों के मनोभाव तथा सोच में परिवर्तन ला सकते हैं।

❖ **मानचित्र सम्बन्धी अभ्यास कार्य**

अध्यापक की सहायता से विद्यार्थी स्वयं करें।

❖ **प्रोजेक्ट कार्य**

अध्यापक की सहायता से विद्यार्थी स्वयं करें।

28 अपेक्षाएँ-अनेकता में एकता, सर्वधर्म समभाव, लैंगिक समानता एवं वैज्ञानिक दृष्टिकोण

अभ्यास

❖ **बहुविकल्पीय प्रश्न**

उ०– बहुविकल्पीय प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्य पुस्तक के पृष्ठ संख्या—239 व 240 का अवलोकन कीजिए।

❖ **अतिलघु उत्तरीय प्रश्न**

उ०– अतिलघु उत्तरीय प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्य पुस्तक के पृष्ठ संख्या—240 का अवलोकन कीजिए।

❖ **लघु उत्तरीय प्रश्न**

1. भारत में अनेकता में एकता को समझाइए।

उ०– अनेकता में एकता– भारत देश की सभ्यता एवं संस्कृति की विश्व में अलग ही पहचान है। यहाँ पर विभिन्न धर्मों, भाषाओं, जातियों, संस्कृति एवं सभ्यता वाले लोग रहते हैं। भौगालिक दृष्टि से भारत 29 राज्यों तथा 7 केन्द्रशासित प्रदेशों में विभाजित है जिनकी जलवायु, भौतिक बनावट, जीव तथा वनस्पति में विभिन्नताएँ हैं। इन विभिन्नताओं के बावजूद भारत देश के निवासियों में एकता पाई जाती है। भारतीय सभ्यता व संस्कृति की सबसे प्रमुख विशेषता है अनेकता में एकता के दर्शन। भारत राष्ट्र के प्रति समस्त भारतीयों की पूर्ण निष्ठा तथा भक्ति है। भारत की सभ्यता तथा संस्कृति अत्यन्त पुरानी है। इसकी पहचान भारतीयों की वेशभूषा, बोलचाल, धार्मिक स्थलों तथा मठ—मन्दिरों, बेजोड़ तथा सुन्दर दुर्गों, भव्य अट्टालिकाओं, स्तूपों, मूर्तियों व गुफाओं में अद्भुत चित्रकारी, नृत्यकला, उच्चकोटि के ग्रन्थों तथा सभी भाषाओं की जननी संस्कृत को देखने से होती है।

भारत के लोगों में पारस्परिक प्रेम, समन्वय, एवं भाई—चारा से होती है। सम्पूर्ण भारत एक संगठित इकाई एवं राष्ट्र है। अनेकता में एकता भारतीय राष्ट्रीय जीवन की एक प्रबल गत्यात्मक शक्ति है। पं० जवाहरलाल नेहरू के अनुसार, ''भारत में मौलिक एकता कोई बाहर से लादी गई वस्तु नहीं है। यह एकता आन्तरिक है तथा अन्त: स्थल की वस्तु है।'' भारतीय संस्कृति का रूप एकात्मक है। इस सांस्कृतिक एकता के कारण ही प्रत्येक भारतीय नागरिक अपने को भारतीय कहलवाने में गौरव का अनुभव करता है। इसीलिए विदेशियों ने भारत की विभिन्नताओं का अजायबघर कहा है। भारतीय संविधान में इस एकता को बनाए रखने का संकल्प व्यक्त किया है और सभी धर्मों, भाषाओं, प्रान्तों, जातियों एवं प्रजातियों के लोगों के हितों की रक्षा करने एवं देश के पिछड़े, निर्बल एवं निर्धन लोगों के उत्थान के लिए कल्याणकारी योजनाओं के निर्माण की बात कही है। विभिन्नताओं के होते हुए भी संविधान के प्रावधान भारत को एकता के सूत्र में पिरोने में बहुत सहायक रहे हैं। अत: भारतीय नागरिक तथा सामाजिक जीवन सारे संसार को अपना परिवार समझता है।

2. भारत में राष्ट्रीय एकता को स्पष्ट कीजिए।

उ०– भारत में राष्ट्रीय एकता की आवश्यकता– भारत में निम्न कारणों से राष्ट्रीय एकता आवश्यक है–

(i) राष्ट्रीय एकता के अभाव में राष्ट्र तितर–बितर हो जाता है और राष्ट्र के परतन्त्र होने की सम्भावना बढ़ जाती है।

(ii) राष्ट्रीय एकता का अभाव देश के चहुँमुखी विकास में बाधा उत्पन्न करता है।

(iii) बाह्य आक्रमणों से निपटने में राष्ट्रीय एकता की महत्वपूर्ण भूमिका होती है।

(iv) वैज्ञानिक तथा तकनीकी प्रगति के लिए राष्ट्रीय एकता अति आवश्यक तथ्य है।

(v) आज भारत देश विभिन्न समस्यायों से जूझ रहा है। साम्प्रदायिकता, जातिवाद, क्षेत्रवाद, असम समस्या, कश्मीर समस्या, पंजाब समस्या आदि ने देश की शान्ति एवं एकता को भंग कर दिया है। इन समस्याओं से छुटकारा पाने के लिए राष्ट्रीय एकता की आवश्यकता है।

3. भारत के राष्ट्रीय प्रतीकों को बताइए।

उ०– भारत के राष्ट्रीय प्रतीक निम्नलिखित हैं–

(i) राष्ट्रीय ध्वज– यह हमारी स्वतन्त्रता, एकता तथा समानता का प्रतीक है। भारत के राष्ट्रीय ध्वज में तीन रंग हैं– केसरिया, श्वेत और हरा तथा बीच में चक्र है। राष्ट्रीय ध्वज का सम्मान करना हमारा मूल कर्तव्य है।

(ii) राष्ट्रगान– हमारे राष्ट्रगान की प्रथम पंक्ति है–'जन गण मन अधिनायक जय है, भारत भाग्य विधाता।' राष्ट्रगान के रचयिता श्री रवीन्द्रनाथ टैगोर हैं।

(iii) राष्ट्रीय चिह्न– भारत के राष्ट्रीय चिह्न के दो भाग हैं– शीर्ष भाग में अशोक की लाट है, जिस पर चार सिंह बने हैं; जबकि आधार भाग में बाईं ओर घोड़ा, दाईं ओर वृषभ और बीच में चक्र है। यह सारनाथ के अशोक स्तम्भ से लिया गया है। भारत का राष्ट्रीय चिह्न नोटों, सिक्कों, सरकारी प्रपत्रों आदि पर देखा जा सकता है।

4. सर्वधर्म समभाव क्या ?

उ०– सर्वधर्म समभाव– सर्वधर्म समभाव सभी धर्मों के प्रति समान रूप से सम्मान करने की प्रवृत्ति को कहते हैं। हम व्यक्तिगत जीवन में किसी भी धर्म का पालन, प्रचार तथा प्रसार करें, किन्तु हमें किसी दूसरे धर्म के मानने वालों के साथ धार्मिक समभाव का परिचय देना चाहिए। यह भारतीय संस्कृति की प्रमुख विशेषता है। भारत के निवासियों ने कभी भी किसी अन्य धर्म को मानने वाले व्यक्ति के ऊपर अपने धर्म को थोपने का प्रयास नहीं किया। इसीलिए भारत भूमि पर विभिन्न धर्मों को मानने वाले लोग सदियों से रहते चले आए हैं। भारतीय संस्कृति धार्मिक सहिष्णुता का मार्ग दिखाती है। वह विभिन्न धर्मों के मानने वालों के बीच प्रेम, सहयोग तथा सद्भावना की प्रवत्तियों को प्रोत्साहन देता है।

5. सर्वधर्म समभाव के महत्व को स्पष्ट कीजिए।

उ०– सर्वधर्म समभाव का महत्व– सर्वधर्म समभाव का निम्नलिखित महत्व है–

(i) अन्तर्राष्ट्रीयता का विकास– अपने राष्ट्र के हित के साथ–साथ सभी राष्ट्रों का हित सोचना ही 'वसुधैव कुटुम्बकम्' है। विज्ञान ने आधुनिक विश्व को अणु एवं परमाणु शस्त्रों के रूप में महाविनाशक शक्ति प्रदान की है। अत: वर्तमान सभ्यता एवं संस्कृति को बचाने तथा विश्व–शान्ति की स्थापना के लिए 'वसुधैव कुटुम्बकम्' के आदर्श को सच्चे मन से अपनाना अत्यन्त आवश्यक है। इससे विभिन्न राष्ट्रों के निवासियों में प्रेम, मैत्री, करुणा, समानता तथा स्वतन्त्रता के विचार जागेंगे, जिससे अन्तर्राष्ट्रीयता का विकास होगा।

(ii) धार्मिक संघर्षों की समाप्ति– इस आदर्श का व्यावहारिक जीवन में पालन करने पर विभिन्न सम्प्रदाय के लोगों में व्याप्त धार्मिक विद्वेष स्वत: समाप्त हो जाएगा। इस नैतिक आदर्श के पालन से खून के प्यासे मानव का हृदय–परिवर्तन हो सकता है।

(iii) मानव जाति का उत्थान– अन्तर्राष्ट्रीयता के विकास, विश्व–शान्ति की स्थापना तथा विश्व–बन्धुत्व के प्रसार से मानव जाति का कल्याण होगा और वह विकास–मार्ग पर तीव्रता से अग्रसर हो सकेगी।

❖ विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

1. भारतीय संस्कृति की अटूट आन्तरिक एकता को विभिन्न बिन्दुओं के माध्यम से स्पष्ट कीजिए।

उ०– भारतीय संस्कृति की अटूट आन्तरिक एकता को निम्न बिन्दुओं के अन्तर्गत समझा जा सकता है–

(i) सामाजिक एकता– जाति नियम, संयुक्त परिवार–प्रथा, धार्मिक संस्कार, उत्सव आदि सामाजिक एकता के प्रतीक हैं। दीपावली, दशहरा, होली, ईद आदि त्योहार देश के सभी भागों में उत्साह से मनाए जाते हैं, जो सामाजिक एकता के प्रतीक हैं। प्राचीनकाल से आधुनिक काल तक दहेज–प्रथा, बाल–विवाह, सती–प्रथा, पर्दा–प्रथा, पति के प्रति विशेष श्रद्धा आदि भारत के सभी भागों में सामाजिक जीवन की विशेषताएँ रही हैं। आजकल भारत के सभी भागों में जाति–बन्धन ढीले पड़ रहे हैं। भारत के सभी भागों में मनुष्यों के वस्त्र प्राय: कमीज, कुर्ता, धोती, पाजामा, पगड़ी या टोपी आदि रहे हैं। स्त्रियाँ

लहँगा, दुपट्टा, चोली, साड़ी आदि पहनती रही हैं।

(ii) राजनीतिक एकता– भारत में प्रारम्भ से ही राजनीतिक विभिन्नता विद्यमान रही है। **मेगस्थनीज** के अनुसार, मौर्यों से पूर्व भारत 118 राज्यों में विभक्त था। सम्राट **अशोक** के समय में भी दक्षिण के राज्य पूर्णतया स्वतन्त्र थे। हर्ष की मृत्यु के पश्चात् उत्तर भारत की राजनीतिक एकता पुन: समाप्त हो गई थी। मुस्लिम सुल्तानों के समय में भी दक्षिण के राज्य दिल्ली सल्तनत से पृथक रहे। इसी प्रकार मुगलकाल में **अकबर** और **औरंगजेब** के अतिरिक्त अन्य मुगल सम्राट भी सम्पूर्ण भारत पर अपना प्रभुत्व स्थापित करने में विफल रहे। ब्रिटिश ईस्ट इण्डिया कम्पनी के काल तक भी भारत में राजनीतिक विभाजन की यही स्थिति बनी रही।

किन्तु यथार्थ में इन राजनीतिक विभिन्नताओं के होते हुए भी भारत में राजनीतिक एकता विद्यमान रही है। प्राचीनकाल से लेकर आधुनिक काल तक सभी शासकों का उद्देश्य भारत को राजनीतिक एकता के सूत्र में बाँधना रहा है। प्राचीनकाल में **सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य** और **समुद्रगुप्त** आदि सम्राटों ने चक्रवर्ती सम्राट बनने का प्रयत्न करके समस्त शासकों को अपने अधीन रखकर देश में राजनीतिक एकता स्थापित की। इसी प्रकार, मध्यकाल में **अलाउद्दीन खिलजी** और **अकबर** जैसे शासकों ने सम्पूर्ण भारत को एकता के सूत्र में बाँधने का सफल प्रयास किया और इसके पश्चात् अंग्रेजों ने भारत को एक इकाई के रूप में संगठित करने में पूर्ण सफलता प्राप्त की।

(iii) धार्मिक एकता– भारत में अनेक धर्मों— हिन्दू, बौद्ध, जैन, इस्लाम, सिक्ख, ईसाई, पारसी आदि के अनुयायी विद्यमान हैं। प्रत्येक धर्म की अनेक शाखाएँ और संप्रदाय भी हैं। इसके उपरान्त भी भारत में धार्मिक एवं मौलिक एकता विद्यमान रही है, क्योंकि इन सभी के मूल सिद्धान्त लगभग समान हैं। अहिंसा और पवित्र आचरण पर सभी धर्म बल देते हैं। समस्त धर्मों में आंतरिक समन्वय की भावना पाई जाती है। सभी मानव कल्याण को महत्व देते हैं और मानव—प्रेम, सहिष्णुता, सदाचार, सत्य, दान, क्षमा, दया आदि मानवीय गुणों के पालन पर जोर देते हैं।

(iv) भौगोलिक एकता– भारत की भौगोलिक बनावट में अनेक विभिन्नताएँ दृष्टिगोचर होती हैं। एक ओर हिमालय के ऊँचे—ऊँचे पर्वत शिखर हैं तो दूसरी ओर समतल मैदान और दक्षिण का पठारी भाग भी है। देश के इन विभिन्न भागों में भिन्न—भिन्न प्रकार की जलवायु पाई जाती है। यदि मेघालय में चेरापूँजी (सोहरा) नामक स्थान पर 1,000 सेमी तक वर्षा होती है, तो दूसरी ओर राजस्थान की भूमि प्राय: वर्षभर सूखी रहती है। इसी प्रकार, मरुस्थलीय प्रदेशों में उपज नाममात्र की होती है, जबकि सिन्धु और गंगा के मैदानी भागों में बहुत अच्छी फसल होती। इन विभिन्नताओं के होते हुए भी भारत में एक मौलिक और आधारभूत भौगोलिक एकता है, क्योंकि सम्पूर्ण देश एक ही भौगोलिक इकाई है। **डॉ० राजबली पाण्डेय** के अनुसार, ''प्रकृति ने भारत की भौगोलिक इकाई को इतना सुदृढ़ बनाया है कि यह देश के आंतरिक विभाजनों को अच्छी तरह ढक लेती है।''

(v) आर्थिक एकता– भारत में अनेक प्रकार की आर्थिक विषमताएँ दृष्टिगोचर होती हैं। यहाँ कुछ व्यक्ति अत्यधिक धनी हैं तो कुछ व्यक्ति अत्यन्त निर्धन हैं। व्यवसाय, व्यापार, वाणिज्य, उद्योग आदि की दृष्टि से भी यहाँ अनेक प्रकार की विविधताएँ दृष्टिगोचर होती हैं। किन्तु फिर भी सूक्ष्म दृष्टि से अवलोकन करने पर यह विदित होता है कि इस आर्थिक विभिन्नता में भी एकता निहित है। भारत एक कृषि प्रधान देश है। यहाँ की 64 प्रतिशत जनता कृषि करती है। अत: अधिकांश जनता की आर्थिक समस्याएँ एक समान हैं और उनके आर्थिक जीवन स्तर में भी समानता मिलती है।

(vi) भाषायी एकता– भारत में आदिकाल से ही अनेक भाषाओं के लोग रहते हैं। विभिन्न क्षेत्रों की अपनी अलग—अलग भाषाएँ हैं। किन्तु सभी प्रान्तीय भाषाओं का मूल संस्कृत भाषा ही है। प्राचीन भारत के अमूल्य धार्मिक ग्रन्थ इसी भाषा में रचे गए। आज भी समूचे भारत में संस्कृत भाषा का सम्मान देववाणी के रूप में किया जाता है।

अंग्रेजों के शासनकाल में अंग्रेजी भाषा को सरकारी प्रशासन तथा शिक्षा का माध्यम घोषित किया गया। इस भाषा ने भारत में एकता लाने तथा राष्ट्रीयता के भाव जागृत करने में महत्वपूर्ण योगदान दिया। आधुनिक काल में भी अंग्रेजी समस्त भारत की भाषा बनी हुई है। स्वतन्त्रता—प्राप्ति के पश्चात संविधान के अन्तर्गत हिन्दी को भारत की राष्ट्रभाषा घोषित किया गया है।

2. राष्ट्रीय एकता में सहायक व बाधक तत्वों के विषय में बताते हुए राष्ट्रीय एकता में बाधक समस्याओं को दूर करने के उपायों पर प्रकाश डालिए।

उ०– राष्ट्रीय एकता में सहायक तत्व– राष्ट्रीय एकता में निम्नलिखित तत्वों की महत्वपूर्ण भूमिका हैं—

(i) राष्ट्रीय प्रतीक– राष्ट्रीय ध्वज, राष्ट्रगान और राष्ट्रीय चिह्न हमारे राष्ट्र के प्रमुख प्रतीक हैं। ये प्रतीक हमारे राष्ट्र की एकरूपता को प्रदर्शित करते हैं तथा सम्पूर्ण राष्ट्र की जनता को भावनात्मक एकता के सूत्र में बाँधते हैं।

(क) राष्ट्रीय ध्वज— यह हमारी स्वतन्त्रता , एकता तथा समानता का प्रतीक है। भारत के राष्ट्रीय ध्वज में तीन रंग हैं— केसरिया, श्वेत और हरा तथा बीच में चक्र है। राष्ट्रीय ध्वज का सम्मान करना हमारा मूल कर्तव्य है।

(ख) राष्ट्रगान— हमारे राष्ट्रगान की प्रथम पंक्ति है—'जन गण मन अधिनायक जय है, भारत भाग्य विधाता।' राष्ट्रगान के रचयिता श्री रवीन्द्रनाथ टैगोर हैं।

(ग) राष्ट्रीय चिह्न– भारत के राष्ट्रीय चिह्न के दो भाग हैं– शीर्ष भाग में अशोक की लाट है, जिस पर चार सिंह बने हैं; जबकि आधार भाग में बाईं ओर घोड़ा, दाईं ओर वृषभ और बीच में चक्र है। यह सारनाथ के अशोक स्तम्भ से लिया गया है। भारत का राष्ट्रीय चिह्न नोटों, सिक्कों, सरकारी प्रपत्रों आदि पर देखा जा सकता है।

(ii) समान न्याय व्यवस्था– राष्ट्र की एकता के लिए आवश्यक है कि सम्पूर्ण देश के लिए समान न्याय व्यवस्था हो। इसीलिए भारतीय संविधान के अन्तर्गत सभी के लिए समान न्याय की व्यवस्था की गई है। सभी के लिए समान दण्ड विधान है। न्यायपालिका को स्वतन्त्र रखा गया है।

(iii) सामाजिक समानता– राष्ट्रीय एकता के लिए सामाजिक असमानता को दूर करना आवश्यक है। छूत–अछूत तथा अमीर–गरीब जैसी सामाजिक विषमताएँ देश के विभिन्न वर्गों में दूरी तथा संघर्ष को बढ़ाती है। अल्संख्यकों, जनजातियों तथा अनुसूचित व पिछड़ी जातियों को अनेक सुविधाएँ देकर देश में सामाजिक समानता लाने का प्रयास किया गया है।

(iv) धर्म निरपेक्षता– भारतीय संविधान द्वारा भारत को एक धर्मनिरपेक्ष राज्य घोषित किया गया है। राज्य के लिए सभी धर्म समान हैं। सभी धर्मावलम्बियों को अपने धर्म के प्रचार व प्रसार की स्वतन्त्रता है। भारत की धर्मनिरपेक्षता से राष्ट्रीय एकता को पर्याप्त बल मिला है।

(v) इकहरी नागरिकता– भारतीय संविधान ने सभी भारतवासियों को इकहरी नागरिकता प्रदान की हैं। कश्मीर से लेकर कन्याकुमारी तक सभी लोग भारत के नागरिक हैं।

(vi) राष्ट्रीय त्योहार– स्वाधीनता दिवस (15 अगस्त), गणतन्त्र दिवस (26 जनवरी) तथा गाँधी जयन्ती (2 अक्टूबर) भारत के राष्ट्रीय त्योहार हैं। इन्हें देश के सभी वर्गों तथा संम्प्रदायों के लोग बिना किसी भेदभाव के मानते हैं। राष्ट्रीय और भावात्मक एकता बढ़ाने में इनका विशेष महत्व है। 15 अगस्त, 1947 को हमें स्वतन्त्रता प्राप्त हुई थी। 26 जनवरी, 1950 को हमारा संविधान लागू हुआ था और हम सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न हुए थे। 2 अक्टूबर को हम राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी के जन्मदिन के रूप में मनाते हैं।

(vii) संविधान द्वारा मान्य भाषाएँ तथा राष्ट्रभाषा– संविधान ने हिन्दी को राष्ट्रभाषा घोषित किया है। साथ ही 22 क्षेत्रीय भाषाओं को मान्यता प्रदान करके उन्हें विकास का पूर्ण अवसर प्रदान किया गया है। ऐसा करने का उद्देश्य लोगों में पारस्परिक सम्पर्क, सहयोग तथा सद्भाव बढ़ाकर राष्ट्रीय एकता को सुदृढ़ करना है।

राष्ट्रीय एकता में बाधक तत्व– भारत की राष्ट्रीय एकता को खंडित करने वाले तत्वों को राष्ट्रीय एकता में बाधक तत्व कहते हैं। राष्ट्रीय एकता को बाधित करने वाले कुछ प्रमुख तत्व निम्नलिखित हैं–

(i) जातिवाद– जातिवाद हमारी राष्ट्रीय एकता के लिए बहुत बड़ा शत्रु है। चुनाव के समय में जातिवाद उग्र रूप धारण कर लेता है। स्वर्णों तथा हरिजनों के बीच बार–बार होने वाले संघर्ष जातिवाद के ही परिणाम हैं।

(ii) भाषावाद– भारत में अनेकों भाषाएँ बोली जाती हैं। भाषा के आधार पर कभी भी राज्यों के निर्माण की माँग तथा सीमा–विवाद जैसी गम्भीर समस्याएँ राष्ट्रीय एकता को बाधित करती हैं।

(iii) साम्प्रदायिकता– आजादी के कई वर्षों के बाद भी साम्प्रदायिकता एक गम्भीर समस्या बनी हुई है। देश में आए दिन छोटी–छोटी बातों पर दंगे–फसाद होते रहते हैं, जिससे राष्ट्रीय सम्पत्ति को क्षति पहुँचती है।

(iv) क्षेत्रवाद– क्षेत्रवाद के कारण देश के विभिन्न क्षेत्रों के लोगों में ईर्ष्या व द्वेष बढ़ता है तथा राष्ट्रीय एकता खंडित होती है।

(v) आर्थिक विषमताएँ– आर्थिक विषमताओं के कारण गरीबी, शोषण, बेकारी जैसी गम्भीर समस्याएँ उत्पन्न होती हैं। इनसे समाज में सरकार के विरुद्ध असन्तोष तथा अविश्वास बढ़ता है जो देश में बन्द, हड़ताल, घेराव, तालाबन्दी आदि संघर्षों के रूप में प्रस्फुटित होकर देश की राष्ट्रीय तथा भावात्मक एकता पर बुरा प्रभाव डालते हैं।

3. विभिन्न धर्मों में एकता के बिन्दुओं की विवेचना कीजिए।

उ०– विभिन्न धर्मों में एकता के बिन्दु– सभी धर्मों में एकता के निम्नलिखित बिन्दुओं को मान्यता दी गई है–

(i) कर्मवाद– व्यक्ति को निष्काम कर्म करना चाहिए। पुरुषार्थी व्यक्ति वहीं है, जो सफलता एवं असफलता में समान बना रहता है।

(ii) समाज कल्याण– सभी धर्म व्यक्ति के साथ समूचे समाज की प्रगति एवं कल्याण पर जोर देते हैं।

(iii) संयम और आत्म नियन्त्रण– मनुष्य वासनाओं की तृप्ति के मार्ग पर चलकर दु:ख ही आमन्त्रित करता है। संयम को अपनाकर वासनाओं को नियन्त्रित करना ही धर्म है।

(iv) अक्रोध– क्रोध ऐसी आग है, जो स्वयं के साथ दूसरों को भी जलाती है। क्रोध क्षणिक पागलपन की स्थिति है। धार्मिक जीवन में क्रोध का कोई स्थान नहीं है।

(v) अपरिग्रह– अपनी आवश्यकता से अधिक वस्तुओं का संग्रहण नहीं किया जाना चाहिए, ताकि सभी की आवश्यकताओं की पूर्ति हो सके।

(vi) **बुद्धिमत्ता–** मानव जीवन का प्रत्येक कर्म विवेक प्रधान होना चाहिए। विवेक ही सही और गलत की पहचान कराता है।

(vii) **सत्य–** सत्य धर्म की ओर प्रवृत्त करता है। सत्य धार्मिक जीवन का प्रथम सोपान है। यह धर्म की अनिवार्य स्थिति है। कोई भी धर्म सत्य से परे नहीं है। सभी धर्म सत्य की स्थापना करना चाहते हैं।

(viii) **अहिंसा–** सभी धर्मों में इस बात पर बल दिया गया है कि 'आप दूसरों से वैसा ही व्यवहार करो, जैसा आप दूसरों से अपने प्रति चाहते हो।' किसी भी प्राणी को मन, वचन व कर्म से न सताना तथा सभी से प्रेम करना ही अहिंसा है।

(ix) **प्रेम और क्षमा–** द्वेष और घृणा बैर पैदा करते हैं तथा प्रेम क्षमा के भाव को उत्पन्न करता है। धर्म प्रेरित करता है कि मानव प्रेम एवं क्षमाभाव को अपनाएँ।

(x) **अस्तेय–** अस्तेय का अर्थ है, चोरी न करना। जिन वस्तुओं पर अन्य का स्वामित्व हो, उन्हें प्राप्त करने की चेष्ठा न करना।

(xi) **शरीर, मस्तिष्क और आत्मा की शुद्धता–** सभी धर्म मन व आचरण की पवित्रता पर जोर देते हैं। व्यक्ति का दूसरों के प्रति सरल, सहज, निष्कपट व्यवहार ही वास्तविक धर्म है।

4. लैंगिक समानता पर एक विस्तृत लेख लिखिए।

उ०– लैंगिक समानता– लैंगिक समानता का शाब्दिक अर्थ है लिंग के आधार पर पुरूष एवं महिला में कोई भेदभाव न करना या असमानता का भाव न रखना। मानव—समाज मुख्यतया दो वर्गों में बँटा हुआ है— पुरूष एवं महिला। इस दृष्टि से लैंगिक समानता का अर्थ है पुरूषों या महिलाओं को अपने व्यक्तित्व के विकास के लिए समान अवसर प्राप्त होना। अत: यदि महिला या पुरूष में से किसी भी एक वर्ग को विशेषाधिकार प्रदान किए जाते है तो इसे लैंगिक असमानता कहा जाएगा। लैंगिक समानता का सामान्य अर्थ महिला—पुरूष की बराबरी से है।

समाज के प्रत्येक महिला—पुरूष को अपने व्यक्तित्व के विकास तथा जीवनयापन के लिए समान अवसर प्राप्त होना तथा सभी व्यक्तियों को शिक्षा, वेतन, सम्पत्ति, निर्वाचना तथा जीवनयापन सम्बन्धी समान सुविधाएँ तथा अधिकार प्राप्त होना समानता का परिचायक है।

कानून की दृष्टि में सभी महिला—पुरूष समान हैं। इसका तात्पर्य यह है कि जाति, प्रजाति, लिंग, भाषा, धर्म, सम्प्रदाय, सामाजिक व आर्थिक स्थिति आदि के आधार पर किसी व्यक्ति के साथ भेदभाव या पक्षपात करना गैर—कानूनी एवं असंवैधानिक है।

आज भी विश्व के कई विकासशील देशों में पुरूषों की तुलना में महिलाओं को अपेक्षाकृत कम अधिकार तथा कम सुविधाएँ प्राप्त हैं। उन्हें शिक्षा सम्बन्धी पर्याप्त अधिकार प्राप्त नहीं है, सम्पत्ति का भी समान अधिकार प्राप्त नहीं है तथा उन्हें अनेक सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक अधिकारों से वंचित रखा गया है। कभी परम्परा के नाम पर तो कभी धर्म के नाम पर और कभी शारीरिक कमजोरी के नाम पर पुरूषों द्वारा महिलाओं का शोषण किया जाता रहा है। मानव—इतिहास इस तथ्य की पुष्टि करता है कि अतीत में महिला को पुरूषों के समान स्थान एवं सम्मान नहीं दिया गया। महिलाओं को शारीरिक दृष्टि से कमजोर और मानसिक दृष्टि से अविकसित मानकर अनेक अधिकारों एवं सुविधाओं से वंचित रखा गया है। सदियों से महिलाओं का प्रमुख कार्य सन्तान उत्पन्न करना, बच्चों की देखभाल और पुरूषों की सेवा करना माना गया है। वर्तमान में महिलाएँ मानव—जनसंख्या का लगभग 50% है। महिलाओं की विकास—प्रक्रिया में सक्रिय भागीदारी के बिना समाज का तीव्र एवं सन्तुलित विकास सम्भव नहीं है। भारत के कुछ क्षेत्रों में विशेषकर ग्रामीण क्षेत्रों में पुरूषों और महिलाओं को समान कार्य के लिए समान वेतन नहीं दिया जाता है। अत: लैंगिक समानता स्थापित करने में बहुत कुछ करना आवश्यक है। लैंगिक समानता की स्थापना के लिए महिलाओं की शिक्षा, प्रशिक्षण, रोजगार एवं कल्याण के सम्बन्ध में ठोस एवं कारगर कदम उठाने की आवश्यकता है।

❖ **मानचित्र सम्बन्धी अभ्यास कार्य**

अध्यापक की सहायता से विद्यार्थी स्वयं करें।

❖ **प्रोजेक्ट कार्य**

अध्यापक की सहायता से विद्यार्थी स्वयं करें।

29 सड़क यातायात और सड़क सुरक्षा

अभ्यास

❖ **बहुविकल्पीय प्रश्न**

उ०– बहुविकल्पीय प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्य पुस्तक के पृष्ठ संख्या—247 का अवलोकन कीजिए।

❖ **अतिलघु उत्तरीय प्रश्न**

उ०– अतिलघु उत्तरीय प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्य पुस्तक के पृष्ठ संख्या—247 व 248 का अवलोकन कीजिए।

❖ **लघु उत्तरीय प्रश्न**

1. सड़क यातायात के विकास का वर्णन कीजिए।

उ०– **सड़क यातायात का विकास–** मानव सदैव से ही भ्रमणशील रहा है। आदिमानव ने नदियों को प्राकृतिक सड़कों के रूप में प्रयोग किया और पहिए का आविष्कार कर कच्ची सड़कों से प्रारंभ करके सड़क यातायात को पक्की सड़कों तक पहुँचा दिया। आदिमानव ने कच्ची सड़कों पर पत्थर बिछाकर तथा पहिए से गाड़ी बनाकर वर्तमान सभ्यता को सड़क यातायात का उपहार दिया। सतत् विकास ही जीवन जीने की नई पद्धति है और प्रगति मानव का स्वभाव है। इन्हीं दोनों आदर्शों ने मिलकर सड़क यातायात के क्षेत्र में क्रांतिकारी परिवर्तन किए। पहले कच्ची सड़कें और खड़ंजे बने, फिर पक्की सड़कों को राष्ट्रीय राजपथों के रूप में विकसित करके एक्सप्रेस—वे को जन्म दिया।

मोटरकार, ट्रक, बाइक, स्कूटर तथा बैलगाड़ी के माध्यम से सड़क मार्ग से यातायात के गन्तव्य तक पहुँचना ही सड़क यातायात कहलाता है। सड़कें सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक विकास का मार्ग प्रशस्त करती हैं। कहावत है, सड़कें सभ्यता की वाहक और आर्थिक विकास की जननी हैं। सड़कों का फैला जाल राष्ट्र के आर्थिक विकास को शरीर की नाड़ियों के समान विकास का रक्त संचारित करता है। आर्थिक विकास, बढ़ते व्यापार और पर्यटन की चाह ने सड़क परिवहन को व्यस्त बना दिया है।

2. सड़क यातायात के चार लाभ लिखिए।

उ०– **सड़क यातायात के लाभ–** सड़क यातायात का विकास मानव ने अपने जीवन को सुखद और सम्पन्न बनाने की दृष्टि से किया था। सड़क यातायात के चार लाभों को आप निम्न बिंदुओं के माध्यम से समझ सकते हैं—

(i) **यातायात का सुगम साधन–** सड़कें यातायात का सुगम साधन हैं। गाँव, कस्बे, नगर, महानगर, वन, पर्वत, पठार, मरुस्थल सभी सड़क यातायात सुगमता से उपयोग कर लेते हैं। सड़कों का उपयोग पैदल यात्री, साइकिल सवार तथा गाड़ीवान सभी कर लेते हैं। सड़कें घर को गाँव से, गाँव को नगर से तथा नगर को महानगरों से जोड़ती हैं।

(ii) **औद्योगीकरण में सहयोगी–** सड़क यातायात ट्रकों के द्वारा कच्चा माल कारखानों तक तथा तैयार माल खपत के केन्द्रों तक पहुँचाकर उद्योगों की स्थापना और विकास में सहायक बनता है। मैदानी क्षेत्रों में जहाँ सड़कों का जाल बिछा हुआ है, उद्योग धन्धों की स्थापना में बहुत सहयोग मिला है।

(iii) **कृषि विकास में सहायक–** सड़कें खेतों को मंडियों तथा वितरण केन्द्रों से जोड़कर कृषि उपजों के विपणन में सहयोगी बनती हैं। सड़क यातायात नगरों, मंडियों और कारखानों से कृषि यंत्र, उन्नत बीज, उर्वरक तथा कीटनाशक खेतों तक पहुँचाकर कृषि विकास में सहायक बनता है तथा हरित क्रांति कार्यक्रम को सफल बनाता है।

(iv) **देशी तथा विदेशी व्यापार का विस्तार–** सड़क यातायात तैयार माल तथा कृषि उपज को मंडियों, औद्योगिक केन्द्रों, महानगरों तथा बन्दरगाहों तक पहुँचाकर देशी तथा विदेशी व्यापार के विस्तार में सहायक बनकर राष्ट्र की अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ बनाता है।

3. सड़क सुरक्षा क्या है? इसे बनाए रखने के चार उपाय सुझाइए।

उ०– **सड़क सुरक्षा–** सड़क परिवहन की अवधि में अपने आपको सुरक्षित बनाए रखना तथा दूसरों की सुरक्षा का ध्यान रखते हुए अपने गन्तव्य तक पहुँचना ही सड़क सुरक्षा है। दूसरे शब्दों में सड़क यातायात के समय सड़क सुरक्षा के नियमों का अनुपालन करते हुए सुखद यात्रा सम्पन्न करना ही सड़क सुरक्षा है।

सड़क सुरक्षा बनाए रखने के सुझाव– सड़क सुरक्षा बनाए रखने के लिए निम्नलिखित चार सुझाव दिए जा सकते हैं—

(i) वाहन धीमी गति से सुरक्षित रूप से चलाना।

(ii) यात्रा पर जाने से पूर्व वाहन की भली प्रकार जाँच करना।

(iii) ओवर टेंकिंग से बचना।

(iv) ड्राइविंग लाइसेंस प्रशिक्षित चालकों को ही देना।

4. सड़क दुर्घटना होने के लिए उत्तरदायी चार कारण लिखिए।

उ०– सड़क दुर्घटना होने के लिए उत्तरदायी चार कारण निम्नलिखित है–

(i) बहुत तेज गति से वाहन चलाना।

(ii) नशें में वाहन चलाना।

(iii) चालक का ध्यान बाँटने वाली गतिविधियाँ होना।

(iv) मोबाइल पर बातें करते हुए वाहन चलाना।

5. सड़क सुरक्षा में अपनी भूमिका पर प्रकाश डालिए।

उ०– **सड़क सुरक्षा में हमारी भूमिका–** सड़कें राष्ट्र की धरोहर, यातायात का सुलभ साधन और आर्थिक विकास की स्रोत हैं, अत: इन्हें सुरक्षित बनाए रखना प्रत्येक नागरिक और सरकार की प्राथमिकता है। सड़क सुरक्षा के क्षेत्र में हम निम्नलिखित भूमिका निभा सकते हैं–

(i) बच्चों को वाहन चलाने से रोकें।

(ii) 18 वर्ष की आयु पूरी होने तथा चालक लाइसेंस प्राप्त करने पर ही वाहन चलाएँ।

(iii) विद्यालय जाते समय सड़क पर एक के पीछे एक लाइन लगाकर चलें तथा सावधानीपूर्वक सड़क पार करें।

(iv) सड़क पर यात्रा करते समय आगे और पीछे से आने वाले वाहनों पर दृष्टि रखें।

(v) रात्रि में साइकिल यात्रा करने से बचें।

(vi) सड़क पर घूमने या जॉगिंग करने से बचें।

(vii) सड़क पार करने में जेबरा क्रॉसिंग का प्रयोग करें।

(viii) ओवर टेकिंग कदापि न करें।

(ix) सड़क सुरक्षा के नियमों का कठोरता से पालन करें।

(x) दुर्घटना हो जाने पर तुरंत बचाव कार्य में जुटकर अपना सहयोग दें।

(xi) सड़क पर मारपीट, झगड़ा आदि न करें।

(xii) सड़क पर ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न न होने दें, जिससे जाम लग जाए।

❖ **विस्तृत उत्तरीय प्रश्न**

1. सड़क यातायात क्या है? इसका महत्व स्पष्ट कीजिए।

उ०– **सड़क यातायात–** सड़क यातायात परिवहन का वह साधन है, जो हमें हमारे घर, कार्यालय, कारखाने से लेकर गन्तव्य तक पहुंचाने में सार्थक भूमिका निभाता है। सड़क यातायात व्यवस्था ही कश्मीर के सेबों को कन्याकुमारी तथा गुजरात के केलों को कश्मीर तक पहुँचाती है। कार–स्कूटर, बाइक, ट्रक या टैक्टर आदि के द्वारा सड़क यातायात सम्पन्न होता है।

सड़क यातायात का महत्व– सड़क यातायात का विकास मानव ने अपने जीवन को सुखद और सम्पन्न बनाने की दृष्टि से किया था। सड़क यातायात के लाभों को आप निम्न बिंदुओं के माध्यम से समझ सकते हैं–

(i) यातायात का सुगम साधन– सड़कें यातायात का सुगम साधन हैं। गाँव, कस्बे, नगर, महानगर, वन, पर्वत, पठार, मरुस्थल सभी सड़क यातायात सुगमता से उपयोग कर लेते हैं। सड़कों का उपयोग पैदल यात्री, साइकिल सवार तथा गाड़ीवान सभी कर लेते हैं। सड़कें घर को गाँव से, गाँव को नगर से तथा नगर को महानगरों से जोड़ती हैं।

(ii) औद्योगीकरण में सहयोगी– सड़क यातायात ट्रकों के द्वारा कच्चा माल कारखानों तक तथा तैयार माल खपत के केन्द्रों तक पहुँचाकर उद्योगों की स्थापना और विकास में सहायक बनता है। मैदानी क्षेत्रों में जहाँ सड़कों का जाल बिछा हुआ है, उद्योग धन्धों की स्थापना में बहुत सहयोग मिला है।

(iii) कृषि विकास में सहायक– सड़कें खेतों को मंडियों तथा वितरण केन्द्रों से जोड़कर कृषि उपजों के विपणन में सहयोगी बनती हैं। सड़क यातायात नगरों, मंडियों और कारखानों से कृषि यंत्र, उन्नत बीज, उर्वरक तथा कीटनाशक खेतों तक पहुँचाकर कृषि विकास में सहायक बनता है तथा हरित क्रांति कार्यक्रम को सफल बनाता है।

(iv) देशी तथा विदेशी व्यापार का विस्तार– सड़क यातायात तैयार माल तथा कृषि उपज को मंडियों, औद्योगिक केन्द्रों, महानगरों तथा बन्दरगाहों तक पहुँचाकर देशी तथा विदेशी व्यापार के विस्तार में सहायक बनकर राष्ट्र की अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ बनाता है।

(v) खनिजों के शोषण में सहायक– सड़क परिवहन महत्वपूर्ण खनिज–उत्पादक क्षेत्रों की खानों से अयस्क कारखानों तक पहुँचाकर राष्ट्र के आर्थिक विकास का मार्ग प्रशस्त करता है।

(vi) राष्ट्रीय सुरक्षा में सहायक– सड़क यातायात के माध्यम से आवश्यक युद्ध सामग्री छावनी क्षेत्रों तक तथा छावनियों से सैनिकों को युद्ध स्थल तक पहुँचाकर राष्ट्र की सुरक्षा में अभूतपूर्व योगदान देता है। राष्ट्र की आंतरिक तथा बाह्य सुरक्षा सड़क यातायात पर निर्भर है।

(vii) आपदाओं के प्रबंधन में योगदान– सड़क यातायात आपदाओं के समय सुरक्षा दल, राहत सामग्री, दवाइयाँ तथा खाद्य—सामग्री प्रभावित क्षेत्र तक पहुँचाकर आपदा प्रबंधन में सक्रिय भागीदारी निभाता है।

(viii) क्षेत्रीय नियोजन में सहायक– सड़क यातायात, पर्वत, पठार, मरुस्थल तथा वन क्षेत्रों में अपनी सेवाएँ सुलभ कराकर क्षेत्रीय नियोजन में सहायक होता है।

(ix) प्रशासन कार्य तथा संचार-तंत्र में सहयोग– सड़क यातायात प्रशासनिक अधिकारियों को यत्रतत्र पहुँचाकर तथा समाचार—पत्र और पत्रिकाओं का वितरण करके प्रशासन तथा संचार—तंत्र को सफल बनाता है।

(x) पर्यटन का विकास– सड़क यातायात पर्यटकों को पर्वतीय क्षेत्रों, रमणीक स्थलों तथा प्राकृतिक दृश्यावली के क्षेत्रों में पहुँचाकर, होटल तथा रेस्टोरेंट कारोबार को पनपाकर पर्यटन का विकास करने में सहभागिता निभाता है।

(xi) रोजगार का स्रोत– सड़क परिवहन, ड्राइवरों तथा बस संचालित करने वालों एवं कार किराए पर देने वालों को रोजगार के अवसर जुटाकर प्रतिव्यक्ति आय और राष्ट्रीय आय में वृद्धि करता है।

2. सड़क सुरक्षा क्या है? इसे बाधित करने वाले कारणों की विवेचना कीजिए।

उ०– **सड़क सुरक्षा का अर्थ–** बढ़ते सड़क यातायात के वाहनों की भीड़ और कम पड़ती सड़कों ने सड़क यातायात के समक्ष जो सबसे गंभीर समस्या उत्पन्न की है, उसे 'सड़क सुरक्षा' कहा जाता है। भारत में अब सड़क सुरक्षा एक बहस का मुद्दा बन गया है। वर्तमान में सड़कों पर सुरक्षा की धज्जियाँ उड़ाकर हजारों लोगों के लहू से सड़कों को रँगा जाना आम बात हो गई है। प्रश्न यह उठता है कि सड़क सुरक्षा है क्या? ''सड़क परिवहन की अवधि में अपने आप को सुरक्षित बनाए रखना तथा दूसरों की सुरक्षा का ध्यान रखते हुए अपने लक्ष्य तक पहुँच जाना ही सड़क सुरक्षा है।'' सड़क सुरक्षा की अवधारणा परिवार, समाज और राष्ट्र की सुरक्षा के प्रति एक महत्वपूर्ण कदम है। प्राचीन कहावत है, ''धीरे चलिए, सुरक्षित रहिए। घर पर कोई आपकी प्रतीक्षा कर रहा है।'' सड़क यातायात के समय सड़क सुरक्षा के नियमों का अनुपालन करते हुए सुखद यात्रा सम्पन्न करना ही सड़क सुरक्षा है। दूसरे शब्दों में, सड़क यातायात के समय वाहनों के टकराव को रोककर स्वयं के जीवन की रक्षा करते हुए दूसरों को सुरक्षित यात्रा करने में सहभागी बनना ही सड़क सुरक्षा का मूलमंत्र है। सड़क सुरक्षा नियमों तथा ट्रेफिक सिग्नलों को ध्यान में रखकर सड़क परिवहन में सावधान रहना और सुरक्षित चलना ही सड़क सुरक्षा है। विकास के साथ-साथ संस्कृति का विकास कर निरापद सड़कों का उपयोग करना ही सड़क सुरक्षा है।

सड़क सुरक्षा के मार्ग की बाधाएँ– सड़क सुरक्षा के मार्ग में निम्नलिखित बाधाएँ उत्पन्न होती हैं—

(i) सड़क दुर्घटनाएँ– सड़क सुरक्षा के लिए सर्वाधिक उत्तरदायी कारण सड़क दुर्घटनाएँ हैं। सर्वेक्षण के अनुसार भारत में प्रत्येक 4 मिनट पर सड़क दुर्घटना में 1 व्यक्ति की मृत्यु हो जाती है। सड़क दुर्घटनाओं के लिए निम्नलिखित कारण उत्तरदायी हैं—

(क) बहुत तेज गति से वाहन चलाना।
(ख) नशे में वाहन चलाना।
(ग) चालक का ध्यान बँटाने वाली गतिविधियाँ होना।
(घ) मोबाइल पर बातें करते हुए वाहन चलाना।
(ङ) सीट बेल्ट, हेलमेट आदि सुरक्षा के उपायों की अनदेखी करना।
(च) ओवर टेकिंग करना।
(छ) चालक का प्रशिक्षित न होना।
(ज) सड़क पर अचानक जंगली पशु आ जाना।
(झ) मौसम का बिगड़ जाना, आँधी, तूफान, कोहरा तथा हिमपात आरम्भ हो जाना।
(ञ) सड़क की दशा खराब होना, उसमें गड्ढे आदि होना।

(ii) यातायात के नियमों का पालन न करना– पैदल यात्रियों और वाहन चालकों द्वारा यातायात के नियमों की अनदेखी करना भी सड़क सुरक्षा के मार्ग में बाधा है। यातायात के नियमों का अनुपालन न करने से सड़क सुरक्षा नष्ट हो जाती है।

(iii) वाहन का त्रुटिपूर्ण होना– वाहन का टायर फट जाना, ब्रेक फेल हो जाना, हेडलाइटों का न जलना तथा अधिक सामान लादना या अधिक सवारियाँ बैठाना भी सड़क सुरक्षा में सेंध लगाने के सक्षम कारण हैं।

3. सड़क सुरक्षा बनाए रखने के उपाय सुझाइए।

उ०– **सड़क सुरक्षा बनाए रखने के सुझाव–** सड़क सुरक्षा बनाए रखने के लिए निम्नलिखित सुझाव दिए जा सकते हैं—

(i) वाहन धीमी गति से सुरक्षित रूप से चलाना।
(ii) यात्रा पर जाने से पूर्व वाहन की भली प्रकार जाँच करना।
(iii) ओवर टेकिंग से बचना।
(iv) ड्राइविंग लाइसेंस प्रशिक्षित चालकों को ही देना।
(v) यातायात के नियमों का कठोरता से पालन करना।
(vi) पैदल यात्रियों का पैदल पथ पर चलना तथा सड़क पार करने के लिए जेबरा क्रॉसिंग का उपयोग करना।
(vii) बच्चों को सड़कों पर अकेला नहीं छोड़ना।
(viii) बाइक, स्कूटर तथा साईकिल पर यात्रा करते समय स्टंटबाजी न करना।
(ix) यात्रा करते समय गाने न सुनना।
(x) वाहन चलाते समय मोबाइल पर बातें नहीं करना।
(xi) साईकिल पर यात्रा करते समय सावधान रहते हुए साईकिल—मार्ग का उपयोग करना।
(xii) स्कूल बस में स्कूल जाते समय अथवा स्कूल से घर आते समय अपनी सीट पर शांत बैठकर यात्रा करना।
(xiii) चलते वाहन से न तो बाहर झाँकना और न शरीर का कोई अंग बाहर निकालना।
(xiv) सदैव प्राधिकृत स्थलों पर ही उचित ढंग से वाहन को पार्क करना।
(xv) वाहन का रख—रखाव उचित ढंग से करना।
(xvi) नशा करके वाहन न चलाना।

4. सड़क सुरक्षा में 'बच्चों की भूमिका' पर प्रकाश डालिए।

उ०– **सड़क सुरक्षा में बच्चों की भूमिका–** बच्चों को अपनी सुरक्षा के साथ—साथ सड़क सुरक्षा को बनाए रखने के लिए निम्नलिखित नियमों का पालन करना चाहिए—

(i) बच्चों को सड़क पार करते समय पहले बाएँ, फिर दाएँ तथा फिर बाएँ देखकर सड़क पार करनी चाहिए।
(ii) बच्चों को बड़ों का हाथ पकड़कर ही सड़क पार करनी चाहिए।
(iii) सड़क पर दौड़ लगाना, खेलना या मस्ती करना स्वयं तथा सड़क सुरक्षा दोनों के लिए घातक है।
(iv) सड़क पर पैदल यात्रा करते समय बच्चों को फुटपाथ का प्रयोग करना चाहिए।
(v) चौराहे पर सड़क पार करने के लिए यातायात की बत्तियों (लाल बत्ती—रुको, पीली बत्ती—तैयार हो जाओ और हरी बत्ती— आगे बढ़ जाओ) से सीख लेनी चाहिए।
(vi) साईकिल चलाते समय सड़क के एक ओर चलना चाहिए।
(vii) यातायात के नियमों का ठीक से पालन करना चाहिए।

5. सड़क परिवहन एवं सड़क सुरक्षा अधिनियम 2014 के प्रावधानों का वर्णन कीजिए।

उ०– **सड़क परिवहन एवं सड़क सुरक्षा विधेयक 2014–** केंद्र सरकार सड़क यातायात के विकास के साथ—साथ सड़क यातायात की सुरक्षा बनाए रखने के प्रति भी वचनबद्ध है। इसीलिए केंद्र सरकार ने सड़क परिवहन एवं सड़क सुरक्षा विधेयक 2014 पारित किया। इस विधेयक के मुख्य प्रावधान निम्नवत् हैं—

(i) सड़क यातायात का विकास करना और सड़क दुर्घटनाओं पर लगाम लगाकर सड़कों को सुरक्षित बनाना।
(ii) 'मेक इन इण्डिया' मिशन के अंतर्गत सुरक्षित, त्वरित और अल्पव्यय से सड़क यातायात का चरम विकास करना।
(iii) सड़क परिवहन के क्षेत्र में गुणवत्ता लाकर प्रतिवर्ष 2 लाख लोगों को सड़क दुर्घटनाओं से सुरक्षित रखना।
(iv) सड़क यातायात के सुरक्षा मानकों को ध्यान में रखकर मोटर वाहन नियमन एवं सड़क सुरक्षा प्राधिकरण का गठन करना।
(v) राष्ट्रीय सड़क सुरक्षा यातायात, प्रबंधन को लागू कराना।
(vi) सड़क सुरक्षा को सुनिश्चित करने की दृष्टि से कठोर कानून बनाने का प्रावधान करना।
(vii) ड्राइविंग लाइसेंस देने तथा बीमा प्रणाली को बायोमैट्रिक सिस्टम से जोड़ना तथा वाहन स्थानांतरण ऑनलाइन व्यवस्था से जोड़ना।
(viii) सड़क दुर्घटना हो जाने पर घायलों को एक घंटे की अवधि में चिकित्सा सुविधाएँ उपलब्ध कराना।
(ix) मोटर एक्सीडेंट फंड की स्थापना करके प्रत्येक व्यक्ति को अनिवार्य बीमा योजना का लाभ देना।
(x) यातायात के नियमों का उल्लंघन करने वालों के लिए निम्नलिखित कठोर दण्डों का प्रावधान करना—
(क) लापरवाही से वाहन चलाने पर लाइसेंस रद्द करना।
(ख) खराब वाहन की स्थिति पर वाहन स्वामी पर जुर्माना करना।
(ग) नशे की हालत में वाहन चलाने पर प्रथम बार 25,000 रुपए दंड या तीन माह की जेल, द्वितीय बार पकड़े जाने पर

50,000 रुपए जुर्माना या एक वर्ष की जेल तथा लाइसेंस रद्द करने का प्रावधान होना।

(घ) चालक द्वारा सीट बैल्ट न बाँधने पर 5,000 रुपए जुर्माना लगाना।

(ङ) चालक की लापरवाही से किसी की मौत हो जाने पर 3 लाख रुपए जुर्माना तथा 7 साल की जेल की व्यवस्था।

(च) असुरक्षित वाहन रखने पर 1 लाख रुपए जुर्माना तथा 6 माह की जेल की व्यवस्था।

(छ) तीन बार ट्रैफिक सिग्नल का उल्लंघन करने पर 15,000 रुपए जुर्माना तथा चालक का ड्राइविंग लाइसेंस रद्द करना।

(ज) स्कूल बस चलाने वाला चालक नशे की दशा में बस चलाता पकड़ा गया तो उस पर 50,000 रुपए जुर्माना और तीन वर्ष के लिए जेल की सजा।

(झ) सड़क सुरक्षा नियमों की अवहेलना करने वाले 18 से 25 वर्ष के चालकों का ड्राइविंग लाइसेंस सदैव के लिए रद्द करने का प्रावधान।

❖ **मानचित्र सम्बन्धी अभ्यास कार्य**

अध्यापक की सहायता से विद्यार्थी स्वयं करें।

❖ **प्रोजेक्ट कार्य**

अध्यापक की सहायता से विद्यार्थी स्वयं करें।

अनुभाग-तीन : पर्यावरणीय अध्ययन

इकाई-1 (क) : पर्यावरणीय संरचना

30 पर्यावरण का तात्पर्य, महत्त्व एवं तत्त्व

(स्थल, वायु, जल एवं जैविक स्वरूप)

अभ्यास

❖ **बहुविकल्पीय प्रश्न**

उ०– बहुविकल्पीय प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्य पुस्तक के पृष्ठ संख्या—256 का अवलोकन कीजिए।

❖ **अतिलघु उत्तरीय प्रश्न**

उ०– अतिलघु उत्तरीय प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्य पुस्तक के पृष्ठ संख्या—256 व 257 का अवलोकन कीजिए।

❖ **लघु उत्तरीय प्रश्न**

1. पर्यावरण का अर्थ बताते हुए फिटिंग व हर्सकोविट्ज के अनुसार दी गई इसकी परिभाषाएँ लिखिए।

उ०– **पर्यावरण का अर्थ–** हमारे चारों और का भौतिक परिवेश पर्यावरण कहलाता हैं। पर्यावरण शब्द की उत्पत्ति दो शब्दों से मिलकर हुई है। 'परि' और 'आवरण'। 'परि' शब्द का अर्थ है चारों ओर से और 'आवरण' शब्द का अर्थ है ढके हुए। अत: हम कह सकते हैं कि ''पर्यावरण वह सब कुछ है, जो हम से अलग होते हुए भी हमें ढके हुए है और हमारे दैनिक जीवन पर अपना प्रभाव डालता है।'' भौगोलिक दृष्टि से पर्यावरण के अन्तर्गत उन सभी शक्तियों, पदार्थों, घटनाओं एवं परिस्थितियों को सम्मिलित किया जाता है जो परोक्ष या प्रत्यक्ष रूप से मानव क्रिया—कलापों को प्रभावित करती हैं और उसके लिए एक निश्चित क्षेत्र का निर्धारण भी करती हैं। अत: यह कहना सर्वथा उचित है कि पर्यावरण एक व्यापक धारणा है जिसका विस्तार अनन्त तथा असीम है। पर्यावरणीय परिस्थितयाँ एक स्थान से दूसरे स्थान पर परिवर्तित होती रहती हैं अर्थात् पर्यावरणीय परिस्थितियाँ सर्वत्र एकसमान नहीं पाई जाती हैं।

पर्यावरण की परिभाषाएँ–

(i) फिटिंग के अनुसार– ''जीवों की परिस्थिति के समस्त तत्त्व या घटक मिलकर पर्यावरण कहलाते हैं।''

(ii) हर्सकोविट्ज के अनुसार– ''पर्यावरण उन समस्त बाह्य दशाओं तथा प्रभावों का योग है, जो प्राणी के जीवन तथा विकास पर प्रभाव डालते हैं।''

2. पर्यावरण के तत्वों को स्पष्ट कीजिए।

उ०– **(i) स्थलमण्डल–** यह पृथ्वी का स्थलीय शुष्क ठोस भाग है। इसके अन्तर्गत पृथ्वी की रचना, उसकी विभिन्न आकृतियाँ, मिट्टी व चट्टानें, रेत, विभिन्न शक्तियों द्वारा पृथ्वी—तल पर किए जाने वाले परिवर्तन, भूमिगत जल, ऊर्जा तथा इनके

मानव—जीवन पर पड़ने वाले प्रभावों आदि को शामिल किया जाता है।

(ii) वायुमण्डल– पृथ्वी के चारों ओर स्थित वायु के आवरण को 'वायुमण्डल' कहते हैं। यह समुद्र तल के ऊपर लगभग 320 किलोमीटर तक फैला होता है। समुद्र तल से लगभग 16 किमी० ऊपर तक का भाग वायु एवं मौसम से प्रभावित होता है। इसी कारण समुद्र की सतह से ऊपर 6 किमी० की ऊँचाई तक वायु में जीवधारी पाए जाते हैं।

(iii) जलमण्डल– यह पृथ्वी का जलीय भाग है, जिसमें नदियों, सागरों, महासागरों, खाड़ियों, महासागरों के जल में तापमान तथा लवणता की मात्रा, महासागरों के जल की गतियों आदि को शामिल किया जाता है।

(iv) जैवमण्डल– वायु, जल एवं थल का वह भाग जिसमें जीवधारी पाए जाते हैं, 'जैवमण्डल' कहलाता है। इसमें इन बातों को सम्मिलित किया जाता है—(क) वनस्पति, (ख) जीव—जन्तु तथा मनुष्य, (ग) जलवायु से वनस्पति तथा जीव—जन्तुओं का सह—सम्बन्ध, (घ) पर्यावरण का असन्तुलन, इनसे सम्बन्धित समस्याएँ एवं उनका समाधान।

जैवमण्डल का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण अंग मानव है।

3. प्राकृतिक और सांस्कृतिक पर्यावरण में अन्तर बताइए।

उ०– **प्राकृतिक पर्यावरण या भौतिक पर्यावरण–** प्राकृतिक पर्यावरण में स्थलमण्डल, वायुमण्डल, जलमण्डल तथा जैवमण्डल के उन सभी तत्त्वों को शामिल किया जाता है जो हमें पृथ्वी पर प्राकृतिक रूप से मिलते हैं। ये सभी तत्त्व मनुष्य को प्रकृति द्वारा नि:शुल्क प्राप्त होते हैं।

सांस्कृतिक पर्यावरण– सांस्कृतिक पर्यावरण से अभिप्राय 'मानव निर्मित पर्यावरण' से है। उदाहरणार्थ— भोजन, वस्त्र, भाषा, वेशभूषा, कृषि, कला, व्यवसाय, उद्योग, धर्म, साहित्य, परिवहन, संचार, विधान तथा सामाजिक संस्थाएँ इत्यादि। अन्य शब्दों में हम कह सकते हैं कि मानव अपने प्राकृतिक पर्यावरण में, अपने ज्ञान की सहायता से अपनी आवश्यकतानुसार जिस प्रकार के पर्यावरण का निर्माण करता है, उसे सांस्कृतिक पर्यावरण कहते हैं।

4. पर्यावरण का महत्त्व बताइए।

उ०– **पर्यावरण का महत्त्व–** मनुष्य की तीन प्रमुख आवश्यकताओं रोटी, कपड़ा व मकान की पूर्ति का स्रोत पर्यावरण ही है। भविष्य की प्रगति भी पर्यावरण पर ही निर्भर है। पर्यावरण जीवधारियों के अस्तित्व के लिए भी बहुत महत्त्वपूर्ण है। पृथ्वी के चारों ओर वायु का सघन आवरण है जिसमें ऑक्सीजन गैस पाई जाती है, जोकि समस्त जीवधारियों के लिए आवश्यक है। पर्यावरण की उपस्थिति के कारण ही पृथ्वी पर जीवन पाया जाता है। पर्यावरण का महत्त्व निम्नलिखित है—

(i) पर्यावरण प्राण वायुदायिनी है।

(ii) पर्यावरण की आधारभूत इकाई जैवमण्डल है, जिसमें जीवन के विविध रूप पाए जाते हैं।

(iii) भौतिक पर्यावरण संसाधनों का अकूत भण्डार है, जो समस्त जीवों के कल्याण एवं समृद्धि का आधार है।

(iv) पर्यावरण में विद्यमान समस्त भौतिक एवं जैविक तत्त्व प्राकृतिक नियमों के अन्तर्गत कार्य करते हैं, जिससे पर्यावरणीय सन्तुलन बना रहता है।

पर्यावरण का मानव जीवन में बहुत महत्त्व है। यदि पर्यावरण संतुलित है तो जैवमण्डल की क्रियाशीलता व्यवस्थित रहती है। अत: हमारा दायित्व है कि हम पर्यावरण की सुरक्षा में सदैव तत्पर रहें।

5. वायुमण्डल का महत्त्व बताइए।

उ०– **वायुमण्डल का महत्त्व–** वायु केवल मानव के लिए ही आवश्यक नहीं है, बल्कि वायुमण्डल में निवास करने वाले समस्त जीवधारियों के लिए आवश्यक है। वायुमण्डल में पाई जाने वाली कार्बन डाई आक्साइड तथा नाइट्रोजन का प्रभाव वनस्पति व जीव—जन्तुओं पर अधिक पड़ता है। वायुमण्डल में व्याप्त गैसें हाइड्रोजन, हीलियम, नियॉन, क्रिप्टॉन, ऑर्गन, ओजोन, जेनॉन आदि भी प्राणिमात्र के लिए किसी न किसी रूप में लाभदायक हैं। उदाहरणार्थ वायुमण्डल की ओजोन गैस का आवरण सूर्य की तीक्ष्ण पराबैंगनी किरणों को अपने में सोख लेता है। यदि ओजोन गैस न होती तो पृथ्वी पर प्राणी मात्र तीव्र गर्मी में झुलस जाता।

6. चित्र द्वारा स्थल मण्डल की संरचना समझाइए।

उ०– **स्थलमण्डल–** पृथ्वी का वह भाग जिस पर हम चलते हैं, स्थलमण्डल कहलाता है। स्थलमण्डल का निर्माण कठोर शैलों से होता है। महासागर तथा महाद्वीप के अध: स्थल का निर्माण शैलों के द्वारा ही हुआ है। मानव जीवन की लगभग सभी क्रियाएँ—रहना, खेलना—कूदना, खेती करना, उद्योग करना या अन्य कोई भी क्रिया करना हो सभी क्रियाएँ स्थलमण्डल पर होती हैं। यह पृथ्वी की 'त्वचा' है, अर्थात् एक कठोर भू—पर्पटी है जो चट्टानों से निर्मित है। भू—पर्पटी का निर्माण अवसादी शैलों द्वारा हुआ है।

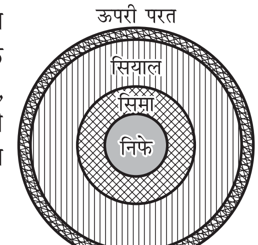

स्थलमण्डल की संरचना

स्थलमण्डल की संरचना– स्थलमण्डल की रचना निम्नलिखित तीन परतों में हुई है—

(i) सियाल– सिलिका तथा एलुमिनियम की मिश्रित परत का नाम सियाल है। महाद्वीपों के भूपृष्ठ

का निर्माण इन्हीं पदार्थों द्वारा हुआ है। सियाल परत की गहराई 50 किमी० से 500 किमी० होती है। इनका घनत्व 2.9 होता है।

(ii) सिमा– यह परत सियाल से नीचे होती है। इस परत को मैण्डल के नाम से भी जानते हैं। यह परत सिलिका तथा मैग्नीशियम से बनी होती है। ज्वालामुखी की कारक सिमा परत की गहराई 1000 किमी० से 2000 किमी० तक होती है।

(iii) निफे– निफे परत मुख्यत: लोहे जैसी कठोर धातु से बनी है। इस परत को क्रोड के नाम से भी जाना जाता है। इसका औसत घनत्व 11 है। लोहे और निकिल की प्रधानता के कारण ही भू—गर्भ की चुम्बकीय शक्ति इसके द्वारा प्रकट होती है।

7. अवसादी शैलों को स्पष्ट कीजिए।

उ०– **अवसादी शैल–** भूतल के 75% भाग पर अवसादी या परतदार शैलों का विस्तार है, शेष 25% भाग में आग्नेय एवं कायान्तरित शैल विस्तृत हैं। अवसादी शैलों का निर्माण सागरों, झीलों, जलाशयों आदि में क्रम से अवसादों के जमा होते जाने से होता है। इन शैलों के कणों के जमने का क्रम भी एक निश्चित गति से होता है। पहले मोटे कण जमा होते हैं, बाद में उनके ऊपर छोटे—छोटे कण जमा होते जाते हैं तथा अन्त में इनके ऊपर एक महीन एवं बारीक कणों की परत जमा हो जाती है। इस प्रकार कणों के जमाव के कारण इन शैलों में जीवाश्म पाए जाते हैं। आरम्भिक अवस्था में इन शैलों का निर्माण समतल भूमि एवं जल—क्षेत्रों में होता है, परन्तु कालान्तर में इन्हीं शैलों द्वारा ऊँचे—ऊँचे वलित पर्वतों का निर्माण भी होता है। अवसादी शैलों में बलुआ पत्थर, शैल, चिकनी मिट्टी, चूने का पत्थर, खड़िया, डोलोमाइट, कोयला आदि सम्मिलित हैं। इन शैलों को जोड़ने के मुख्य तत्त्व कैलसाइट, लौह—मिश्रण तथा सिलिका आदि हैं। अवसादी शैलों को निम्न तीन वर्गों में बाँटा गया है—

(i) याँत्रिक क्रियाओं द्वारा निर्मित अवसादी शैल; जैसे— चीका मिट्टी, बलुआ पत्थर तथा लोएस आदि।

(ii) जैविक तत्त्वों द्वारा निर्मित अवसादी शैल; जैसे— चूना पत्थर, कोयला आदि।

(iii) रासायनिक तत्त्वों द्वारा निर्मित अवसादी शैल; जैसे— खड़िया मिट्टी, सेलखड़ी आदि।

8. जल–चक्र का एक स्वच्छ चित्र बनाइए।

उ०–

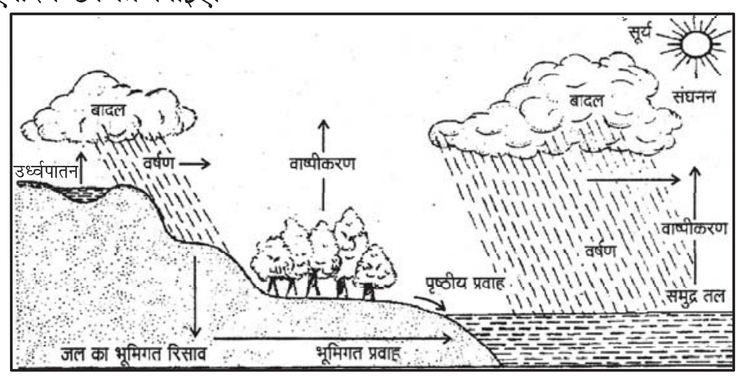

जल-चक्र

❖ विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

1. पर्यावरण पर एक लेख लिखिए।

उ०– **पर्यावरण का अर्थ–** हमारे चारों और का भौतिक परिवेश पर्यावरण कहलाता हैं। पर्यावरण शब्द की उत्पत्ति दो शब्दों से मिलकर हुई है। 'परि' और 'आवरण'। 'परि' शब्द का अर्थ है चारों ओर से और 'आवरण' शब्द का अर्थ है ढके हुए। अत: हम कह सकते हैं कि ''पर्यावरण वह सब कुछ है, जो हम से अलग होते हुए भी हमें ढके हुए है और हमारे दैनिक जीवन पर अपना प्रभाव डालता है।'' भौगोलिक दृष्टि से पर्यावरण के अन्तर्गत उन सभी शक्तियों, पदार्थों, घटनाओं एवं परिस्थितियों को सम्मिलित किया जाता है जो परोक्ष या प्रत्यक्ष रूप से मानव क्रिया—कलापों को प्रभावित करती हैं और उसके लिए एक निश्चित क्षेत्र का निर्धारण भी करती हैं। अत: यह कहना सर्वथा उचित है कि पर्यावरण एक व्यापक धारणा है जिसका विस्तार अनन्त तथा असीम है। पर्यावरणीय परिस्थितयाँ एक स्थान से दूसरे स्थान पर परिवर्तित होती रहती हैं अर्थात् पर्यावरणीय परिस्थितियाँ सर्वत्र एकसमान नहीं पाई जाती हैं।

पर्यावरण की परिभाषाएँ– विद्वानों द्वारा पर्यावरण को विभिन्न रूपों में परिभाषित किया गया है। कुछ विद्वानों द्वारा दी गई परिभाषाएँ निम्नवत हैं—

(i) फिटिंग के अनुसार— ''जीवों की परिस्थिति के समस्त तत्त्व या घटक मिलकर पर्यावरण कहलाते हैं।''

(ii) हर्सकोविट्ज के अनुसार— ''पर्यावरण उन समस्त बाह्य दशाओं तथा प्रभावों का योग है, जो प्राणी के जीवन तथा विकास पर प्रभाव डालते हैं।''

(iii) तासले के अनुसार— ''चारों ओर पाई जाने वाली उन प्रभावकारी दशाओं का योग, जिसमें जीव रहते हैं, पर्यावरण कहलाता है।''

उपरोक्त परिभाषाओं के विश्लेषण से ज्ञात होता है कि मानव के क्रिया—कलापों व भौतिक तत्त्वों का निर्धारण पर्यावरण के द्वारा किया जाता है। मानव—जीवन की दशाओं का योग ही पर्यावरण है।

पर्यावरण के घटक– पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु तथा वनस्पति पर्यावरण के पाँच घटक हैं और ये घटक ही मनुष्य के भोजन, वस्त्र, निवास, पेयजल, व्यवसाय आदि को प्रभावित करते हैं। पर्यावरण की ही भाँति मानव शरीर की रचना भी स्वास्थ्य विज्ञान के अनुसार इन्ही पाँच तत्त्वों से हुई है।

पर्यावरण के अंग–

पर्यावरण के अंग

स्थलमण्डल | **वायुमण्डल** | **जलमण्डल** | **जैवमण्डल**

पर्यावरण अनेक तत्त्वों के समूह का नाम है। प्रत्येक तत्त्व का इसमें महत्त्वपूर्ण स्थान है। पर्यावरण के अंगों या तत्त्वों को अग्रलिखित चार भागों में बाँटा जाता है—

(i) **स्थलमण्डल–** यह पृथ्वी का स्थलीय शुष्क ठोस भाग है। इसके अन्तर्गत पृथ्वी की रचना, उसकी विभिन्न आकृतियाँ, मिट्टी व चट्टानें, रेत, विभिन्न शक्तियों द्वारा पृथ्वी—तल पर किए जाने वाले परिवर्तन, भूमिगत जल, ऊर्जा तथा इनके मानव—जीवन पर पड़ने वाले प्रभावों आदि को शामिल किया जाता है।

(ii) **वायुमण्डल–** पृथ्वी के चारों ओर स्थित वायु के आवरण को 'वायुमण्डल' कहते हैं। यह समुद्र तल के ऊपर लगभग 320 किलोमीटर तक फैला होता है। समुद्र तल से लगभग 16 किमी० ऊपर तक का भाग वायु एवं मौसम से प्रभावित होता है। इसी कारण समुद्र की सतह से ऊपर 6 किमी० की ऊँचाई तक वायु में जीवधारी पाए जाते हैं।

(iii) **जलमण्डल–** यह पृथ्वी का जलीय भाग है, जिसमें नदियों, सागरों, महासागरों, खाड़ियों, महासागरों के जल में तापमान तथा लवणता की मात्रा, महासागरों के जल की गतियों आदि को शामिल किया जाता है।

(iv) **जैवमण्डल–** वायु, जल एवं थल का वह भाग जिसमें जीवधारी पाए जाते हैं, 'जैवमण्डल' कहलाता है। इसमें इन बातों को सम्मिलित किया जाता है— (क) वनस्पति, (ख) जीव—जन्तु तथा मनुष्य, (ग) जलवायु से वनस्पति तथा जीव—जन्तुओं का सह—सम्बन्ध, (घ) पर्यावरण का असन्तुलन, इनसे सम्बन्धित समस्याएँ एवं उनका समाधान।

जैवमण्डल का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण अंग मानव है।

पर्यावरण के प्रकार– पर्यावरण के निम्नलिखित दो प्रकार होते हैं—

(i) **प्राकृतिक पर्यावरण या भौतिक पर्यावरण–** प्राकृतिक पर्यावरण में स्थलमण्डल, वायुमण्डल, जलमण्डल तथा जैवमण्डल के उन सभी तत्त्वों को शामिल किया जाता है जो हमें पृथ्वी पर प्राकृतिक रूप से मिलते हैं। ये सभी तत्त्व मनुष्य को प्रकृति द्वारा नि:शुल्क प्राप्त होते हैं।

(ii) **सांस्कृतिक पर्यावरण–** सांस्कृतिक पर्यावरण से अभिप्राय 'मानव निर्मित पर्यावरण' से है। उदाहरणार्थ— भोजन, वस्त्र, भाषा, वेशभूषा, कृषि, कला, व्यवसाय, उद्योग, धर्म, साहित्य, परिवहन, संचार, विधान तथा सामाजिक संस्थाएँ इत्यादि। अन्य शब्दों में हम कह सकते हैं कि मानव अपने प्राकृतिक पर्यावरण में, अपने ज्ञान की सहायता से अपनी आवश्यकतानुसार जिस प्रकार के पर्यावरण का निर्माण करता है, उसे सांस्कृतिक पर्यावरण कहते हैं।

पर्यावरण का महत्त्व– मनुष्य की तीन प्रमुख आवश्यकताओं रोटी, कपड़ा व मकान की पूर्ति का स्रोत पर्यावरण ही है। भविष्य की प्रगति भी पर्यावरण पर ही निर्भर है। पर्यावरण जीवधारियों के अस्तित्व के लिए भी बहुत महत्त्वपूर्ण है। पृथ्वी के चारों ओर वायु का सघन आवरण है जिसमें ऑक्सीजन गैस पाई जाती है, जोकि समस्त जीवधारियों के लिए आवश्यक है। पर्यावरण की उपस्थिति के कारण ही पृथ्वी पर जीवन पाया जाता है। पर्यावरण का महत्त्व निम्नलिखित है—

(i) पर्यावरण प्राण वायुदायिनी है।

(ii) पर्यावरण की आधारभूत इकाई जैवमण्डल है, जिसमें जीवन के विविध रूप पाए जाते हैं।

(iii) भौतिक पर्यावरण संसाधनों का अकूत भण्डार है, जो समस्त जीवों के कल्याण एवं समृद्धि का आधार है।

(iv) पर्यावरण में विद्यमान समस्त भौतिक एवं जैविक तत्त्व प्राकृतिक नियमों के अन्तर्गत कार्य करते हैं, जिससे पर्यावरणीय सन्तुलन बना रहता है।

पर्यावरण का मानव जीवन में बहुत महत्त्व है। यदि पर्यावरण संतुलित है तो जैवमण्डल की क्रियाशीलता व्यवस्थित रहती है। अत: हमारा दायित्व है कि हम पर्यावरण की सुरक्षा में सदैव तत्पर रहें।

पर्यावरण की गतिशीलता– पर्यावरण के घटकों में हमेशा कुछ न कुछ परिवर्तन अवश्य होते रहते हैं। क्योंकि परिवर्तन प्रकृति का नियम है। कुछ परिवर्तन तो ऐसे होते हैं कि उनका पता ही नहीं चल पाता, जबकि कुछ परिवर्तन अचानक हो जाते हैं। यदि इतिहास की परतों को पलट कर देखा जाए तो ज्ञात होगा की द्वीपों, महाद्वीपों, सागरों, महासागरों तथा झीलों के स्वरूप भी

कालान्तर में परिवर्तित होते रहते हैं, जिसका कारण भू—पर्पटी में होने वाली हलचल है। हिमालय पर्वत के उच्चतम शिखरों पर अवसादी शैलों के निक्षेप के परत इंगित करते हैं कि वहाँ कभी उथले सागर रहे होंगे। स्पष्ट है कि भौतिक पर्यावरण में परिवर्तन के साथ—साथ जैव पर्यावरण भी परिवर्तित हुआ होगा। पर्यावरण की परिवर्तनशीलता में मानव के क्रिया—कलाप सबसे बड़े कारक हैं।

2. वायुमण्डलीय संघटन को विस्तारपूर्वक समझाइए।

उ०– **वायुमण्डल का संघटन–** पृथ्वी के चारों ओर घूमते हुए गैसों (वायु) के आवरण को वायुमण्डल के कुल परिमाण (संहति) का 99% पृथ्वी के धरातल से 32 किलोमीटर की ऊँचाई तक पाया जाता है। धरातल के निकट इसका घनत्व सर्वाधिक होता है, जो ऊँचाई के साथ—साथ तेजी से घटता है। निचली परतों में गैसों का मिश्रण लगभग समान रहता है। वायुमण्डल का संघटन विभिन्न गैसों, जलवाष्प, धूलकणों आदि से मिलकर बना हुआ है, जिसका विवरण निम्नलिखित है—

(i) गैसें– वायुमण्डल की संरचना में विभिन्न गैसों का योगदान रहता है। यद्यपि वायु कई गैसों का मिश्रण है, परन्तु मुख्य रूप से इसमें दो ही गैसें नाइट्रोजन 78% और ऑक्सीजन 21% मिश्रित रहती हैं, जो सम्पूर्ण वायुमण्डल का 99 प्रतिशत भाग है। शेष 1% में अन्य गैसें; जैसे— कार्बन डाइ—ऑक्साइड, हीलियम, नियॉन, क्रिप्टॉन, जेनॉन, ओजोन आदि सम्मिलित हैं। वायुमण्डल के निचले भाग में भारी गैसें; जैसे— कार्बन डाइ—ऑक्साइड 20 किमी० तक, ऑक्सीजन तथा नाइट्रोजन 100 किमी० तक और हाइड्रोजन 125 किमी० की ऊँचाई तक पाई जाती हैं। इनके अतिरिक्त अधिक हल्की गैसें; जैसे—हीलियम, नियॉन, क्रिपटॉन, जेनॉन, ओजोन आदि 125 किमी० से अधिक ऊँचाई पर पाई जाती हैं।

(ii) जलवाष्प– जलवाष्प का वायुमण्डल में महत्त्वपूर्ण स्थान होता है। इसकी अधिकतम मात्रा 5% तक होती है। जलवाष्प की यह मात्रा धरातल के विभिन्न भागों; जैसे—महासागरों, सागरों, झीलों, जलाशयों, मिट्टियों, वनस्पति आदि के वाष्पीकरण द्वारा वायुमण्डल में विलीन होती रहती है। वाष्पीकरण का कम या अधिक होना तापमान की कमी या वृद्धि के ऊपर निर्भर करता है। वायुमण्डल की निचली परत में जलवाष्प की मात्रा प्रत्येक भाग में कम या अधिक अवश्य ही मिलती है। वायुमण्डल की ऊँचाई बढ़ने के साथ—साथ जलवाष्प की मात्रा घटती जाती है; अर्थात् 7.5 किमी० की ऊँचाई पर वायुमण्डल में जलवाष्प नहीं पाई जाती। विषुवत् रेखा से ध्रुवों की ओर जाने पर वायुमण्डल में जलवाष्प की मात्रा घटती जाती है। वायुमण्डलीय घटनाएँ, जैसे—बादल, वर्षा, तुषार, हिमपात, ओस, ओला, पाला आदि, जलवाष्प पर ही आधारित हैं। जलवाष्प की यह मात्रा सूर्य के विकिरण के लिए पारदर्शक शीशे की भाँति कार्य करती है।

(iii) धूल–कण– सूर्य को प्रकाश में देखने से मालूम होता है कि वायुमण्डल में धूल के ठोस तथा सूक्ष्म कण स्वतन्त्रतापूर्वक विचरण करते रहते हैं। ये धूल के कण भूतल से अधिक ऊँचाई पर नहीं जा पाते। भू—पृष्ठ की मिट्टी के अतिरिक्त ये धूल—कण, धुआँ, ज्वालामुखी की धूल तथा समुद्री लवण से भी उत्पन्न होते हैं। ये धूल के कण जलवाष्प को सोख लेते हैं। वर्षा कराने में इनका महत्त्वपूर्ण योगदान होता है। सूर्य की किरणों का वायुमण्डल में बिखराव इन्हीं धूल—कणों के द्वारा होता है। इन्हीं के कारण आकाश विभिन्न रंगों में दिखाई पड़ता है।

3. शैलों की परिभाषा देते हुए इसके सभी प्रकारों को स्पष्ट कीजिए।

उ०– **शैल या चट्टान–** भू—पर्पटी की संरचना जिन तत्त्वों से हुई है, उन्हें शैल या चट्टान कहते हैं। इसमें अनेक प्रकार के खनिज एवं लवणों का मिश्रण होता है। उत्पत्ति के आधार पर शैलों को तीन भागो मे बाँटा गया है—

शैलों के प्रकार

आग्नेय शैल	**अवसादी शैल**	**रूपान्तरित शैल**
भूगर्भ का तरल एवं तप्त मैग्मा या लावा भूपृष्ठ पर जमने से निर्मित	ताप एवं दाब के कारण रूप परिवर्तन द्वारा निर्मित	पवन, प्रवाहित जल, हिमानी आदि द्वारा समुद्र तल एवं पृष्ठ पर परतों में जमाव द्वारा निर्मित

(i) आग्नेय शैल– जो चट्टानें गर्म और पिघले चट्टानी पदार्थों के ठण्डे होने से कठोर हो गई हैं, उन्हें आग्नेय शैल कहते हैं। आग्नेय चट्टानें रवेदार होती हैं। इनकी उत्पत्ति पृथ्वी की उत्पत्ति के तुरन्त बाद हुई इसलिए इन्हें प्राथमिक शैल भी कहते हैं। स्थिति एवं संरचना के अनुसार आग्नेय शैल निम्न दो प्रकार की होती हैं— (अ) अन्त: निर्मित आग्नेय, (ख) बाह्य आग्नेय शैल।

(अ) अन्त: निर्मित आग्नेय शैल– जब मैग्मा सतह से नीचे ठंडा होकर कठोर रूप धारण कर ले तो आन्तरिक आग्नेय शैल का निर्माण होता है। इसके भी निम्नलिखित दो प्रकार होते हैं—

(क) पातालीय शैल— पृथ्वी के भीतर बहुत अधिक गहराई पर इसका निर्माण होता है। इसके रवे बड़े—बड़े होते हैं। ग्रेनाइट शैल इसी का उदाहरण है।

(ख) मध्यवर्ती शैल— ज्वालामुखी उद्‌गार के समय धरातलीय अवरोध के कारण मैग्मा दरारों, छिद्रों एवं नली में

जमकर ठोस रूप धारण कर लेता है। यही मध्यवर्ती शैल हैं। डोलेराइट और मैग्नेटाइट इन शैलों के महत्त्वपूर्ण उदाहरण हैं।

(ब) **बाह्य आग्नेय शैल–** जब मैग्मा भू—पर्पटी के ऊपर आकर तीव्रता से ठंडा होकर ठोस रूप धारण करके बाह्य शैल का निर्माण करता है तो इस प्रकार के शैल को बाह्य आग्नेय शैल कहते हैं। इस प्रकार के शैलों को ज्वालामुखी शैल भी कहते हैं। इनके रवे बहुत छोटे होते हैं। बेसाल्ट इसका उदाहरण है।

(ii) अवसादी शैल– भूतल के 75% भाग पर अवसादी या परतदार शैलों का विस्तार है, शेष 25% भाग में आग्नेय एवं कायान्तरित शैल विस्तृत हैं। अवसादी शैलों का निर्माण सागरों, झीलों, जलाशयों आदि में क्रम से अवसादों के जमा होते जाने से होता है। इन शैलों के कणों के जमने का क्रम भी एक निश्चित गति से होता है। पहले मोटे कण जमा होते हैं, बाद में उनके ऊपर छोटे—छोटे कण जमा होते जाते हैं तथा अन्त में इनके ऊपर एक महीन एवं बारीक कणों की परत जमा हो जाती है। इस प्रकार कणों के जमाव के कारण इन शैलों में जीवाश्म पाए जाते हैं। आरम्भिक अवस्था में इन शैलों का निर्माण समतल भूमि एवं जल—क्षेत्रों में होता है, परन्तु कालान्तर में इन्हीं शैलों द्वारा ऊँचे—ऊँचे वलित पर्वतों का निर्माण भी होता है। अवसादी शैलों में बलुआ पत्थर, शैल, चिकनी मिट्टी, चूने का पत्थर, खड़िया, डोलोमाइट, कोयला आदि सम्मिलित हैं। इन शैलों को जोड़ने के मुख्य तत्त्व कैलसाइट, लौह—मिश्रण तथा सिलिका आदि हैं। अवसादी शैलों को निम्न तीन वर्गों में बाँटा गया है।

(क) यांत्रिक क्रियाओं द्वारा निर्मित अवसादी शैल; जैसे— चीका मिट्टी, बलुआ पत्थर तथा लोएस आदि।
(ख) जैविक तत्त्वों द्वारा निर्मित अवसादी शैल; जैसे— चूना पत्थर, कोयला आदि।
(ग) रासायनिक तत्त्वों द्वारा निर्मित अवसादी शैल; जैसे— खड़िया मिट्टी, सेलखड़ी आदि।

(iii) रूपान्तरित शैल– रूपान्तरित शैलों का निर्माण आग्नेय एवं परतदार शैलों के रूप में परिवर्तन के कारण होता है, इसलिए इन्हें रूपान्तरित शैल कहते हैं। इन्हें कायान्तरित शैल के नाम से भी जानते हैं। संगमरमर रूपान्तरित शैल है।

4. जलमण्डल की विवेचना कीजिए।

उ०– **जलमण्डल–** भूमण्डल का लगभग 71% (35,71,00,000 वर्ग किमी०) क्षेत्र जल से भरा है। इस क्षेत्र को जलमण्डल कहते हैं। अन्य शब्दों में जलमण्डल से अर्थ जल की उस परत से है जो पृथ्वी की सतह पर महासागरों, झीलों, नदियों तथा अन्य जलाशयों के रूप में फैली है। पृथ्वी की सतह के कुल क्षेत्रफल के अधिकतम भाग पर जल का विस्तार है, अत: पृथ्वी को जलीय ग्रह भी कहते हैं। भूतल पर जितना भी जल उपलब्ध है, उसका 97% महासागरों में 2% भाग हिम के रूप में और शेष 1% ताजे जल के रूप में उपलब्ध है।

विश्व के महासागर–

नाम	क्षेत्रफल (वर्ग किमी० में)	गहरा स्थान (मीटर में)	प्रतिशत
प्रशान्त महासागर	16,53,84,000	मेरियाना गर्त 11,033	51.63
अंटलाटिक महासागर	8,22,17,000	पुर्टोरिको गर्त 9,200	23.61
हिन्द महासागर	7,34,81,000	सुण्डा गर्त 8,047	21.23
आर्कटिक महासागर	1,40,56,000	5,450	1.23
अन्टार्कटिका महासागर	अप्राप्य	अप्राप्य	—

जल–चक्र– जल चक्र पृथ्वी पर उपलब्ध जल के एक रूप से दूसरे में परिवर्तित होने और एक भण्डार से दूसरे भण्डार या एक स्थान को गति करने की चक्रीय प्रक्रिया है, जिसमें कुल जल की मात्रा का क्षय नहीं होता, बस रूप परिवर्तन और स्थान परिवर्तन होता है। अत: यह प्रकृति में जल संरक्षण के सिद्धान्त की व्याख्या है।

इसके मुख्य चक्र में सर्वाधिक उपयोग में लाए जाने वाला जलरूप पानी (द्रव) है, जो वाष्प बनकर वायुमण्डल में जाता है, फिर संघनित होकर बादल बनता है और फिर बादल बनकर ठोस (हिमपात) या द्रव रूप में वर्षा के रूप में बरसता है। हिम पिघलकर पुन: द्रव में परिवर्तित हो जाता है। इस प्रकार जल की कुल मात्रा स्थिर रहती है। यह पृथ्वी के सम्पूर्ण पर्यावरण रूपी पारिस्थितिक तन्त्र में एक भूजैवरसायन चक्र का उदाहरण है।

जलमण्डल का महत्त्व–

(i) वर्षा में सहायक– महासागरों में जल वाष्पीकरण की क्रिया से बादल बनते हैं, जो पृथ्वी पर वर्षा करते हैं।

(ii) खनिज तेल व अन्य खनिज– महासागरीय नितल में खनिज तेल और अन्य खनिज के विशाल भण्डार पाए जाते हैं जो मानवजाति के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण होते हैं।

(iii) जल ही जीवन है– जलमण्डल के विभिन्न स्रोतों से जल की प्राप्ति होती है। सर्वविदित है कि जल के बिना मानव तथा

अन्य जीवों का जीवन ही सम्भव नहीं है।

(iv) परिवहन तथा व्यापार में सहायक– महासागर परिवहन के महत्त्वपूर्ण साधन हैं। अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का अधिकांश भाग समुद्रों के मार्ग से सम्पन्न होता है।

5. ज्वार–भाटा कोसमझाते हुए मानव-जीवन पर इसके प्रभावों को स्पष्ट कीजिए।

उ०– **ज्वार–भाटा–** सागरों एवं महासागरों में जल का सदैव परिसंचरण होता रहता है। दिन में यह जल लगभग दो बार ऊपर उठता है और दो बार नीचे गिरता है जल का यह उतार—चढ़ाव ही ज्वार भाटा कहलाता है। समुद्री जल के ऊपर उठने की क्रिया को ज्वार तथा जल के नीचे गिरने की क्रिया को भाटा कहते हैं। ज्वार भाटा तथा चन्द्रमा में परस्पर गहरा सम्बन्ध है। इस सम्बन्ध का कारण न्यूटन ने खगोलीय पिण्डों में पास्परिक आकर्षण बताया था। ज्वार भाटा एक अत्यन्त जटिल घटना है। ज्वार—भाटा में एक स्थान से दूसरे स्थान पर निम्न कारणों से अन्तर पाया जाता है—

(i) पृथ्वी के सन्दर्भ में सूर्य और चन्द्रमा की स्थितियों में अन्तर।

(ii) महासागरों की आकृति और विस्तार में भिन्नताएँ।

(iii) पृथ्वी पर जलराशि का असमान वितरण।

(iv) पृथ्वी के सन्दर्भ में चन्द्रमा की गति।

ज्वार–भाटा का मानव जीवन पर प्रभाव– ज्वार भाटा मानव जीवन पर निम्नलिखित प्रकार से प्रभाव डालते हैं—

(i) ज्वार—भाटा के कारण शंख, कवच, मछलियाँ, कौड़ियाँ, सीप, स्पंज आदि समुद्र तट पर आ जाती हैं।

(ii) समुद्री जल का संचरण नमक बनाने के लिए क्यारियों में एकत्रित हो जाता है।

(iii) ज्वारीय जल से विद्युत—शक्ति को विकसित किया जाता है।

(iv) ज्वार—भाटा समुद्र—तट की सफाई करता है, जिससे तटीय नगरों का कूड़ा—करकट बहकर समुद्र में चला जाता है।

(v) ज्वारीय धाराओं द्वारा तटीय भागों में अपरदन और निक्षेपण से तट पर कई स्थलाकृतियों का विकास होता है।

6. जैवमण्डल के तत्वों के परस्पर समबन्ध को समझाइए।

उ०– **जैवमण्डल–** जैवमण्डल का तात्पर्य उस संकीर्ण क्षेत्र से है, (जिसमें स्थलमण्डल, जलमण्डल तथा वायुमण्डल में कुछ ऊँचाई तक) जहाँ सूक्ष्म जीवन पाया जाता है। जैवमण्डल हमारी पृथ्वी का एक विशिष्ट अंग है। जैवमण्डल के प्रमुख तत्त्व वनस्पति के विविध प्रकार, जन्तुओं के विविध प्रकार और मानव समूह हैं। मानव स्वयं भी जैवमण्डल का एक अंग है। जैवमण्डल महासागरों की गहराई से वायुमण्डलों की ऊपरी परतों, जहाँ जीवन सम्भव है, तक फैला हुआ है।

जैवमण्डल के तत्त्व– जैवमण्डल के प्रमुख तत्त्व वनस्पति के विविध प्रकार, जन्तुओं के विविध प्रकार और मानव समूह हैं। वनस्पति जगत में समुद्री पेड़—पौधों से लेकर पर्वतों की उच्च श्रेणियों तक पाए जाने वाले वनस्पति के विविध प्रकार सम्मिलित हैं। जन्तु—जगत में समुद्रों में पाए जाने वाले विविध जीव, मिट्टियों को बनाने वाले जीवाणु और स्थल पर पाए जाने वाले विविध जीव—जन्तु शामिल हैं। जैवमण्डल के ये अंग प्राकृतिक वातावरण के तत्त्वों— वायु, जल, सूर्य के प्रकाश और मिट्टियों पर प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से निर्भर करते हैं। इनमें से किसी एक तत्त्व की भी कमी होने पर जैवमण्डल पर विपरीत प्रभाव पड़ता है।

जैव मण्डल के तत्वों में परस्पर सम्बन्ध– वनस्पति, जीव—जन्तुओं और मानव का परस्पर गहरा सम्बन्ध है। जीव—जन्तुओं में परस्पर अवलम्बन पाया जाता है। उदाहरण के लिए शाकाहारी जीवों पर मांसाहारी जीव निर्भर करते हैं।

वनस्पति के विभिन्न प्रकरों में भी परस्पर निर्भरता पाई जाती है। किसी वन—क्षेत्र में पाये जाने वाले अनेक वृक्ष, झड़ियों और घासों की परस्पर निर्भरता देखने को मिलती है।

किसी भौगोलिक प्रदेश के पशुओं और पौधों में भी परस्पर गहरा सम्बन्ध होता है जो मिट्टियों, जलवायु, जल और वायुमण्डल की पृष्ठ्भूमि में पनपता है क्योंकि ये सभी पारिस्थितिकीतन्त्र के घटक होते हैं। अतः स्मरण रहे किसी भौगोलिक प्रदेश में जैवमण्डल के तत्वों का सम्मिलन कोई संयोग की बात नहीं हे वरन् यह पूर्णतया कारण—प्रभाव की कसौटी पर खरे उतरने वाले वैज्ञानिक आधार पर होता है। अतः जैवमण्डल के तत्वों में मानव—हस्तक्षेप के कारण असन्तुलन उत्पन्न होना विभिन्न प्रकार की प्राकृतिक विपदाओं का द्योतक होता है। आज विश्व के विभिन्न भागों में पेड—पौधों और वन्य जीवों की संख्या लगातार तेजी से घटती जा रही है। अनेक जरतियों के विलुप्त होने का खतरा निरन्तर बढ़ता जा रहा है।

❖ **मानचित्र सम्बन्धी अभ्यास कार्य**

अध्यापक की सहायता से विद्यार्थी स्वयं करें।

❖ **प्रोजेक्ट कार्य**

अध्यापक की सहायता से विद्यार्थी स्वयं करें।

31 पारिस्थितिक तन्त्र-संरचना, महत्ता एवं सन्तुलन

अभ्यास

❖ **बहुविकल्पीय प्रश्न**

उ०– बहुविकल्पीय प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्य पुस्तक के पृष्ठ संख्या—262 व 263 का अवलोकन कीजिए।

❖ **अतिलघु उत्तरीय प्रश्न**

उ०– अतिलघु उत्तरीय प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्य पुस्तक के पृष्ठ संख्या—263 का अवलोकन कीजिए।

❖ **लघु उत्तरीय प्रश्न**

1. पारिस्थितिक तन्त्र की परिभाषा को विभिन्न विद्वानों द्वारा स्पष्ट कीजिए।

उ०– अजैव तथा जैव पर्यावरण के विभिन्न तत्त्वों के बीच पारस्परिक सम्बन्धों के अध्ययन करने वाले विज्ञान को **पारिस्थितिकी** कहते हैं। मनुष्य पारिस्थितिक तन्त्र का सबसे महत्त्वपूर्ण अंग है। वह अपनी समस्त आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए पारितन्त्र पर निर्भर करता है।

पारिस्थितिक तन्त्र की कुछ प्रमुख परिभाषाएँ निम्नलिखित हैं—

टेन्सले के अनुसार— ''यह एक ऐसी प्रणाली या व्यवस्था है, जिसमें पर्यावरण के सभी अजैविक तथा जैविक तत्त्वों के बीच अंतर्क्रिया तथा सन्तुलन की स्थिति पाई जाती है।

पीटर हेगेट के अनुसार— ''पारिस्थितिक तन्त्र ऐसी पारिस्थितिक व्यवस्था है, जिसमें पादप तथा जीव—जन्तु अपने पर्यावरण से पोषण—शृंखला द्वारा संयुक्त रहते हैं।''

इ०पी०ओडम के अनुसार— ''पारिस्थितिक तन्त्र के अध्ययन में हम प्रकृति के शरीर, रचना एवं कार्य का अध्ययन करते हैं।''

आर०एल० लिंडमैन के अनुसार— ''किसी भी आकार की किसी भी क्षेत्रीय इकाई में भौतिक रासायनिक जैविक क्रियाओं द्वारा निर्मित व्यवस्था पारिस्थितिक तन्त्र कहलाती है।''

2. प्राथमिक उपभोक्ता तथा तृतीयक उपभोक्ता में अन्तर स्पष्ट कीजिए।

उ०– प्राथमिक उपभोक्ता के अन्तर्गत वे समस्त जीव—जन्तु सम्मिलित है, जो अपना भोजन मूल उत्पादक अथवा पेड़—पौधों से प्राप्त करते हैं। जैसे— गाय, भैंस, बकरी, खरगोश, हिरन, हाथी, कीट—पतंगे, तितलियाँ आदि। तृतीयक उपभोक्ता के अन्तर्गत वे माँसाहारी प्राणी सम्मिलित हैं, जो अन्य माँसाहारी जीव—जन्तुओं को खाते हैं। जैसे— शेर, चीता, मगरमच्छ, साँप आदि।

3. पारिस्थितिक तन्त्र को रेखा चित्र द्वारा समझाइए।

उ०– पृथ्वी पर पाए जाने वाले सभी जीव पारिस्थितिकी प्रक्रिया से एक—दूसरे से गहराई से जुड़े होते हैं। पशु अपनी ऊर्जा के लिए सीधे अथवा परोक्ष रूप से पौधों पर निर्भर होते हैं। इसी प्रकार पौधों को भी विकास के लिए सूर्य के प्रकाश, पानी, कार्बन डॉइऑक्साइड (CO_2), तथा अन्य पोषितों (nutrients) की जरूरत होती है। पौधे मृदा या जल में उत्पन्न होते हैं। मृदा (Soil) या जल में मिलने वाले या उसे उपजाऊ रखने वाले पोषित भी तापमान, वर्षा, बाढ़, अग्नि, चट्टानों के प्रकार आदि से प्रभावित होते हैं, अर्थात् वर्षा (rainfall) में अन्तर से पौधों को प्राप्त होने वाले रासायनिक पोषितों की उपलब्धता में अन्तर आ सकता है जो आगे उन पर निर्भर पशुओं को प्रभावित कर सकते हैं। यह मृदा→पादप→जानवरों का आपसी सम्बन्ध एक—तरफा ही नहीं है। जानवर→पादप→सूक्ष्म जीव→मृदा के निर्माण व उसे उपजाऊ बनाए रखने में सहायक है। वस्तुतः जैविक प्रक्रिया (biotic process)

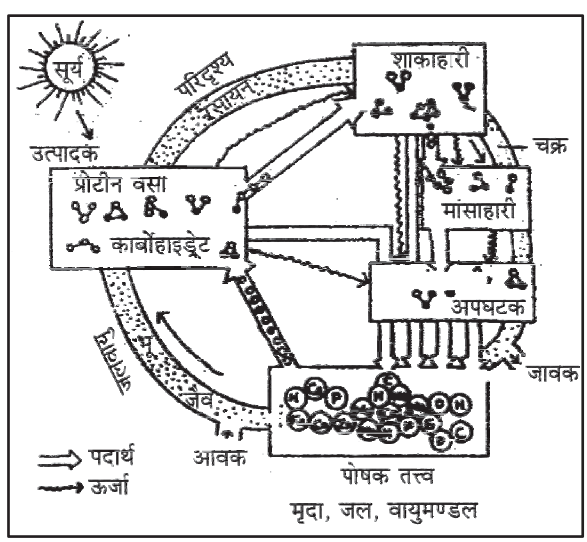

पारिस्थितिक तन्त्र का कार्यात्मक स्वरूप

द्वारा जीव आपस में एक—दूसरे से तथा साथ ही अपने भौतिक पर्यावरण (तापमान, वर्षा, मिट्टी आदि) की अन्तर्क्रिया से संयुक्त होते हैं।। यह परस्पर अन्तर्सम्बन्ध से ही निर्धारित होता है कि कौन—सा जीव किस क्षेत्र में रह सकता है क्योंकि जीवों की अपनी भोजन व भौतिक पर्यावरण सम्बन्धी अनुकूलता होती है। पारिस्थितिकीय तन्त्र (ecosystem) एक ऐसी संकल्पना है जो पृथ्वी या एक क्षेत्र विशेष में जीवों की आपसी तथा साथ ही भौतिक पर्यावरण से उनके सम्बन्धों को स्पष्ट करती है। सर्वप्रथम ब्रिटिश पारिस्थितिकविद् **ए०जी० टेन्सले** (A.G. Tansley) ने सन् 1935 में 'इकोसिस्टम' शब्द का प्रयोग किया। उनके अनुसार **''पारिस्थितिक-तन्त्र वह तन्त्र है जिसमें पर्यावरण एवं अजैविक कारक अन्तर्सम्बन्धित होते हैं।''**

4. पारिस्थितिकीय सन्तुलन को समझाइए।

उ०– पारिस्थितिकीय सन्तुलन– किसी पारितन्त्र या पर्यावास जीवों के समुदाय में गतिशील साम्यावस्था को पारिस्थितिकीय सन्तुलन कहा जाता है। गतिशील साम्यावस्था तब आती है, जब पारितन्त्र के विविध चक्रों और ऊर्जा प्रवाहों में पूरा सामंजस्य स्थापित हो जाए। पारिस्थितिकीय सन्तुलन की अवस्था निम्नांकित अनेक दशाओं मे सम्भव होती है—

(i) जीवधारियों की विविधता सापेक्षिक रूप से स्थायी रहे, अर्थात् जैवमण्डल में हर प्रजाति की संख्या इस प्रकार निश्चित हो जाए कि किसी भी जीव के लिए खाद्य—पदार्थ की कमी न हो। क्रमिक परिवर्तन तो हो लेकिन यह परिवर्तन प्राकृतिक अनुक्रमण के द्वारा हो।

(ii) यह सन्तुलन विभिन्न जीवों में प्रतिस्पर्धा व आपसी सहयोग से होता है।

(iii) कुछ प्रजातियों के पर्यावरण द्वारा प्रदत्त जिंदा रहने के संघर्ष से भी सन्तुलन प्राप्त किया जा सकता है।

(iv) सन्तुलन इस बात पर भी निर्भर करता है कि कुछ प्रजातियाँ अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए किस प्रकार दूसरी प्रजातियों पर निर्भर करती हैं। उदाहरणार्थ, छोटे और कमजोर जीव अर्थात् प्राथमिक उपभोक्ताओं (हिरण, जेबरा, भैंस, बकरी, भेड़ इत्यादि) की भोजन की कम आवश्यकताओं के कारण उनकी संख्या अधिक व प्रजनन—दर भी तीव्र होती है। बड़े अर्थात् द्वितीय व तृतीय स्तर के उपभोक्ता (बाघ, शेर) संख्या में कम होते हैं और उनकी प्रजनन—दर भी कम होती है। इन मांसाहारी जन्तुओं के कारण ही शाकाहारी जन्तुओं की संख्या नियंत्रित रहती है।

❖ विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

1. पारिस्थितिक तन्त्र का अर्थ बताते हुए इसकी विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।

उ०– पारिस्थितिक तन्त्र– पारिस्थितिक तन्त्र ऐसी पारिस्थितिक व्यवस्था है, जिसमें पादप तथा जीव—जन्तु अपने पर्यावरण से पोषण—शृंखला द्वारा अन्तर्सम्बन्धित होते हैं।

'पारिस्थितिक तन्त्र' शब्द को 1930 ई० में रोय क्लाफाम ने एक पर्यावरण के संयुक्त शारीरिक और जैविक घटकों को निरूपित करने के लिए बनाया था। ब्रिटिश वैज्ञानिक टेन्सले ने इस शब्द की व्याख्या करते हुए कहा था कि ''यह पूरी प्रणाली न केवल जीव—परिसर है, अपितु वह उन सभी भौतिक कारकों का पूरा परिसर है, जिसे हम पर्यावरण कहते हैं।''

अजैव तथा जैव पर्यावरण के विभिन्न तत्त्वों के बीच पारस्परिक सम्बन्धों के अध्ययन करने वाले विज्ञान को **पारिस्थितिकी** कहते हैं। मनुष्य पारिस्थितिक तन्त्र का सबसे महत्त्वपूर्ण अंग है। वह अपनी समस्त आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए पारितन्त्र पर निर्भर करता है। जनसंख्या की तीव्र दर से वृद्धि होने के कारण पर्यावरण के संसाधनों का तेजी से ह्रास हो रहा है। इसलिए पारिस्थितिक तन्त्र पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ रहे हैं।

पारिस्थितिक तन्त्र की विशेषताएँ– पारिस्थितिक तन्त्र की निम्नलिखित विशेषताएँ होती हैं—

(i) पारिस्थितिक तन्त्र स्वनियमित और स्वपोषित होता है।

(ii) पारिस्थितिक तन्त्र की संरचना में जैव घटक, अजैव घटक और ऊर्जा का महत्त्वपूर्ण योगदान होता है।

(iii) पारिस्थितिक तन्त्र एक शृंखलाबद्ध क्रमिक विकास को दर्शाता है, जो प्राथमिक अनुक्रम से प्रारम्भ होकर चरम विकास में परिणित होता है।

(iv) जीवों की आपसी अन्तर्प्रक्रिया तथा अजैविक घटकों से अन्तर्प्रक्रिया में ऊर्जा प्रवाह की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है।

(v) पारिस्थतिक तन्त्र भू—तल पर एक निश्चित क्षेत्र का प्रतीक है।

2. पारिस्थितिक तन्त्र की संरचना समझाइए।

उ०– पारिस्थितिक तन्त्र की संरचना– पारिस्थितिक तन्त्र में जीवधारियों का समुदाय अनेक प्रकार के जीवों पेड़—पौधों एवं जीव—जन्तुओं से मिलकर बनता है। इस तन्त्र के अंतर्गत समस्त जीव अपनी खाद्य प्राप्ति के लिए मूल उत्पादक तथा पौधों पर निर्भर होते हैं। किसी पारिस्थितिक तन्त्र का क्षेत्र जल की एक बूँद के समान छोटा भी हो सकता है और एक विशाल समुद्र के समान बड़ा भी हो सकता है। सम्पूर्ण पृथ्वी एक बहुत बड़ा पारिस्थितिक तन्त्र है, जिसके अंतर्गत पाए जाने वाले समस्त जीव—समुदाय सूर्य से प्राप्त होने वाली ऊर्जा पर निर्भर करते हैं। ये अपने लिए समस्त जीवनोपयोगी तत्त्वों की प्राप्ति वायुमण्डल, जलमण्डल एवं स्थलमण्डल से करते हैं।

पारिस्थितिक तन्त्र को संरचना के आधार पर निम्नलिखित दो घटकों मे विभाजित किया जाता है—

(i) जैविक घटक (ii) अजैविक घटक

(i) जैविक घटक– इन्हें जीवीय घटक भी कहते हैं। जीवधारियों से किसी समुदाय के जीवों में परस्पर पोषण सम्बन्ध पाए जाते हैं। किसी भी पारिस्थितिक तन्त्र को पोषण के पारस्परिक सम्बन्ध के आधार पर निम्नलिखित भागों मे विभाजित किया जा सकता है—

(क) उत्पादक (ख) उपभोक्ता (ग) अपघटक

(क) उत्पादक– इसमें हरे पेड़—पौधे तथा वे सभी वनस्पतियाँ सम्मिलित हैं, जो प्रकाश संश्लेषण की क्रिया द्वारा अपना भोजन स्वयं बनाते हैं। इन्हें उत्पादक अथवा मूल उत्पादक कहते हैं। इस भोजन के उपयोग से वनस्पतियाँ वृद्धि, विकास एवं प्रजनन करती हैं। प्रकाश संश्लेषण प्रक्रिया में हरे पेड़—पौधे न केवल अपने लिए खाद्य पदार्थों का संश्लेषण करते हैं, बल्कि प्राणदायी ऑक्सीजन गैस भी बाहर निकालते हैं, जिसे जीवधारी ऊर्जा प्राप्ति के लिए श्वसन क्रिया में उपयोग करते हैं। इसके विपरीत जीव—जन्तु परपोषी होते हैं; क्योंकि ये पेड़—पौधों द्वारा उत्पादित खाद्य पदार्थों का उपयोग करते हैं। इन खाद्य पदार्थों द्वारा जीव—जन्तु अपने लिए कार्बोहाइड्रेट्स, वसा, प्रोटीन्स तथा अन्य प्रकार के कार्बनिक पदार्थों का संश्लेषण करते हैं। यही कारण है कि पेड़—पौधों को मूल उत्पादक तथा जीव—जन्तुओं को गौण अथवा द्वितीयक उत्पादक माना जाता है।

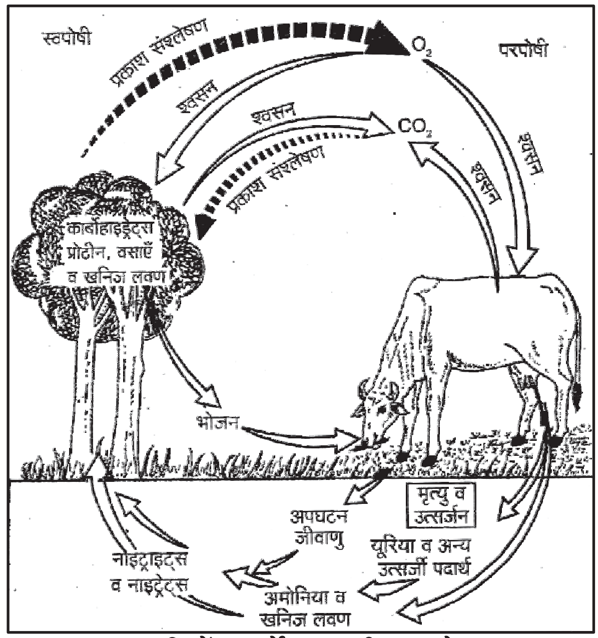

प्रकृति में पदार्थों का चक्रीय उपयोग

(ख) उपभोक्ता– इनके अन्तर्गत वे सभी प्रकार के जीव—जन्तु सम्मिलित हैं, जो अपनी भोजन प्राप्ति के लिए प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से वनस्पतियों पर निर्भर होते हैं। इस प्रकार के समस्त जीव—जन्तुओं को निम्नलिखित तीन भागों मे विभाजित किया जाता है—

(1) **प्राथमिक उपभोक्ता–** इन्हें शाकाहारी भी कहते हैं। इसके अंतर्गत वे समस्त जीव—जन्तु सम्मिलित हैं, जो अपना भोजन मूल उत्पादक अथवा पेड़—पौधों से प्राप्त करते हैं अर्थात् पेड़—पौधों के विभिन्न भागों को ही खाते हैं। उदाहरण के लिए वे कीड़े—मकोड़े जो पेड़—पौधों की हरी एवं कोमल पत्तियों को अपने भोजन के रूप में उपभोग करते हैं; जैसे टिड्डा, छोटी मछली आदि। इनके अतिरिक्त तितलियाँ, मधुमक्खियाँ, भेड़, बकरी, गाय, बैल, भैंस, खरगोश, हाथी आदि भी इसी श्रेणी में सम्मिलित हैं।

(2) **गौण उपभोक्ता या द्वितीयक उपभोक्ता–** इसमें वे मांसाहारी जीव सम्मिलित हैं, जो शाकाहारी जीव—जन्तुओं को खाते हैं; जैसे— भृंग, चिड़ियाँ, छिपकलियाँ, झींगुर, मेढक, मछली आदि।

(3) **तृतीयक उपभोक्ता–** इसके अन्तर्गत वे मांसाहारी प्राणी सम्मिलित हैं, जो अन्य मांसाहारी प्राणियों को खाते हैं; जैसे— साँप, मेढक को खाता है और बाज या गिद्ध साँप को खा जाता है।

इस श्रेणी के अन्तर्गत ही उच्च मांसाहारी श्रेणी भी सम्मिलित हैं, जिसके अन्तर्गत वे सभी जीव—जन्तु आते हैं, जो सभी वर्गों के मांसाहारी जीवों को मारकर खा सकते हैं, परंतु उन्हें अन्य कोई जन्तु मारकर नहीं खा सकता है; जैसे— शेर, चीता, शार्क मछलियाँ, मगरमच्छ, उल्लू, बाज आदि।

जो उपभोक्ता दूसरे जीवों पर आश्रित होते हैं तथा उन्हीं से अपना भोजन ग्रहण करते हैं, **परजीवी** कहलाते हैं। ये पौधे व जीव अन्य पौधों या जीवों पर भोजन के लिए आश्रित रहते हैं। प्राय: ये जंतुओं के अंदर या बाहर रहते हैं तथा विभिन्न प्रकार के रोग उत्पन्न करते हैं। परजीवी कृमि, जो जन्तुओं के शरीर के अन्दर रहते हैं, वे भी इसी वर्ग में आते हैं। नाइट्रोजन यौगिकीकारी जीवाणु जो फलीदार पौधों की जड़ों तथा अनेक वन—वृक्षों की जड़ों व पत्तों के साथ मिलकर रहते हैं,

सहजीविता के उदाहरण हैं। भूमि में रहने वाली कुछ कवक जातियाँ जो शैवालों के साथ मिलकर लाइकेन तथा वन—वृक्षों की जड़ों के साथ मिलकर माइकोराइजा अथवा कवक मूल बनाते हैं, इसी वर्ग के अन्तर्गत आते हैं। वे जीव—जन्तु जो अन्य जीव—जन्तुओं का शिकार करके अपना खाद्य पदार्थ प्राप्त करते हैं, **परभक्षी** कहलाते हैं; जैसे द्वितीयक एवं तृतीयक श्रेणी के उपभोक्ता तथा उच्च मांसाहारी जन्तु। कुछ ऐसे भी जीव होते हैं, जो शाकाहारी एवं मांसाहारी दोनों होते हैं अर्थात् उपभोक्ता के रूप में सभी कुछ खाते हैं, **सर्वभक्षी** कहलाते हैं; जैसे— मनुष्य।

(ग) अपघटक– इस श्रेणी के अन्तर्गत **मृतोपजीवी**, जीवाणु, कवक आदि आते हैं, जो पेड़—पौधों एवं जीव—जन्तुओं तथा मृत कार्बनिक पदार्थों को सड़ा—गलाकर एवं विघटित करके सूक्ष्म एवं सरल कार्बनिक एवं अकार्बनिक यौगिकों में बदल देते हैं। ये या तो विघटित होकर अजैव वातावरण में चले जाते हैं अथवा अपघटनकर्त्ताओं द्वारा उपभोग कर लिए जाते हैं। यह एक महत्त्वपूर्ण प्रक्रम है, जिसके परिणामस्वरूप जटिल कार्बनिक पदार्थ विघटित एवं टूटकर सरल नाइट्रोजन, कार्बन डाइ—ऑक्साइड, फॉस्फोरस, कैल्सियम, मैग्नीशियम, फेरस आदि तत्त्वों में परिवर्तित हो जाते हैं। ये तत्त्व पृथ्वी या वायुमण्डल में मुक्त होते रहते हैं, जिन्हें ग्रहण करके पेड़—पौधे भोजन एवं अपने तंतुओं का निर्माण करते हैं। यह प्रक्रम प्रकृति में अबाध गति से चलता रहता है और अकार्बनिक तत्त्वों का चक्रीय उपभोग होता रहता है। यदि प्रकृति में ये अपघटक न होते तो भूमि एवं सागर तमाम प्रकार के मृत शरीरों से भर जाते, जिससे समुद्र में मछलियों तथा भूमि पर अन्य जीवों के रहने के लिए कोई स्थान शेष न रहता। अपघटक मृत पौधों व जन्तुओं के अपघटन द्वारा भूतल को स्वच्छ बनाए रखते हैं।

(ii) अजैविक घटक– इसके अन्तर्गत तीन प्रकार के तत्त्व होते हैं—

(क) भौतिक चक्रों में सम्मिलित होने वाले तत्त्व; जैसे— नाइट्रोजन, गन्धक, कार्बन, हाइड्रोजन आदि।

(ख) क्लोरोफिल जैसे अजैविक रसायन तथा पर्यावरण में उपस्थित प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट आदि जैव—रासायनिक पदार्थ।

(ग) जलवायु की दशाएँ।

3. प्रकृति में पदार्थों का चक्रीय उपयोग चित्र द्वारा समझाइए।

उ०– उत्तर के लिए विस्तृत उत्तरीय प्रश्न संख्या—2 के उत्तर का अवलोकन कीजिए।

4. पारिस्थितिक तंत्र के विभिन्न प्रकारों को स्पष्ट करते हुए इसके कार्य पर प्रकाश डालिए।

उ०– पारिस्थितिक तन्त्र के प्रकार– जैवमण्डल पृथ्वी का सबसे बड़ा पारिस्थितिक तन्त्र है। इसमें कई पारिस्थितिक तन्त्र हैं। इसमें कई पारिस्थितिक तन्त्र समाहित हैं। निम्न आरेख द्वारा पारिस्थितिक तन्त्र के प्रकारों को समझा जा सकता है—

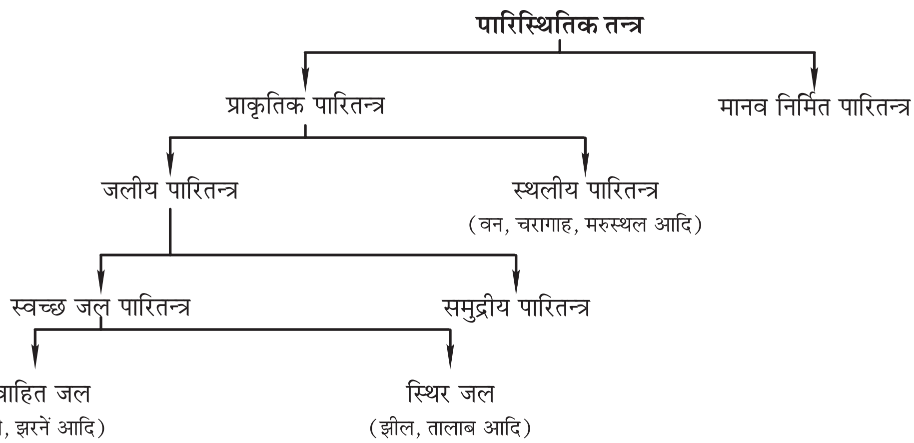

(i) प्राकृतिक पारितन्त्र– जलवायु, मृदा, वनस्पति आदि में विभिन्नता के आधार पर प्रकृति द्वारा स्वत: ही पारितन्त्रों की रचना की जाती है, जिन्हें प्राकृतिक परितन्त्र कहते हैं। प्राकृतिक पारितन्त्रों को निम्नलिखित दो भागों मे बाँटा गया है—

(क) जलीय पारितन्त्र– जलीय पारितन्त्र में नदियाँ, झीलें, ज्वारनदमुख, सागरों के अन्त: ज्वारीय क्षेत्र, महाद्वीपीय निमग्न तट तथा महासागरीय आन्तरकि क्षेत्र शामिल हैं। जल की भिन्नता के आधार पर इसे दो भागों में बाँटा जा सकता है—

(1) स्वच्छ जल पारितन्त्र– इसके अंतर्गत **प्रवाहित जल**, जैसे— नदी, झरने आदि तथा **स्थिर जल**, जैसे— झील, तालाब आदि आते हैं।

(2) **समुद्रीय पारितन्त्र–** इस परितन्त्र में गहरा सागरीय एवं तटीय सागरीय परितन्त्र शामिल है।

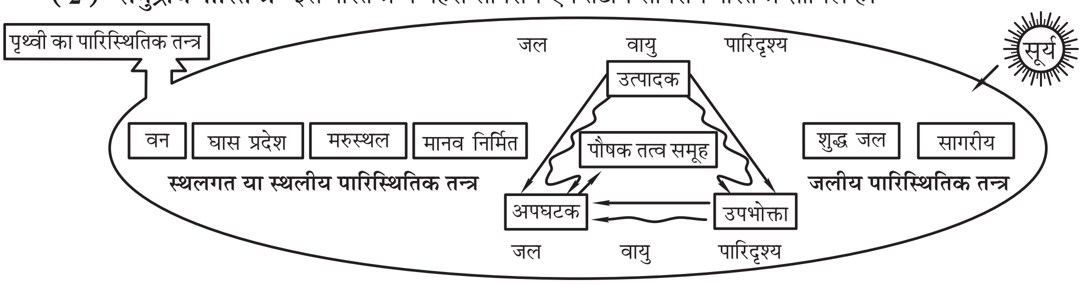

आधारभूत पारिस्थितिक–तन्त्र

(ख) **स्थलीय पारितन्त्र–** वन, चरागाह (घास प्रदेश), मरूस्थल आदि प्रमुख स्थलीय पारितन्त्र हैं।

(ग) **मानवनिर्मित पारितन्त्र–** मनुष्य अपने बौद्धिक तकनीकी एवं वैज्ञानिक स्तर के अनुसार अपने लिए पारितन्त्रों का निर्माण करता है, इन्हें मानव निर्मित पारितन्त्र कहते हैं। कृषि क्षेत्र या फसल पारितन्त्र, चरागाह, नगरीय पारितन्त्र आदि को मनुष्य अपनी क्षमता के आधार पर विकसित करता है।

❖ **मानचित्र सम्बन्धी अभ्यास कार्य**

अध्यापक की सहायता से विद्यार्थी स्वयं करें।

❖ **प्रोजेक्ट कार्य**

अध्यापक की सहायता से विद्यार्थी स्वयं करें।

32 पर्यावरण की सुरक्षा एवं संरक्षण

अभ्यास

❖ **बहुविकल्पीय प्रश्न**

उ०– बहुविकल्पीय प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्य पुस्तक के पृष्ठ संख्या—267 व 268 का अवलोकन कीजिए।

❖ **अतिलघु उत्तरीय प्रश्न**

उ०– अतिलघु उत्तरीय प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्य पुस्तक के पृष्ठ संख्या—268 का अवलोकन कीजिए।

❖ **लघु उत्तरीय प्रश्न**

1. पर्यावरण संरक्षण क्या है ?

उ०– पर्यावरण संरक्षण से अभिप्राय भूमि, जल, वायु, वन, ऊर्जा, जन्तु आदि प्राकृतिक संसाधनों के ऐसे विवेकपूर्ण ढ़ंग से उपयोग करने से है, जिससे उनका अधिकाधिक समय तक, अधिकाधिक लोगों की अधिक से अधिक भलाई के लिए प्रयोग किया जा सके।

2. पर्यावरण के विभिन्न स्रोतों के नाम बताइए।

उ०– मृदा, जल, वायु, वन, वन्य जीव, खनिज आदि पर्यावरण के विभिन्न स्रोत हैं।

3. वन संरक्षण क्या है ? इसके लिए प्रभावी उपाय बताइए।

उ०– वनों को नष्ट होने से बचाना ही वन संरक्षण कहलाता है। वन संरक्षण के लिए प्रभावी उपाय निमनलिखित हैं—

(i) वनों में पशुचारण को नियन्त्रण करना।
(ii) वृक्षारोपण अधिक से अधिक करके।
(iii) कभी—कभी वनों में आग लग जाने से वनों का नाश हो जाता है, अत: वनों के आस—पास आग पर नियन्त्रण पाने वाले दस्तों की व्यवस्था होनी चाहिए।
(iv) वृक्षों की कटाई के लिए निर्धारित मापदण्ड बनाए जाने चाहिए।
(v) वन की भूमि का प्रयोग कृषि के लिए नहीं करना चाहिए।

4. पर्यावरणीय संरक्षण की आवश्यकता स्पष्ट कीजिए।

उ०– पर्यावरणीय संरक्षण की आवश्यकता– मानव जीवन के लिए पर्यावरण की बहुत आवश्यकता है। आज के युग में पर्यावरण इतना दूषित हो चुका है कि शायद कुछ समय बाद पृथ्वी से मानव जीवन समाप्त होना आरम्भ हो जाए। इसके अतिरिक्त भी पर्यावरणीय संरक्षण की आवश्यकता को निम्न बिन्दुओं के माध्यम से समझा जा सकता है–

(i) स्वस्थ जीवन के लिए शुद्ध वायु, जल और मिट्टी आवश्यक घटक हैं, अत:पर्यावरणीय संरक्षण आवश्यक है।

(ii) राज्य की स्थिरता पर्यावरण की स्वच्छता पर निर्भर करती है।

(iii) पर्यावरण के तापीय प्रदूषण की रोकथाम के लिए पर्यावरण संरक्षण आवश्यक है।

(iv) पर्यावरण संरक्षण आर्थिक विकास के लिए भी महत्त्वपूर्ण है।

(v) जैवीय विकास के संरक्षण के लिए पर्यावरण संरक्षण आवश्यक है। संक्षेप में यह कहना कदापि गलत न होगा कि देश की उन्नति व स्वस्थ जीवन दोनों के लिए पर्यावरणीय संरक्षण अत्यंत आवश्यक है।

❖ **विस्तृत उत्तरीय प्रश्न**

1. पर्यावरण संरक्षण उद्देश्य बताते हुए इसके स्रोतों के संरक्षण पर प्रकाश डालिए।

उ०– पर्यावरणीय संरक्षण के उद्देश्य– पर्यावरण संरक्षण के कुछ प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हैं–

(i) मानव की जीवन–शैली को पर्यावरण की प्राकृतिक व्यवस्था के अनुरूप आचारपरक बनाना है।

(ii) उन मानवीय क्रिया–कलापों का नियमन एवं प्रबन्धन करना है, जिनके कारण पर्यावरण को क्षति पहुँचती है।

(iii) अनियन्त्रित खनन, वनोमूलन, जानवरों का शिकार आदि को रोकना है।

(iv) प्राकृतिक संसाधनों का विवेकपूर्ण उपयोग एवं विकास करना है, जिससे उनका लम्बे समय तक उपयोग किया जा सके।

(v) सभी प्रकार के पर्यावरणीय प्रदूषण को रोकना।

(vi) उन सभी संसाधनों का संरक्षण करना, जोकि पुन: प्राप्त नहीं किए जा सकते हैं।

पर्यावरण के विभिन्न स्रोतों का संरक्षण– मृदा, जल, वन, वन्य जीव, खनिज आदि पर्यावरण के विभिन्न स्रोत हैं।

(i) मृदा संरक्षण– मृदा का निर्माण खनिज एवं कार्बनिक पदार्थों की सहायता से होता है। भूमि की ऊपरी परत को मृदा कहते हैं। मृदा प्राणियों के जीवन का आधार है, क्योंकि विभिन्न प्रकार के फल–फूल, वृक्ष, फसलें, घास इत्यादि मृदा में ही उगते हैं। मृदा संरक्षण के लिए सबसे उत्तम उपाय वृक्षारोपण है। वृक्षों की जड़े मिट्टी को जकड़े रहती हैं, जिससे वे प्रवाहित नहीं होती है। जिन क्षेत्रों में वनों की कमी के कारण मृदा अपरदन होता है, वहाँ पर व्यापक स्तर पर वृक्षारोपण किया जाना चाहिए। इसके अतिरिक्त यह भी देखा जाता है कि पशुओं के पैरों से मृदा असंगठित होकर निरन्तर अपरदित होती है, जिसके कारण मृदा अपरदन में वृद्धि होती है। अत: मृदा संरक्षण हेतु पशुचारण–क्षेत्रों को सीमित करना आवश्यक है। इसके अतिरिक्त अग्रलिखित उपायों द्वारा भी मृदा संरक्षण में सहायता मिलती है।

(क) झूम खेती पर प्रतिबन्ध लगाकर (ख) स्थानान्तरित खेती पर प्रतिबन्ध लगाकर

(ग) ढालों पर समोच्च रेखीय जुताई करके (घ) भूमि के उचित उपयोग द्वारा

(ii) जल संरक्षण– प्रकृति द्वारा प्रदत्त जल एक ऐसा महत्त्वपूर्ण स्रोत है, जिस पर न केवल मनुष्य वरन् जीव–जन्तु, पेड़–पौधे अर्थात् सम्पूर्ण जीव जगत निर्भर है। जल हमारे जीवन, रहन–सहन, कृषि, भोजन, व्यवसाय, जलवायु के निर्माण में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। यही कारण है कि जल को ही जीवन माना गया है। जल संरक्षण के लिए निम्न उपाय सार्थक हैं–

(क) जल–संचय हेतु पक्के जलाशयों का निर्माण।

(ख) खेतों में पाइप या बौछारों द्वारा सिंचाई करना।

(ग) जल को ढककर रखने से (इससे वाष्पीकरण में जल क्षति नहीं होगी)

(घ) जल को प्रदूषित होने से बचाना।

(iv) वन संरक्षण– ऐसा विस्तृत क्षेत्र जहाँ पेड़–पौधों, घास आदि का सघन आवरण पाया जाता है, 'वन' कहलाता है। वन प्राकृतिक सम्पदा की श्रेणी में आते हैं, जो एक ओर मानव के लिए अत्यन्त उपयोगी होते हैं, जबकि दूसरी ओर पर्यावरण के सन्तुलन को बनाए रखने में सहायक होते हैं। वन जलवायु, भूमि की बनावट, वर्षा, जनसंख्या के घनत्व, कृषि, उद्योग आदि को अत्यधिक प्रभावित करते हैं। अनेक आदिवासी जातियाँ वनों में आश्रय पा रही हैं। वन अनेक जीव–जन्तुओं तथा वनस्पति–समूहों को आश्रय देकर उनकी प्रजातियों को नष्ट होने से बचाते हैं।

एक समय था, जब पृथ्वी के 70 प्रतिशत भू–भाग पर वन थे किन्तु वर्तमान में केवल 16 प्रतिशत भू–भाग पर वन रह गए हैं। भारत में वर्तमान में कुल वन एवं वृक्ष आच्छादित क्षेत्र 78.29 मिलियन हेक्टेयर है, जो देश के कुल भौगोलिक क्षेत्र का 23.81 प्रतिशत है। वैज्ञानिकों के मतानुसार कम से कम 33 प्रतिशत भू–भाग पर वन होने चाहिए। वन संरक्षण के प्रमुख उपाय निम्नवत् हैं–

(क) वनों में पशुचारण को नियन्त्रण करना।
(ख) वृक्षारोपण अधिक से अधिक करके।
(ग) कभी—कभी वनों में आग लग जाने से वनों का नाश हो जाता है, अत: वनों के आस—पास आग पर नियन्त्रण पाने वाले दस्तों की व्यवस्था होनी चाहिए।
(घ) वृक्षों की कटाई के लिए निर्धारित मापदण्ड बनाए जाने चाहिए।
(ङ) वन की भूमि का प्रयोग कृषि के लिए नहीं करना चाहिए।

(iv) वन्य जीव संरक्षण– वन्य जीव हमारे जैव परिमण्डल का एक अंग हैं और पारिस्थितिकी—तन्त्र के महत्त्वपूर्ण घटक हैं। इनका उचित संख्या में पारितन्त्र में उपस्थित रहना पर्यावरण सन्तुलन को बनाए रखने के लिए नितान्त आवश्यक है। किन्तु गत कुछ वर्षों में जनसंख्या—वृद्धि, शहरीकरण, औद्योगीकरण, मानव की स्वार्थपरता तथा व्यापारीकरण की प्रवृत्ति आदि के कारण अनेक वन्य जीवों की संख्या में लगातार कमी आई है तथा इनके आवासीय परिवेश कम या समाप्त होते जा रहे हैं। कुछ वन्य जीव—जन्तु तो विलुप्त होने के कगार पर पहुँच गए हैं। वन्य जीव संरक्षण के लिए निम्नलिखित उपाय किए जाने चाहिए—

(क) वन्य जीवों के लिए अनुकूल आवासीय स्थलों का निर्माण करना।
(ख) वन्य जीवों के लिए अभ्यारण्यों की व्यवस्था।
(ग) राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर जीवों के संरक्षण हेतु जन—चेतना जागृत करना।
(घ) वन्य जीवों की हत्या करने वालों के लिए कठोर दण्ड का निर्धारण करना।
(ङ) वन्य जीवों की प्रदूषण तथा प्राकृतिक आपदाओं से रक्षा करना।

2. पर्यावरण सुरक्षा एवं संरक्षण हेतु उपायों की विवेचना कीजिए।

उ०– पर्यावरण सुरक्षा एवं संरक्षण हेतु उपाय–

(i) पर्यावरणीय शिक्षा एवं प्रशिक्षण– पर्यावरण नियोजन का एक महत्त्वपूर्ण आयाम पर्यावरणीय शिक्षा एवं प्रशिक्षण से सम्बद्ध है। पर्यावरणीय शिक्षा और प्रशिक्षण जन—चेतना जगाने में सहायक होता है। जल प्रबन्धन, प्रदूषण निदान, वृक्षारोपन, यातायात नियन्त्रण, मल—मूत्र उपचार, अपशिष्टों का शोधन, सूचना—सहायता जैसे कार्य इसके प्रमुख रूप हैं। पर्यावरण शिक्षा की चेतना 1972 में स्टॉकहोम में आयोजित संगोष्ठी से आरम्भ हुई। पर्यावरणीय शिक्षा को पर्यावरणीय अध्ययन का नाम भी दिया जाता है।

(ii) इन्दिरा गाँधी पर्यावरण पुरस्कार योजना– गैर—सरकारी क्षेत्र में प्रदूषण रोकने तथा पर्यावरण—सुरक्षा के लिए उल्लेखनीय कार्य करने वाले व्यक्तियों अथवा संस्थाओं को प्रोत्साहित एवं पुरस्कृत करने के लिए सन् 1992 से 'इन्दिरा गाँधी पर्यावरण पुरस्कार योजना' केन्द्र सरकार द्वारा चालू की गयी है, जिसके अन्तर्गत ₹1 लाख पुरस्कार देने की व्यवस्था है।

(iii) शीत भण्डारण के विकल्पों की खोज– फ्रेओन तथा क्लोरोफ्लोरो कार्बन शीतलन प्रणाली में प्रयुक्त गैस के विकल्पों की खोज आवश्यक है। विकल्प के रूप में बायोएक्ट इ, सी—7, एच०एफ०सी०—134 ए गैस को प्रयुक्त किया जाना चाहिए।

(iv) वन्य-जीव संरक्षण परियोजना– इस परियोजना के अन्तर्गत वन्य—जीवों की आनुवंशिकी विविधता बनाए रखने के लिए **13 जीवमण्डल आरक्षित क्षेत्रों** की स्थापना की गई है, जिनके नाम हैं— **नीलगिरि** (कर्नाटक), **नन्दा देवी** (उत्तराखण्ड), **नामदाफा** (अरुणाचल प्रदेश), **नोकरेक** (मेघालय), **मन्नार की खाड़ी** (तमिलनाडु), **थार मरुस्थल** (राजस्थान), **कच्छ का छोटा रण** (गुजरात), **उत्तर अण्डमान द्वीप, मानस** (असम), **सुंदर वन** (प०बंगाल), **कान्हा** (मध्य प्रदेश), **काजीरंगा** (असम) और **ग्रेट निकोबार।**

(v) शोध एवं अनुसन्धान– पर्यावरण प्रबन्धन के उचित संचालन के लिए पर्यावरणीय अनुसंधान आवश्यक है। प्राकृतिक आपदाओं, बाढ़, आकाल, सूखा, महामारी, भूकम्प, तूफान आदि चरम घटनाओं तथा वायु प्रदूषण, जल प्रदुषण, मृदा प्रदूषण, नाभिकीय प्रदूषण, ध्वनि प्रदूषण आदि समस्याओं से छुटकारा पाने के लिए निरन्तर शोध एवं अनुसंधान पर बल देना भी पर्यावरण प्रबन्धन का महत्त्वपूर्ण पक्ष है।

(vi) प्रौद्योगिकी में सुधार– सुरक्षित एवं प्रदूषणरहित पर्यावरण का निर्माण करने के लिए पर्यावरण सुधार सम्बन्धी प्रौद्योगिकी में समानता रखना आवश्यक होता है। सीवर उपचार व धुआँरहित मोटर—वाहनों की निर्माण सम्बन्धी प्रौद्योगिकी के प्रयोग द्वारा जल एवं वायु को शुद्ध रखा जा सकता है। पेट्रोल से सीसा पृथक कर वायु—प्रदूषण के खतरे को कम किया जा सकता है। मौसम व जलवायु सम्बन्धी तत्त्वों की पूर्व सूचना या भविष्यवाणी करके सम्भावित खतरों से बचाव किया जा सकता है। यह तभी सम्भव है, जब नवीन तकनीक को अपनाने के साथ—साथ पुरानी तकनीक में संशोधन किया जाए। उत्पादन तकनीक में सुधार एवं संरक्षण, सुरक्षा एवं पारिस्थितिकी तकनीकों का विकास करने से तकनीक में सुधार हो सकता है, जो पर्यावरण नियोजन में सहायक हो सकता है।

(vii) राष्ट्रीय पर्यावरण जागरूकता अभियान– भारत सरकार का 'पर्यावरण एवं वन मंत्रालय' पर्यावरण के बारे में राष्ट्रीय स्तर पर जागरूकता उत्पन्न करने के उद्देश्य से 1986 ई० से हर वर्ष एक राष्ट्रीय पर्यावरण जागरूकता अभियान चला रहा है। इस अभियान के अन्तर्गत (क) प्रदूषण निवारण एवं नियंत्रण तथा (ख) पर्यावरणीय सुरक्षा के लिए वृक्षारोपण एवं उनके संरक्षण पर बल दिया जाता है।

आम जनता में पर्यावरण के बारे में जागरूकता उत्पन्न करने के लिए गोष्ठियाँ, कार्यशालाएँ, शिविर, पदयात्राएँ, रैलियाँ, प्रतियोगिताएँ तथा उत्सव आदि विभिन्न गतिविधियाँ आयोजित की जाती हैं। इनमें उन पंजीकृत गैर—सरकारी संगठनो, स्वैच्छिक संस्थाओं व शैक्षिक संस्थाओं का भी सहयोग लिया जाता है, जो पर्यावरण व विकास के क्षेत्र में कार्यरत हैं।

(viii) रासायनिक पदार्थों का न्यूनतम उपयोग– कृषि उत्पादन में वृद्धि के लिए रासायनिक खादों तथा कीटनाशकों का अधिक मात्रा में प्रयोग किया जाता है। ये कृत्रिम रसायन कृषि उत्पादन में वृद्धि के साथ—साथ मिट्टी तथा जलाशयों, झीलों, नदियों, समुद्रों और भूमिगत जल को भी प्रदूषित करते हैं। कृषि में रासायनिक कीटनाशकों के उपयोग को कम करने, रोकने और नियन्त्रित करने का प्रयास करना चाहिए।

(ix) तीव्र जनसंख्या वृद्धि पर नियन्त्रण– पर्यावरणीय सुरक्षा एवं संरक्षण के लिए तीव्र जनसंख्या वृद्धि पर नियंत्रण सबसे प्रमुख कारक है। न केवल तीव्र गति से बढ़ती जनसंख्या, बल्कि उसके भौतिक सुख—साधनों के पाने की होड़ प्रकृति को पंगु बनाती जा रही है। सीमित संसाधनों पर असीमित जनसंख्या दबाव के कारण विकासशील तथा पिछड़े देशों में गरीबी, अशिक्षा तथा असन्तोष आदि में वृद्धि होती जा रही है। फलस्वरूप मानव भोजन, वस्त्र, आवास तथा अन्य उपभोक्ता वस्तुओं की प्राप्ति हेतु संसाधनों का असन्तुलित एवं अवैज्ञानिक दोहन आरम्भ कर देता है, जिससे पारिस्थितिक असन्तुलन की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। अत: पर्यावरण को बचाए रखने के लिए जनसंख्या वृद्धि पर प्रभावी नियन्त्रण आवश्यक है।

(x) नाभिकीय विस्फोटों पर नियंत्रण– विश्व के विभिन्न देश परमाणु एवं हाइड्रोजन अस्त्रों—शस्त्रों का निर्माण कर चुके हैं, जिससे पुन: विश्वयुद्ध एवं मानव जनजीवन तथा पर्यावरण पर खतरा मँडराने लगा है। द्वितीय विश्वयुद्ध में अमेरिका द्वारा जापान पर गिराए गए परमाणु बम का दंश आज तक जापानी झेल रहे हैं। अत: परमाणु बम एवं अन्य नाभिकीय अस्त्र—शस्त्रों के निर्माण, प्रयोग एवं संचालन पर पूर्ण प्रतिबन्ध का लगाया जाना आवश्यक है।

(xi) अन्य कार्यक्रम– प्रशासन द्वारा उन उपभोक्ता उत्पादों पर **ईको मार्क** लेबिल लगाने की शुरूआत की गई है, जो पर्यावरण के अनुकूल होते हैं। उद्योगों को पर्यावरण सम्बन्धी विवरण तैयार करने में सहायता देने के लिए उद्योगों की सेक्टर—विशिष्ट पर्यावरण नियमावलियाँ तैयार की गई हैं। लघु उद्योगों में स्वच्छ तकनीकों के अभिग्रहण और उन्हें आवश्यक तकनीक का सहयोग देने की योजना के अन्तर्गत लघु विकास संगठन के कर्मचारियों और उद्यमियों के लिए प्रशिक्षण तथा जागरूकता कार्यक्रम आयोजित किए जा रहे हैं।

विभिन्न प्रमुख नगरों में प्रदूषण नियन्त्रण की कार्ययोजना तैयार की गई है, जिसे सम्बद्ध राज्य लागू कर रहे हैं। **मोटर गैसोलीन** तथा **डीजल** जैसे ईंधन वाले वाहनों में ईंधन सुधार के लिए एक चरणबद्ध कार्यक्रम देश भर में शुरू किया गया है। देश भर के अधिकतर पेट्रोल पम्पों पर सीसा—रहित पेट्रोल और 0.25 प्रतिशत सल्फरयुक्त डीजल मिल रहा है। राष्ट्रीय राजधानी—क्षेत्र दिल्ली में अधिकतम 0.05 प्रतिशत सल्फरयुक्त डीजल तथा कुछ चुनिंदा खुदरा विक्रेताओं के माध्यम से अधिकतम 0.05 प्रतिशत सल्फरयुक्त डीजल की आपूर्ति की जा रही है।

सड़क परिवहन और राजमार्ग मन्त्रालय ने राष्ट्रीय राजधानी—क्षेत्र के गैर—वाणिज्यिक पेट्रोल और डीजल से चलने वाले सभी चार पहिया वाहनों के लिए 1 जून, 1999 को **यूरो-1** उत्सर्जन मानकों के समकक्ष इण्डिया—2000 उत्सर्जन मानकों के अनुसार पंजीकरण से सम्बन्धित नियमों को अधिसूचित कर दिया है। सभी प्रकार के वाहनों के लिए ये मानक पूरे देश में 1 अप्रैल, 2000 से प्रभावी हो गए हैं। सड़क और राजमार्ग परिवहन मंत्रालय ने **भारत-2** नामक बड़े मानक भी अधिसूचित किए हैं जो **यूरो-2** उत्सर्जन मानकों के अनुरूप हैं। 1 अप्रैल, 2000 ई० से राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र में लागू होने वाले ये मानक, **यूरो-2** मानकों के अनुरूप माने जाने वाले सभी मोटरकारों और चार पहिये वाले उन भारी वाहनों के पंजीकरण के लिए होंगे, जिनका कुल वाहन भार 3,500 किलोग्राम या इससे कम होगा। एल०पी०जी० से चलने वाले वाहनों के लिए भी उत्सर्जन मानक अधिसूचित कर दिए गए हैं।

3. पर्यावरण और प्रदूषण विषय पर एक निबन्ध लिखिए।

उ०– पर्यावरण और प्रदूषण– हमारे चारों ओर का भौतिक परिवेश ही पर्यावरण है। आज बहुत से कारकों द्वारा हमारा पर्यावरण दूषित हो रहा है, अत: पर्यावरण के प्रति जागरूकता रखना आज की प्रथम आवश्यकता है। आज के समाज को पर्यावरण संरक्षण की ओर निहारने की आवश्यकता है। 'पर्यावरण संरक्षण' से अभिप्राय भूमि, जल, वायु, वन, ऊर्जा, जन्तु आदि प्राकृतिक संसाधनों के उचित एवं नियोजित उपयोग से है। पिछले कुछ वर्षों में पर्यावरणिक समस्याओं की भरमार सी हो गई है। प्रति वर्ष अनियमित वर्षा के कारण सूखा व बाढ़ का खतरा फैलता जा रहा है, जिसके कारण कृषि के लिए एक भयंकर समस्या उत्पन्न हो गई है। राष्ट्र स्तर पर समग्र रूप से विकास कार्यक्रमों एवं पर्यावरण संरक्षण के मध्य तालमेल बैठाने की ओर कार्य

करना बहुत कठिन या यूँ कहें कि असम्भव—सा प्रतीत होने लगा है। संक्षेप में यह कहना बिलकुल सही है कि पर्यावरण संरक्षण की आज नितान्त आवश्यकता है। संरक्षण के अन्तर्गत संसाधनों को भावी पीढ़ियों के लिए सुरक्षित रखना शामिल है।

पर्यावरण प्रदूषण एक ऐसी प्राकृतिक आपदा है जो बहुत ही तेजी से हमारे वातावरण को प्रदूषित कर रहा है। पर्यावरण प्रदूषण वातावरण को हानि पहुँचाने वाला सबसे पहला प्रदूषण है। पर्यावरण प्रदूषण कई प्रकार के होते हैं जैसे वायु प्रदूषण, जल प्रदूषण, ध्वनि प्रदूषण, थर्मल प्रदूषण, मिट्टी प्रदूषण और प्रकाश प्रदूषण। ये सभी पर्यावरण प्रदूषण अलग—अलग तरह से हमारे वातावरण को नुकसान पहुँचाते हैं। अगर बात करें पर्यावरण उत्सर्जन की तो इसका सबसे मुख्य कारण वनों की कटाई और खतरनाक गैसीय उत्सर्जन है जिसके कारण पर्यावरण प्रदूषण बहुत ही तेजी से बढ़ रहा है। अगर बात करें पिछले 10 सालों की तो इन 10 सालों में पूरी दूनिया में पर्यावरण प्रदूषण बहुत तेजी से बढ़ा है और पूरी दूनिया के लिए एक गम्भीर समस्या बन गया है।

पृथ्वी एक ऐसा ग्रह है जहाँ हवा और पानी ये दोनों बुनियादी चीजें आपस में सन्तुलन बनाये रखती हैं। जिसके कारण पृथ्वी पर जीवन सम्भव होता। अगर मनुष्य, जानवर, पौधे, हवा और पानी ना होते तो पृथ्वी भी दूसरे ग्रह की तरह होती जहाँ पर जीवन की थोड़ी भी सम्भावना नहीं होती है। मनुष्य, जानवर, पौधों, हवा और पानी हमारे पृथ्वी का सन्तुलन बनाए रखते हैं। अगर इन चीजों का आपस से सन्तुलन टूट गया तो पृथ्वी का अन्त हो जाएगा। लेकिन आज के समय में जिस तरह से पर्यावरण प्रदूषित हो रहा है, उससे तो यही लगता है कि इन सभी चीजों का सन्तुलन बिगड़ रहा है। ऑक्सीजन, नाइट्रोजन, कॉर्बन डाइऑक्साइड, आर्गन और जल वाष्प इन सभी चीजों का भी सन्तुलन बहुत तेजी से बिगड़ रहा है जो कि हमारे लिए बहुत बुरी बात है। पृथ्वी को अपने सन्तुलन से बिगड़ने का मुख्य कारण पर्यावरण प्रदूषण है और पर्यावरण को सबसे ज्यादा मानव प्रदूषित करते हैं। अगर हम सबने मिलकर पर्यावरण प्रदूषण को कम नहीं किया तो आने वाले समय में ये हमारे लिए एक बहुत बड़ी मुसीबत पैदा कर देगा। इसलिए हम सब को मिलकर पर्यावरण प्रदूषण के खिलाफ एक पहल शुरू करनी होगी तभी जाकर हमको पर्यावरण प्रदूषण से मुक्ति मिलेगी।

पर्यावरण प्रदूषण के कारण– पर्यावरण प्रदूषण के फैलने का कारण एक नहीं है, पर्यावरण प्रदूषण के फैलने के बहुत से कारण हैं। पर्यावरण प्रदूषण के निम्नलिखित कारण हैं—

(i) औद्योगिक गतिविधियाँ– औद्योगिक गतिविधियों के कारण पर्यावरण प्रदूषण सबसे ज्यादा फैलता है। बडे—बडे कारखानो से निकलने वाला जहरीला धुआँ हमारे पूरे वातावरण को प्रदूषित कर देता है। कारखानो से निकलने वाला जहरीला धुआँ वातावरण में जाकर हवा में मिल जाता है, उसके बाद वह हवा एक प्रदूषित हवा बन जाती है और जहरीली हवा के कारण हमको तरह—तरह की बीमारियाँ हो जातीं हैं। इसके साथ—साथ कारखानो से निकलने वाले कचरें से भी हमारा पानी प्रदूषित हो जाता है तथा औद्योगिक गतिविधियाँ हमारी मिट्टी की उर्वरकता को खत्म कर रही है। इस तरह से हम कह सकते हैं कि औद्योगिक गतिविधियों के कारण वायु प्रदूषण, जल प्रदूषण और मृदा प्रदूषण, ये तीनों बहुत ज्यादा प्रभावित हो रही हैं। इसलिए पर्यावरण को प्रदूषित होने से बचाने के लिए हमको औद्योगिक गतिविधियाँ से फैलने वाले प्रदूषण पर लगाम लगानी होगी।

(ii) वाहन गाड़ियों का उपयोग– पर्यावरण प्रदूषण का दूसरा बड़ा कारण बहुत अधिक मात्रा में वाहन गाडियों का उपयोग है। हम सब जानते हैं कि आज के समय में कितनी ज्यादा वाहन गाडियों का उपयोग किया जाता है। वाहन गाडियों से निकलने वाली गैस और धुआँ हमारे वातावरण की शुद्ध वा में मिलकर उसको हानिकारक हवा में बदल देते हें, जो पूरे वातावरण को हानिकारक कर देता है। जिसके कारण लोगों को तरह—तरह की बीमारियों का सामना करना पड़ता है। वाहन गाड़ियों से निकलने वाली जहरीली गैस और धुआँ वातावरण में कार्बन डॉइ—ऑक्साइड की मात्रा को अधिक कर देता है। इस तरह से कह सकते हैं कि वाहन गाड़ियों का उपयोग करने से पर्यावरण प्रदूषण बहुत तेजी से हो रहा है।

(iii) औद्योगीकरण और शहरीकरण– पूरी दुनिया में औद्योगीकरण और शहरीकरण का विकास बहुत तेजी से हो रहा है। जिसके कारण जंगलों की कटाई का काम बहुत तेज हो गया है। जितना कम जंगल बचेंगे उतना ही ज्यादा पर्यावरण प्रदूषण बढ़ेगा। पूरी दुनिया में जंगलों के कटाई का सबसे ज्यादा नुकसान जानवरों को हो रहा है। बीते कई सालों में कई तरह के जानवर और चिड़िया बहुत तेजी से विलुप्त हो रही हें। अगर इसी तरह से जंगल कटते रहे तो बहुत से प्रकार के जानवर और चिड़ियाँ इस दुनिया ये विलुप्त हो जाऐंगे। हम इस बात से नकार नहीं सकते हैं कि जंगलों के कारण ही इस गृह पर जीवन जीना मुमकिन हूआ है। अगर इस दुनिया में जंगलों की संख्या कम हुई तो इसका सीधा मतलब से होगा कि ये पृथ्वी जीवन जीने योग्य नहीं रह जाएगी। अगर हमको पृथ्वी को जीवन योग्य रखना है तो हमको जंगलों को कटने से रोकना होगा और इसको रोकने के लिए हमको औद्योगीकरण और शहरीकरण का तेजी से विकास को कम करना होगा।

(iv) जनसंख्या में वृद्धि– जनसंख्या वृद्धि भी पर्यावरण प्रदूषण का एक बहुत बड़ा कारण है, क्योंकि जब जनसंख्या में वृद्धि होती है, तो लोंगों की जरूरत भी बढ़ती है। जितना लोग होंगे उतना ही उनके लिए खाने और रहने के लिए संसाधन की जरूरत होती है। इसके साथ—साथ जनसंख्या वृद्धि के कारण वातावरण भी ज्यादा प्रदूषित होता है क्योंकि जब ज्यादा

लोग रहेंगे तो उनके द्वारा उपयोग की जाने वाली सामग्री भी ज्यादा होगी। इस तरह से कह सकते हैं कि जनसंख्या की वृद्धि भी पर्यावरण प्रदूषण का एक प्रमुख कारण है।

पर्यावरण प्रदूषण के उपाए– अगर बात करें कि पर्यावरण प्रदूषण कैसे रोका जा सकता है। तो ये बहुत ही जटिल प्रश्न है और इस बात का जवाब हमको मिलकर खोजना होगा। पर्यावरण प्रदूषण के उपाए के लिए सबसे पहले हमें ये करना होगा कि हम किसी भी कारखाने को ऐसी जगह पर स्थानान्तरित कर दें जहाँ पर कोई भी आबादी न रहती हो और इसके साथ—साथ सरकार को इस बात पर ध्यान देना होगा कि जो भी नए कारखाने बनें वह बस्तियों से बहुत दूर बनें। पूरी दूनिया के वैज्ञानिक और शोधकर्ताओं को हानिकारक धुआँ से बचने के उपाए के बारे में पता लगाने की कोशिश करनी चाहिए। हर देश की सरकार को अपने देश में वनों की कटाई पर रोक लगा देनी चाहिए और जो भी चोरी से वनों की कटाई करते हुए पकड़ा जाए। उसको कड़ी से कड़ी सजा दी जाए और इसके साथ—साथ कारखानों से निकलने वाले गंदे पानी को नदी नालों में जाने से रोकने के उपाय करने चाहिए। अगर हम ऊपर बताए हुई बातों को अमल में लाकर पर्यावरण प्रदूषण के खिलाफ अपना योगदान दें, तो मैं यकीन के साथ कह सकता हूँ कि हम अपने वातावरण को और प्रदूषित होने से बचा सकते हैं।

❖ **मानचित्र सम्बन्धी अभ्यास कार्य**

अध्यापक की सहायता से विद्यार्थी स्वयं करें।

❖ **प्रोजेक्ट कार्य**

अध्यापक की सहायता से विद्यार्थी स्वयं करें।

इकाई-1 (ख) : पर्यावरण का भौतिक स्वरूप

33 स्थलमण्डल- रचना एवं परिवर्तनकारी शक्तियाँ

(आन्तरिक- वलन, भ्रंशन, भूकम्प एवं ज्वालामुखी, बाह्य- ऋतु अपक्षय, पवन, बहता जल, हिमानी, लहरें)

अभ्यास

❖ **बहुविकल्पीय प्रश्न**

उ०– बहुविकल्पीय प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्य पुस्तक के पृष्ठ संख्या—279 का अवलोकन कीजिए।

❖ **अतिलघु उत्तरीय प्रश्न**

उ०– अतिलघु उत्तरीय प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्य पुस्तक के पृष्ठ संख्या—280 व 281 का अवलोकन कीजिए।

❖ **लघु उत्तरीय प्रश्न**

1. स्थलमण्डल की रचना समझाइए।

उ०– **स्थलमण्डल की रचना–** पृथ्वी का स्थलीय शुष्क ठोस भाग स्थलमण्डल है। ग्लोब के लगभग 29% भाग पर स्थलमण्डल का विस्तार है। स्थलमण्डल में मिट्टी, चट्टानें, रेत इत्यादि सम्मिलित हैं। भूमण्डल पर यह एक ऐसी पतली परत है, जिसमें सियाल और सिमा दोनों शामिल हैं। **प्रो० स्वेस** के अनुसार ''पृथ्वी के भीतर चट्टानों की तीन परते हैं। सबसे ऊपरी परत को सियाल कहते हैं, जिसमें सिलिका और ऐल्युमिनियम की प्रधानता होती है। इस परत का घनत्व 2.75 से 2.9 के मध्य है। दूसरी परत सिमा होती है, जिसमें सिलिका और मैग्नीशियम की प्रधानता होती है। इस परत का घनत्व 2.9 से 4.75 के मध्य होता है। पृथ्वी का केन्द्रीय भाग निफे कहलाता है, जो निकिल और लोहे का बना होता है। इसके शैलों का घनत्व 8 से 11 होता है। **स्वेस** के अनुसार इन परतों को स्थलमण्डल, उत्तापमण्डल और गुरु या केन्द्रमण्डल कहा जाता है। भौगोलिक दृष्टिकोण के अनुसार हम कह सकते हैं कि कठोर भू—पर्पटी जो पृथ्वी के आन्तरिक गुरुमण्डल को ढके हुए है, स्थलमण्डल कहलाता है।

2. मध्यमण्डल क्या है?

उ०– पृथ्वी के मध्य भाग को जो पर्वत निर्माण की क्रिया, महाद्विपीय प्रवाह आदि भूभौतिकी परिघटनाओं को जन्म देने वाली ऊर्जा और शक्तियों का स्रोत है, मध्यमण्डल कहलाता है। मध्यमण्डल (मैण्टिल) को दो भागों में बाँटा जा सकता है—

(i) निचला मैण्टिल– इसका विस्तार बाह्य क्रोड के ऊपर 2,900 किमी० से 700 –1,000 किमी० तक पाया जाता है। यह अधिक घनत्व 4.6 से 5.5 तक के ऑक्साइड्स का बना माना जाता है।

(ii) ऊपरी मैण्टिल– इसका विस्तार निचले मैण्टिल के ऊपर धरातल से 700 या 1,000 किमी० गहराई से लेकर मोहो या मोहोरोविसिक असंतति तक है, जो भूपटल और मैण्टिल के बीच धरातल से 30 किमी० से 40 किमी० की गहराई पर संक्रमित है। ऊपरी मैण्टिल का घनत्व 3.3 से 4.6 तक है। यह पाइरॉक्सीन और ऑल्विन खनिजों से बनी घनी अतिमैफिक चट्टानों की परत है।

3. भ्रंशन किसे कहते हैं? इसके प्रकारों को भी बताइए।

उ०– **भ्रशंन–** जब किसी भाग पर क्षैतिज शक्तियाँ दो विपरीत दिशाओं मे कार्य करती हैं तो चट्टानों के बीच में दरार आ जाती है और जब वे उन्हीं दरारों के सहारे विस्थापित हो जाती हैं, इसे भ्रंशन कहते हैं। भ्रंशन के निम्नलिखित प्रकार होते हैं—

(i) सामान्य भ्रंशन– जब चट्टानों में भ्रंश उत्पन्न हो जाने के बाद अत्यधिक तनाव के कारण दरार के दोनों ओर के छोर परस्पर विपरीत दिशाओं में खिसकते हैं तो इसे सामान्य भ्रंशन कहते हैं।

(ii) व्युत्क्रम भ्रंशन– चट्टानों में दरार पड़ने के बाद जब खिंचाव के कारण भ्रंश के दोनों सिरे परस्पर आमने—सामने खिसकते हैं तथा शैल का एक भाग दूसरे भाग पर चढ़ जाता है तो इसे व्युत्क्रम भ्रंशन कहते हैं।

(iii) समानान्तर भ्रंशन– इस प्रकार के भ्रंश का निर्माण पर्वत—श्रेणियों की रचना के समय होता है। जब किसी चट्टान पर सम्पीडन का तीव्र प्रभाव पड़ता है तो वह किसी पर्वत—श्रेणी की तरह ऊपर की ओर उठ जाती है। इस ऊँची उठी श्रेणी में भी अनुदैर्ध्य समानान्तर भ्रंशों का निर्माण होता है, जिसे समानान्तर भ्रंशन कहते हैं।

(iv) सोपानी भ्रंशन– जब किसी चट्टान के भ्रंश पतली पट्टियों के रूप में सीढ़ी के समान बन जाते हैं, तो उसे सोपानी भ्रंशन कहते हैं।

(v) नमन भ्रंशन– जब चट्टानों का खिसकाव तनाव के कारण न्यूनकोण की दिशा के समानान्तर होता है तो यह नमन भ्रंशन कहलाता है।

4. भूकम्प किसे कहते हैं ?

उ०– **भूकम्प–** ''भूगर्भ की आन्तरिक हलचलों (विवर्तनिक शक्तियों) के कारण भू—पर्पटी अनायास तीव्र वेग के साथ कम्पन करने लगती है, जिसे **भूकम्प** या **भूचाल** अथवा **हालाडोला** कहते हैं।'' भूकम्प में धरातल करवट लेने लगता है। जिस स्थान पर भूकम्प की लहरें सर्वप्रथम उत्पन्न होती हैं, उसे **भूकम्प मूल** कहते हैं। इसके ठीक ऊर्ध्वाधर भूपृष्ठ पर वह स्थान, जहाँ पर भूकम्प का प्रथम कम्पन अनुभाग किया जाता है, **भूकम्प अधिकेन्द्र** कहलाता है। अधिकांश भूकम्पों के केन्द्र 60 किमी० से भी कम गहराई तक होते हैं। भूकम्प अधिकेन्द्र पर कम्पन तीव्रता से होते हैं, परन्तु इससे दूरी बढ़ने पर कम्पन की तीव्रता क्रमश: घटती जाती है।

भूकम्पीय कम्पनों की तीव्रता तथा भूकम्पों के स्वभाव का ज्ञान भूकम्पलेखी यन्त्र द्वारा किया जाता है। भूकम्प एक ऐसी प्राकृति आपदा है, जिससे बचाव का कोई समाधान अभी भी प्राप्त नहीं है।

5. प्रसुप्त ज्वालामुखी और सक्रिय ज्वालामुखी में अन्तर स्पष्ट कीजिए।

उ०– **प्रसुप्त ज्वालामुखी–** एक बार उद्गार होने के बाद इन ज्वालामुखियों से पदार्थों का निष्कासन बन्द हो जाता है और कुछ समय के अन्तराल के बाद वे फिर अचानक सक्रिय हो उठते हैं और अपार जान—माल की हानि करते हैं। इटली का **माउण्ट विसुवियस** प्रसुप्त ज्वालामुखी का एक अच्छा उदाहरण है। इसका उद्भेदन सन् 79 में हुआ था; उसके बाद यह 1552 वर्षों तक शान्त रहा और इसका पुन: उद्भेदन सन् 1631 में हुआ, जिससे दो नगर पूर्णतया ध्वस्त हो गए। जावा—सुमात्रा द्वीपों के मध्य स्थित **क्राकाटोआ** भी एक प्रसुप्त ज्वालामुखी है।

सक्रिय ज्वालामुखी– एक बार ज्वालामुखी क्रिया होने के बाद जिन ज्वालामुखियों से लगातार उद्गार के रूप में गैसें, राख तथा लावा बाहर निकलता रहता है, उन्हें 'सक्रिय ज्वालामुखी' कहते हैं। इस प्रकार के जवालामुखी की चोटी हमेशा प्रकाशमान रहती है। विश्व में इनकी संख्या लगभग 500 है। इटली का **माउण्ट एटना**, भूमध्यसागर में लिपारी द्वीप पर **स्ट्राम्बोली** तथा पूर्वी अफ्रीका का **किलोमजारो** ज्वालामुखी सदैव सक्रिय (प्रकाशमान) रहते हैं। विश्व मे सर्वाधिक सक्रिय ज्वालामुखी जापान में पाए जाते हैं।

6. रासायनिक अपक्षय से आप क्या समझते हैं?

उ०– वायुमण्डल के निचले स्तर पर कार्बन डाइ—ऑक्साइड(CO_2), ऑक्सीजन(O_2), नाइट्रोजन(N_2) और जलवाष्प आदि द्वारा चट्टानों से रासायनिक क्रिया के फलस्वरूप चट्टानों के ढ़ीली तथा अपघटित होकर नष्ट होने की क्रिया को रासायनिक अपक्षय कहते हैं। रासायनिक अपक्षय अधिकांशत: उष्ण तथा आर्द्र प्रदेशों में अधिक होता है।

7. भूस्खलन को स्पष्ट कीजिए।

उ०– **भूस्खलन–** पृथ्वी पर जब शैलों का अपक्षय होता है तो अपक्षय के फलस्वरूप अपक्षय पदार्थ गुरुत्वाकर्षण शक्ति के द्वारा ढाल की तरफ सरकना आरम्भ कर देते हैं। अपक्षयित पदार्थों के इस तरह ढाल की ओर सरकने की क्रिया को भूस्खलन कहते हैं। भूस्खलन की क्रिया अधिकांशत: पहाड़ी एवं पठारी क्षेत्रों में अधिक होती है। भूस्खलन के कारण बहुत हानि होती है। भूस्खलन

में वर्षा की बहुत अहम् भूमिका होती है। भूस्खलन के द्वारा प्राय: नदियों का मार्ग रुक जाता है।

भूस्खलन के प्रकार– भूस्खलन निम्न दो प्रकार के होते हैं—

(i) चट्टानी भूस्खलन– इस भूस्खलन में चट्टानें अपने स्थान से दूर चली जाती हैं तथा धीरे—धीरे नीचे की ओर सरकती हैं। इससे हानि कम होती है, क्योंकि इसके बारे में लोगों को सचेत होने का अवसर प्राप्त हो जाता है और वे इससे बचाव के उपाय कर लेते हैं।

(ii) अचानक भूस्खलन– इस प्रक्रिया में चट्टान अचानक ही अपनी मौलिक चट्टान से टूटकर गिर जाती है। यह बहुत खतरनाक होती है क्योंकि इसमें सम्भलने की सम्भावनाएँ नहीं होती हैं, जिसके कारण नीचे क्षेत्रों व घाटियों में रहने वाले लोगों का जीवन खतरे में पड़ जाता है।

8. तल सन्तुलन को प्रभावी करने वाले कारक बताइए।

उ०– पृथ्वी के धरातल को समतल करने की क्रिया को तल—संतुलन या समतलीकरण प्रक्रिया कहते हैं। तल—सन्तुलन की प्रक्रिया को मुख्यतया निम्न कारक प्रभावित करते हैं। (i) बहता हुआ जल, (ii) भूमिगत जल, (iii) हिमानियाँ, (iv) पवन, (v) समुद्री लहरें आदि।

9. सागरीय तरंगों के कार्य बताइए।

उ०– सागरीय तरंगों के कार्य– सागरीय तरंगे निम्नलिखित कार्य करती हैं—

(i) सागरीय तरंगों का अपरदन—कार्य (ii) सागरीय तरंगों का परिवहन—कार्य (iii) सागरीय तरंगों का निक्षेपण—कार्य

❖ विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

1. पृथ्वी की आन्तरिक संरचना पर प्रकाश डालिए।

उ०– पृथ्वी की आन्तरिक संरचना– पृथ्वी की आन्तरिक संरचना का अध्ययन भू—गर्भशास्त्र का क्षेत्र है लेकिन चट्टानों के विषय में ज्ञान प्राप्त करने के लिए पृथ्वी की आन्तरिक संरचना का अध्ययन करना अतिआवश्यक है। पृथ्वी के भौतिक लक्षणों व आन्तरिक संरचना के आधार पर पृथ्वी को निम्नलिखित तीन भागों में बाँटा जा सकता है—

(i) क्रोड– इसका निर्माण कठोर धात्विक पदार्थों से हुआ है, जिनमें मुख्यत: **निकिल** एवं **लौह** तत्त्वों की प्रधानता होती है। इसी कारण इसे 'निफे' नाम दिया गया है। इसका औसत घनत्व 11 है। उच्च तापमान और भारी दबाव के कारण यह परत गाढ़े तरल अथवा पिघली अवस्था में है। इसकी गहराई 3,400 किमी० तक है। निकिल और लोहे की प्रधानता के कारण यह भूगर्भ में चुम्बकीय शक्ति को प्रकट करती है। इसे निम्नलिखित तीन कटिबन्धों में विभाजित किया जाता है—

(क) भीतरी धात्विक क्रोड– यह क्रोड का सबसे भीतरी भाग 5,150 किमी० से 6,371 किमी० के बीच का भाग है। इसे ठोस अवस्था में माना जाता है। क्रोड के कारण ही पृथ्वी में चुम्बकीय शक्ति पाई जाती है। इसका घनत्व 13.3 से 13.6 तक है।

(ख) संक्रांति कटिबंध– यह क्रोड के सबसे भीतरी और बाह्य कटिबंध के बीच का 450 किमी० की मोटाई वाला दोनों के मिले—जुले लक्षणों का कटिबंध होता है।

(ग) बाह्य कटिबंध– बाह्य कटिबंध तरल धातुओं का 10 से 12.3 तक घनत्व का कटिबंध है। यह 2,900 किमी० से लगभग 4,950 – 5,150 किमी० की गहराई तक फैला होता है। यह कटिबंध तरल अवस्था में माना जाता है। इस कटिबंध में लोहे और निकिल के अतिरिक्त सिलिकॉन जैसे हलके पदार्थ भी शामिल होते हैं।

(ii) मध्यमण्डल– पृथ्वी की आन्तरिक संरचना को समझने और भूपटल की भूभौतिकी परिघटनाओं, जैसे— भू—विवर्तनिकी, पर्वत निर्माण की क्रिया, महाद्वीपीय प्रवाह आदि को समझने में मैण्टिल का महत्त्व बहुत अधिक है क्योंकि मैण्टिल इन परिघटनाओं को जन्म देने वाली ऊर्जा और शक्तियों का स्रोत है। मध्यमण्डल अथवा मैण्टिल को दो कटिबन्धों— निचले मैण्टिल और ऊपरी मैण्टिल में बाँटा जा सकता है।

(क) निचला मैण्टिल– इसका विस्तार बाह्य क्रोड के ऊपर 2,900 किमी० से 700 –1,000 किमी० तक पाया जाता है। यह अधिक घनत्व 4.6 से 5.5 तक के ऑक्साइड्स का बना माना जाता है।

(ख) ऊपरी मैण्टिल– इसका विस्तार निचले मैण्टिल के ऊपर धरातल से 700 या 1,000 किमी० गहराई से लेकर मोहो या मोहोरोविसिक असंतति तक है, जो भूपटल और मैण्टिल के बीच धरातल से 30 किमी० से 40 किमी० की गहराई पर संक्रमित है। ऊपरी मैण्टिल का घनत्व 3.3 से 4.6 तक है। यह पाइरॉक्सीन और ऑल्विन खनिजों से बनी घनी अतिमैफिक चट्टानों की परत है।

(iii) भू–पर्पटी या स्थलमण्डल– अन्त में **सबसे ऊपर भूपटल का विस्तार है**, जिसका घनत्व 2.7 से 2.9 तक है और जिसमें सिलिका चट्टानों की प्रधानता है। पृथ्वी की इस सबसे बाहरी परत या खोल को ही **स्थलमण्डल** या **भू-पर्पटी** कहते हैं। स्थलमण्डल की औसत मोटाई 30 किमी० से 40 किमी० तक है। अत: यह पृथ्वी की त्वचा के समान है।

महाद्वीपों के नीचे इसकी मोटाई महासागरीय द्रोणियों के नीचे की अपेक्षा अधिक है। मध्य प्रशान्त महासागर के तल के कुछ भागों में तो भू–पर्पटी लगभग नाममात्र को ही है, जबकि महाद्वीपों पर पर्वतों के नीचे इसकी मोटाई 60 किमी० तक भी पाई जाती है।

स्थलमण्डल की परतें– स्थलमण्डल को भी सामान्यत: **दो परतों** मे बाँटा जाता है—

(i) सियाल– ऊपरी परत सिलिका और ऐलुमिना से बनी होने के कारण **सियाल** कहलाती है।

(ii) सिमा– नीचे की परत सिलिका तथा मैग्नीशिया से बनी बेसाल्ट चट्टानों की होने के कारण **सिमा** कहलाती है। महाद्वीपों की रचना में सिआल पदार्थों की प्रधानता है, जबकि महासागरों के तल सिमैटिक पदार्थों से निर्मित हैं।

2. भूकम्प की परिभाषा देते हुए इसके कारण, प्रभावों एवं लाभों की विवेचना कीजिए।

उ०– **भूकम्प–** ''भूगर्भ की आन्तरिक हलचलों (विवर्तनिक शक्तियों) के कारण भू–पर्पटी अनायास तीव्र वेग के साथ कम्पन करने लगती है, जिसे **भूकम्प** या **भूचाल** अथवा **हालाडोला** कहते हैं।'' भूकम्प में धरातल करवट लेने लगता है। जिस स्थान पर भूकम्प की लहरें सर्वप्रथम उत्पन्न होती हैं, उसे **भूकम्प मूल** कहते हैं। इसके ठीक ऊर्ध्वाधर भूपृष्ठ पर वह स्थान, जहाँ पर भूकम्प का प्रथम कम्पन अनुभाग किया जाता है, **भूकम्प अधिकेन्द्र** कहलाता है। अधिकांश भूकम्पों के केन्द्र 60 किमी० से भी कम गहराई तक होते हैं। भूकम्प अधिकेन्द्र पर कम्पन तीव्रता से होते हैं, परन्तु इससे दूरी बढ़ने पर कम्पन की तीव्रता क्रमश: घटती जाती है।

भूकम्पीय कम्पनों की तीव्रता तथा भूकम्पों के स्वभाव का ज्ञान भूकम्पलेखी यन्त्र द्वारा किया जाता है। भूकम्प एक ऐसी प्राकृति आपदा है, जिससे बचाव का कोई समाधान अभी भी प्राप्त नहीं है।

भूकम्प के कारण– भूगर्भशास्त्रियों के अनुसार भूकम्प आने के निम्नलिखित कारण बताए गए हैं—

(i) भू-पटल में सिकुड़न– डाना एवं **बरमाण्ट** नामक भूगर्भशास्त्रियों के अनुसार, भूगर्भ की गर्मी विकिरण के माध्यम से धीरे–धीरे कम होती रहती है। ताप की कमी से पृथ्वी की ऊपरी पपड़ी में सिकुड़न आती है। भू–पटल के प्रभावित क्षेत्र की सिकुड़न पर्वत निर्माणकारी क्रिया को जन्म देती है। जब यह प्रक्रिया तीव्रता से होती है तो भू–पटलों में कम्पन प्रारम्भ हो जाता है।

(ii) प्लेट विवर्तनिकी– महाद्वीप तथा महासागरीय बेसिन विशालकाय दृढ़ भूखण्डों से बने हैं, जिन्हें प्लेट कहते हैं। सभी प्लेटें विभिन्न गति से सरकती रहती हैं। कभी–कभी जब दो प्लेट परस्पर टकराती हैं, तब भूकम्प आते हैं। 26 जनवरी, 2001 ई० को गुजरात के भुज क्षेत्र में उत्पन्न भूकम्प की उत्पत्ति का कारण भारतीय प्लेट का एशियाई प्लेट से टकराव ही था।

(iii) भूमि का अत्यधिक दोहन– धरती से जल, खनिज तेल व गैस का उत्यधिक दोहन करने के कारण भीतर का स्थान खाली हो जाता है। इस स्थान को भरने व सन्तुलित करने के लिए भूमि में हलचल होती है और भूकम्प आते हैं।

(iv) ज्वालामुखी उद्गार– जिन क्षेत्रों में ज्वालामुखी उद्गार होते हैं, वहाँ भूकम्प अवश्य ही आते हैं। जब विवर्तनिक हलचलों के कारण भूगर्भ से गैसयुक्त द्रवित लावा भू–पटल की ओर प्रवाहित होता है तो उसके दबाव से भू–पटल की शैलें हिल उठती हैं। यदि लावा के मार्ग में कोई भारी चट्टान आ जाए तो प्रवाहशील लावा दबाव की शक्ति का पुन: संचय कर उस चट्टान को वेग से ढकेलता है, जिससे भूकम्प आ जाता है। लावा का तीव्र वेग भी पृथ्वी को कँपा देता है। ज्वालामुखी विस्फोट जितना तीव्र होगा, भूकम्प भी उतना ही तीव्र होगा।

(v) भू–सन्तुलन में अव्यवस्था– भू–पटल पर विभिन्न बल समतल समायोजन में लगे रहते हैं, जिससे ऊँचे भाग नीचे हो जाते हैं तथा नीचे के भागों मे शैल चूर्ण जमा हो जाता है। इस प्रक्रिया में विभिन्न क्षेत्रों का भार घटता–बढ़ता रहता है, जिससे भूगर्भ की सियाल एवं सिमा की परतों में परिवर्तन होते रहते हैं। यह प्रक्रिया बहुत धीरे–धीरे होती है। परन्तु यदि यही क्रिया कहीं पर एकाएक प्रारम्भ हो जाए तो पृथ्वी के उस क्षेत्र में भूपटल पर कम्पन प्रारम्भ हो जाता है तथा उस क्षेत्र में भूकम्प के झटके आने लगते हैं।

(vi) जलीय भार– धरातल के जिन भागों में झीलें, तालाब, जलाशय आदि हैं, उनके नीचे की चट्टानों में भार एवं दबाव के कारण हेर–फेर होने लगता है। यदि यह परिवर्तन अचानक हो जाए तो भूकम्प आ जाता है। यह स्थिति स्थायी जल क्षेत्रों में नहीं होती, क्योंकि वहाँ पर सन्तुलन स्थापित हो जाता है। यह स्थिति मानव द्वारा बनाए गए बाँध आदि द्वारा भी उत्पन्न हो सकती है। 11 दिसम्बर, 1967 ई० को कोयना भूकम्प (महाराष्ट्र) कोयना जलाशय में जल भर जाने के कारण आया था।

भूकम्प के प्रभाव– मानव जीवन पर भूकम्प के निम्नलिखित प्रभाव पड़ते हैं—

(i) भूकम्प के कारण समुद्री भागों में बड़ी–बड़ी लहरें उठती हैं, जिससे तटीय भागों और जलयानों की भारी क्षति हो जाती है।

(ii) भूकम्प के कारण रेलवे लाइन तथा संचार व्यवस्था बाधित हो जाती है।

(iii) भूकम्प के कारण कई बार अनेकों नदियाँ अपना मार्ग बदल देती हैं, जिससे बाढ़ आ जाती है।

(iv) भूकम्प के कारण बड़े–बड़े शिला–खण्ड टूटकर नदियों के मार्ग में अवरोधक बन जाते हैं और बाढ़ आने का खतरा

उत्पन्न हो जाता है।

(v) भूकम्प आने से चट्टानों की रगड़ से जंगलों मे आग लग जाती है, जिससे वनस्पतियों को भारी नुकसान होता है।

भूकम्प के लाभ– भूकम्प से वैसे तो मानव को हानि ही होती हैं परन्तु कुछ कारणों से भूकम्प से लाभ होता है, जो निम्न हैं—

(i) भूकम्प से भू—स्खलन होता है, जिससे उपजाऊ मिट्टी धरातल पर आ जाती है, जिससे कृषि में लाभ होता है।

(ii) भूकम्प से धरातल पर होने वाले भ्रंशन और वलन से अनेक नए जलस्रोतों का जन्म होता है।

(iii) भूकम्पीय तरंगों से भू—गर्भ की आवश्यक जानकारी प्राप्त करने में सहायता मिलती है।

(iv) भूकम्प से जो भ्रंश और दरारें उत्पन्न होती हैं, उनसे कई खनिजों में की जाने वाली खुदाई में आसानी रहती है।

3. ज्वालामुखी के कारण पर प्रकाश डालिए।

उ०– ज्वालामुखी के कारण– ज्वालामुखी उद्गार के प्रमुख कारण निम्नलिखित हैं—

(i) ज्वालामुखी उद्गार का प्रमुख कारण भू—प्लेटों का खिसकना माना गया है। प्लेटों के खिसकने से पिघला हुआ मैग्मा धरातल पर पहुँचकर ज्वालामुखीय क्रिया को जन्म देता है।

(ii) रेडियोधर्मी पदार्थ भूगर्भ के ताप में वृद्धि करते हैं, जिसके कारण भूगर्भ की चट्टानें द्रव के रूप में परिणत हो मैग्मा के रूप में बदल जाती हैं, जो ज्वालामुखी क्रिया का प्रमुख कारण है।

(iii) भू—पृष्ठ से बड़ी मात्रा में जल रिस—रिसकर पृथ्वी के भीतर जाता रहता है। लगभग 5 किलोमीटर की गहराई तक पहुँचने पर तापमान इतना अधिक हो जाता है कि यह जल उबलने लगता है और भाप बन जाता है तथा जहाँ कहीं भी भू—पर्पटी की शैलें कमजोर होती हैं, भाप उन्हें फाड़कर एक बड़े धमाके के साथ बाहर निकल आती है। इस क्रिया को **ज्वालामुखी विस्फोट** कहते हैं।

भाप के साथ अनेक पिघले पदार्थ तथा गर्म लावा भी निकलता है। यही लावा धीरे—धीरे जवालामुखी पर्वत बन जाता है। ज्वालामुखी पर्वतों का निर्माण अधिकतर समुद्र के किनारे की भूमि पर ही होता है। इसका कारण यह है कि समुद्र के किनारे की भूमि का धरातल निर्बल होता है, अत: इस कमजोर भूमि की दरारों में होकर पानी अकसर पृथ्वी के अन्दर चला जाता है और भाप बन जाता है।

(iv) भूगर्भ में गैसों की उत्पत्ति का मुख्य कारण अधिकांशत: भूमि में जल का रिसाव होना है। इन गैसों में कार्बन डाइ—ऑक्साइड, हाइड्रोजन, सल्फर डाइ—ऑक्साइड, अमोनिया आदि मुख्य हैं। यही गैसें ज्वालामुखी उद्भेदन के समय अपनी मुख्य भूमिका निभाती हैं। महासागरीय तटवर्ती भागों में महासागरों का जल नीचे रिसकर गैसों की उत्पत्ति करने में सहायक होता है। जब यह क्रिया लगातार जारी रहती है तो धरातल के अधिकांश क्षेत्र में दरारें पड़ जाती हैं। जब ये गैसें ऊपर निकलने का प्रयास करती हैं तो दरारों से होकर इनके साथ—साथ लावा, जलवाष्प, चट्टानी खण्ड आदि भी निकल पड़ते हैं तथा ज्वालामुखी का प्रस्फुटन हो जाता है।

(v) पृथ्वी के अन्दर वलन व भ्रंशन की निर्माणकारी क्रियाओं के कारण भूतल की ऊपरी चट्टानों का दबाव नीचे की चट्टानों पर कम हो जाता है, जिससे भूगर्भ के व्यापक क्षेत्र में चट्टानों का द्रवीकरण हो जाता है तथा तरल मैग्मा के भण्डार में वृद्धि हो जाती है। पृथ्वी के भीतर बड़ी मात्रा में लावा अथवा पिघला पदार्थ चलता रहता है। जहाँ कहीं भी धरातल की पपड़ी कमजोर होती है, यह लावा धमाके के साथ बाहर निकल आता है। ज्वालामुखी उद्गार में लावा को ऊपर निकालने का श्रेय गैसों तथा जलवाष्प को है। गर्म, तप्त एवं तरल लावा अपने साथ अनेक गैसों का योग रखता है। इन गैसों के भारी दबाव से लावा धरातल पर आने की कोशिश करता है। यही कारण है कि ज्वालामुखी क्रियाएँ मोड़दार व वलित पर्वतों के क्षेत्रों मे अत्यधिक होती हैं।

(vi) ज्वालामुखी उद्भेदन में लावा की उत्पत्ति का सर्वाधिक महत्त्व है। भूगर्भशास्त्रियों के मतानुसार भू—पटल के नीचे 55 किमी० की गहराई में बेसाल्ट अथवा स्थायी मैग्मा भण्डार पाया जाता है। यह परत महासागरों की अपेक्षा महाद्वीपों के नीचे अधिक गहराई में पाई जाती है। भूगर्भ के आन्तरिक भागों में अत्यधिक ताप एवं दबाव के कारण चट्टानें द्रव अवस्था में परिणत हो जाती हैं। पृथ्वी के कमजोर भागों में प्राय: दरारें पड़ जाती हैं और लावा बाहर आ जाता हैं।

4. पवन अपरदन द्वारा बनने वाली विभिन्न आकृतियों को सचित्र समझाइए।

उ०– पवन अपरदन द्वारा बनने वाली विभिन्न आकृतियाँ– पवन के अपरदन से निम्नलिखित आकृतियों का निर्माण होता है—

(i) छत्रक शिला– पवन द्वारा उड़ाई गई बालू के कणों द्वारा अपरदन का कार्य धरातल से कुछ मीटर की ऊँचाई तक होता है। इस प्रक्रिया में पवन नीचे के भाग को घिस देती है, परन्तु ऊपरी भाग छतरी के आकार का हो जाता है, जिन्हें **छत्रक शिला** कहते हैं।

(ii) इन्सेलबर्ग– पवन की अपरदन क्रिया के फलस्वरुप समतल मैदान बनते हैं। इन मैदानों में कहीं—कहीं पर कठोर शैल गोलाकार पहाड़ी रूप में शेष बचे रह जाते हैं। इन्हें **इन्सेलबर्ग** कहते हैं। ये बहुत ही तिरछे और तीव्र ढाल वाले होते हैं।

इनका आकार पिरामिड तथा गुम्बद की तरह होता है।

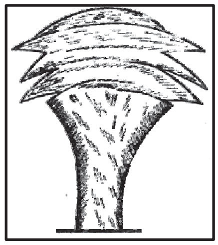

छत्रक शिला

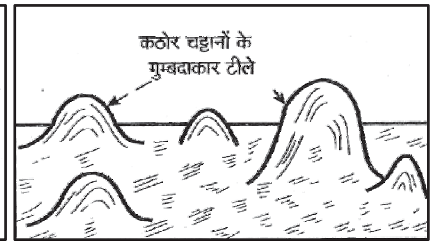

इन्सेलबर्ग

(iii) बालू का टीला– मरुस्थलीय प्रदेशों में जब पवन के मार्ग में कोई बाधा होती है तो पवन का वेग कम हो जाता है अथवा वर्षा हो जाती है, तो पवन के साथ उड़ने वाले पदार्थ का निक्षेपण हो जाता है जिससे **बालू के टीले** का निर्माण होता है। इन्हें **बालू का स्तूप** भी कहते हैं। इन अर्द्ध–चन्द्राकार टीलों को 'बरखान' भी कहते हैं। ये टीले खिसककर अपना स्थान बदलते हैं।

(iv) भूस्तम्भ– मरुस्थलीय प्रदेशों में जहाँ पर असंगठित मलबे से युक्त चट्टानों के ऊपर कठोर चट्टानों की परत बिछती रहती हैं, वहाँ पवन के सतह प्रवाह से संगठित चट्टानें घिस जाती हैं और कई ऊँचे टीले बन जाते हैं। इनके शिखर कठोर चट्टानों से बनते हैं। इस प्रकार की आकृति को **भूस्तम्भ** कहते हैं।

(v) यारडंग– यारडंग ज्यूजेन के विपरीत अवस्था में बनता है। कोयला और कठोर चट्टानें लम्बवत् रूप में मिलते हैं। जब वायु कोमल चट्टानों को बीच से उड़ाकर ले जाती है तो इससे कठोर चट्टानों के अवशेष बचे रह जाते हैं, जिन्हें **यारडंग** कहते हैं।

(vi) ज्यूजेन– मरुस्थलीय प्रदेशों में जब कोमल तथा कठोर चट्टानों की परतें ऊपर–नीचे एक–दूसरे के समानान्तर होती हैं तो ऊपरी कठोर शैलों की परत की संधियों में ओस भर जाती है, जिससे कठोर शैल का कुछ भाग विघटित होकर टूट जाता है। इन विघटित पदार्थों को हवा उड़ाकर ले जाती है। इस क्रिया द्वारा स्थान–स्थान पर कोमल शैल की परत उखड़ जाती है। इससे सम्पूर्ण पिण्ड टेढ़ा एवं उलटा होता है। इस पिण्ड को **ज्यूजेन** कहते हैं।

(vii) लोएस का मैदान– जब हवा अपने साथ महीन बालू–कण व धूल के कणों को उड़ाकर दूसरे स्थान पर निक्षेपित कर देती है तो इस प्रकार के कोमल कणों से बने मैदान को **लोएस का मैदान** कहते हैं। लोएस का जमाव समुद्रतल से 5000 फीट ऊँचाई तक होता है। इसका रंग पीला होता है। चीन के ह्वांगहो नदी की घाटी मे लोएस का जमाव मिलता है।

5. समुद्री लहरों पर एक टिप्पणी विस्तारपूर्वक लिखिए।

उ०– **समुद्री लहरें (सागरीय तरंगें)–** समुद्री लहरों का कार्य अपरदन के कार्य के रूप में बहुत सीमित है। सागरीय लहरों का उद्गम तीव्र पवनों के चलने से होता है। समुद्री लहरों का कार्य केवल उन्हीं क्षेत्रों में होता है, जहाँ तटीय भाग पाए जाते हैं। जब समुद्री तरंगे तीव्र प्रवाह द्वारा तटीय भागों को काटती हैं और तटीय भागों के अपरदित पदार्थों को सागर में बहा कर ले जाती हैं, तब पवनें इन पदार्थों को समुद्र–तट पर जमा कर देती हैं। समुद्री लहरें भी अपरदन, परिवहन तथा निक्षेपण इन तीनों कार्यों को सम्पन्न करती हैं।

सागरीय तरंगें भी अनाच्छादन के कार्यकर्ता के रूप में महत्वपूर्ण स्थान रखतीं हैं। सागरीय तरंगें निरन्तर अपने तट को काटती रहतीं हैं। इस कटाव और जमाव के फलस्वरूप अनेक स्थालाकृतियों का जन्म होता है। सागरीय लहरों द्वारा कटाव की क्रियाएँ निम्नलिखित प्रकार से होती हैं–

(i) जलीय गति द्वारा (By Hydraulic Action)– सागरीय लहरें लगातार तटों से आकर टकराती रहतीं हैं जिससे तटीय चट्टाने कटकर लहरों के साथ बह जाती हैं।

(ii) अपघर्षण क्रिया द्वारा (By Abrasion Action)– लहरों द्वरा अपरदित पदार्थ जब सागरीय तरंगों द्वारा तटों पर फेंका जाता है तो वे अपघर्षण का कार्य करते हैं।

(iii) सन्निघर्षण क्रिया द्वारा (By Attrition Action)– लहरों द्वारा तटों की चट्टानों के अपरदित पदार्थ आपस में टकराकर छोटे-छोटे टुकड़ों में टूट जाते हैं और निक्षेपित होकर कई नई आकृतियों का निर्माण करते हैं।

(iv) जलीय दबाव क्रिया द्वारा (By Water Pressure Action)– समुद्र का जल किनारे की चट्टानों के छिद्रों में दबाव द्वारा प्रवेश कर जाता है और छिद्रों को बड़ा कर चट्टानों का कटाव करता रहता है।

(v) घुलन क्रिया द्वारा (By Solution Action)– यदि तटीय भाग चूने की चट्टानों से निर्मित हो तो रासायनिक क्रिया करके सागरीय लहरें उन्हें घोल डालती हैं।

सागरीय तरंगों के कार्य– सागरीय तरंगे निम्नलिखित कार्य करती हैं–

(i) सागरीय तरंगों का अपरदन–कार्य

(ii) सागरीय तरंगों का परिवहन–कार्य

(iii) सागरीय तरंगों का निक्षेपण–कार्य

(i) सागरीय तरंगों का अपरदन–कार्य तथा सम्बन्धित स्थलाकृतियाँ– सागरीय तरंगों की अपरदन क्रिया द्वारा निम्न

स्थलाकृतियाँ निर्मित होती हैं—

(क) भृगु– मुलायम चट्टानों वाले सागरीय तट पर लहरों के लगातार प्रहार से तट का निचला भाग शीघ्रता से कट जाता है किन्तु तट रेखा सीधी खड़ी रह जाती है या सागर की ओर झुक जाती है जिसे **भृगु** कहते हैं।

(ख) तटीय गुफाएँ– जब तटीय प्रदेशों में कठोर तथा कोमल चट्टानें क्षैतिज रूप में एक दूसरे के ऊपर बिछी हों तो ऊपर की कठोर चट्टान के नीचे स्थित कोमल चट्टान का सागरीय तरंगें अधिक मात्रा में अपरदन करके आर—पार बड़ा छिद्र बना देती हैं। इस प्रकार **तटीय गुफा** का निर्माण हो जाता है।

(ग) महराब– कई बार सागरीय तट की चट्टानों का कोई भाग सागर के अन्दर तक फैला होता है। ऐसी चट्टान के निचले भाग में 'तटीय गुफा' के बनने से ऊपर का भाग एक महराब की तरह लटका रहता है। इसे **तटीय महराब** कहते हैं।

(घ) समुद्रतटीय स्तम्भ– जब तटीय गुफाओं की महराबनुमा छत टूटकर सागर में गिर जाती है तो महराब का स्तम्भ पूर्ववत् की भाँति एक लम्बी दीवार के रूप में खड़ा रह जाता है। इसे **समुद्रतटीय स्तम्भ** कहते हैं।

(ङ) वायु–छिद्र– तटवर्ती कन्दराओं पर लहरों के प्रहार से गुफा का मार्ग अवरुद्ध हो जाता है तो गुफाओं में भरी हुई वायु बाहर निकलने का प्रयास करती है और कईं बार गुफा की छत में छिद्र करके बाहर निकल जाती है। इस प्रकार वायु द्वारा उत्पन्न छिद्र को **वायु-छिद्र** कहते हैं।

(च) लघु निवेशिका– जब सागरीय तटों पर कठोर तथा कोमल चट्टानें पास—पास हों तो सागरीय लहरें कोमल चट्टानों का अण्डाकार रूप में अपरदन कर डालती हैं और कठोर चट्टानें खड़ी रहती हैं। इन अण्डाकार काटों को **लघु निवेशिका** कहते हैं।

(ii) सागरीय तरंगों का परिवहन–कार्य– नदियों द्वारा सागरीय तटों पर पर्याप्त मात्रा में अवसाद का निक्षेप किया जाता है। सागरीय तरंगें इस मलबे का तटों की ओर तथा सागर के अन्दर की ओर परिवहन करती रहती हैं। इसे ही **सागरीय तरंगों का परिवहन-कार्य** कहा जाता है।

(iii) सागरीय तरंगों का निक्षेपण–कार्य तथा सम्बन्धित स्थलाकृतियाँ– नदियों द्वारा सागर में डाले गए अवसाद तथा लहरों द्वारा सागरीय तट पर अपरदित किये गए पदार्थों का निक्षेपण करके सागरीय तरंगें निम्नलिखित स्थलाकृतियों का निर्माण करती हैं—

(क) पुलिन– सागरीय तरंगों द्वारा अपरदित पदार्थों का तटों पर ही जमाव होता रहता है, जिनसे तटीय भाग उथला सागर का रूप ले लेता है। यह अर्धचन्द्राकार रूप में विकसित होता है यहाँ बारीक रेत तथा बजरी तट पर फैली रहती है। इस सागर तटीय क्षेत्र को **पुलिन** कहते हैं। मद्रास का मेरीना बीच प्रसिद्ध पुलिन है।

(ख) सागरीय रोधिकाएँ– सागरीय तटों के साथ—साथ सागरीय तरंगों द्वारा निक्षेपण—क्रिया से अनेक समानान्तर कम ऊँचाई के बाँध बन जाते हैं। इन्हें ही सागरीय **रोधिका** (भित्ति) कहते हैं।

(ग) स्पिट– जब सागरीय तरंगों की निक्षेपण—क्रिया से रोधिका का एक सिरा सागर तट से जुड़ जाता है और दूसरा सिरा सागर की ओर फैला रहता है तो उसे **स्पिट** कहते हैं।

(घ) लूप– जब सागरीय तरंगों के द्वारा किए गए निक्षेपण के फलस्वरूप स्पिट का दूसरा सिरा भी मुड़कर तट से जा मिलता है तो एक छल्ला सा बन जाता है। इसे **लूप** कहते हैं।

(ङ) हुक– सागरीय लहरों के तट की ओर बहाव के कारण जब स्पिट का दूसरा सिरा तट की ओर मुड़ जाता है तो यह एक हुक की भाँति दिखाई पड़ता है। जब एक स्पिट में अनेकों हुक बन जाते हैं तो इन्हे **मिश्रित हुक** कहते हैं।

(च) टोम्बोलो– जब किसी रोधिका का सम्बन्ध सीधा किसी द्वीप से हो जाता है तो यह रोधिका तट और द्वीप के बीच में एक प्राकृतिक पुल का कार्य करती है। इसे ही **टोम्बोलो** कहा जाता है।

(छ) लैगून झील– जब रोधिका के दोनों सिरे सागरीय तट से जुड़ जाते हैं तो तट और रोधिका के बीच में एक खारे पानी की झील बन जाती है, जिसे **लैगून झील** कहते हैं। भारत के पूर्वी तट (ओडिशा) पर बनी चिलका झील एक लैगून झील है।

❖ मानचित्र सम्बन्धी अभ्यास कार्य

अध्यापक की सहायता से विद्यार्थी स्वयं करें।

❖ प्रोजेक्ट कार्य

अध्यापक की सहायता से विद्यार्थी स्वयं करें।

34

वायुमण्डल
(संरचना, सूर्यातप, ताप कटिबन्ध, वाष्पीकरण, संघनन, वर्षा एवं वितरण, मौसम और जलवायु, जलवायु का मानव जीवन पर प्रभाव)

अभ्यास

❖ **बहुविकल्पीय प्रश्न**

उ०– बहुविकल्पीय प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्य पुस्तक के पृष्ठ संख्या—293 व 294 का अवलोकन कीजिए।

❖ **अतिलघु उत्तरीय प्रश्न**

उ०– अतिलघु उत्तरीय प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्य पुस्तक के पृष्ठ संख्या—294 व 295 का अवलोकन कीजिए।

❖ **लघु उत्तरीय प्रश्न**

1. वायुमण्डलीय गैसों के संगठन को समझाइए।

उ०– वायुमण्डलीय गैसों का संगठन अर्थात वायुमण्डल में विद्यमान गैसों और उनकी मात्रा का विवरण निम्नलिखित है—

घटक	सूत्र	द्रव्यमान प्रतिशत
नाइट्रोजन	N_2	78.8
ऑक्सीजन	O_2	20.95
आर्गन	Ar	0.93
कार्बन डाइ-ऑक्साइड	CO_2	0.036
निआन	Ne	0.002
हीलियम	He	0.0005
क्रिप्टॉन	Kr	0.001
जेनॉन	Xe	0.00009
हाइड्रोजन	H_2	0.00005

2. क्षोभमण्डल से आप क्या समझते हैं?

उ०– **क्षोभमण्डल–** क्षोभमण्डल भूतल के सम्पर्क में वायुमण्डल की सबसे निचली परत होती है। इसमें वायुमण्डल के कुल आण्विक अथवा गैस भार का 75% संकेन्द्रित है। इसकी औसत ऊँचाई 13 किमी० है। ध्रुवों पर इस परत की ऊँचाई 8 किलोमीटर और भूमध्य रेखा पर 18 किलोमीटर है। संवहन धाराओं की अधिक सक्रियता के कारण इस परत को प्राय: संवहन क्षेत्र भी कहते हैं। क्षोभमण्डल में प्रति 165 मीटर की ऊँचाई पर 1° सेल्सियस तापमान पर 1 किमी० की ऊँचाई पर 6.4° सेल्सियस तापमान गिर जाता हैं। ऊँचाई बढ़ने पर तापमान गिरने की इस दर को सामान्य ह्रास दर कहते हैं। मानव व अन्य धरातलीय जीवों के लिए यह परत सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है। क्षोभमण्डल की ऊपरी सीमा पर जेट धाराएँ चलती हैं। इसकी ऊपरी सीमा को क्षोभ सीमा कहते हैं।

3. वायुमण्डल की विशेषताएँ बताइए?

उ०– **वायुमण्डल की विशेषताएँ–** वायुमण्डल की कुछ विशेषताएँ निम्नलिखित होती हैं—

(i) मानव जीवन व सम्पूर्ण जीव—जगत के लिए वायुमण्डल आवश्यक है।
(ii) वायुमण्डल एक रंगहीन, गंधहीन व स्वादहीन तत्व है।
(iii) वायुमण्डल को देखा नहीं जा सकता है।
(iv) वायुमण्डल की निचली परतों में भारी गैसें पाई जाती हैं।
(v) वायुमण्डल में गैसों के अतिरिक्त जलवाष्प, धूल व धुएँ के कण भी पाए जाते हैं।

4. सूर्यातप से आप क्या समझते हैं?

उ०– वायुमण्डल तथा पृथ्वी पर ऊष्मा का मुख्य स्रोत सूर्य है। वैज्ञानिकों के अनुमानानुसार सूर्य के तल का तापमान लगभग 10,000°F होना चाहिए। धरातल पर सूर्य से विकिरित लघु तरंगों के रूप में प्राप्त ऊर्जा को सूर्यातप कहते हैं। कुछ विद्वानों के अनुसार सूर्यातप की परिभाषाएँ निम्नवत् हैं—

एच०जे० क्रिचफील्ड के अनुसार—''सूर्य के विकिरण से पृथ्वी की सतह पर प्राप्त होने वाली ऊर्जा को सूर्यातप कहते हैं।''

ट्रिवार्था के अनुसार—''सूर्य से ताप का विकिरण लघु तरंगों के रूप में होता है, जो 1/250 से 1/6700 किमी० लम्बी होती हैं

तथा 3 लाख किमी० प्रति सेकण्ड की गति से चलती हैं, सूर्यातप कहलाती हैं।''

केण्ड्रयू के अनुसार—''सूर्य लगातार जिस ऊर्जा को प्रसारित करता रहता है वह सौर्य—शक्ति कहलाती है।''

5. तापमान क्या है?

उ०– पृथ्वी पर ऊष्मा का मुख्य स्रोत सूर्य है। सूर्य की किरणें वायुमण्डल से होती हुई धरातल पर पहुँचती हैं। इन किरणों से वायुमण्डल प्रत्यक्ष रूप से गरम नहीं होता है। ये किरणें केवल धरातल को ही गरम करती हैं। गरम धरातल को छूकर वायु भी गरम हो जाती है, जिससे उसका तापमान बढ़ जाता है। किसी वस्तु या स्थान में ताप की मात्रा को उसका तापमान कहते हैं। अन्य शब्दों में हम कह सकते हैं कि किसी स्थान पर वहाँ की वायु के तापमान को उस स्थान का तापमान कहते हैं। तापमान को मापने के लिए थर्मामीटर का प्रयोग करते हैं।

किसी स्थान का तापमान भूमि से दो मीटर की ऊँचाई पर मापा जाता है, जिससे भूमि की गर्मी अपना प्रभाव न डाल सके। इसके लिए स्टीवनसन स्क्रीन का प्रयोग किया जाता है।

6. सूर्यातप और तापमान में अन्तर स्पष्ट कीजिए?

उ०– **सूर्यातप और तापमान में अन्तर–** सूर्यातप और तापमान में अन्तर को निम्न प्रकार से समझा जा सकता है—

(i) सूर्यातप गर्मी मात्र है और यह ऊर्जा की मात्रा है, जबकि गर्मी अथवा ऊर्जा की माप को तापमान कहते हैं।

(ii) सूर्यातप को कैलोरी में मापते हैं, जबकि तापमान को अंशों में थर्मामीटर द्वारा मापा जाता है। तापमान की मापन इकाई फारेनहाइट, सेण्टीग्रेड अथवा रियूमर हो सकती है।

(iii) सूर्यातप एक कारण मात्र है। यह वायुमण्डल को गरम करने का कारण बनता है, जबकि तापमान गर्मी का प्रभाव है। सूर्यातप से अधिक ऊर्जा प्राप्त होने से तापमान में वृद्धि होती है।

7. वाष्पीकरण और संघनन में अन्तर स्पष्ट कीजिए?

उ०– **वाष्पीकरण और संघनन में अन्तर–**

प्रतिदिन, प्रतिक्षण, सूर्याताप पृथ्वी के जल को गैस (वाष्प) के रूप में परिवर्तित करता है, इस प्रक्रिया को वाष्पीकरण कहते हैं। अन्य शब्दों में हम कह सकते हैं कि जल के तरलावस्था या ठोसावस्था से गैसीय अवस्था में बदलने की प्रक्रिया को वाष्पीकरण कहते हैं। एक ग्राम जल को वाष्प या गैस में परिवर्तित करने के लिए ऊष्मा के रूप में 607 कैलोरी ऊर्जा की आवश्यकता होती है। जबकि

संघनन की प्रक्रिया, वाष्पीकरण की प्रक्रिया की उलटी होती है। इस प्रक्रिया में जलवाष्प, जल की छोटी—छोटी बूँदों या हिम—कणों में परिणत हो जाती है। संघनन की प्रक्रिया तभी आरम्भ होती है, जब वायु का तापमान ओसांक बिन्दु से नीचे गिर जाता है। जब वायुमण्डल में सापेक्षिक आर्द्रता 100% होती है, तब उपस्थित जलवाष्प, जल सीकरों के रूप में संघनित हो जाती है। संघनन की प्रक्रिया तभी सम्भव है, जब वायुमण्डल में धूल के छोटे—छोटे ठोस कण विद्यमान हों। जलवाष्प इन्हीं छोटे—छोटे कणों के चारों ओर एक पतली परत के रूप में संघनित हो जाती है। जल की नन्ही—नन्ही बूँदें वायुमण्डल में तैरती रहती हैं, जिनसे मेघों का निर्माण होता है।

8. पर्वतीय वर्षा का स्वच्छ चित्र बनाइए।

उ०–

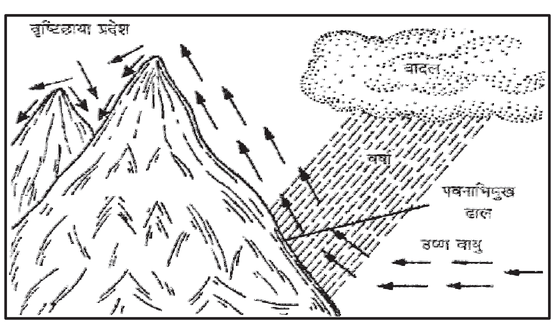

पर्वतीय वर्षा

9. प्रतिचक्रवात से आप क्या समझते?

उ०– **प्रतिचक्रवात–** वृत्ताकार समवायुदाब द्वारा घिरा एक ऐसा क्रम, जिसके केन्द्र में वायुदाब उच्चतम होता है और बाहर की ओर क्रमश: घटता है, प्रतिचक्रवात कहलाता है। प्रतिचक्रवात में हवाएँ केन्द्र से परिधि की ओर चलती हैं। प्रतिचक्रवात में मौसम साफ रहता है तथा इसमें हवाओं की गति बहुत कम होती है। आकार में ये गोलाकार होते हैं तथा कभी—कभी इनका आकार अंग्रेजी भाषा के 'V' अक्षर के समान होता है। इनका आकार अन्य चक्रवातों की तुलना में बहुत विस्तृत होता है। प्रतिचक्रवात की गति 30 से 35 किलोमीटर प्रतिघण्टा होती है। इनमें केन्द्र में हवाएँ ऊपर से नीचे उतरती हैं। अत: केन्द्र का मौसम साफ

होता है और वर्षा के आसार नहीं होते हैं।

❖ **विस्तृत उत्तरीय प्रश्न**

1. वायुमण्डल की संरचना को विस्तारपूर्वक समझाइए?

उ०– **वायुमण्डल की संरचना–** वायुमण्डल की संरचना से तात्पर्य है कि वायुमण्डल किन–किन तत्त्वों से मिलकर बना है। वायुमण्डल अनेक गैसों का सम्मिश्रण है। इसका अर्थ यह है कि प्रत्येक गैस अन्य गैसों के साथ समांग रूप से मिले रहने पर भी अपनी स्वतंत्र सत्ता बनाए रखती है। वायुमण्डल की निचली परतों में पाई जाने वाली गैसों का विवरण निम्नांकित है—

वायुमण्डल की स्थायी गैसें

घटक	सूत्र	द्रव्यमान प्रतिशत
नाइट्रोजन	N_2	78.8
ऑक्सीजन	O_2	20.95
आर्गन	Ar	0.93
कार्बन डाइ–ऑक्साइड	CO_2	0.036
निआन	Ne	0.002
हीलियम	He	0.0005
क्रिप्टॉन	Kr	0.001
जेनॉन	Xe	0.00009
हाइड्रोजन	H_2	0.00005

गैसों के अतिरिक्त वायुमण्डल में जलवाष्प और कुछ सूक्ष्म ठोस कण भी पाए जाते हैं, जिनमें धूलकण सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण होते हैं।

वायुमण्डल की निम्नलिखित पाँच परतें होती हैं—

(i) क्षोभमण्डल– क्षोभमण्डल भूतल के सम्पर्क में वायुमण्डल की सबसे निचली परत होती है। इसमें वायुमण्डल के कुल आण्विक अथवा गैस भार का 75% संकेन्द्रित है। इसकी औसत ऊँचाई 13 किमी० है। ध्रुवों पर इस परत की ऊँचाई 8 किलोमीटर और भूमध्य रेखा पर 18 किलोमीटर है। संवहन धाराओं की अधिक सक्रियता के कारण इस परत को प्राय: संवहन क्षेत्र भी कहते हैं। क्षोभमण्डल में प्रति 165 मीटर की ऊँचाई पर 1° सेल्सियस तापमान पर 1 किमी० की ऊँचाई पर 6.4° सेल्सियस तापमान गिर जाता हैं। ऊँचाई बढ़ने पर तापमान गिरने की इस दर को सामान्य ह्रास दर कहते हैं। मानव व अन्य धरातलीय जीवों के लिए यह परत सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है। क्षोभमण्डल की ऊपरी सीमा पर जेट धाराएँ चलती हैं। इसकी ऊपरी सीमा को क्षोभ सीमा कहते हैं।

(ii) समतापमण्डल– समतापमण्डल क्षोभमण्डल से ऊपर धरातल से 50 किमी० ऊँचाई तक विस्तृत है। यह एक संवहन—रहित परत है। यह परत विशाल जेट वायुयानों की उड़ानों के लिए आदर्श मानी जाती है। समतापमण्डल परत की मोटाई भूमध्य—रेखा की अपेक्षा ध्रुवों पर अधिक होती है। इस परत के निचले भाग में अर्थात् 20 किलोमीटर की ऊँचाई तक तापमान धीरे—धीरे बढ़ता है। समताप मण्डल में अक्षांशीय ताप वितरण क्षोभमण्डल से भिन्न होता है। यहाँ भूमध्य रेखा पर तापमान – 80° सेल्सियस तथा 60° अक्षांशों पर –45° सेल्सियस रहता है। अंतरिक्ष से पृथ्वी की ओर आ रहे उल्कापिण्ड समतापमण्डल में जलकर नष्ट हो जाते हैं। इस प्रकार समतापमण्डल ऊपर के अन्य मण्डलों की तरह पृथ्वी के लिए सुरक्षा कवच का कार्य करता है। समतापमण्डल की ऊपरी सीमा समताप सीमा कहलाती है, जिसमें ओजोन की मात्रा अधिक होती है। इस संक्रमण पेटी में कभी—कभी मोतियों जैसी आभा वाले दुर्लभ बादल भी दिखाई देते हैं। इसलिए यह पट्टी मुत्तामेघों की जननी कहलाती है।

(iii) मध्यमण्डल– समतापमण्डल के ऊपर स्थित वायुमण्डल की तीसरी परत को मध्यमण्डल कहते हैं। इसका विस्तार 80 किलोमीटर की ऊँचाई तक होता है। ऊँचाई के साथ—साथ तापमान घटने लगता है और 80 किलोमीटर की ऊँचाई पर तामपान —100° सेल्सियस तक नीचे गिर जाता है। मध्यमण्डल में वायुमण्डल का सबसे कम तापमान होता है। इस परत में ग्रीष्मकाल में मध्य अक्षांशीय प्रदेशों में निशादीप्त मेघ दिखाई देते हैं। इन बादलों की उत्पत्ति उल्काओं के विखण्डन से प्राप्त धूलकणों के नाभिकों के चारों ओर हिमकणों के एकत्रित होने से होती है। मध्यमण्डल की ऊपरी सीमा 'मध्यमण्डल सीमा' कहलाती है। मध्यमण्डल में प्रवेशी विकिरण के अवशोषण के लिए जलवाष्प, धूलकण, बादल व ओजोन नहीं हैं।

(iv) तापमण्डल– मध्यमण्डल से ऊपर वायुमण्डल की चौथी परत तापमण्डल है। यह 80 किमी० से 640 किमी० तक व्याप्त है। इस परत के आरम्भ होते ही तापमान बढ़कर 1480° सेल्सियस तक पहुँच जाता है। इतने ऊँचे तापमान का इस परत में

कोई विशेष महत्त्व नहीं है, क्योंकि यहाँ वायु का घनत्व नगण्य है। अत: वह न तो ऊष्मा को धारण कर सकती है, न ही चालन कर सकती है। आयनमण्डल में ब्रह्माण्ड किरणों का परिलक्षण होता है। आयनमण्डल पृथ्वी की ओर से भेजी गई रेडियों तरंगों को परावर्तित करके पुन: पृथ्वी पर भेज देता है।

(v) बाह्यमण्डल– वायुमण्डल की सबसे ऊँची और पाँचवी परत बाह्यमण्डल है, जो 640 किमी० से ऊपर फैली है। इस परत में तापमान 300° सेल्सियस से 1650° सेल्सियस के मध्य पाया जाता है। इसकी वायु अत्यन्त विरल है, जो धीरे—धीरे अंतरिक्ष में विलीन हो जाती है। इस परत में गैस के सामान्य नियम नहीं लागू होते हैं। विरल गैसों से निर्मित इस परत में ऑक्सीजन के न्यूट्रल अणु, आयनीकृत ऑक्सीजन तथा हाइड्रोजन के अणु भारी मात्रा में विद्यमान होते हैं। गुरुत्वाकर्षण के क्षीण होने के कारण हाइड्रोजन व हीलियम के सूक्ष्म कण सरलता से शून्य में विसरित हो जाते हैं।

2. सूर्यातप को प्रभावित करने वाले कारकों पर प्रकाश डालिए?

उ०– सूर्यातप को प्रभावित करने वाले कारक–

(i) दिन और रात की लम्बाई– पृथ्वी अपने लम्बवत् अक्ष से 23½° झुकी हुई है। यह अपने अक्ष पर परिभ्रमण (घूर्णन) करने के साथ—साथ सूर्य का परिक्रमण भी करती है। पृथ्वी का परिक्रमा पथ सूर्य के चारों ओर समान दूरी पर होता है। जब सूर्य की स्थिति उत्तरायण होती है, तब उत्तरी गोलार्द्ध में अधिकतम सूर्यातप की प्राप्ति होती है। अक्षांशीय स्थिति के अनुसार दिन की लम्बाई में भी वृद्धि हो जाती है, फलस्वरूप सूर्यातप की प्राप्ति भी अधिक होती है। दक्षिणी गोलार्द्ध में इसके विपरीत स्थिति पाई जाती है। इस प्रकार सूर्य के विषुवत् वृत्त से उत्तर एवं दक्षिण हटने पर सूर्यातप भी कम या अधिक प्राप्त होता रहता है।

(ii) धरातल का रंग एवं प्रकृति– रंग एवं प्रकृति के अनुसार धरातल को सूर्यातप की भिन्न—भिन्न मात्रा प्राप्त होती है; उदाहरण के लिए यदि कहीं धरातल का रंग वनस्पति के कारण हरा है तो उस स्थान पर सूर्यातप की मात्रा कम प्राप्त होती है। इसके विपरीत काली एवं लाल मिट्टी के क्षेत्रों में सूर्यातप की अधिक मात्रा प्राप्त होती है। इसी प्रकार धरातलीय प्रकृति की भिन्नता में पर्वत, पठार, मैदान एवं मरुस्थल आदि पर सूर्यातप की भिन्न—भिन्न मात्रा प्राप्त होती है। मैदानी भागों की अपेक्षा पर्वतीय क्षेत्रों में सूर्यातप की अधिक मात्रा प्राप्त होती है, क्योंकि मैदानी भागों की अपेक्षा पर्वतीय क्षेत्रों में सूर्य की किरणें पहले चमकती हैं।

(iii) अक्षांशीय स्थिति– सूर्यातप अक्षांशीय स्थिति पर निर्भर करता है। विषुवत् रेखा पर सूर्यातप की अधिकतम मात्रा होती है; विषुवत् रेखा से उच्च अक्षांशों (उत्तर एवं दक्षिण) की ओर बढ़ने पर ताप में कमी होती जाती है, क्योंकि यहाँ सूर्य की किरणों के सापेक्ष तिरछेपन का प्रभाव पड़ता है। विषुवत् रेखा से ध्रुवों की ओर औसत तापमान क्रमश: घटता जाता है, परन्तु अधिकतम तापमान विषुवत् रेखा पर न होकर कर्क रेखा (ग्रीष्म ऋतु) तथा मकर रेखा (शीत ऋतु) पर होता है, क्योंकि सूर्य की स्थिति उत्तरायण एवं दक्षिणायन क्रमश: 6–6 माह में बदलती रहती है।

(iv) प्रचलित पवनें– निम्न अक्षांशों से उच्च अक्षांशों की ओर प्रवाहित होने वाली उष्ण पवनें तापमान को बढ़ा देती हैं, जबकि ध्रुवों की ओर से प्रवाहित होने वाली पवनें निम्न अक्षांशों के तापमान में कमी कर देती हैं। प्रचलित पवनों के कारण ही जलधाराओं का प्रभाव तटवर्ती क्षेत्रों तक पहुँचता है। जल भागों से स्थल भागों की ओर प्रवाहित होने वाली पवनें तापान्तर में कमी कर देती हैं। इसी प्रकार चक्रवातों के आगमन के समय तापमान बढ़ जाता है तथा समाप्ति पर घट जाता है।

(v) समुद्र तल से ऊँचाई– समुद्र तल से ऊँचाई में वृद्धि के साथ—साथ तापमान में भी कमी आती जाती है। सामान्यत: समुद्र तल से प्रति 165 मीटर की ऊँचाई पर 1° सेल्सियस तापमान कम हो जाता है। वायुमण्डल को ताप प्राप्ति धरातल के पार्थिव विकिरण द्वारा होती है, जिससे धरातल के समीप वाली वायु सर्वाधिक गर्म होती है। इसके साथ ही धरातल पर वायु की परतें भी सघन होती हैं, परन्तु ऊँचाई में वृद्धि के साथ—साथ वायु की परतें भी विरल होने लगती हैं। वायुमण्डल की सघन परतों में जलवाष्प, धूलकणों की मात्रा आदि भी अधिक होती है। ये अधिक मात्रा में सूर्यातप का अवशोषण करते हैं, परन्तु ऊँचाई के साथ—साथ इनमें कमी आती जाती है।

(vi) वायुमण्डल की पारदर्शिता– वायुमण्डल में अधिक आर्द्रता की मात्रा सूर्यातप का अवशोषण कर लेती है, जबकि विभिन्न गैसें एवं धूलकण सूर्यातप का प्रकीर्णन करते हैं। आकाश में बादल छा जाने के कारण सूर्यातप का 3/4 भाग परावर्तित हो जाता है। यही कारण है कि शुष्क प्रदेशों में आर्द्रता की कमी के कारण सूर्यातप की प्राप्ति अधिक होती है। यदि वायुमण्डल में धूलकणों की मोटाई सूर्य की विकिरण तरंगों से अधिक है तो सूर्यातप के परावर्तन की क्रिया अधिक होती है; अत: वायुमण्डल के स्वच्छ होने पर सूर्यातप की प्राप्ति भी अधिक होती है।

(vii) सागरीय धाराएँ– विषुवत् रेखा से ध्रुवों की ओर गर्म जलधाराएँ प्रवाहित होती हैं, जो शीतोष्ण एवं शीत कटिबन्धीय प्रदेशों के तटीय भागों के तापमान में वृद्धि कर देती हैं। इसके विपरीत ध्रुवीय प्रदेशों से विषुवतीय प्रदेशों की ओर शीतल जलधाराएँ प्रवाहित होती हैं, जो उष्ण कटिबन्ध के तटीय प्रदेशों के तापमान में कमी कर देती हैं। दो विपरीत धाराओं के मिलन से कोहरे की उत्पत्ति होती है।

(viii) सौर कलंकों की संख्या– सूर्य की सतह पर विशिष्ट प्रकार के कलंक या धब्बे पाए जाते हैं, जिनके विघटन से ताप की उत्पत्ति होती है। औसत रूप से सौर कलंक का एक चक्र ग्यारह वर्ष की अवधि में पूर्ण होता है। प्रयोगों द्वारा यह ज्ञात किया गया है कि उस वर्ष (ग्यारहवें वर्ष) अन्य वर्षों की अपेक्षा सूर्यातप की प्राप्ति अधिक होती है।

(ix) मिट्टी की प्रकृति– अधिक गहरे रंग की मिट्टियाँ ताप का अधिक अवशोषण कर लेती हैं, जिससे तापमान में वृद्धि हो जाती है। इसके विपरीत हलके रंग की मिट्टियाँ कम मात्रा में ताप का अवशोषण करती हैं, जिससे तापमान में वृद्धि नहीं हो पाती। काली मिट्टी के प्रदेशों में 8 से 14 प्रतिशत तक ताप का परावर्तन हो जाता है। बालू प्रधान क्षेत्रों में चीका मिट्टी की अपेक्षा बलुई मिट्टी में ताप का अधिक अवशोषण होता है।

(x) मेघाच्छादन– सूर्य की किरणों को पृथ्वी तक पहुँचने में बादलों द्वारा बाधा उत्पन्न होती है, क्योंकि ये ताप को परावर्तित कर देते हैं। बादलरहित क्षेत्रों में तापमान अधिक होता है। ऐसे प्रदेशों में जहाँ हर समय बादल छाए रहते हैं, तापमान अधिक नहीं हो पाता।

3. तापमान की परिभाषा देते हुए इसके प्रकारों को स्पष्ट कीजिए।

उ०– तापमान– किसी वस्तु या स्थान में ताप की मात्रा को उसका तापमान कहते हैं। दूसरे शब्दों में किसी स्थान पर वहाँ की वायु के तापमान को उस स्थान का तापमान कहते हैं।

वायुमण्डल में पाए जाने वाले तापमान को निम्न प्रकार से समझा जा सकता है—

(i) तापमान का क्षैतिज वितरण– तापमान के क्षैतिज वितरण को अक्षांशीय आधार पर निम्नलिखित तीन ताप कटिबन्धों में बाँटा गया है—

(क) उष्ण कटिबन्ध– उष्ण कटिबन्ध का विस्तार विषुवत् रेखा के दोनों ओर 23½° उत्तरी एवं दक्षिणी अक्षांशों के मध्य मिलता है। उत्तर में कर्क रेखा तथा दक्षिण में मकर रेखा इस कटिबन्ध की बाह्य सीमाओं का निर्धारण करती हैं। पृथ्वी के परिक्रमण के कारण इस क्षेत्र में सूर्य की किरणें वर्ष मे दो बार लम्बवत् पड़ती हैं; अत: इस क्षेत्र में अधिकतम तापमान (औसत वार्षिक तापमान 20° सैल्सियस से अधिक) रहने के कारण इसे उष्ण कटिबन्ध कहा जाता है। इस कटिबन्ध में शीत ऋतु नहीं पाई जाती है, जबकि कर्क और मकर रेखाओं के समीपवर्ती भागों में क्रमश: ग्रीष्म एवं शीत ऋतुएँ मिल जाती हैं। इस कटिबन्ध के अतिरिक्त धरातल पर सूर्य की किरणें कहीं भी लम्बवत् नहीं पड़ती हैं; अत: यह **कटिबन्ध शीत ऋतु रहित उष्ण कटिबन्ध** के नाम से जाना जाता है।

(ख) शीतोष्ण कटिबन्ध– यह ताप कटिबन्ध दोनों गोलार्द्धों में 23½° से 66½° उत्तरी एवं दक्षिणी अक्षांशों के मध्य विस्तृत है। इस कटिबन्ध में सूर्य की किरणें अपेक्षाकृत तिरछी पड़ती हैं। यहाँ न तो अधिक गर्मी पड़ती है और न ही अधिक सर्दी। इस कटिबन्ध में तापमान ऋतुओं के अनुसार घटता—बढ़ता रहता है। इसके साथ ही दिन एवं रात की अवधि भी ऋतुओं के अनुसार घटती—बढ़ती रहती है, परन्तु यह अवधि आर्कटिक वृत्त (66½° उत्तरी अक्षांश) और अण्टार्कटिक वृत्त (66½° दक्षिणी अक्षांश) पर 24 घण्टे से अधिक नहीं हो पाती है। इस कटिबन्ध में औसत तापमान उष्ण कटिबन्ध से कम, परन्तु शीत कटिबन्ध से अधिक पाया जाता है। ग्रीष्म ऋतु में उष्ण तथा शीत ऋतु में शीतल जलवायु दशाएँ पाई जाती हैं। इसी कारण इसे **शीतोष्ण कटिबन्ध** कहते हैं।

(ग) शीत कटिबन्ध– यह कटिबन्ध दोनों गोलार्द्धों में 66½° अक्षांशों से लेकर ध्रुवों तक विस्तृत है। इस कटिबन्ध में सूर्य क्षितिज से ऊपर नहीं जा पाता है; अत: सूर्य की किरणें सदैव तिरछी पड़ती हैं, जिससे इस कटिबन्ध में सदैव न्यूनतम तापमान पाए जाते हैं। यहाँ दिन—रात की अवधि आर्कटिक और अण्टार्कटिक वृत्तों पर 24 घण्टे से आरम्भ होकर ध्रुवों पर 6 माह तक हो जाती है अर्थात् ध्रुवों पर क्रमश: 6 महीने का दिन तथा 6 महीने की रात होती है। अत्यधिक शीत पड़ने के कारण इसे **'शीत कटिबन्ध'** कहा जाता है। यह कटिबन्ध वर्षभर हिम से ढका रहता है।

यदि स्थलमण्डल और वायुमण्डल पर एक साथ सूर्यातप का अध्ययन किया जाए तो ऊष्मा का एक सन्तुलन दिखाई पड़ता है। ऊष्मा की कोई वास्तविक प्राप्ति या हानि नहीं होती है, परन्तु पृथ्वी और वायुमण्डल के मध्य ऊर्जा का स्थानान्तरण होता रहता है। पृथ्वी की गोल आकृति तथा उसका अपने क्षैतिज अक्ष पर 23½° झुकाव के कारण अक्षांशीय कटिबन्धों में सूर्यातप के क्षैतिज वितरण में परिवर्तन आ जाता है। इस आधार पर 37½° उत्तरी अक्षांश तथा 37½° दक्षिणी अक्षांशों के मध्य ऊष्मा की प्राप्ति उसकी हानि से कहीं अधिक होती है। इसके विपरीत मध्य और उच्च अक्षांशों में ऊर्जा की प्राप्ति कम, जबकि हानि अधिक होती है।

इन कटिबन्धों में ऊर्जा की प्राप्ति की अपेक्षा उसकी अधिक हानि तभी सम्भव है, जबकि निम्न अक्षांशों (उष्ण कटिबन्ध) से अतिरिक्त ऊर्जा मध्य और उच्च अक्षांशों अर्थात् शीतोष्ण कटिबन्ध तथा शीत कटिबन्धों में स्थानान्तरित हो जाए। ऊष्मा का यह स्थानान्तरण पवनों और महासागरीय धाराओं के द्वारा होता है। पृथ्वी और वायुमण्डल के असमान रूप से गर्म होने के कारण ही वायुमण्डल तथा महासागरों मे परिसंचरण सम्भव हुआ है। इस प्रकार वायु एवं जल के परिसंचरण द्वारा ही पृथ्वी पर ऊष्मा का सन्तुलन बना हुआ है।

(ii) **तापमान का लम्बवत् वितरण–** वायुमण्डल में तापमान लम्बवत् ऊँचाई के आधार पर घटता है। प्रति 165 मीटर की ऊँचाई पर तापमान में 1°C की कमी आ जाती है। इसका प्रमुख कारण यह है कि वायुमण्डल पृथ्वी से प्राप्त भौमिक विकिरण से प्रत्यक्ष तौर पर गर्मी प्राप्त करता है। धरातल के सबसे निकट की परतें ताप का सबसे अधिक शोषण करती हैं। इसके कारण ऊपरी परतों तक पहुँचने वाला भौमिक विकिरण का ताप घटता जाता है और अधिक ऊपर की परतों में तापमान में स्थिरता आती जाती है और कहीं–कहीं ताप कम होने की अपेक्षा ऊँचाई से बढ़ता भी है। इस क्रिया को 'तापमान की विलोमता' कहा जाता है।

4. ऊष्मा सन्तुलन को स्पष्ट कीजिए।

उ०– **ऊष्मा सन्तुलन–** पृथ्वी सूर्य से जितनी ऊष्मा प्राप्त करती है, उतनी उष्मा का वह त्याग भी कर देती है। इसलिए पृथ्वी पर औसत तापमान सदा एक जैसा बना रहता है। पृथ्वी द्वारा प्राप्त **सूर्यातप** और उसके द्वारा छोड़े जाने वाले **भौमिक विकिरण के खाते** को 'पृथ्वी का ऊष्मा बजट' कहा जाता है।

मान लीजिए वायुमण्डल की सबसे ऊपरी सतह पर प्राप्त होने वाली ऊष्मा 100 इकाई है। इसमें से 35 इकाइयाँ धरातल पर पहुँचने से पहले ही अंतरिक्ष मे **परावर्तित** हो जाती हैं।

इन 35 इकाइयों में से 6 इकाइयाँ धूलकणों से प्रकीर्णन द्वारा, 27 इकाइयाँ मेघों द्वारा और शेष 2 इकाइयाँ बर्फ से ढके क्षेत्रों द्वारा परावर्तित होकर अंतरिक्ष में लौट जाती हैं $(6 + 27 + 2 = 35)$। सौर विकिरण की यह परावर्तित मात्रा **पृथ्वी की एल्बिडो** कहलाती है।

बची हुई ऊष्मा की 65 इकाइयों में से 14 इकाइयाँ वायुमण्डल द्वारा और 51 इकाइयाँ पृथ्वी द्वारा अवशोषित कर ली जाती हैं $(14+51=65)$। ऊष्मा की इस मात्रा को **प्रभावी सौर विकिरण** कहा जाता है। इस प्रकार सूर्य से प्राप्त ऊष्मा के छोटे से अंश का भी लगभग आधा भाग ही पृथ्वी पर पहुँच पाता है।

पृथ्वी द्वारा अवशोषित 51 इकाइयाँ पुन: **भौमिक विकिरण** के रूप में वापिस शून्य में लौट जाती हैं। इन 51 इकाइयों में से 17 इकाइयाँ सीधे **अंतरिक्ष** में चली जाती हैं और 34 इकाइयाँ वायुमण्डल द्वारा **अवशोषित** कर ली जाती हैं–$(17+34=51)$।

इन 34 इकाइयों में से 6 इकाइयाँ स्वयं **वायुमण्डल** द्वारा, 9 इकाइयाँ संवहन द्वारा व 19 इकाइयाँ **गुप्त ऊष्मा** द्वारा अवशोषित हो जाती हैं।

इस प्रकार वायुमण्डल 48 इकाइयों का अवशोषण करके (34 भौमिक विकिरण की व 14 सौर विकिरण की) उन्हें अंतरिक्ष में लौटा देता है।

पृथ्वी और वायुमण्डल दोनों मिलकर $17 + 48 = 65$ इकाइयों को अंतरिक्ष में भेजते हैं। इससे पृथ्वी और वायुमण्डल द्वारा अवशोषित $51 + 14 = 65$ इकाइयों का हिसाब बराबर हो जाता है।

इसी को 'पृथ्वी का ऊष्मा बजट' अथवा **ऊष्मा संतुलन** कहा जाता है।

5. वर्षा को विस्तारपूर्वक समझाइए।

उ०– **वर्षा–** वह प्रक्रिया जिसके द्वारा वायुमण्डल में संघनित जल–वाष्प बूँदों तथा हिम आदि के रूप में भू–पृष्ठ को प्राप्त होती है, उसे वर्षा कहते हैं। वायुमण्डल में उपस्थित आर्द्रता द्रवण होने पर वह जल की बूँदों के रूप में परिवर्तित हो जाती है और इन बूदों का जब आकार बढ़ जाता है तो ये बूँदें वर्षा के रूप में पृथ्वी पर गिरने लगती हैं।

वर्षा के प्रकार– वर्षा को मुख्यता: निम्नलिखित तीन प्रकारों में विभाजित किया गया है–

(i) **संवहनीय वर्षा–** धरातल पर अधिक तापमान के कारण जिस स्थान की वायु गरम होकर वायुमण्डल में ऊपर की तरफ उठकर फैलने के कारण ठंडी हो जाती है, उस स्थान पर जल बूँदों के रूप में धरातल पर गिरना प्रारम्भ हो जाता है। इस प्रकार की वर्षा को **संवहनीय वर्षा** कहते हैं। इस प्रकार की वर्षा भूमध्य रेखीय प्रदेशों में लगभग प्रतिदिन दोपहर के समय के बाद होती है। यह वर्षा अधिक देर तक नहीं होती है अपितु सूर्यास्त तक बन्द हो जाती है। इसकी इस विशेषता के कारण इसे '**4 बजे वाली वर्षा**' भी कहते हैं।

(ii) **पर्वतीय वर्षा–** निम्न वायुभार उच्च वायुभार को अपनी ओर आकर्षित करता है। यदि उच्च वायुभार वाली वायु किसी जलखण्ड क्षेत्र से होकर गुजरती है तो यह आर्द्रता ग्रहण कर लेती है। जब इनके मार्ग में कोई पर्वत शिखर या पठार अवरोध के रूप में उपस्थित हो जाता हैं तो नम वायु ऊपर उठकर घनीभूत होकर वर्षा करती है। पर्वतीय वर्षा उस समय होती है, जब वायुमण्डल में आर्द्रता की मात्रा अधिकतम होती है।

मध्यवर्ती अक्षांशों में शरद् एवं शीत ऋतु के प्रारम्भ में तथा मानसूनी प्रदेशों में ग्रीष्म ऋतु में इसी प्रकार की वर्षा होती है। इसे **पर्वतकृत वर्षा** भी कहते हैं। वायु अवरोध के सामने वाले भागों में अत्यधिक वर्षा करती है, जबकि विमुख भाग में वर्षा कम होती जाती हैं, क्योंकि यहाँ तक पहुँचते–पहुँचते वायु में आर्द्रता बहुत ही कम हो जाती है। ऐसे क्षेत्रों को

वृष्टिछाया प्रदेश के नाम से जाना जाता है। इस प्रकार की वर्षा में कुछ अन्य प्रत्यक्ष कारक भी अपना प्रभाव डालते हैं। दिन में पर्वतों के ढाल तथा घाटियाँ गर्म हो जाती हैं, जिससे वायुमण्डल में संवहन धाराएँ उत्पन्न हो जाती हैं। कभी–कभी इनके शीतलन से भी वर्षा हो जाती है। इस प्रकार पर्वतीय वर्षा पर धरातलीय बनावट का प्रभाव स्पष्ट रूप में देखने को मिलता है। हिमालय पर्वत से सम्बद्ध प्रदेश में ऐसी ही वर्षा होती है। भारत में मेघालय राज्य के चेरापूँजी के निकट मॉसिनराम नामक स्थान पर पर्वतकृत वर्षा ही अधिक होती है। तिब्बत को हिमालय का वृष्टिछाया प्रदेश मानते हैं।

(iii) चक्रवाती वर्षा– इस प्रकार की वर्षा चक्रवातों के कारण शीतोष्ण कटिबन्धीय प्रदेशों में होती है। जब दो भिन्न–भिन्न स्वभाव वाली पवनें आमने–सामने से आकर मिलती हैं तो एक वाताग्र उत्पन्न हो जाता है। इस क्रिया में शीतल पवन उष्ण पवन को ऊपर उठा देती है, इसके परिणामस्वरुप ऊपर उठती हुई आर्द्र एवं शीतल पवन में संघनन प्रारम्भ हो जाता है और वर्षा आरम्भ हो जाती है, जिसे चक्रवातीय वर्षा कहते हैं। यह वर्षा बहुत धीमी गति से होती है। शीतकाल में भूमध्य सागर में आने वाले चक्रवात पंजाब, हरियाणा, जम्मू–कश्मीर, हिमाचल और पश्चिमी उत्तर–प्रदेश में भारी वर्षा करते हैं। चक्रवाती वर्षा रबी की फसल के लिए बहुत लाभकारी होती है।

वर्षा का वार्षिक वितरण– अक्षांशीय विस्तार के अनुसार विश्व में वर्षा का वितरण निम्नवत् है–

(i) अधिक वर्षा के प्रदेश– इन प्रदेशों में औसत वार्षिक वर्षा 200 सेमी या उससे अधिक होती हैं। विश्व में अधिक वर्षा के तीन प्रमुख प्रदेश हैं–

(क) विषुवतीय प्रदेश, जिसके अन्तर्गत मध्य अफ्रीका, मध्य दक्षिणी अमेरिका और दक्षिण–पूर्वी एशियाई देश, (ख) मध्य अक्षांशों में पश्चिमी तटीय प्रदेश तथा (ग) एशिया महाद्वीप में मानसूनों से प्रभावित तटीय प्रदेश।

विषुवतीय प्रदेशों में वर्षभर उच्च ताप बना रहता है। इसी कारण यहाँ पवनें संवहनी धाराओं के रूप में ऊपर उठती हैं और प्रतिदिन वर्षा करती हैं। यह वर्षा मूसलाधार प्रकृति की होती है। मध्य और उच्च अक्षांशों में महाद्वीपों के पश्चिमी तटीय प्रदेशों में भारी वर्षा होती है, क्योंकि यहाँ पछुआ पवनें सागरीय भागों से स्थलखण्ड की ओर चलती हैं। इन प्रदेशों में चक्रवातीय वर्षा होती है। उत्तरी अमेरिका के **ब्रिटिश कोलम्बिया** तथा दक्षिणी अमेरिका में **चिली तट** के साथ–साथ विस्तृत पर्वतीय क्षेत्रों में भी भारी वर्षा होती है। दक्षिणी एशिया के मानसूनी प्रदेशों में भी भारी वर्षा होती है। यहाँ ग्रीष्मकालीन वर्षा होती है। हिन्द महासागर में विकसित उच्च वायुभार क्षेत्र से मध्य एशिया के निम्न वायुभार केन्द्र की ओर चलने वाली पवनों के पवनाभिमुखी ढालों पर भारी वर्षा होती है। इसे **पर्वतकृत वर्षा** कहते हैं। भारत के पश्चिमी तट, पूर्वोत्तर भारत में हिमालय के दक्षिणी ढालों तथा दक्षिण–पूर्वी एशियाई देशों मे भी भारी वर्षा होती है।

(ii) कम वर्षा वाले प्रदेश– इन प्रदेशों में वार्षिक वर्षा का औसत 25 सेमी से भी कम रहता है। इनके अन्तर्गत ध्रुवीय तथा मरुस्थलीय क्षेत्र सम्मिलित किए जा सकते हैं। इन क्षेत्रों को निम्नलिखित तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है–

(क) उष्ण कटिबन्धीय मरुस्थल– इनका विस्तार व्यापारिक पवनों के मार्ग में महाद्वीपों के पश्चिमी भागों में मिलता है। ये प्रदेश स्थल की ओर से आने वाली शुष्क पवनों के प्रभाव में रहते हैं, जिस कारण यहाँ नाममात्र की ही वर्षा होती है। संयुक्त राज्य अमेरिका में **कैलीफोर्निया** मरुस्थल, अफ्रीका के उत्तर में **सहारा** तथा दक्षिण–पश्चिमी अफ्रीका में **कालाहारी**, एशिया में **अरब एवं थार**, पश्चिमी ऑस्ट्रेलिया का विशाल मरुस्थल और दक्षिणी अमेरिका में **अटाकामा** ऐसे ही मरुस्थल हैं, जहाँ वर्षा का वार्षिक औसत 25 सेमी० से भी कम पाया जाता है।

(ख) मध्य अक्षांशीय मरुस्थल– विशाल महाद्वीपों के आन्तरिक प्रदेशों में भी कम वर्षा होती है। ये प्रदेश महासागरों से आने वाली वाष्पयुक्त पवनों के प्रभाव से दूर पड़ते हैं। वास्तव में **तिब्बत, ईरान** आदि के वृष्टिछाया प्रदेश इसी में सम्मिलित हैं।

(ग) शीत कटिबन्धीय मरुस्थल– उच्च वायुभार के ये क्षेत्र ध्रुवीय प्रदेशों में स्थित हैं। इन प्रदेशों में शुष्क एवं ठण्डी पवनें सभी दिशाओं की ओर चलती हैं। **अण्टार्कटिका, उत्तरी कनाडा** तथा एशिया महाद्वीप के टुण्ड्रा प्रदेश शीत मरुस्थलों के प्रमुख उदाहरण हैं।

(ii) साधारण वर्षा के प्रदेश– इन प्रदेशों में औसत वार्षिक वर्षा 100 से 200 सेमी के मध्य होती हैं। उपोष्ण कटिबन्धों में उत्तरी गोलार्द्ध में व्यापारिक पवनें उत्तर–पूर्व दिशा से दक्षिण–पश्चिम दिशा की ओर चलती हैं तथा दक्षिणी गोलार्द्ध में इनकी दिशा दक्षिण–पूर्व से उत्तर–पश्चिम होती है। अत: इन कटिबन्धों में महाद्वीपों के पूर्वी भागों में व्यापारिक पवनों द्वारा अच्छी वर्षा होती है, क्योंकि ये पवनें महासागरीय भागों से आती हैं। यहाँ अधिकांश वर्षा ग्रीष्म ऋतु में ही होती है, क्योंकि महाद्वीपों के आन्तरिक भागों में निम्न वायुभार की उत्पत्ति होती है। महाद्वीपों के आन्तरिक भागों में पूर्व से पश्चिम वर्षा की मात्रा कम हो जाती है। पूर्वी ब्राजील, पूर्वी चीन तथा दक्षिण–पूर्वी संयुक्त राज्य अमेरिका साधारण वर्षा वाले प्रदेशों के अन्तर्गत आते हैं। विषुवतीय प्रदेशों के दोनों ओर भी सामान्य वर्षा के प्रदेश मिलते हैं।

6. चक्रवात और प्रतिचक्रवात में विभेद कीजिए।

उ०– **चक्रवात और प्रतिचक्रवात में अन्तर–**

ऐसे वायुमण्डलीय भँवर, जिनके केन्द्र में निम्न वायुदाब और केन्द्र के बाहर उच्च वायुदाब होते हैं, चक्रवात कहलाते हैं। चक्रवात का आकार अण्डाकार होता है।

इसमें निम्न वायुदाब ठीक केन्द्र के समीप और केन्द्र से बाहर की ओर सभी दिशाओं में क्रमश: बढ़ता रहता है और हवाएँ बाहर से अन्दर की ओर प्रवाहित होती हैं। फैरल के अनुसार–''हवाएँ उत्तरी गोलार्द्ध में अपने दायीं ओर तथा दक्षिणी गोलार्द्ध में अपने बायीं ओर मुड़ जाती हैं अर्थात् उत्तरी गोलार्द्ध में हवाएँ घड़ी की सुई की विपरीत दिशा और दक्षिणी गोलार्द्ध में घड़ी की सुई की दिशा में मुड़ जाती हैं। जबकि

वृत्ताकार समवायुदाब द्वारा घिरा एक ऐसा क्रम, जिसके केन्द्र में वायुदाब उच्चतम होता है और बाहर की ओर क्रमश: घटता है, प्रतिचक्रवात कहलाता है। प्रतिचक्रवात में हवाएँ केन्द्र से परिधि की ओर चलती हैं। प्रतिचक्रवात में मौसम साफ रहता है तथा इसमें हवाओं की गति बहुत कम होती है। आकार में ये गोलाकार होते हैं तथा कभी–कभी इनका आकार अंग्रेजी भाषा के 'V' अक्षर के समान होता है। इनका आकार अन्य चक्रवातों की तुलना में बहुत विस्तृत होता है। प्रतिचक्रवात की गति 30 से 35 किलोमीटर प्रतिघण्टा होती है। इनमें केन्द्र में हवाएँ ऊपर से नीचे उतरती हैं। अत: केन्द्र का मौसम साफ होता है और वर्षा के आसार नहीं होते हैं।

7. मौसम और जलवायु पर प्रकाश डालिए।

उ०– **मौसम और जलवायु–** सामान्यत: मौसम और जलवायु को एक ही अर्थ में प्रयुक्त किया जाता है। वास्तविकता यह है कि मौसम तथा जलवायु में व्यापक अन्तर है। मौसम वायुमण्डल की अल्पकालीन अवस्था को प्रकट करता है अर्थात् अल्पकालीन वायुमण्डलीय दशाएँ उस स्थान का मौसम कहलाती हैं। कुछ विद्वानों द्वारा मौसम की निम्न परिभाषाएँ दी गई हैं–

प्रो० ट्रिवार्था के अनुसार– ''किसी स्थान की अल्पकालीन वायुमण्डल की दशाओं–तापक्रम, भार, वायु, आर्द्रता तथा वृष्टि के योग को मौसम कहते हैं।''

प्रो०जे०एम० ऑस्टिन के अनुसार– ''किसी भी स्थान के मौसम का तात्पर्य, उस स्थान के अन्तरिक्ष संबंधी परिवर्तनशील तत्त्वों; जैसे– तापमान, वायुभार, पवनें, आर्द्रता, वर्षा एवं आकाश की दशाओं से है।''

अत: संक्षेप में हम कह सकते हैं कि, ''जब किसी दिन के तापमान, वायुदाब, वायुदिशा एवं गति इत्यादि पर सम्मिलित रूप से विचार करते हैं तो वह मौसम कहलाता है। इसकी प्रमुख विशेषता यह है कि यह भिन्न–भिन्न स्थानों पर प्रत्येक क्षण बदलता रहता है।''

'जलवायु' एक विस्तृत एवं व्यापक शब्द है। इस शब्द की उत्पत्ति जल तथा वायु के परस्पर सम्मिलन से हुई है, अर्थात् यह वायुमण्डल के संघटन को प्रकट करता है। **'जलवायु' शब्द वायुमण्डल अर्थात् मौसम के तत्त्वों की दीर्घकालीन अवस्थाओं का बोध कराता है।** किसी स्थान या प्रदेश की दीर्घकालीन वायुमण्डलीय दशाओं के योग को जलवायु कहते हैं। जलवायु में परिवर्तन एक लम्बी अवधि में ही हो सकता है। जलवायु किसी स्थान या प्रदेश में एक ही प्रकार की होती है। जलवायु 15 से 25 वर्षों की मौसमी घटनाओं का औसत होती है। **अन्तर्राष्ट्रीय मौसम विज्ञान संस्थान** ने जलवायु के लिए 31 वर्षों की अवधि के मौसम का औसत उपयुक्त समझा है। जलवायु को परिभाषित करते हुए कुछ विद्वानों द्वारा दी गई परिभाषाएँ निम्नवत् है–

मोंकहाउस के अनुसार– ''किसी स्थान के वायुमण्डल की दीर्घकालीन अवस्थाएँ जलवायु के अन्तर्गत आँकी जाती हैं।''

प्रो०ट्रिवार्था के अनुसार– ''जलवायु दिन–प्रतिदिन की ऋतु अवस्थाओं के विभिन्न रूपों का मिश्रण अथवा सामान्यीकरण है।''

कोपे तथा **दि-लांग** के अनुसार– ''जलवायु मौसम की दीर्घकालिक अवस्था का संक्षिप्त रूप है।

मौसम के तत्त्व– मौसम की उत्पत्ति सौर विकिरण, वायु के तापमान, वायुदाब, पवनें, आर्द्रता और वर्षण एवं मेघों की मात्रा से होती है। इन्हीं को मौसम के तत्त्व कहते हैं।

जलवायु के तत्त्व– तापमान, आर्द्रता, वर्षा, मेघ, वायु–वेग, वायु–दिशा, तड़ित–झंझा, कोहरा, ओलावृष्टि, तूफान आदि जलवायु के मुख्य तत्त्व हैं।

मौसम तथा जलवायु में अन्तर– मौसम तथा जलवायु में अन्तर को निम्नलिखित सारणी द्वारा समझा जा सकता है–

मौसम	जलवायु
1. मौसम का क्षेत्र सीमित होता है। 2. मौसम प्रत्येक स्थान पर प्रत्येक क्षण बदलता रहता है। 3. मौसम के अन्तर्गत किसी स्थान की अल्पकालीन वायुमण्डलीय दशाओं का वर्णन होता है।	1. जलवायु का क्षेत्र व्यापक होता है। 2. जलवायु किसी स्थान पर लम्बे समय तक एक सी रहती है। 3. जलवायु के अन्तर्गत किसी स्थान की दीर्घकालीन वायुमण्डलीय दशाओं का वर्णन होता है।

4. मौसम एक समय में वायुमण्डल की किसी एक या दो दशाओं का प्रतिनिधित्व करता है।	4. जलवायु में वायुमण्डल की सभी दशाओं के औसत का योग होता है।

जलवायु का मानव जीवन पर प्रभाव– जलवायु का मानव जीवन पर प्रभाव निम्नलिखित है—

(i) जलवायु के अनुसार मानव अपने वस्त्रों का चयन करते हैं।
(ii) जलवायु के अनुसार मनुष्य अपने घरों का निर्माण करते हैं।
(iii) जलवायु औद्योगिक विकास को भी प्रभावित करती है।
(iv) मनुष्य की कार्यक्षमता जलवायु पर निर्भर करती है।
(v) किसी भी प्रदेश या क्षेत्र की वनस्पति एवं फसलें वहाँ की जलवायु के अनुरूप ही होती हैं।
(vi) जलवायु अर्थव्यवस्था को प्रभावित करती है।

❖ **मानचित्र सम्बन्धी अभ्यास कार्य**

अध्यापक की सहायता से विद्यार्थी स्वयं करें।

❖ **प्रोजेक्ट कार्य**

अध्यापक की सहायता से विद्यार्थी स्वयं करें।

35 जलमण्डल-रचना, जल के स्त्रोत
(महासागर, मग्नतट, ढ़ाल, गर्त, मैदान, स्थलीय जल के स्त्रोत एवं अधोभौमिक जल एवं वर्तमान स्थिति)

अभ्यास

❖ **बहुविकल्पीय प्रश्न**

उ०– बहुविकल्पीय प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्य पुस्तक के पृष्ठ संख्या—301 व 302 का अवलोकन कीजिए।

❖ **अतिलघु उत्तरीय प्रश्न**

उ०– अतिलघु उत्तरीय प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्य पुस्तक के पृष्ठ संख्या—302 का अवलोकन कीजिए।

❖ **लघु उत्तरीय प्रश्न**

1. जलमण्डल का संक्षिप्त परिचय दीजिए।

उ०– जलमण्डल– सम्पूर्ण पृथ्वी—तल का क्षेत्रफल लगभग 51 करोड़ वर्ग किलोमीटर है। इसके 36.17 करोड़ वर्ग किलोमीटर क्षेत्र पर जल ही जल विद्यमान है। इस जलीय भाग में महासागर, सागर, झीलें व नदियाँ शामिल हैं। पृथ्वी पर कुल जलराशि का लगभग 97.25% भाग महासागरों में अवस्थित है। जल प्रदान करने वाले इन सभी हिस्सों को सामूहिक रूप से 'जलमण्डल' कहा जाता है। जल की उपलब्धता के कारण हमारी पृथ्वी एक अनूठा ग्रह है। उत्तरी गोलार्द्ध में थल भाग की अधिकता होने के कारण उसे स्थल गोलार्द्ध एवं दक्षिणी गोलार्द्ध में जल की अधिकता होने के कारण उसे जल गोलार्द्ध कहते हैं। जलमण्डल में परिसंचरण के कारण पृथ्वी पर वर्षा होती है। नदियों, तालाबों, झीलों और विशेषकर वर्षा का पानी मृदा और शैलों से रिस—रिसकर भू—पृष्ठ के नीचे एकत्रित होता रहता है जिसके कारण जल से भरपूर एक क्षेत्र बन जाता है। जल से परिपूर्ण इस क्षेत्र की ऊपरी सीमा को जल—स्तर कहते हैं।

भूमण्डल पर उपस्थित महासागरों में प्रशान्त महासागर, हिन्द महासागर, अटलांटिक या अन्ध महासागर, आर्कटिक महासागर हैं। कुछ विद्वान दक्षिणी महासागर की गणना भी महासागर की श्रेणी में करते हैं। इसी प्रकार सागरों की श्रृंखला में भूमध्यसागर, दक्षिणी चीन सागर, जापान सागर, काला सागर, लाल सागर, वाल्टिक सागर, पीला सागर, कैस्पियन सागर तथा अरब सागर शामिल हैं।

2. जल की संरचना को समझाइए।

उ०– जल की संरचना– रसायन विज्ञान के अनुसार हाइड्रोजन के दो परमाणु ऑक्सीजन के एक परमाणु से मिलकर (क्रिया करके) जल का एक अणु बनाते हैं। जल का अणु सूत्र H_2O है। जल का हिमांक 0°C, क्वथनांक 100°C तथा अणुभार 18 होता है।

3. महाद्वीपीय मग्नतट को समझाइए।

उ०– महाद्वीपीय मग्नतट– महाद्वीपीय मग्न तट वह उथला क्षेत्र होता है जो सदैव जल के नीचे डूबा रहता है। इस तट पर जल

छिछला होता है व इसकी गहराई 150 से 200 मीटर तक होती है। सामान्यतया इसका ढाल, स्थल से महासागरों की ओर होता है तथा इसकी चौड़ाई 70 किमी० तक होती है, परन्तु कुछ तटों की चौड़ाई कई सौ किमी० से अधिक भी पाई जाती है। वास्तव में ये सागरों के ऐसे उथले क्षेत्र हैं, जहाँ स्थलीय भागों से नदियों द्वारा बहाकर लाई गई अवसाद का निक्षेपण होता है।

4. नितल मैदान किसे कहते हैं?

उ०– महाद्वीपीय उत्थान के बाद महासागर की तली एक विशाल मैदान की तरह नजर आती है जिसकी गहराई 3,000 से 6,000 तीटर तक होती है। इन्हें नितल मैदान या गम्भीर सागरीय मैदानों के नाम से जाना जाता है। महासागरों के कुल तट का 77% भाग इन्हीं नितल मैदानों से घिरा हुआ है। नितल मैदान उन क्षेत्रों में अधिक पाए जाते हैं जहाँ स्थल—जनित अवसादों की पूर्ति अधिक मात्रा में होती है। अवसादों की अधिकता नितल मैदानों की विषय आकृतियों को अपने अन्दर छिपा लेती है, जिसके कारण मैदान समतल दिखाई देती है।

5. समुद्री लहरों से आप क्या समझते हैं?

उ०– **समुद्री लहरें–** समुद्र में गति का कारण हवा है जब हवा चलती है तो समुद्र में गति होने लगती है। हवा के साथ उसकी दिशा में समुद्रीय जल आगे की ओर बढ़ने लगता है। इस क्रिया को लहर कहते हैं। लहरों से समुद्र का जल नदी की भाँति कभी भी एक स्थान से दूसरे स्थान पर नहीं जाता है वह केवल हवा के कारण आगे—पीछे ही होता है। लहरों का प्रभाव समुद्र के ऊपरी जल तक ही होता है। लहर का कुछ भाग जल में ऊपर उठा हुआ होता है तो कुछ भाग नीचे की ओर दबा हुआ होता है। इसके दो स्पष्ट भाग चोटी (अत्यधिक ऊँचा भाग) तथा द्रौणी या गर्त (सबसे निचला भाग) होते हैं। एक शिखर से दूसरे शिखर अथवा एक द्रोणी की दूरी को लहर की लम्बाई कहते हैं। द्रोणी और शिखर के मध्य का अन्तर लहर की ऊँचाई कहलाती है।

❖ विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

1. जल का रासायनिक रूप बताते हुए इसके स्रोतों व महत्त्व पर प्रकाश डालिए।

उ०– **जल का रासायनिक रूप–** रासायनिक दृष्टि से हाइड्रोजन के दो परमाणु ऑक्सीजन के एक परमाणु से संयोग करके जल का एक अणु बनाते हैं। जल का अणु सूत्र H_2O है। इसका हिमांक 0^oC तथा कवथनांक 100^oC तथा अणुभार 18 है।

जल के स्रोत– जल को जीवन का आधार माना गया है। इसके निम्नलिखित स्रोत है—

(i) जल का मुख्य स्रोत वर्षा का जल है।
(ii) भू—तल में पाया जाने वाला जल जो नलों, नलकूपों तथा कुओं के माध्यम से हमें प्राप्त होता है।
(iii) झीलों तथा तालाबों को भी जलीय स्रोत कहते हैं।
(iv) नदियों को भी जल का स्रोत माना जाता है। प्राय: नदियों का जल मीठा होता है।
(v) सागर, खाड़ी तथा महासागर का जल लवणीय (खारा) होता है। समस्त प्राकृतिक जल का 93 प्रतिशत भाग इसी जल का है।

जल का महत्त्व– जल को मानव जीवन की एक महत्त्वपूर्ण आवश्यकता माना जाता है जल को जीवन कहा गया है। रहीम ने कहा भी है—

रहिमन पानी राखिये बिन पानी सब सून।
पानी गए न उबरे मोती, मानस, चून।।

मानव शरीर में उसके कुल भार का लगभग 80% जल है तथा पृथ्वी का 71% भाग जलमग्न है। वायुमण्डल और पृथ्वी के नीचे भी जल ही है। जीवन की लगभग समस्त क्रियाएँ जल के माध्यम से ही पूर्ण होती हैं। मानव जीवन के लिए जल का महत्त्व निम्नवत् है—

(i) पेड़—पौधे तथा समस्त वनस्पति जगत बिना जल के नहीं पनप सकते हैं।
(ii) शरीर के अत्यन्त महत्त्वपूर्ण अवयव जैसे हृदय अथवा मस्तिष्क आदि को जल से बने द्रव का एक वचल संरक्षण प्रदान करता है।
(iii) शरीर की हड्डियों के जोड़ों को जल चिकना बनाए रखता है जिससे वे एक—दूसरे से रगड़कर क्षतिग्रस्त नहीं होते हैं।
(iv) शरीर के भीतर जल एक महत्त्वपूर्ण संचार—माध्यम का भी कार्य करता है।
(v) शरीर में पोषक तत्त्व भी जल के माध्यम से ही संचरित होते हैं।
(vi) शरीर के मलिन पदार्थ पसीने, मल तथा मूत्र के साथ जल के माध्यम से ही बाहर निकलते हैं।
(vii) उपरोक्त के अतिरिक्त जल की सहायता से हम भोजन पकाने, वस्त्र साफ करने, स्नान करने, कृषि आदि करने का कार्य करते हैं।

2. महासागरीय जल की लवणता एवं समुद्री जल की लवणता में विभेद कीजिए।

उ०– **महासागर के जल की लवणता–** महासागर जल के विशाल लवणयुक्त भण्डार होते हैं। भूमण्डल पर पाए जाने वाले

महासागरों में प्रशान्त महासागर सबसे गहरा तथा सबसे बड़ा महासागर है और आर्कटिक महासागर सबसे छोटा महासागर है। सागरीय जल में सामान्यतया लवण पदार्थ घुले रहते हैं जिसे सागरीय 'जल की लवणता' कहते हैं। समुद्री जल में मिलने वाले नमक या खारेपन में लगातार वृद्धि हो रही है जिसके दो कारण है पहला वाष्पीकरण की तीव्रता और दूसरा नदियों द्वारा अपने साथ हर वर्ष बहाकर लाए गए खनिज तत्त्वों को समुद्र में जमा करना। पृथ्वी को महासागरीय लवणता का सबसे बड़ा स्रोत माना जाता है। महासागर में लवण एकत्रित करने के निम्नलिखित साधन हैं—

नदियाँ, सामुद्रिक लहरें, हवाएँ व ज्वालामुखी विस्फोट महासागरों के जल में अधिकतर लवणता सोडियम क्लोराइड के कारण होती है। 1,000 ग्राम सागरीय जल में लगभग 35 ग्राम विभिन्न लवण उत्पादक पदार्थ घुले होते हैं। सागरीय जल में पाए जाने वाले लवणों में सोडियम क्लोराइड, मैग्नीशियम क्लोराइड, मैग्नीशियम सल्फेट, कैल्सियम सल्फेट, पोटेशियम सल्फेट, कैल्सियम कार्बोनेट व मैग्नीशियम ब्रोमाइड हैं।

समुद्री जल में लवणता का वितरण– महासागरीय जल की औसत लवणता 35% है जिसका वितरण असमान है। लवणता में यह असमानता क्षैतिज तथा लम्बवत् दोनों ही रूपों में होती हैं। इसी प्रकार बन्द तथा खुले, अंशत: बन्द सागरों में भी लवणता में अन्तर पाया जाता है।

(i) महासागरों में लवणता– महासागरों या खुले समुद्रों में लवणता का वितरण सबसे अधिक उत्तरी गोलार्द्ध में कर्क रेखा एवं दक्षिणी गोलार्द्ध में मकर रेखा के समीप विस्तृत समुद्री जल में मिलता है इन क्षेत्रों में खारेपन की मात्रा ध्रुवों एवं भूमध्य रेखा की ओर कम होती जाती है लेकिन भूमध्य रेखा की अपेक्षा ध्रुवों पर अधिक पाई जाती हैं।

महासागरों में मिलने वाली लवणता में सबसे अधिक उत्तरी अटलांटिक महासागरों के सारगोसों क्षेत्र में मिलती है। यहाँ सागरीय जल में लवणता 1,000 ग्राम जल में 38 ग्राम पाई जाती है। यहाँ पर अत्यधिक खारापन मिलने के कारण उच्च तापमान, वर्षा की न्यूनता, स्वच्छ आकाश, प्रतिचक्रवती गर्म एवं शुष्क हवाओं के द्वारा वाष्पीकरण की अत्यधिक तीव्रता है, जोकि यहाँ खारेपन में निरन्तर वृद्धि करती रहती है।

(ii) सागरों में खारापन– खुले सागरों तथा घिरे सागरों में लवणता की स्थिति महासागरों से भिन्न है। इस प्रकार के सागरों में सबसे अधिक लवणता भूमध्य सागर में मिलती है, जो 39% से भी अधिक है। लाल सागर में लवणता का अनुपात 37% से 41% और फारस की खाड़ी में 37% से 38% तक रहता है। यहाँ खारापन अधिक मिलने का कारण वर्षा का अभाव, स्वच्छ जल प्रदान करने वाली नदियों की कमी, उच्च तापमान एवं वाष्पीकरण की तीव्रता है।

भूमध्य सागर के निकट काला सागर में लवणता 18% से 18.5% है, ध्रुवीय क्षेत्रों के निकट घिरे सागरों में लवणता और भी कम पाई जाती है। बाल्टिक सागर में लवणता 15% है।

3. महासागरीय नितलों का वर्गीकरण स्पष्ट कीजिए।

उ०– महासागरीय नितलों का वर्गीकरण– समुद्री वैज्ञानिकों ने महासागरीय नितलों को निम्नलिखित चार वर्गों में विभाजित किया है—

(i) महाद्वीपीय मग्नतट– महाद्वीपीय मग्न तट वह उथला क्षेत्र होता है जो सदैव जल के नीचे डूबा रहता है। इस तट पर जल छिछला होता है व इसकी गहराई 150 से 200 मीटर तक होती है। सामान्यतया इसका ढाल, स्थल से महासागरों की ओर होता है तथा इसकी चौड़ाई 70 किमी० तक होती है, परन्तु कुछ तटों की चौड़ाई कई सौ किमी० से अधिक भी पाई जाती है। वास्तव में ये सागरों के ऐसे उथले क्षेत्र हैं, जहाँ स्थलीय भागों से नदियों द्वारा बहाकर लाई गई अवसाद का निक्षेपण होता है।

(ii) महाद्वीपीय मग्न ढाल– महाद्वीपीय मग्न ढाल महाद्वीपीय मग्नतट के किनारे और महाद्वीपीय उत्थान के बीच का वह ढाल होता है, जो साधारणत: खड़ा अथवा अधिक तीव्र होता है। इसकी गहराई 200 मीटर से 3,600 मीटर तक होती है तथा इसका ढाल 2° से 5° तक होता है।

आकृति के अनुसार महाद्वीपीय मग्न ढाल को पाँच प्रकारों में बाँटा गया है। ये पाँच प्रकार हैं—

(क) अधिक तीव्र ढाल जिनके धरातल केनियन के रूप में कटे होते हैं।

(ख) मंद ढाल जिन पर बेसिन तथा लम्बी—लम्बी पहाड़ियाँ होती हैं।

(ग) भ्रंशित ढाल

(घ) सीढ़ीनुमा ढाल

(ड) वे ढाल जिन पर समुद्र पर्वत स्थित होते हैं।

महाद्वीपीय ढाल महासागरों के कुल क्षेत्रफल के 6.5 प्रतिशत भाग पर विस्तृत हैं।

(iii) महाद्वीपीय उत्थान– महाद्वीपीय उत्थान का आरम्भ वहाँ से होता है जहाँ पर महाद्वीपीय मग्न ढाल समाप्त होता है। इसका

ढाल 0.5° से 1° तक होता है। महाद्वीपीय उत्थान का सामान्य उच्चावच भी कम होता है। गहराई बढ़ने के साथ यह लगभग समतल होकर नितल मैदान में परिवर्तित हो जाता हैं। यहीं पर महाद्वीपीय खंडों का अंत माना जाता है।

(iv) नितल मैदान– महाद्वीपीय उत्थान के बाद महासागर की तली एक विशाल मैदान की तरह नजर आती है। नितल मैदान की गहराई 3,000 से 6,000 मीटर तक होती है। नितल मैदानों को गंभीर सागरीय मैदानों के नाम से भी जाना जाता है। अवसादों की अधिकता नितल मैदानों की विषम आकृतियों को अपने अन्दर छिपा लेती है, जिसके कारण मैदान समतल दिखाई पड़ते हैं।

4. ज्वार-भाटा पर एक लेख लिखिए।

उ०– **ज्वार–भाटा–** समुद्रों का जल—स्तर कभी भी स्थिर नहीं रह पाता है बल्कि यह दिन में एक बार या दो बार चढ़ता और नीचे उतरता रहता है। ज्वार—भाटा समुद्र—जल की अस्थिर गतियों में से एक गति है। इसके फलस्वरूप सागर का जल सागर के तल से कभी ऊपर और कभी नीचे होता है। इस क्रिया को **'ज्वार-भाटा'** कहते हैं। समुद्र जल के ऊपर उठने अथवा आगे बढ़ने को ज्वार कहते हैं और नीचे गिरने या पीछे लौटने को भाटा कहते हैं। **मारे** के अनुसार,"**सूर्य और चन्द्रमा की आकर्षण-शक्ति के कारण समुद्र जल के नियमित रूप से उठने और नीचे गिरने की क्रिया को 'ज्वार-भाटा' कहते हैं।**"

ज्वार की उत्पत्ति– पृथ्वी के महासागरीय जल में ज्वार की उत्पत्ति चन्द्रमा और सूर्य के आकर्षण—बलों द्वारा होती है तथा सूर्य की अपेक्षा पृथ्वी के अधिक समीप है, इसलिए चन्द्रमा का प्रभाव अधिक होता है। चन्द्रमा की आकर्षण—शक्ति का प्रभाव इसके सामने स्थित भाग पर अधिक होता है जबकि पीछे स्थित भाग पर न्यूनतम/प्रत्येक महासागर में ये तरंगें (waves) समुद्र की गहराई और पानी की मात्रा पर आधारित हैं। अधिक गहरे समुद्र में स्थैतिक तरंगों की ऊँचाई अधिक होती है और कम गहरे समुद्र में कम ऊँचाई की तरंग उत्पन्न होती हैं। स्थैतिक तरंगों के ऊपरी भाग 'ज्वार' कहलाते हैं। पृथ्वी की परिभ्रमण गति के कारण इन स्थावर लहरों में गति उत्पन्न हो जाती है।

ज्वार–भाटा के प्रकार– पृथ्वी पर सागरीय जल में ज्वार का प्रत्यक्ष सम्बन्ध चन्द्रमा की आकर्षण शक्ति से है। ज्वार—भाटा निम्न प्रकार के होते हैं।

(i) वृहत तथा दीर्घ ज्वार– जब सूर्य, पृथ्वी और चन्द्रमा तीनों एक सीध में होते हैं तो चन्द्रमा और सूर्य का सम्मिलित आकर्षण—बल पृथ्वी पर पड़ता है जिससे उच्च ज्वार अनुभव किया जाता है। यह अवस्था प्रत्येक माह अमावस्या या पूर्णिमा के दिन उत्पन्न होती है।

(ii) लघु ज्वार– यह अवस्था उस समय उत्पन्न होती है जब चन्द्रमा और सूर्य पृथ्वी पर समकोण बनाते हैं। यह अवस्था अमावस्या तथा पूर्णिमा के अतिरिक्त तिथियों पर होती है, विशेषकर सप्तमी और अष्टमी समकोण की स्थिति में होते हैं। इस कारण सूर्य और चन्द्रमा पृथ्वी के जल को भिन्न—भिन्न दिशाओं की ओर प्रभावित करते हैं जिससे ज्वार की ऊँचाई कम रह जाती है, इसे 'लघु—ज्वार' कहा जाता है।

ज्वार-भाटा दिन में दो बार क्यों आता है?– पृथ्वी अपने अक्ष पर 24 घण्टों में घूमकर एक चक्कर पूरा करती है। इससे पृथ्वी के प्रत्येक स्थान को दिन में दो बार ज्वार वाली स्थिति से तथा दो बार भाटा वाली स्थिति से गुजरना पड़ता है। अतः पृथ्वी की दैनिक गति के कारण ही पृथ्वी के प्रत्येक स्थान पर एक दिन में दो बार ज्वार तथा दो बार भाटा अवश्य आते हैं।

ज्वार आने का समय– ज्वार प्रत्येक स्थन पर दो बार आता है इसलिए यह 12 घण्टे बाद आना चाहिए लेकिन ऐसा नहीं है, क्योंकि चन्द्रमा घूमती हुई पृथ्वी की परिक्रमा करता है। पृथ्वी की इस परिभ्रमण से ज्वार पश्चिम से पूर्व की ओर बढ़ता है। पृथ्वी की परिभ्रमण गति के कारण ही ज्वार—केन्द्र के एक पूरे चक्कर बाद भी चन्द्रमा अपनी गति से कुछ आगे निकल आता है। इस कारण ज्वार—केन्द्र तक पहुँचने में 24 घण्टे 52 मिनट लगते हैं, इसलिए प्रत्येक ज्वार 12 घण्टे 26 मिनट पर आता है।

5. भूमिगत जल को समझाते हुए इसके महत्व पर प्रकाश डालिए।

उ०– **भूमिगत जल–** पृथ्वी पर गिरने वाला वर्षा का जल तीन भागों में विभाजित हो जाता है जो निम्नलिखित हैं—

(i) जल का कुछ अंश नदी—नालजों द्वारा बह जाता है।
(ii) कुछ जल वाष्पीकरण द्वारा पुन: वायुमण्डल में मिल जाता है।
(iii) शेष जल को पृथ्वी सोख लेती है।

वर्षा के जल का वह अंश जो भूमि द्वारा सोख लिया जाता है, वह भूमिगत जल कहलाता है। अन्य शब्दों में हम कह सकते हैं कि "वर्षा जल का कुछ भाग रिसकर भू—पृष्ठ के नीचे चला जाता है। जल का यह रिसाव शैलों के संरन्ध्रों, जोड़ों तथा दरारों के माध्यम से होता है। भू—पृष्ठ के नीचे एकत्रित जल के इस भण्डार को **'भूमिगत जल'** या **'अधोभौमिक जल'** कहते हैं।

इस प्रकार 'भूमिगत जल' से अभिप्राय उस समस्त जलराशि से है जो भूमि में एकत्रित रहती है। विद्वानों के अनुसार पृथ्वी में

भूमिगत जल की इतनी राशि विद्यमान है कि यदि उसे भूतल पर फैलाया जाए तो समस्त भूतल पर लगभग 150 मीटर गहरा सागर दिखाई देगा।

पारगम्य तथा अपारगम्य चट्टानें (शैल)– चट्टानों के माध्यम से होकर जो भूमिगत जल नीचे ही नीचे बहता है उसकी मात्रा चट्टानों की पारगम्यता पर निर्भर करती है। चट्टानों के रन्ध्र यदि एक—दूसरे से मिली हुई हों तो वे चट्टानों को पारगम्य बनाती हैं। और यदि वे चट्टानें आपस में न मिली हुई हों तो चट्टानें अपारगम्य होती हैं।

वे चट्टानें, जिनमें परस्पर मिले रन्ध्रों के आकार बड़े होते हैं या जिनमें परस्पर मिली हुई दरारों की संख्या अधिक होती है उनके अन्दर से होकर भूमिगत जल स्वच्छन्द रूप से बहता हैं। ऐसी पारगम्य चट्टानों को जिनकी जल—धारण की क्षमता बहुत अधिक होती है, उन्हें जलभूत कहते हैं। ये चट्टानें भूमिगत जलाशयों का कार्य करती हैं।

भूमिगत जल का महत्त्व– भूमिगत जल बहुत महत्त्वपूर्ण होता है। इसके कारण भूमि में नमी बनी रहती है। भूमिगत जल से ही पृथ्वी पर उगने वाली वनस्पति तथा फसलों का पोषण भी होता है भूमिगत जल को मानव स्वयं, पम्पिंग सेट से, पशुओं के माध्यम से, बिजली की मोटरों आदि के माध्यम से प्राप्त करके उसका उपयोग घरेलू कार्यों में, उधोग—धन्धों व कृषि में प्रयोग करता है।

❖ **मानचित्र सम्बन्धी अभ्यास कार्य**

अध्यापक की सहायता से विद्यार्थी स्वयं करें।

❖ **प्रोजेक्ट कार्य**

अध्यापक की सहायता से विद्यार्थी स्वयं करें।

36 जैवमण्डल

(तात्पर्य, घटक, घटकों में बढ़ता असन्तुलन एवं प्रभाव)

अभ्यास

❖ **बहुविकल्पीय प्रश्न**

उ०– बहुविकल्पीय प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्य पुस्तक के पृष्ठ संख्या—308 का अवलोकन कीजिए।

❖ **अतिलघु उत्तरीय प्रश्न**

उ०– अतिलघु उत्तरीय प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्य पुस्तक के पृष्ठ संख्या—309 का अवलोकन कीजिए।

❖ **लघु उत्तरीय प्रश्न**

1. जैवमण्डल का वर्गीकरण कीजिए।

उ०– **जैवमण्डल का वर्गीकरण–** जैवमण्डल में विभिन्न आकार के जीव पाए जाते हैं। ये जीव सूक्ष्म जीवाणु से लेकर विशालकाय व्हेल अथवा बड़े वृक्ष के आकार तक के होते हैं। जैवमण्डल के सभी जीवों को सामान्य रूप से दो वर्गों में बाँटा जाता है— 1. वनस्पति जगत तथा 2. प्राणी जगत। प्रत्येक वर्ग में अनेक जातियाँ होती हैं। **मनुष्य जैवमण्डल की एक जाति है** जिसे **'होमोसेपिएन्स'** कहा जाता है। इस पृथ्वी पर 10 लाख किस्म के प्राणी और 3 लाख किस्म के पेड़—पौधे हैं। मानव जैवमण्डल का ही अंग है और इसी पर आश्रित है, क्योंकि जैवमण्डल से ही मनुष्य को खाद्यान्न और जीवन की अन्य आवश्यक वस्तुएँ प्राप्त होती हैं। जैवमण्डल के कारण ही पृथ्वी एक अद्वितीय ग्रह है। संभवत: मंगल ग्रह को अपवाद मान लें तो किसी अन्य ग्रह पर जीवन सम्भव नहीं है।

2. जैवमण्डल का विकास बताइए।

उ०– **जैवमण्डल का विकास–** जैवमण्डल को विकसित होने में करोड़ो वर्ष लगे हैं। जैवमण्डल में एक कोशीय विषाणु से लेकर व्हेल तक तथा लघु व क्षुद्र पादपों से लेकर बड़े—बड़े वृक्षों तक करीब 50 लाख से 10 करोड़ जातियों के होने का अनुमान है। अब तक इनमें से 15 से 17.5 लाख जीवों का ही नामकरण हो पाया है। मनुष्य भी प्राणी जगत की एक जाति है।

जैवमण्डल के घटक प्राकृतिक दृश्यभूमि के अन्य घटकों; जैसे— भूमि, जल, वायु और मृदा के साथ अन्योन्यक्रिया करते हैं। ये वायुमण्डल के तत्त्वों, जैसे—तापमान, वर्षा, आर्द्रता और सूर्य के प्रकाश से प्रभावित होते हैं। जैवमण्डल की पर्यावरण के भौतिक अथवा अजैविक तत्त्वों के साथ अन्योन्यक्रिया जीवों के उद्विकास, उनके जीवित रहने और विकसित होने में सहायता प्रदान करती हैं।

3. पारिस्थितिक तन्त्र के घटकों को रेखाचित्र के द्वारा समझाइए।

उ०– पारितन्त्र या पारिस्थितिक तन्त्र के घटक– पारिस्थितिक तन्त्र के विभिन्न घटकों को निम्न रेखाचित्र से समझा जा सकता है—

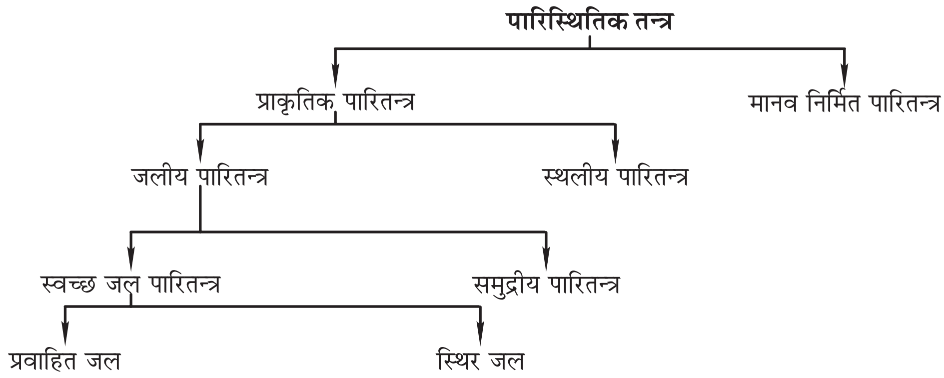

4. खाद्य जाल क्या है?

उ०– खाद्य जाल– कोई भी जीव विभिन्न जीवों से प्राप्त भोजन को ग्रहण कर सकता है, यही कारण है कि खाद्य शृंखलाएँ प्राय: बहुत जटिल होती हैं। खाद्य शृंखलाएँ एक दूसरे से घुल—मिल जाती हैं और परस्पर एक—दूसरे से सम्बन्धित होती हैं। इसमें प्रत्येक स्तर पर जीवों के परस्पर सम्बन्ध अत्यधिक जटिल हो जाते हैं। अत: हम कह सकते हैं कि किसी पारिस्थितिक—तन्त्र में पाई जाने वाली अन्तर्सम्बन्धित खाद्य शृंखलाओं को जो विभिन्न जीव समूहों में सम्बन्धों का एक जाल सा बना लेती हैं, जिसे खाद्य जाल कहते हैं।'' उदाहरणार्थ— एक चूहा जो अन्न खाता है, अनेक द्वितीय स्तर के उपभोक्ताओं का भोजन बनता है। इस प्रकार तृतीय स्तर के मांसाहारी अनेक द्वितीय स्तर के जीवों को खाकर अपना भोजन प्राप्त करते हैं।

5. सांख्यिक पिरामिड को रेखाचित्र द्वारा समझाइए।

उ०– सांख्यिक पिरामिड– खाद्य शृंखला के भिन्न—भिन्न स्तरों पर पाए जाने वाले जीवों को दर्शाने की ज्यामितीय पद्धति ही सांख्यिक पिरामिड है।

उत्पादन सांख्यिक पिरामिड के आधार पर होते हैं, जिनकी संख्या अधिकतम होती है। इसके बाद क्रमिक स्तर पर उपभोक्ताओं की संख्या तेजी से घटती चली जाती है। पिरामिड़ के शीर्ष पर उच्चतम श्रेणी के उपभोक्ता होते हैं तथा इनकी संख्या न्यूनतम होती है।

6. ऑक्सीजन चक्र को स्पष्ट कीजिए।

उ०– ऑक्सीजन चक्र– प्राणियों के लिए ऑक्सीजन सबसे महत्त्वपूर्ण तत्त्व है। ऑक्सीजन का निर्माण पौधों द्वारा प्रकाश संश्लेषण के दौरान होता है। कार्बोहाइड्रेट्स का ऑक्सीकरण होने पर ऊर्जा, कार्बन डाइ—ऑक्साइड व जल विमुक्त होते हैं। जैवमण्डल में ऑक्सीजन चक्र एक जटिल प्रक्रिया है। यह अनेक रूपों और संयोजनों में पाई जाती है। यह नाइट्रोजन के साथ मिलकर नाइट्रेट बनाती है व अनेक खनिजों और तत्त्वों से मिलकर कई तरह के ऑक्साइड बनाती है; जैसे— आयरन ऑक्साइड व एल्यूमीनियम ऑक्साइड इत्यादि। प्रकाश संश्लेषण के दौरान जल अणुओं (H_2O) के वियोजन से ऑक्सीजन उत्पन्न होती है। पौधों की वाष्पोत्सर्जन प्रक्रिया के दौरान भी ऑक्सीजन वायुमण्डल में पहुँचती है। ऑक्सीजन का कुछ अंश प्रवाही जल में मिल जाता है। कालांतर में यह अंश धरातलीय अवसादों में संचित हो जाता है। ऑक्सीजन का पुनर्चक्रण लगभग 2,000 वर्षों में सम्पन्न होता है।

❖ विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

1. पारिस्थितिक तन्त्र की अवधारणा को स्पष्ट कीजिए।

उ०– पारिस्थितिक तन्त्र की अवधारणा– जीव विज्ञान का वह भाग, जिसके द्वारा हमें जीव तथा पर्यावरण की पारस्परिक प्रतिक्रियाओं का बोध होता है, पारिस्थितिकी कहलाता है। विभिन्न प्रकार के जीवों के पारस्परिक सम्बन्धों तथा उनका भौतिक पर्यावरण से सम्बन्धों का अध्ययन पारिस्थितिकी विज्ञान के अन्तर्गत किया जाता है। **एरंट हीकल** के अनुसार,''पारिस्थितिकी जीवों तथा उनके जैविक तथा अजैविक वातावरण के सम्बन्धों के योगफल का अध्ययन है।''

पारिस्थितिक तन्त्र किसी भी आकार का हो सकता है। छोटे से गाँव का तालाब, एक बड़ा महासागर, अमेजन का वर्षा वन अथवा सम्पूर्ण संसार एक पारिस्थितिक तन्त्र हो सकता है। पारिस्थितिक तन्त्र के विभिन्न अंग होते हैं और वे एक—दूसरे को प्रभावित करते हैं। कल्पना करो एक छोटा—सा वन है। वन में विभिन्न प्रकार की घास, पेड़—पौधे, जीवाणु, फफूद और पशु—पक्षी पाए जाते हैं। इन सबका एक—दूसरे से सम्बन्ध होता है। इन पारस्परिक सम्बन्धों की कड़ी बहुत लम्बी है। पौधे

अपने लिए मृदा और वायु से पोषक तत्त्व तथा जल लेते हैं। कुछ पौधे परजीवी होते हैं। अनेक प्राणी पेड़—पौधों से अपना भोजन प्राप्त करते हैं। कुछ प्राणी परभक्षी होते है, जो दूसरे प्राणियों को खाकर जीवित रहते हैं। पौधे और प्राणी मरकर मृदा में मिल जाते हैं। मृदा में विद्यमान असंख्य जीव मृत पौधों और प्राणियों के अवशेषों को खनिज पोषकों मे बदल देते हैं। पौधे पुन: इन पोषकों को ग्रहण कर लेते हैं। वन के अनेक अंग एक—दूसरे से प्रभावित होने के साथ—साथ अपने भौतिक पर्यावरण से प्रभावित होते हैं। इस प्रकार वन के पारिस्थितिक—तन्त्र में सभी प्रकार के जीवीय अंग जैसे पौधे और प्राणी तथा भौतिक पर्यावरण के अजैव अंग जैसे मृदा एवं जल पाए जाते हैं और ये सभी अंग एक—दूसरे को प्रभावित करते हैं।

2. खाद्य शृंखला को सचित्र समझाइए।

उ०– खाद्य शृंखला– पारितन्त्र में बहुत से जीव—जन्तु निवास करते हैं तथा इन सभी जीव—जन्तुओं में भोजन प्राप्त करने के लिए बहुत कड़ी स्पर्धा होती है। पारितन्त्र में ऊर्जा और पदार्थ का उपयोग, निर्माण, पुनरुत्थान तथा जीवन निर्वाह के लिए किया जाता है। पारिस्थितिक—तन्त्र में ऊर्जा—प्रवाह क्रमबद्ध स्तरों की एक शृंखला में होता है, जिसे खाद्य शृंखला कहते हैं। खाद्य श्रृंखला में प्रथम स्तर पर पौधे आते है जिन्हें उत्पादक कहते हैं। ऐसे पौधे जो प्रकाश संश्लेषण द्वारा अपना भोजन अकार्बनिक पदार्थों की सहायता से स्वयं तैयार करते हैं, उन्हें स्वपोषित कहते हैं। टुण्ड्रा प्रदेश में रेंडियर मॉस इसका प्रमुख उदाहरण है।

खाद्य शृंखला के **अगले स्तर पर प्राथमिक उपभोक्ता आते हैं।** इनमें पौधे का आहार करने वाले प्राणी सम्मिलित हैं। इन्हें **शाकाहारी** कहते हैं। कीट, चूहे और बकरियाँ इत्यादि प्राथमिक उपभोक्ताओं के उदाहरण हैं। टुण्ड्रा प्रदेश में रेडियर इसका प्रमुख उदाहरण है। शृंखला के **तीसरे स्तर** पर द्वितीय उपभोक्ता आते हैं। ये प्राथमिक उपभोक्ताओं से अपना भोजन प्राप्त करते हैं। इन्हें **मांसाहारी** कहते हैं। उल्लू और सिंह द्वितीय उपभोक्ता हैं। कुछ जातियों को **सर्वाहारी** या **सर्वभक्षी** कहते हैं, क्योकि वे शाकाहारी व मांसाहारी दोनों ही होते हैं। मनुष्य सर्वाहारी की श्रेणी मे आता है। टुण्ड्रा प्रदेश में रहने वाला लैपलैण्डर एक सर्वाहारी है। द्वितीय उपभोक्ता चाहे वे शाकाहारी हों या मांसाहारी, अपने पोषण के लिए अन्य जीवों पर निर्भर रहते हैं। ऐसे उपभोक्ताओं को **परपोषित** कहते हैं।

कुछ सूक्ष्म जीव तथा जीवाणु **अपघटक** या **विघटक** कहलाते हैं। ये खाद्य शृंखला के सभी स्तरों से प्राप्त अवशेषों या गले—सड़े जैव पदार्थों को अपना आहार बनाते हैं। ये अपघटक पारिस्थितिक—तन्त्र में खनिज पोषकों के पुन:चक्रण में मदद करके खाद्य शृंखला को पूरा करते हैं।

सभी पारिस्थितिक—तन्त्रों में मुख्य रूप से हरे पौधों द्वारा प्रकाश संश्लेषण की क्रिया द्वारा खाद्य—पदार्थ अर्थात् भोजन तैयार होता है जिसमें सौर ऊर्जा का प्रयोग होता है। इसी भोजन पर सभी प्रकार का जीवन आश्रित है। यह भोजन ही शक्ति प्रदान करता है। शक्ति के एक स्तर से दूसरे स्तर तक पहुँचने की क्रिया अति जटिल है जिसमें कुल शक्ति का बहुत कम भाग ही उपयोग मे आता है

खाद्य शृंखलाओं के प्रकार– सामान्यत: दो प्रकार की खाद्य शृंखलाएँ पाई जाती हैं— (i) चराई खाद्य शृंखला तथा (ii) अपरद खाद्य शृंखला।

(i) चराई खाद्य शृंखला– यह शृंखला पौधों (उत्पादकों) से शुरू होकर मांसाहारी (तृतीय उपीभोक्ता) तक जाती है। इसमें शाकाहारी मध्यम स्तर पर आते हैं। चराई खाद्य शृंखला में तीन से पाँच स्तर होते हैं। हर स्तर पर ऊर्जा का ह्रास होता है। यह ह्रास श्वसन, उत्सर्जन व विघटन जैसी प्रक्रियाओं से होता है।

(ii) अपरद खाद्य शृंखला– अपरद खाद्य शृंखला चराई खाद्य शृंखला से प्राप्त मृत पदार्थों पर निर्भर है। इसमें कार्बनिक पदार्थ का क्षय अथवा अपघटन शामिल है।

3. जैव भू रासायनिक चक्र पर प्रकाश डालिए।

उ०– जैव भू-रासायनिक चक्र– पारितन्त्र में अजैव तत्त्वों का जैव तत्त्वों में बदलना तथा पुन: जैव तत्त्वों का अजैव तत्त्वों मे बदलना, 'जैव भू—रासायनिक चक्र' कहलाता है। अन्य शब्दों में हम कह सकते हैं कि पृथ्वी पर जीवधारी विविध प्रकार के पारिस्थितिकीय अंतर्सम्बन्धों पर जीवित हैं अत: जीवधारी बहुलता और विविधता में ही जीवित रह सकते हैं। जीवन तभी संभव है जब ऊर्जा, जल और पोषक तत्त्वों का एक विधिवत् प्रवाह बना रहे। इसी प्रवाह को जैव 'भू—रासायनिक चक्र' कहते हैं। इस चक्र को पूरा करने में सूर्य, वायुमण्डल, महासागर, चट्टानी अवसादों और मिट्टी की बहुत अहम् भूमिका होती है।

जैव भू—रासायनिक चक्र निम्नलिखित क्रमों में सम्पन्न होता है—

(i) पौधों की वृद्धि के लिए कुछ अजैव तत्त्वों जैसे— कार्बन, हाइड्रोजन व ऑक्सीजन आदि की आवश्यकता होती है। इसके अत्तिरिक्त कुछ अन्य तत्त्वों जैसे— नाइट्रोजन, लोहा, गंधक, फॉस्फोरस और मैंगनीज आदि की भी आंशिक आवश्यकता होती है। ये सभी आवश्यक तत्त्व पोषक तत्त्व कहलाते हैं।

(ii) चट्टानों के अपघटन के फलस्वरूप प्राप्त अवसादों से मिट्टी का निर्माण होता है। मिट्टी में लोहा, ताँबा, सोडियम और फॉस्फोरस जैसे पोषक तत्त्व उपलब्ध होते हैं। वर्षा के जल के साथ कुछ रासायनिक पोषक जैसे कार्बन, ऑक्सीजन तथा नाइट्रोजन वायुमण्डल से निकलकर मिट्टी में मिल जाते हैं।

(iii) मृदा और वायु से प्राप्त इन पोषक तत्त्वों को पौधे अपनी जड़ों के द्वारा घोल के रूप में प्राप्त करते हैं। सूर्य के प्रकाश की उपस्थिति में हरे पौधे प्रकाश संश्लेषण की प्रक्रिया द्वारा कार्बन डाइऑक्साइड को ऑक्सीजन और कार्बनिक यौगिकों में बदल देते हैं।

(iv) धरती पर पहुँचने वाले सूर्यातप का केवल 0.1% भाग ही प्रकाश—संश्लेषण में प्रयुक्त होता है। इसका आधे से अधिक भाग पौधों के श्वसन में प्रयुक्त होता है। तथा शेष ऊर्जा अस्थायी रूप से पौधों के विभिन्न भागों में संचरित हो जाती है।

(v) चट्टानों से मिट्टियों में आए कुछ रासायनिक तत्त्वों को वर्षा जल के द्वारा नदियों और समुद्रों मे पहुँचा देती है। ये तत्त्व अजैव मण्डल का अंग बन जाते हैं।

(vi) पौधे जिन पोषक तत्त्वों को मिट्टी से ग्रहण करते हैं वे आहार शृंखला के माध्यम से विभिन्न पोषक तत्त्वों में स्थानांतरित होते रहते हैं।

(vii) प्राणियों की मृत्यु और पौधों के सूख जाने के बाद अपघटक जीव इन्हें फिर से अजैव रासायनिक तत्त्वों मे बदल देते हैं।

(viii) यही तत्त्व फिर पौधों के काम आते हैं और यह जैव भू—रासायनिक चक्र अनवरत रूप से चलता रहता है।

जैव भू–रासायनिक चक्र के प्रकार– जैव भू—रासायनिक चक्र दो प्रकार का होता है—

(i) गैसीय चक्र

(ii) तलहटी चक्र

गैसीय चक्र का प्रमुख भंडार वायुमण्डल और महासागर है तथा तलहटी चक्र का प्रमुख भण्डार भू—पर्पटी पर पाई जाने वाली चट्टानें, अवसाद और मिट्टी है।

4. पारिस्थितिक असन्तुलन को समझाते हुए इसके उन्मूलन के उपायों की विवेचना कीजिए।

उ०– मनुष्य का पारितन्त्र पर प्रभाव (पारिस्थितिक असन्तुलन)– मूल वनस्पतियों में मानव द्वारा किए गए किसी भी व्यवधान के कारण वनस्पतियों की प्रजातियों में परिवर्तन आ सकता है। प्रतिस्पर्धा के कारण द्वितीयक वन प्रजातियों की मूल संरचना में परिवर्तन हो जाता है, जिसे प्राकृतिक अनुक्रमण कहते हैं।

किसी प्रदेश में नई प्रजातियों के आगमन, प्राकृतिक आपदाओं और मानव-जनित कारणों से भी पारिस्थितिक असन्तुलन उत्पन्न हो जाता है। भूमि के लिए बढ़ती प्रतिस्पर्धा के चलते जंगलों की अंधाधुंध कटाई ने पूरे पारितन्त्र को प्रभावित किया हैं। अनेकों बार मनुष्य द्वारा जानबूझ कर या आकस्मिक ढंग से अनेक पौधों और प्राणियों को उनके मूल स्थान से हटाकर नए क्षेत्रों में बसाया जाता हैं। इस नए वातावरण में कई बार पौधों और प्राणियों को प्रतिस्पर्धा का सामना नहीं करना पड़ता, जिसके कारण उनकी संख्या अन्य जीवों से अधिक हो जाती है और वे पारिस्थितिक-तन्त्र को भंग कर देते हैं।

पारिस्थितिक असन्तुलन के कारण उत्पन्न समस्याएँ– जैवमण्डल में जीवों तथा पौधों के बीच विद्यमान सन्तुलन को पारिस्थितिक सन्तुलन कहते हैं। पारिस्थितिक सन्तुलन को बिगाड़ने में न केवल विभिन्न संसाधनों के अनियमित एवं अनियोजित विदोहन का हाथ रहा है वरन् तीव्र गति से बढ़ती मानव जनसंख्या एवं उसकी बढ़ती आवश्यकताओं का भी हाथ है। इसके परिणामस्वरूप मनुष्य को निम्नलिखित समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है—

(i) प्राकृतिक वनस्पति का पतन– लकड़ी का अधिकाधिक उपयोग होने के कारण सम्पूर्ण विश्व में वनों का क्षेत्र कम होता जा रहा है। वनों के कारण जलवायु नियन्त्रण में रहती है और वर्षा भी होती है। वनों के द्वारा कार्बन डाइऑक्साइड का शोषण होता हैं जिससे तापमान में कमी आती है। वनों के निरन्तर कम होने के कारण जीव—जन्तु विलुप्त हो रहे हैं क्योकि वन जीव—जन्तुओं का निवास स्थल होते हैं। इसके अतिरिक्त वनीय क्षेत्रों में निरन्तर कमी होने के कारण बाढ़, भूमि—अपरदन, सूखा जैसे प्रकोपों में निरन्तर वृद्धि हो रही है।

(ii) जनसंख्या में तीव्र वृद्धि– जनसंख्या वृद्धि भी पारिस्थितिक असन्तुलन के लिए एक महत्त्वपूर्ण कारक है। प्राकृतिक संसाधन जैसे— भूमि, खनिज सीमित हैं और जनसंख्या वृद्धि के कारण ये भी तीव्रता से नष्ट हो रहे हैं। जनसंख्या वृद्धि के कारण जल—भण्डारों में कमी आ रही है। यदि जनसंख्या वृद्धि को शीघ्र ही न रोका गया तो वह समय दूर नहीं है। जब जल संसाधनों व वनस्पति भण्डारों का शीघ्र ही अन्त हो जाएगा।

(iii) प्रदूषण की समस्या– पर्यावरणीय तत्त्वों में गुणात्मक ह्रास होने के कारण प्रकृति और जीवों का आपसी सन्तुलन बिगड़ता जा रहा है। हवा व जल की गुणवत्ता में निरन्तर कमी हो रही है। प्रदूषण के कारण मौसम का स्वभाव बदल रहा है, जिसके कारण जीवन—प्रक्रिया बाधित होती है और मनुष्य विभिन्न प्रकार के रोगों की चपेट में आ जाता है।

(iv) वन्य प्राणियों का शिकार– शाकाहारी एवं मांसाहारी जन्तुओं के मध्य प्रकृति में एक निश्चित सन्तुलन होता है। मांसाहारी जन्तु अपने भोजन के लिए शाकाहारी जन्तुओं पर आश्रित होते हैं। अन्य शब्दों में हम कह सकते हैं कि प्रकृति में एक निश्चित खाद्य शृंखला होती है। वन्य जीवों के शिकार के कारण खाद्य शृंखला में असन्तुलन उत्पन्न हो रहा है। मांसाहारी जन्तुओं के शिकार से शाकाहारी जीव—जन्तुओं की संख्या में निरन्तर वृद्धि हो रही है। शाकाहारी जीव पौधों का भक्षण

करते हैं, जिससे पारिस्थितिक सन्तुलन बिगड़ रहा है।

पारिस्थितिक असन्तुलन पर नियन्त्रण के उपाय– पारिस्थितिक असन्तुलन को नियन्त्रित करने के निम्नलिखित उपाय हैं—

(i) वन्य जीवों की पारिस्थितिक सन्तुलन में बड़ी अहम् भूमिका होती है, अत: वन्य जीवों के संरक्षण पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए।

(ii) ऐसे उद्योगों को तत्काल बन्द करना चाहिए जो कि विभिन्न प्रकार की गैसें, औद्योगिक अपशिष्ट फैलाते हैं और पर्यावरण को दूषित करते हैं तथा इस प्रकार के उद्योगों को बढ़ावा देना चाहिए, जिनसे कम प्रदूषण होता है।

(iii) पारिस्थितिक सन्तुलन बनाए रखने के लिए वनों की कटाई पर रोक लगाई जानी चाहिए तथा ऐसे पेड़ों को रोपना चाहिए, जो पर्यावरण स्वच्छ रखते हैं।

(iv) वर्तमान समय में विश्व की जनसंख्या लगभग 800 करोड़ से भी अधिक का आँकड़ा पार कर गई है, जिसके कारण आवासीय भूमि के लिए वनों की कटाई अंधाधुंध की जा रही है और पर्यावरण सन्तुलन निरन्तर बिगड़ रहा है, अत: पारिस्थितिक सन्तुलन बनाए रखने के लिए जनसंख्या वृद्धि पर भी रोक लगाई जानी चाहिए।

❖ **मानचित्र सम्बन्धी कार्य**

अध्यापक की सहायता से विद्यार्थी स्वयं करें।

❖ **प्रोजेक्ट कार्य**

अध्यापक की सहायता से विद्यार्थी स्वयं करें।

37 पर्यावरण का प्रदूषण

(वायु, जल, मृदा, ध्वनि, भूमि, जैव प्रदूषण-कारण, प्रभाव एवं रोकथाम के उपाय तथा अपशिष्ट पदार्थों द्वारा प्रदूषण)

अभ्यास

❖ **बहुविकल्पीय प्रश्न**

उ०– बहुविकल्पीय प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्य पुस्तक के पृष्ठ संख्या—321 का अवलोकन कीजिए।

❖ **अतिलघु उत्तरीय प्रश्न**

उ०– अतिलघु उत्तरीय प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्य पुस्तक के पृष्ठ संख्या—321 व 322 का अवलोकन कीजिए।

❖ **लघु उत्तरीय प्रश्न**

1. पर्यावरण प्रदूषण से आप क्या समझते हैं? यह कितने प्रकार का होता है?

उ०– पर्यावरण प्रदूषण– 'पर्यावरणीय प्रदूषण' वायु, जल एवं स्थल की भौतिक, रासायनिक एवं जैविक विशेषताओं में अवांछनीय परिवर्तन है, जो मनुष्य एवं अन्य जन्तुओं, पौधों, भवनों तथा जीवधारियों के लिए आवश्यक पदार्थों और मानव उपयोगी विभिन्न वस्तुओं को किसी भी रूप में हानि पहुँचाता है। वर्तमान समय में विकसित एवं विकासशील दोनों प्रकार के देश पर्यावरण प्रदूषण से ग्रस्त हैं।

पर्यावरण प्रदूषण के प्रकार–

पर्यावरणीय प्रदूषण

- जल प्रदूषण
- वायु प्रदूषण
- मृदा प्रदूषण
- ध्वनि प्रदूषण
- जैव प्रदूषण

2. जल प्रदूषण क्या है? यह कितने प्रकार का है?

उ०– जल की भौतिक, रासायनिक तथा जैविक विशेषताओं में होने वाला वह अवांछनीय परिवर्तन जो मनुष्य, पौधों व अन्य जन्तुओं को हानि पहुँचाता है, **जल प्रदूषण** कहलाता है।

जल प्रदूषण के प्रकार– जल प्रदूषण निम्नलिखित तीन प्रकार के होते हैं—

(i) भौतिक जल प्रदूषण– जब किसी बाह्य कारक जैसे कीचड़, मिट्टी, रंग आदि के कारण जल के स्वाद, गन्ध व रंग आदि में परिवर्तन आ जाए तो इसे भौतिक जल प्रदूषण कहते हैं।

(ii) रासायनिक जल प्रदूषण– जब किसी रासायनिक तत्त्व की मात्रा जल में कम या अधिक हो जाती है और जल पीने योग्य नहीं रह जाता है तो इसे रासायनिक जल प्रदूषण कहते हैं।

(iii) जैविक जल प्रदूषण– जब जल में विषैले कीटाणु, बैक्टीरिया आदि मिल जाने के कारण जल पीने योग्य नहीं रहता है तो इसे जैविक जल प्रदूषण कहते हैं।

3. वायु प्रदूषण को परिभाषित करते हुए इसके स्रोतों की विवेचना कीजिए।

उ०– **विश्व स्वास्थ्य संगठन** के अनुसार, "**वायु प्रदूषण को ऐसी परिस्थिति के रूप में परिभाषित किया जा सकता है, जिसमें बाह्य वायुमण्डल में ऐसे पदार्थों का संकेन्द्रण हो जाता है जो मानव और उसके चारों ओर विद्यमान पर्यावरण के लिए हानिकारक होते हैं।**"

वायु प्रदूषण के स्रोत– वायु प्रदूषण के निम्नलिखित स्रोत हैं—

(i) औद्योगिक कारखाने– सल्फर डाइ—ऑक्साइड, नाइट्रोजन ऑक्साइड, हाइड्रोजन सल्फाइड, कार्बन मानोऑक्साइड, आदि विषैली गैसें कारखानों से निकलती हैं और वायु को दूषित करती हैं।

(ii) वाहन– आज का युग गतिशीलता का युग है, जिसके परिणाम स्वरूप कार, स्कूटर व अन्य वाहनों का प्रयोग बहुत अधिक हो रहा है। इनसे निकलने वाले विषैले पदार्थ, धुआँ आदि वायुमण्डल को दूषित करते हैं और वायु प्रदूषण होता है।

(iii) भौतिक संसाधन– मानव अपनी सुविधाओं के लिए प्लास्टिक पेन्ट, रसायन, डिस्टेम्पर आदि का प्रयोग घरों में करते हैं, जो वायु प्रदूषण को बढ़ाते हैं। फ्रिज तथा वातानुकूलित कमरों से गैसें निकलती हैं, जो धूल के कणों में मिलकर तथा हमारे फेफड़ों में जमा होकर कैंसर का कारण बन जाती हैं।

(iv) धूम्रपान– सिगरेट, बीड़ी, सिगार, तम्बाकू आदि के सेवन से भी वायु प्रदूषित होती है और वायु प्रदूषण होता है।

(v) अन्य कारण– आण्विक विद्युत—गृहों से निकलने वाले रेडियोधर्मी तत्त्व वायु को प्रदूषित कर देते हैं। खेतों में कीटनाशक दवाओं के छिड़काव से वायुमण्डल में हानिकारक रासायनिक तत्त्व मिल जाते हैं और वायु प्रदूषण उत्पन्न होता है।

4. मृदा प्रदूषण की रोकथाम के कुछ उपाय सुझाइए।

उ०– **मृदा प्रदूषण की रोकथाम–** मृदा प्रदूषण की रोकथाम के कुछ उपाय निम्नलिखित हैं—

(i) फसलों पर कीटनाशकों का छिड़काव सीमित व संयमित ढंग से किया जाना चाहिए।

(ii) खेतों से जल—निकास की समुचित व्यवस्था की जानी चाहिए।

(iii) मृदा उर्वरता में वृद्धि के लिए खेतों में पेड़—पौधों की पत्तियाँ, छिलके, डण्ठल, जड़े, तने आदि सड़ाए जाने चाहिए तथा भूमि को कुछ समय के लिए खाली छोड़ देना चाहिए।

(iv) रासायनिक उर्वरकों के स्थान पर कम्पोस्ट एवं हरी खाद के प्रयोग को प्राथमिकता देनी चाहिए।

(v) स्थानान्तरित तथा झूमिंग कृषि पर रोक लगाई जानी चाहिए।

(vi) परमाणु विस्फोटों पर रोक लगाई जानी चाहिए।

(vii) कृषि के अवशिष्टों गोबर आदि कार्बनिक पदार्थों का निपटारा बायोगैस संयंत्र के द्वारा अधिक ऊर्जा उत्पादन तथा खाद के रूप में किया जाना चाहिए।

(viii) सबसे अधिक आवश्यकता सामान्य नागरिकों के व्यवहार में सुधार की है जिससे वे गन्दगी को जगह—जगह न फैलाकर निश्चित स्थानों पर एकत्रित करें। नगरपालिकाओं को भी गन्दगी, कूड़ा—करकट आदि के निस्तारण का उचित प्रबन्ध करना चाहिए।

5. ध्वनि प्रदूषण के प्राकृतिक स्रोतों के नाम बताइए।

उ०– प्रकृति में विभिन्न प्रकार की ध्वनियाँ होती हैं, परन्तु यदि ये ध्वनियाँ पीड़ा युक्त हों तो ध्वनि प्रदूषण होता है। प्रकृति द्वारा ध्वनि प्रदूषण निम्न प्रकारों से होता है—

(i) ज्वालामुखी का प्रस्फुटन
(ii) भयंकर तूफान
(iii) विद्युत गर्जना
(iv) बादलों की गर्जना
(v) तीव्र तूफानी पवनें
(vi) ज्वार भाटा
(vii) उच्च पर्वतों से गिरते जल की ध्वनि
(viii) भयंकर जलवृष्टि
(ix) भूकम्प

6. ठोस अपशिष्ट से आप क्या समझते हैं?

उ०– ठोस अपशिष्ट– जनसामान्य द्वारा उपयोग के उपरान्त छोड़े गए ठोस तत्त्वों या पदार्थों को ठोस अपशिष्ट कहा जाता है। इसमें विभिन्न प्रकार के प्लास्टिक सामान, राख, घरेलू कचरा, लोह–लक्कड़, डिब्बे, बोतल, काँच, पॉलिथीन बैग आदि सम्मिलित होते हैं। वर्तमान में ठोस अपशिष्ट पदार्थों की मात्रा में निरन्तर तीव्र गति से वृद्धि होती जा रही है। इनके फेंकने या निपटान की समस्या दिनों–दिन बढ़ती जा रही है। ठोस अपशिष्ट पदार्थों का नियमित संग्रहण व समुचित स्थलों पर भली–भाँति निपटान ठोस अपशिष्ट प्रबन्धन कहलाता है। विश्व में तेजी से बढ़ती जनसंख्या तथा भौतिकवादी जीवन–शैली के कारण ठोस अपशिष्ट पदार्थ की अधिकता बड़ी समस्या बन गई।

❖ **विस्तृत उत्तरीय प्रश्न**

1. प्रदूषण पर एक निबन्ध लिखिए।

उ०– प्रदूषण पर निबन्ध– प्रदूषण आज की दुनिया की एक गम्भीर समस्या है। प्रकृति और पर्यावरण के प्रेमियों के लिए यह भारी चिन्ता का विषय बन गया है। इसकी चपेट में मानव–समुदाय ही नहीं, समस्त जीव–समुदाय आ गया है। इसके दुष्प्रभाव चारों ओर दिखाई दे रहे हैं।

प्रदूषण का शाब्दिक अर्थ है– गंदगी। वह गंदगी जो हमारे चारों ओर फैल गई है और जिसकी गिरफ्त में पृथ्वी के सभी निवासी हैं उसे प्रदूषण कहा जाता है। प्रदूषण को मोटे तौर पर तीन श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है– वायु प्रदूषण, जल प्रदूषण और ध्वनि प्रदूषण। ये तीनों ही प्रकार के प्रदूषण मानव के स्वास्थ्य के लिए हानिकारक सिद्ध हो रहे हैं।

वायु और जल प्रकृति–प्रदत्त जीवनदायी वस्तुएँ हैं। जीवों की उत्पत्ति और जीवन को बनाए रखने में इन दोनों वस्तुओं का बहुत बड़ा हाथ है। वायु में जहाँ सभी जीवधारी साँस लेते हैं वहीं जल को पीने के काम में लाते हैं लेकिन ये दोनों ही वस्तुएँ आजकल बहुत गंदी हो गई है। वायु प्रदूषण का प्रमुख कारण इसमें अनेक प्रकार की अशुद्ध गैसों का मिल जाना है। वायु में मानवीय गतिविधियों के कारण कार्बन डाईऑक्साइड, कार्बन मोना ऑक्साइड जैसे प्रदूषित तत्व भारी मात्रा में मिलते जा रहे हैं। जल में नगरों का कूड़ा–कचरा रासायनिक पदार्थों से युक्त गंदा पानी प्रवाहित किया जाता रहा है। इससे जल के भंडार, जैसे– तालाब, नदियाँ, झीलें और समुद्र का जल निरन्तर प्रदूषित हो रहा है।

ध्वनि प्रदूषण का मुख्य कारण है– बढ़ती आबादी के कारण निरन्तर होने वाला शोरगुल। घर के बरतनों की खट–पट, मशीनों की खट–पट और वाद्य यन्त्रों की झन–झन दिनों–दिन बढ़ती ही जा रही है। वाहनों का शोर, उपकरणों की चीख और चारों दिशाओं से आने वाली विभिन्न प्रकार की आवाजें ध्वनि प्रदूषण को जन्म दे रही हैं। महानगरों में तो ध्वनि–प्रदूषण अपनी ऊँचाई पर है।

प्रदूषण के दुष्प्रभावों के बारे में विचार करें तो ये बड़े गम्भीर नजर आते हैं। प्रदूषित वायु में साँस लेने से फेफड़ों और श्वास–सम्बन्धी अनेक रोग उत्पन्न होते हैं। प्रदूषित जल पीने से पेट सम्बन्धी रोग फैलते हैं। गंदा जल, जल में निवास करने वाले जीवों के लिए भी बहुत हानिकारक होता है। ध्वनि प्रदूषण मानसिक तनाव उत्पन्न करता है। इससे बहरापन, चिंता, अशांति जैसी समस्याओं से दो–चार होना पड़ता है। आधुनिक वैज्ञानिक युग में प्रदूषण को पूरी तरह समाप्त करना टेढ़ी खीर हो गई है। अनेक प्रकार के सरकारी और गैर–सरकारी प्रयास अब तक नाकाफी सिद्ध हुए हैं। अत: स्पष्ट है कि जब तक जन–समूह निजी स्तर पर इस कार्य में सक्रिय भागीदारी नहीं करता, तब तक इस समस्या से निबटना असम्भव है। हरेक को चाहिए कि वे आस–पास कूड़े का ढ़ेर व गंदगी इकट्ठा न होने दें।

जलाशयों में प्रदूषित जल का शुद्धिकरण होना चाहिए। कोयला तथा पैट्रोलियम पदार्थों का प्रयोग घटाकर सौर–ऊर्जा, पवन–ऊर्जा, बायो गैस, सी.एन.जी., एल.पी.जी. जल–विद्युत जैसे वैकल्पिक ऊर्जा स्रोतों का अधिकाधिक दोहन करना चाहिए। हमें जंगलों को काटने से बचाना चाहिए तथा रिहायशी क्षेत्रों में नए पेड़ लगाने चाहिए। इस सभी उपायों को अपनाने से वायु प्रदूषण और जल प्रदूषण को घटाने में काफी मदद मिलेगी।

ध्वनि प्रदूषण को कम करने के लिए कुछ ठोस एवं सकारात्मक कदम उठाने की आवश्यकता है। रेडियों, टी.वी. ध्वनि विस्तारक यंत्रों आदि को कम आवाज में बजाना चाहिए। लाउडस्पीकरों के आम उपयोग को प्रतिबंधित कर देना चाहिए। वाहनों में हल्के आवाज वाले ध्वनि–संकेतकों का प्रयोग होना चाहिए। घरेलू उपकरणों को इस तरह प्रयोग में लाना चाहिए जिससे कम से कम ध्वनि उत्पन्न हो।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि प्रदूषण को कम करने का एकमात्र उपाय सामाजिक जागरूकता है प्रचार माध्यमों के द्वारा इस सम्बन्ध में लोंगों तक संदेश पहुँचाने की आवश्यकता है। सामुहिक प्रयास से ही प्रदूषण की विश्वव्यापी समस्या को नियंत्रित किया जा सकता है।

2. ठोस अपशिष्ट को परिभाषित करते हुए इसके स्रोतों और प्रबन्धन की समीक्षा कीजिए।

उ०– **ठोस अपशिष्ट–** इसके लिए लघु उत्तरीय प्रश्न संख्या–6 के उत्तर का अवलोकन कीजिए।

ठोस अपशिष्टों के स्रोत– ठोस अपशिष्ट पदार्थों के प्रमुख स्रोत निम्न हैं–

(i) औद्योगिक अपशिष्ट– औद्योगिक इकाइयों द्वारा अनेक प्रकार के अपशिष्ट छोड़े जाते हैं जो भूमि या मृदा प्रदूषण के प्रमुख कारक हैं। चीनी कारखानों से भारी मात्रा में निकलने वाली खोई, तापीय ऊर्जा संयन्त्रों से उत्पादित राख ताँबा व ऐलुमिनियम प्रगलन संयन्त्रों से निकलने वाले खतरनाक रसायन, उर्वरक इकाइयों के अपशिष्ट पदार्थ आदि इसके उदाहरण हैं।

(ii) घरेलू व नगरपालिका अपशिष्ट– घरों से निकलने वाला कूड़ा–करकट तथा सार्वजनिक स्थलों पर एकत्रित कचरा नगर निकायों के लिए बड़ी समस्या है। इसमें **पॉलिथीन, प्लास्टिक, कागज, बोतलें, टिन, ब्लेड, घरों से निकलने वाला कूड़ा** आदि सम्मिलित हैं। विकसित देशों में पुराने वाहन, टायर, फ्रीज, इलेक्ट्रॉनिक सामान आदि के निस्तारण की विकट समस्या है। अकेले न्यूयार्क महानगर में प्रतिदिन 25,000 टन कचरा निकलता है। भारत में सर्वाधिक मुम्बई महानगर से प्रतिदिन लगभग 6 हजार टन कूड़ा–करकट निकलता है। नगर निकायों द्वारा सम्पूर्ण कचरे का निपटान न हो पाने के कारण अधिशेष कचरा दिनों–दिन बढ़ता जाता है।

(iii) कृषिजनित अपशिष्ट– फसल लेने के बाद खेतों में बचे डण्ठल, पत्ते, घास–फूस आदि कृषि अपशिष्ट कहलाते हैं। खेतों में पड़े रहने वाले ये पदार्थ अधिक मात्रा में होने पर समस्या उत्पन्न करते हैं। विकासशील देशों में इन अपशिष्टों को कई रूपों में उपयोग कर लेने के कारण कोई खास समस्या नहीं है, किन्तु विकसित देशों में इनका निपटान बड़ी समस्या है।

(iv) खनन अपशिष्ट– खनिजों की प्राप्ति के दौरान बड़ी मात्रा में अपशिष्ट निकलते हैं। खनन के लिए सर्वप्रथम भू–पृष्ठ को तोड़ा या खोदा जाता है। इससे मलवे का ढेर लग जाता है। खनन की प्रक्रिया के दौरान निम्न श्रेणी के खनिज को छोड़ दिया जाता है। परिवहन के समय भी खनिजयुक्त मलवा यत्र–तत्र फैलता है। खनन क्षेत्रों में खनिज अपशिष्ट से बने मलवे के बड़े–बड़े ढेर देखे जा सकते हैं।

(v) अन्य– मृत जानवरों के कंकाल, इमारती पत्थरों की कटिंग व पॉलिश के दौरान निकलने वाली स्लरी बूचड़घरों से निकलने वाले अपशिष्ट, अस्पतालों से निकलने वाला बायो मेडिकल वेस्ट, पॉल्ट्री फॉर्म का कचरा आदि ठोस अपशिष्ट के अन्य स्रोत हैं।

दुष्प्रभाव– विभिन्न स्रोतों से उत्पन्न कूड़ा–करकट भूमि प्रदूषण का बड़ा कारण है। इससे जल–प्रदूषण एवं वायु–प्रदूषण भी होता है। कचरे के ढेर से उठती दुर्गन्ध लोगों का साँस लेना दूभर कर देती है। कचरे में उत्पन्न विभिन्न कीड़े–मकोड़े, मच्छर, मक्खी, चूहे एवं परजीवी अनेक रोगों का कारण बनते हैं। इससे मृदा अनुपयोगी हो जाती है। गड्ढों में एकत्रित कचरे में जल रिसाव से भूमिगत जल स्रोत भी दूषित हो जाते हैं।

ठोस अपशिष्टों का प्रबन्धन– कचरे के प्रबन्धन के सम्बन्ध में कोई ठोस योजना अभी तक लागू नहीं हो पाई है। इसके लिए जहाँ राष्ट्रीय स्तर पर योजना की आवश्यकता है, वहीं राज्य व स्थानीय स्तर पर ठोस कदम उठाकर इसके प्रबन्धन की दिशा में गम्भीर प्रयास किए जा सकते हैं।

(i) नगरीय व घरेलू अपशिष्ट का प्रबन्धन– ऐसे अपशिष्ट के प्रबन्धन के बारे में एक स्पष्ट योजना का होना आवश्यक है। इसके प्रबन्धन से पहले निम्नांकित बातों पर ध्यान देना अनिवार्य है–

(क) घरेलू उपशिष्ट खुले में न फेंका जाए।

(ख) घरेलू अपशिष्ट को घर में ही गीले (सब्जी व फलों के छिलके व जूठन इत्यादि) ठोस (काँच, लकड़ी, मिट्टी का सामान इत्यादि) तथा प्लास्टिक के सामान को अलग–अलग एकत्रित किया जाए, ताकि डिस्पोजल साइट्स पर इनका प्रबन्धन आसान हो जाए।

(ग) सारे शहर का अपशिष्ट डिस्पोजल साइट्स पर इकट्ठा किया जाए।

(घ) इसके बाद अपशिष्ट के विविध तत्त्वों को अलग–अलग किया जाए। जो तत्त्व नष्ट हो सकते हैं, वे अलग रखे जाएँ तथा नष्ट न हो सकने वाले अलग।

पुनर्चक्रण– घरेलू व नगरीय अपशिष्ट के कुछ भाग का पुन: प्रयोग हो सकता है। उसी के अनुरूप उसे प्रयोग में लाया जाए।

(क) काँच, प्लास्टिक व कुछ धातुओं के सामान का पुन: प्रयोग सम्भव है।

(ख) समाचारपत्रों या अन्य प्रकार के साफ कागज को रद्दी में बेचकर पुनर्चक्रित किया जा सकता है।

(ग) घर से बाहर फेंके जाने वाली पॉलीथीन को बारीक—बारीक पट्टियों में बाँटकर दरी, चटाई, बैठने का आसन, सजावट का सामान, रस्सियाँ आदि बनाई जा सकती हैं।

(घ) कुछ चीजों को मरम्मत के बाद प्रयोग में लाया जा सकता है।

अपशिष्ट को नष्ट करना– जिस अपशिष्ट का विभाजन सम्भव न हो या जो पुनर्चक्रित न हो सके उसे नष्ट करने की निम्न विधियाँ अपनाई जा सकती हैं—

कम्पोस्टिंग– अपशिष्ट को खाद में बदलने की प्रक्रिया को कम्पोस्टिंग का नाम दिया जाता है। इस प्रणाली में हर प्रकार के अपशिष्ट (काँच व पॉलीथीन के अतिरिक्त) फलों व सब्जियों के छिलके, विभिन्न प्रकार की जूठन, पशुओं का मल, मानवीय मल आदि को कुछ समय तक एक स्थान पर सुरक्षित रखकर उपजाऊ खाद के रूप में प्रयोग किया जाता है। इसका दोष यह है कि इसके लिए खुली जगह चाहिए तथा वर्षा के मौसम में अथवा लम्बे समय तक प्रयोग न किए जाने पर इसमें दुर्गन्ध आनी शुरू हो जाती है।

विशेष दहन– ज्वलनशील अपशिष्टों का दहन करके उन्हें नष्ट किया जाता है। परन्तु दहन से कार्बन डाइ—ऑक्साइड गैस पैदा होती है। विशेष दहन को अनेरियाबिक डाइजेशन का नाम दिया जाता है। इस प्रक्रिया को ऑक्सीजनरहित ज्वलन प्रक्रिया भी कहते हैं। इसमें अपशिष्ट को विशेष किस्म के डिस्पोजल साइट्स में एकत्रित करके धीमी रासायनिक क्रिया द्वारा नष्ट किया जाता है। इस क्रिया से विशेष प्रकार की विद्युत भी प्राप्त होती है। भारत में इस तरह का संयन्त्र नागपुर (महाराष्ट्र) में लगाया गया है। इस क्रिया में वातावरण की ऑक्सीजन को नुकसान किए बिना बिजली मिलती है। शेष अपशिष्ट खाद के रूप में प्रयोग होती है। इससे बायोगैस मिलती है। किन्तु यह प्रक्रिया महँगी है। इसे चलाने के लिए कुशल विशेषज्ञों की आवश्यकता पड़ती है।

अपशिष्ट ऊर्जा ईंधन– इस तरह की क्रिया में हर प्रकार के अपशिष्ट से ऊर्जा प्राप्त की जाती है। यह प्रक्रिया थोड़ी जटिल है। इसमें सबसे पहले अपशिष्ट विशेषकर, मल को सुखाया जाता है। इसके बाद इसका ईंधन के तौर पर प्रयोग किया जाता है। भारत में हैदराबाद में इस तरह का विशेष प्लाण्ट लगाया गया है।

अपशिष्ट विखण्डन– इस विधि के अन्तर्गत ऐसे अपशिष्ट को मशीनों द्वारा पीसा जाता है, जो न ज्वलनशील होते हैं और न पानी में घुलते हैं, जैसे— चीनी मिट्टी के बर्तन, पके हुए मिट्टी के बर्तन, विभिन्न प्रकार की पॉलीथीन आदि। इन सबका चूरा बनाकर एवं इसमें कुछ रासायनिक मिश्रण डालकर इनके प्रभाव को नष्ट किया जाता है। इस तरह का प्लाण्ट इस समय चेन्नई में काम कर रहा है। यह विधि कम जगह में कहीं भी प्रयुक्त की जा सकती है तथा इस मिश्रण से बिजली पैदा की जा सकती है।

(ii) औद्योगिक व खनन अपशिष्ट का प्रबन्धन– औद्योगीकरण व खनन ने जहाँ समाज को बहुत—सी सुख—सुविधाएँ उपलब्ध कराई हैं, वहीं विभिन्न प्रकार के प्रदूषण भी दिए हैं। इनमें से प्रदूषित जल तथा ठोस अपशिष्ट निकलते हैं। इन अपशिष्टों का निस्तारण निम्नलिखित प्रकार से हो सकता है—

पुनर्चक्रण– औद्योगिक इकाइयों व खानों के अपशिष्ट में से अधिकतर को पुनर्चक्रित करके प्रयोग में लाया जा सकता है—

(क) खाद बनाने वाले संयन्त्रों से **फोल फोजियसम** पदार्थ निकलता है। इसमें 15 से 30% तक चूना होता है। इससे विभिन्न प्रकार की टाइलें बनाई जा सकती हैं।

(ख) उद्योगों में तेजाब बनाते समय **फ्लोरोजिप्सम** निकलता है। इसमें से 'पॉलिमर कम्पॉजिट' बनाकर सीमेन्ट के विकल्प के रूप में प्रयोग किया जा सकता है।

(ग) उद्योगों की भट्टियों से राख निकलती है। इसमें **'फैरौफ्रम'**, **'फैटोसिलिकेट'** तथा **'जिंक'** इत्यादि काफी मात्रा में होता है। यह सड़क बनाने में कोलतार के साथ प्रयोग की जा सकती है।

(घ) लाल मिट्टी अपने आप में खनिज होती है। इससे बढ़िया सीमेन्ट व उत्तम किस्म की ईंटें बनाई जा सकती हैं।

(ड) औद्योगिक संयत्रों से निकली नीली धूल आयरन ऑक्साइड जैसी होती है, जिसे प्राइमर के तौर पर प्रयोग किया जा सकता है।

(च) संगमरमर की खानों से स्लरी मिलती है, जिसे पकाकर लकड़ी बनाई जा सकती है। इस पर मौसम व आग दोनों का प्रभाव नहीं होता।

अपशिष्टों को नष्ट करना– औद्योगिक अपशिष्टों में जिन अपशिष्टों का पुनर्चक्रण सम्भव नहीं होता, उन्हें कम करने के लिए निम्नलिखित कदम उठाए जा सकते हैं—

(क) प्रत्येक औद्योगिक संयत्र की स्थापना के साथ ही उसके अपशिष्ट को समाप्त करने का संयत्र भी लगवाया जाए तथा यह कर्त्तव्य भी कम्पनी मालिक का हो।

(ख) अपशिष्टों के निस्तारण के लिए वही पद्धतियाँ काम करेंगी, जिनका उल्लेख घरेलू व नगरीय अपशिष्ट के बारे में किया गया है।

(iii) अस्पताल के अपशिष्ट का प्रबन्धन– अस्पतालों व चिकित्सा सम्बन्धी विभिन्न प्रयोगशालाओं से भी कई तरह का अपशिष्ट निकलता है। इसमें कुछ बीमारियों के कीटाणु व विषाणु भी होते हैं। इसलिए इन्हें सामान्य ढंग से प्रबन्धित नहीं किया जा सकता। इसके लिए सम्बन्धित विभाग में ही टीम की आवश्यकता होती है।

पुनर्चक्रण– अब अधिकतर सामान एक बार प्रयोग के बाद अपशिष्ट हो जाता है। इसमें पाइप, बोतलें, सीरिंज, दवाइयाँ, प्लास्टिक की पैकिंग, विशेषकर गोलियों के रेपर शामिल हैं। इस तरह का सामान बनाने वाली कम्पनियों को प्लास्टिक के सामान को गलाकर पुन:चक्रित करना चाहिए।

अपशिष्ट को नष्ट करना– अस्पतालों के अपशिष्ट का पर्याप्त हिस्सा पुन: चक्रित नहीं हो सकता। इसके अन्तर्गत प्रयोग की गई विभिन्न तरह की पट्टियाँ, रुई, ऑपरेशन के दौरान प्रयोग किए गए दस्ताने इत्यादि मुख्य हैं। केन्द्रीय सरकार ने 1986 में पहली बार ऐसे अपशिष्ट को अन्य से अलग रखने का कानून बनाया।

(iv) कृषि व वनस्पति अपशिष्ट का प्रबन्धन– इन अपशिष्टों को भी नए ढंग से प्रयोग में लाकर इस समस्या का समाधान किया जा सकता है। भारत में कृषिजनित अपशिष्टों का उपयोग हमेशा होता रहा है। बहुत कम अपशिष्ट ही ऐसे हैं, जिनका प्रयोग न किया जाता हो।

(क) कुछ कृषि उत्पादों में अनाज के अतिरिक्त लकड़ी मिलती है; जैसे— सरसों, अरहर इत्यादि। गन्ने की खोई को भी ईंधन के रूप में प्रयोग में लाया जाता है। इसी तरह से गन्ने के छिलके को भी एकत्रित करके ईंधन के रूप में प्रयोग किया जा सकता है।

(ख) चावल का छिलका कुछ ही प्रतिष्ठानों में प्रयोग किया जाता है। भवन—निर्माण, पलस्तर, छत व फर्श के लिए यह बहुत अधिक लाभदायक होता है।

(v) जलीय अपशिष्ट का प्रबन्धन– इस सम्बन्ध में निम्नांकित कदम उठाए जा सकते हैं—

(क) सर्वप्रथम हर प्रकार के अपशिष्ट जल को छानने की व्यवस्था होनी चाहिए। इससे पानी में शामिल बड़े आकार के ठोस आगे नहीं जा सकते। इससे आगे बारीक छलनी वाली लोहे की डण्डियाँ लगाकर छोटे ठोसों को भी रोका जा सकता है।

(ख) छानने की क्रिया के बाद अपशिष्ट जल को पत्थर, कंकड़ की परत से गुजारा जाना चाहिए। इससे पानी में शामिल बारीक अपशिष्ट भी निकल जाते हैं।

(ग) यदि इस जल को कुछ रसायनयुक्त टैंकों से गुजारा जाए तो अपशिष्टता पूरी तरह से समाप्त हो सकती है। टैंकों में पहले बड़े पत्थर, फिर छोटे पत्थर तथा अन्त में बारीक पत्थर लगे होते हैं, जो पानी को साफ कर देते हैं। फिर रासायनिक तत्त्वों का प्रयोग कर पानी को शुद्ध किया जाता है।

(घ) बायोफिल्ट्रेशन भी पानी को साफ करने की प्रक्रिया है। इसमें विशेष प्रकार के जीवाणुओं से जल को शुद्ध किया जाता है। पानी को शुद्ध करने की प्रक्रिया जटिल व महँगी अवश्य है। लेकिन जिस तरह से जल स्रोतों का तेजी से अन्त हो रहा है, उस दृष्टि से इन क्रियाओं को अपनाना आवश्यक है।

यदि विभिन्न प्रकार के अपशिष्टों का प्रबन्धन हर स्तर पर किया जाए, तो रोजगार के अपार अवसर तो सृजित होंगे ही, साथ ही, इन अपशिष्टों के भयानक परिणामों को भी रोका जा सकेगा। इसमें हम सब, हमारी सरकार व अन्य संस्थाएँ महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकती हैं।

3. ठोस पर्यावरण प्रदूषण के मानव जीवन पर पड़ने वाले प्रभावों पर प्रकाश डालिए।

उ०– उत्तर के लिए विस्तृत उत्तरीय प्रश्न संख्या—1 का अवलोकन कीजिए।

❖ मानचित्र सम्बन्धी अभ्यास कार्य

अध्यापक की सहायता से विद्यार्थी स्वयं करें।

❖ प्रोजेक्ट कार्य

अध्यापक की सहायता से विद्यार्थी स्वयं करें।

इकाई-2 (क) : प्राकृतिक संसाधन

38 संसाधन का तात्पर्य एवं मुख्य संसाधन

(भूमि, मृदा, वन, मत्स्य, खनिज, ऊर्जा संसाधन, जल, खनिज तेल, आण्विक खनिज, कोयला, लकड़ी एवं ऊर्जा के वैकल्पिक साधन, सामान्य परिचय)

अभ्यास

❖ **बहुविकल्पीय प्रश्न**

उ०– बहुविकल्पीय प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्य पुस्तक के पृष्ठ संख्या—340 का अवलोकन कीजिए।

❖ **अतिलघु उत्तरीय प्रश्न**

उ०– अतिलघु उत्तरीय प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्य पुस्तक के पृष्ठ संख्या—340 व 341 का अवलोकन कीजिए।

❖ **लघु उत्तरीय प्रश्न**

1. संसाधन की कोई तीन परिभाषाएँ बताइए।

उ०– संसाधन की तीन परिभाषाएँ निम्नवत् हैं—

(i) कोई भी वह वस्तु जो मानव की कठिनाइयों को दूर करने में समर्थ हो अथवा उसकी आवश्यकताओं की पूर्ति करके उसे सन्तुष्ट करती हो या किसी प्रकार की उपयोगिता प्रदान करती हो, संसाधन कहलाती है।

(ii) कोई भी वह पदार्थ जो मानव के लिए उपयोगी हो अथवा प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से मानव का कुछ उपकार करता हो, संसाधन कहलाता है।

(iii) किन्हीं उद्देश्यों, आवश्यकताओं अथवा इच्छाओं को पूरा करने वाली वस्तुएँ या साधन संसाधन कहलाते हैं।

2. संसाधनों का सामान्य वर्गीकरण कीजिए।

उ०– सामान्य आधार पर संसाधनों को दो वर्गों में विभाजित किया जाता है—

(i) प्राकृतिक संसाधन– वे संसाधन जो हमें प्रकृति से उपहार के रूप में प्राप्त होते हैं।

(ii) मानवीय संसाधन– किसी क्षेत्र या प्रदेश में रहने वाली जनसंख्या वहाँ की मानवीय संसाधन कहलाती हैं।

3. भूमि संसाधन से आपका क्या अभिप्राय है?

उ०. भूमि संसाधन– साधारणत: भूमि को जमीन, धरती या इसकी ऊपरी सतह के नाम से जानते हैं। भूमि एक प्रमुख प्राकृतिक संसाधन है क्योंकि मानव भूमि पर निवास करता है और उसके जीवन की समस्त आधारभूत आवश्यकताओं की पूर्ति भूमि के माध्यम से ही होती है। किन्तु अर्थशास्त्र की दृष्टि से भूमि की अलग ही परिभाषा दी गई है। **अर्थशास्त्र** के अनुसार, ''भूमि से अभिप्राय उन समस्त प्राकृतिक संसाधनों, पदार्थों तथा शक्तियों से है जो प्रकृति की ओर से मनुष्य को पृथ्वी तल पर, उसके नीचे तथा उसके ऊपर नि:शुल्क प्राप्त होते हैं।''

4. मृदा संरक्षण के कुछ उपाय बताइए।

उ०– मृदा-संरक्षण– मृदा की उर्वरता बनाए रखने के लिए उसका संरक्षण किया जाना नितान्त आवश्यक है, क्योंकि मृदा के अपरदन से मृदा की उत्पादकता में कमी हो जाती है। मृदा—संरक्षण के लिए निम्नलिखित उपाय अपनाए जा सकते हैं—

(i) वृक्षारोपण– पहाड़ी ढालों तथा कृषि—योग्य बेकार भूमि पर वनारोपण कर मृदा—संरक्षण किया जा सकता है।

(ii) मेड़ द्वारा– सामान्य ढालों में समोच्च रेखा विधि से जुताई, पट्टीदार कृषि तथा खेतों की मेड़ बनाकर मृदा का संरक्षण किया जा सकता है।

(iii) नालियों की बाँध बनाकर– अवनालिका मृदा अपरदन को नालियों में बाँध बनाकर रोका जा सकता है।

(iv) पशुचारण पर नियन्त्रण– चरागाहों तथा घास के मैदानों पर पशुओं की अनियन्त्रित चराई पर रोक लगाई जानी चाहिए।

(v) वैज्ञानिक ढंग से खेती– फसलों को हेर—फेर से अर्थात् परिवर्तन करते हुए बोना चाहिए, ढालू जमीन पर सीढ़ीनुमा क्यारियाँ बनानी चाहिए और ढाल के विरुद्ध जुताई करनी चाहिए।

(vi) भूमि को समतल बनाना– जो जमीन ऊबड़—खाबड़ (बीहड़) है तथा जिसमें नालियाँ बनी हुई हैं, उसमें मिट्टी भरकर उसे समतल करना चाहिए।

(vii) खन्दकें खोदना– पर्वतीय क्षेत्रों में खेतों के इर्द—गिर्द खन्दकें खोदी जानी चाहिए, जिससे वर्षा का पानी तेजी से नीचे की ओर न बह सके।

(viii) **जलाशयों का निर्माण–** बाढ़—नियन्त्रण के लिए नदियों पर बाँध बनाए जाएँ और तत्पश्चात् जलाशयों में जल को संचित किया जाए।

5. वन संसाधन से आप क्या समझते हैं?

उ०– **वन संसाधन–** वनों को किसी भी राष्ट्र की अमूल्य निधि माना जाता है। अपनी अत्यधिक आर्थिक एवं पर्यावरणीय उपयोगिता के कारण वनों को हरा सोना या हरे फेफड़े कहकर सम्बोधित किया जाता है। प्राकृतिक रूप से स्वयं ही उगने और बढ़ने वाले पेड़—पौधों तथा घास के सघन आवरण को वन कहते हैं।

6. उष्ण कटिबन्धीय वनों में लकड़ी काटने के व्यवसाय में क्या बाधाएँ हैं?

उ०– उष्ण कटिबन्धीय वनों में लकड़ी काटने के व्यवसाय में बाधाएँ—

(i) **विविध वृक्ष–** उष्ण कटिबन्धीय क्षेत्रों के दृढ़ काष्ठ वनों में केवल महोगनी, देवदार, सागोन, आबनूस, रोजवुड आदि वृक्षों की लकड़ी की ही अधिक आर्थिक उपयोगिता है। परन्तु ये वृक्ष यहाँ अनेक जातियों के वृक्षों के साथ मिले—जुले रूप में पाए जाते हैं। विविध वृक्षों में से इनकी छाँट करके कटाई में समय और धन अधिक खर्च होता है।

(ii) **दृढ़ काष्ठ–** दृढ़ काष्ठ वनों को काटने में अधिक कठिनाई होती है।

(iii) **भारी काष्ठ–** भारी लकड़ी होने के कारण उसके परिवहन में बाधा आती है।

(iv) **परिवहन–मार्गों की कमी–** इन सघन वनों में परिवहन—मार्गों की कमी के कारण अनेकों कठिनाइयों का सामना करना पडता हैं।

(v) **अस्वास्थ्यप्रद जलवायु–** भारी वर्षा और उच्च ताप के कारण सघन वनों में अनेक जहरीले कीड़े—मकोड़े और जंगली जानवर पाए जाते हैं, जो इन वनों के शोषण में बाधक हैं।

(vi) **कम माँग–** ये वन माँग के क्षेत्रों अर्थात् औद्योगिक क्षेत्रों से दूर स्थित हैं। माँग के क्षेत्रों तक लकड़ी पहुँचाने में परिवहन —व्यय बहुत अधिक पड़ता हैं। अत: केवल समुद्री तटों और नदियों के किनारे तक ही इनका शोषण सीमित है।

7. मत्स्य संसाधन किसे कहते हैं?

उ०– मनुष्य पकड़ना मनुष्य का परम्परागत उद्यम है। समुद्रों के तटीय भागों तथा जलभागों में मछली पालने तथा पकड़ने की क्रिया को संगठित रूप से मत्स्य उद्योग कहते हैं। मछलियाँ पकड़ना तथा उन्हें विभिन्न कार्यों के लिए उपयोगी बनाना मत्स्य संसाधन कहलाता है।

❖ **विस्तृत उत्तरीय प्रश्न**

1. प्राकृतिक संसाधनों का विस्तृत वर्गीकरण कीजिए।

उ०– **प्राकृतिक संसाधनों का वर्गीकरण–** वे संसाधन जो हमें प्रकृति से उपहार स्वरूप प्राप्त होते हैं, प्राकृतिक संसाधन कहलाते हैं। प्राकृतिक संसाधनों को मुख्य रूप से तीन वर्गों में विभाजित किया जाता है—

(अ) उपयोग की निरन्तरता पर आधारित प्राकृतिक संसाधनों का वर्गीकरण।

(ब) उद्भव पर आधारित प्राकृतिक संसाधनों का वर्गीकरण।

(स) उपयोग के उद्देश्य के आधार पर वर्गीकरण।

(अ) उपयोग की निरन्तरता पर आधारित प्राकृतिक संसाधनों का वर्गीकरण–

(i) **नवीकरण योग्य अथवा असमाप्य संसाधन–** वे संसाधन जिनका दोहन के साथ—साथ नवीकरण या पुन: उत्पादन हो सकता है, उन्हें नवीकरण योग्य या असमाप्य संसाधन कहते हैं। उदाहरणार्थ जब कृषि की जाती है तो खेत से फसल काट लेने के बाद खेत में पुन: कोई फसल बो दी जाए तो खेत का नवीनीकरण हो जाएगा और फसल की पुन: प्राप्ति हो जाएगी।

(ii) **नवीकरण अयोग्य अथवा समाप्य संसाधन–** कुछ संसाधनों के निर्माण की प्रक्रिया बहुत धीमी होती है अत: उनके निर्माण में हजारों वर्ष लग जाते हैं। बहुत तीव्रता साथ इनका दोहन करने पर इनके भण्डार समाप्त हो जाते हैं, अत: इन्हें नवीकरण अयोग्य या समाप्य संसाधन कहते हैं। लोहा, खनिज तेल, प्राकृतिक गैस ऐसे ही संसाधन हैं।

(iii) **चक्रीय संसाधन–** चक्रीय संसाधन वे होते हैं जिनको प्रयोग करने के बाद शुद्ध करके पुन: प्रयोग में लाया जा सकता है। लोहा के कबाड़ को गलाकर पुन: प्रयोग में लाया जा सकता है, अत: हम कह सकते हैं कि लोहा चक्रीय संसाधन का भी उदाहरण है।

(ब) उद्भव पर आधारित प्राकृतिक संसाधनों का वर्गीकरण–

(i) **जैविक अथवा कार्बनिक संसाधन–** 'जैविक संसाधन' पृथ्वी के **जैवमण्डल** से प्राप्त होते हैं। **गिल्सबर्ग** के अनुसार,''जैविक संसाधनों मे जीवन—युक्त प्रकृति प्रदत्त तत्त्वों को लिया जाता है।'' पशु, पक्षी, वन, वनोत्पाद,

फसलें, मत्स्य, समुद्री जीव तथा मनुष्य जैविक संसाधनों के उदाहरण हैं। कोयला और खनिज तेल जीवांश के गलने—सड़ने से बनते हैं, अत: इन्हें भी जैविक श्रेणी के संसाधनों में रखा जाता हैं। कुछ जैविक संसाधन, जैसे— पशु, वन इत्यादि तो **नवीकरण योग्य** होते हैं, परन्तु अन्य कुछ जैविक संसाधनों, जैसे— कोयला और खनिज तेल का नवीकरण सम्भव नहीं होता।

प्राकृतिक संसाधनों का वर्गीकरण

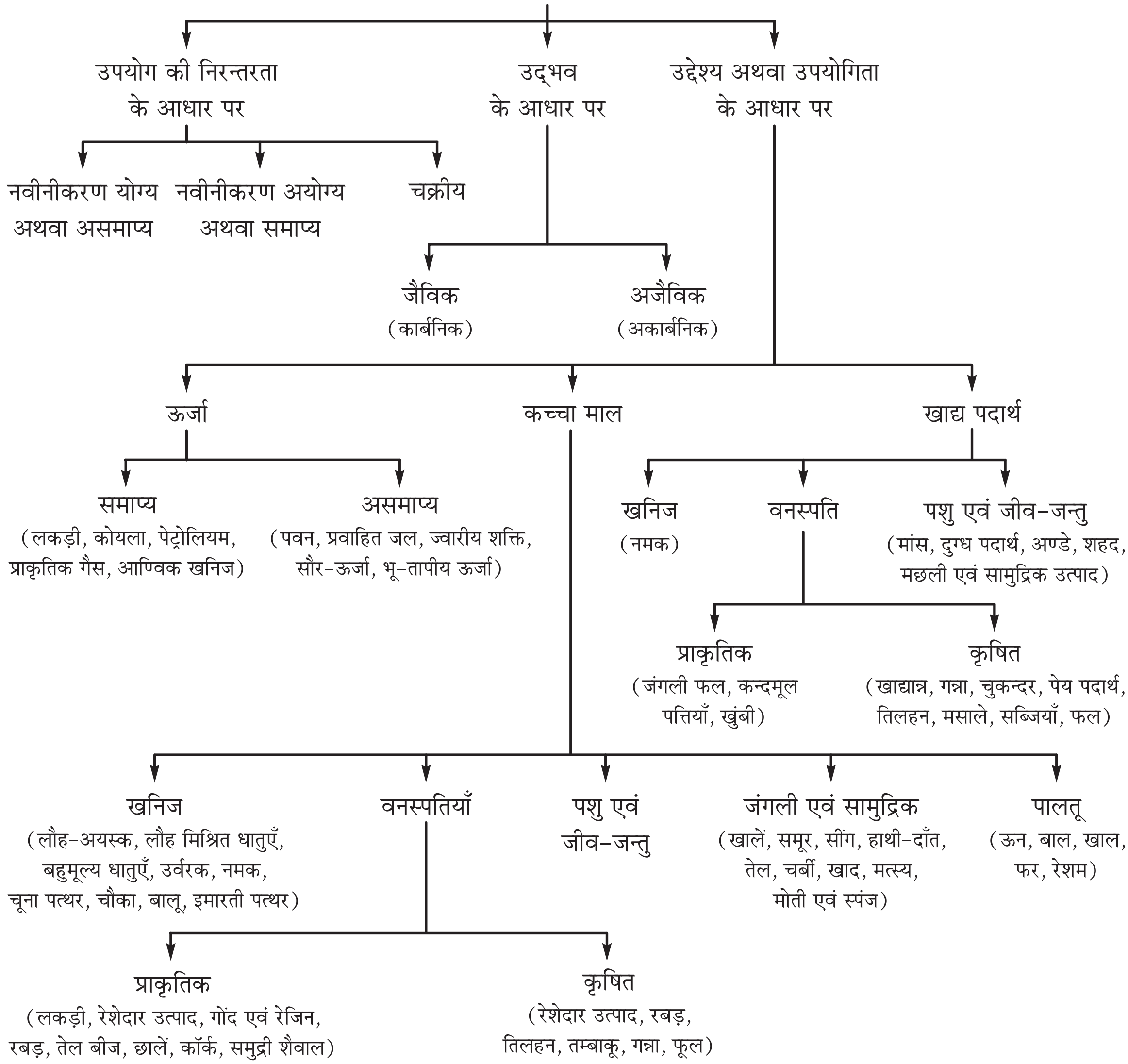

(ii) **अजैविक अथवा अकार्बनिक संसाधन–** सभी निर्जीव संसाधन 'अजैविक संसाधन' कहलाते हैं। धरातल, भूमि, मिट्टी, वायु, वर्षा, चट्टानें, जल, खनिज पदार्थ जैसे— सोना, चाँदी, ताँबा, लोहा इत्यादि अजैविक अथवा अकार्बनिक संसाधनों के उदाहरण हैं। इनमें से कुछ तो **समाप्य** संसाधन होते है जिनका न तो पुनर्जन्म होता है, न प्रतिस्थापन होता है और न ही नवीकरण होता हैं, जैसे— खनिज पदार्थ। अन्य कुछ अजैविक संसाधन **असमाप्य** होते हैं और उनका नवीकरण भी होता रहता हैं, जैसे— वायु, मृदा इत्यादि। इनमें से कुछ संसाधन ऐसे भी हैं जिनका चक्रीय उपयोग सम्भव है, जैसे— भूमि, जल, लोहा इत्यादि। विश्व में अजैविक संसाधनों का वितरण असमान है। उदाहरण के लिए, लोहा तथा ऐलुमिनियम विस्तृत क्षेत्रों में पाए जाते हैं जबकि सोना, चाँदी और आण्विक खनिज सीमित क्षेत्र में पाए जाते हैं।

(स) उपयोग के उद्देश्य के आधार पर वर्गीकरण–

(i) ऊर्जा संसाधन– आज का युग मशीनी युग है। आज लगभग हर क्षेत्र जैसे— कृषि, परिवहन, उद्योग, घरेलू कार्यों आदि में मशीनों का ही प्रयोग होता है। इन मशीनों के क्रियान्वयन हेतु हम जिस माध्यम का प्रयोग करते हैं, उसे ऊर्जा संसाधन कहते हैं। सौर ऊर्जा, जल—विद्युत, परमाणु ऊर्जा आदि ऊर्जा संसाधन के ही उदाहरण हैं।

(ii) कच्चा माल– कच्चे माल की प्राप्ति निम्नलिखित तीन माध्यमों से होती है—

(क) खनिज– खनिजों से हमें चूना—पत्थर, नमक, इमारती पत्थर, कोयला, लौह—अयस्क आदि अनेक प्रकार के रसायन और उर्वरक प्राप्त होते हैं।

(ख) वनस्पति– प्राकृतिक वनस्पति से हमें लकड़ी, रेशेदार उत्पाद, जंगलों से प्राप्त बीज, छाल, कॉर्क, समुद्री शैवाल आदि कच्चे माल मिलते हैं। कृषित वनस्पति से हमें अनेक प्रकार की फसलें, जैसे— कपास, सन, पटसन, रबड़, तिलहन, तम्बाकू, गन्ना, चुकन्दर आदि प्राप्त होती हैं।

(ग) पशु एवं जीव–जन्तु– पालतु पशुओं तथा जंगली जन्तुओं से हमें दूध, खालें, समूर, सींग, हाथी—दाँत, तेल, चर्बी, ऊन, बाल, खाद व रेशम इत्यादि प्राप्त होते हैं। समुद्री जीव—जगत् हमें मत्स्य, स्पंज मोती तथा फंजाई आदि प्रदान करता है।

(iii) खाद्य पदार्थ– खाद्य पदार्थों के प्रमुख स्रोत निम्नांकित हैं—

(क) खनिज– स्वादिष्ट भोजन का महत्त्वपूर्ण तत्त्व नमक हमें खनिज रूप में मिलता है। रसायन के रूप में नमक का अंश अनेक दवाइयों में भी पाया जाता है।

(ख) वनस्पति– प्राकृतिक वनस्पति से हमें फल, कन्दमूल, दूध, शाल व खुंबी इत्यादि भोज्य—पदार्थ प्राप्त होते हैं। इनके अतिरिक्त, मनुष्य ने अपने खाने के लिए अनके खाद्य फसलें, जैसे— गेहूँ, चावल, गन्ना , दालें, तिलहन आदि तथा पेय पदार्थ, जैसे— चाय, कॉफी तथा सब्जियाँ, फल व मसाले पैदा किए हैं।

(ग) पशु एवं जीव–जन्तु– पशुओं व जीव—जन्तुओं से मनुष्य को दूध, मांस, अण्डे, शहद आदि प्राप्त होते हैं। समुद्र से प्राप्त होने वाले खाद्य—पदार्थों में मछली तथा झींगा प्रमुख हैं।

2. विश्व के प्रमुख मत्स्य ग्रहण क्षेत्रों पर प्रकाश डालिए।

उ०– **विश्व के प्रमुख मत्स्य–ग्रहण क्षेत्र–** विश्व के प्रमुख मत्स्य—ग्रहण क्षेत्र उत्तरी गोलार्द्ध के शीतोष्ण कटिबन्ध में पाए जाते हैं। विश्व के प्रमुख रूप में मत्स्य—ग्रहण के चार निम्नलिखित क्षेत्र हैं—

(i) उत्तर–पश्चिमी प्रशान्त महासागरीय क्षेत्र– यह मत्स्य—ग्रहण के लिए विश्व का सबसे बड़ा क्षेत्र है। इस क्षेत्र के अन्तर्गत जापान, रूस, चीन, कोरिया आदि प्रमुख देश आते हैं। इस क्षेत्र से प्रतिवर्ष लगभग एक करोड़ टन मछलियाँ पकड़ी जाती हैं, जिनमें 70 लाख टन अकेले जापान द्वारा पकड़ी जाती हैं।

(ii) उत्तर–पश्चिमी अटलाण्टिक महासागरीय क्षेत्र– यह क्षेत्र न्यूफाउण्डलैण्ड से लेकर संयुक्त राज्य अमेरिका के न्यू—इंग्लैण्ड प्रदेश के तटीय भागों तक फैला है। इस क्षेत्र का ग्राण्ड बैंक मछलियाँ पकड़ने की दृष्टि से सबसे उत्तम क्षेत्र है। यहाँ गहरे पानी में मछलियाँ पकड़ी जाती हैं।

(iii) उत्तर–पूर्वी अटलाण्टिक महासागरीय क्षेत्र– इस क्षेत्र का विस्तार आइसलैण्ड से लेकर भूमध्यसागर पर स्थित जिब्राल्टर तक है। इस क्षेत्र में ब्रिटेन, फ्रांस, नार्वे, स्वीडन, नीदरलैण्ड, डेनमार्क, जर्मनी, आयरलैण्ड तथा बेल्जियम देश आते हैं। इस क्षेत्र के **डॉगर बैंक** और ग्रेट फिशर बैंक मछलियों के विशाल भण्डार हैं। इनमें प्रमुख मछली उत्पादक देश नार्वे तथा ब्रिटेन हैं। विश्व की 65% कॉड मछलियाँ इसी क्षेत्र से पकड़ी जाती हैं।

(iv) उत्तर–पूर्वी प्रशान्त महासागरीय क्षेत्र– यह क्षेत्र संयुक्त राज्य अमेरिका तथा कनाडा के पश्चिमी तट पर अलास्का से कैलीफोर्निया तक फैला हुआ है। पेरु तथा चिली के समुद्रतटीय भाग भी मत्स्य पकड़ने के महत्त्वपूर्ण क्षेत्र हैं।

आधुनिक समय में गहरे महासागरों में तेज गति वाले स्वचालित जलयानों द्वारा मछलियाँ पकड़ी जाती हैं। इन जलयानों पर मछलियों के पकड़ने, उन्हें संचित रखने, संसाधित करने, उनकी डिब्बाबन्दी करने आदि सम्बन्धी सभी प्रकार की सुविधाएँ सुलभ होती हैं। आधुनिक समय में मछलियों का वृहत् पैमाने पर अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार होता है। समुद्रों से प्रति वर्ष विभिन्न किस्मों की लगभग 150 करोड़ टन मछलियाँ पकड़ी जाती हैं। जापान विश्व में मछलियों का सबसे बड़ा उत्पादक देश है। विश्व की लगभग पच्चीस प्रतिशत मछलियाँ अकेले जापान द्वारा पकड़ी जाती हैं। नार्वे, ग्रेट ब्रिटेन, संयुक्त राज्य अमेरिका, रूस, चीन, पेरु मछली पकड़ने वाले अन्य प्रमुख देश हैं।

स्थानीय उपभोग के लिए कुछ मछलियाँ नदियों, झीलों, तालाबों तथा जलाशयों से भी पकड़ी जाती हैं। इन्हें अन्त: स्थलीय मत्स्य—क्षेत्र कहते हैं। इनकी सबसे बड़ी विशेषता सुदूर आन्तरिक महाद्वीपीय क्षेत्रों के निवासियों को मछलियाँ उपलब्ध कराना है। नदियों पर निर्मित बाँधों के पीछे बनाए गए जलाशयों में भी मत्स्य—पालन किया जाता है। इनमें शीघ्रता से बढ़ने

वाली मछलियाँ ही पाली जाती हैं। चीनी व जापानी कृषक धान के खेतों में मछली पालते हैं। जापान में मोतियों के लिए सीप मछली का पालन भी किया जाता है।

3. खनिज संसाधनों की समीक्षा कीजिए।

उ०– **खनिज संसाधन–** सभ्यता एवं संस्कृति के विकास का चरण पाषाण, ताम्र, कांस्य एवं लौहयुगीन संस्कृतियों से होते हुए वर्तमान स्तर तक पहुँचा है। खनिज संसाधनों में लौह—अयस्क वर्तमान युग का सबसे महत्त्वपूर्ण खनिज है। इसका उपयोग निर्माण उद्योगों, परिवहन के साधनों तथा भवन—निर्माण आदि अनेक कार्यों में किया जाता है। इसलिए आधुनिक युग को **लौह एवं इस्पात युग** के नाम से भी पुकारा जाता है।

लौह अयस्क– लौह—अयस्क की गणना आधारभूत खनिज के रूप में की जाती है, क्योंकि इसका उपयोग विभिन्न प्रकार की मशीनों, आवागमन के साधनों तथा कलपुर्जों के निर्माण में किया जाता है।

लौह अयस्क के प्रकार– रासायनिक तत्त्वों के आधार पर लौह अयस्क निम्नलिखित चार प्रकार का होता है—

(i) मैग्नेटाइट– काले रंग की इस धातु में लोहांश की मात्रा 72% से अधिक होती है। आग्नेय या कायान्तरित शैलों से इसकी प्राप्ति होती है। यह सबसे उत्तम प्रकार का लौह अयस्क है।

(ii) हैमेटाइट– लाल एवं सलेटी रंग की इस धातु मे लोहांश की मात्रा 60% से 72% तक होती है। विश्व में इसके भण्डार अवसादी शैलों में पाए जाते हैं एवं सबसे अधिक मात्रा में इसी प्रकार का अयस्क मिलता है तथा इसका व्यापारिक महत्त्व भी सर्वाधिक है।

(iii) लिमोनाइट– पीले अथवा भूरे रंग की इस धातु में लोहांश की मात्रा 40% से 60% तक होती है। इसके जमाव अवसादी शैलों में मिलते हैं। यह संसार में बहुत कम मात्रा में निकाला जाता है।

(iv) सिडेराइट– राख के रंग की इस धातु में लौह अयस्क का अंश 20% से 30% तक अर्थात् सबसे कम होता है। यह लोहे का कार्बोनेट रूप है।

लौह अयस्क का विश्व वितरण– विश्व में लौह अयस्क का वितरण असमान है। लौह अयस्क उत्पादन करने वाले देशों में चीन, ब्राजील, ऑस्ट्रेलिया, भारत, रूस आदि प्रमुख हैं।

संयुक्त राज्य अमेरिका के प्रमुख क्षेत्र सुपीरियर झील प्रदेश, अलबामा राज्य में बर्मिंघम क्षेत्र दक्षिण पूर्वी कैलिफोर्निया, न्यूजर्सी, पेंसिलवानिया आदि प्रमुख क्षेत्र हैं।

चीन में लोहे के प्रमुख क्षेत्र मंचूरिया, पैन्की, शान्टुंग, हांगकांग आदि हैं।

यूरोप में स्वीडन में उत्तम कोटि का लोहा पाया जाता है। यहाँ की प्रमुख खानें किरूना और गैलिवेयर हैं।

फ्रांस में लारेन, नारमण्डी आदि क्षेत्रों में लौह अयस्क प्राप्त होता है।

कनाडा की प्रमुख लौह खानें न्यूफाउण्डलैण्ड, आण्टारियों और ब्रिटिश कोलम्बिया में हैं।

दक्षिण अमेरिका में ब्राजील, चिली, वेनेजुएला, कोलम्बिया में लोहे के भण्डार पाए जाते हैं।

भारत में प्रमुख लौह खानें सिंहभूम, क्योंझर, बोलाई, मयूरगंज क्षेत्रों में विस्तृत हैं।

ऑस्ट्रेलिया में प्रमुख लौह धातु की मुख्य खानें दक्षिण ऑस्ट्रेलिया की मिडिल बैंक श्रेणियों तथा पश्चिम ऑस्ट्रेलिया के कोकाटू और कूंलन में हैं।

ताँबा– ताँबा भूगर्भ में कच्ची धातु के रूप में पाया जाता है। यह अधिकतर आग्नेय व कायान्तरित चट्टानों की परतों से प्राप्त होता है। अयस्क रूप में निकालकर ताँबे का परिशोधन किया जाता है। इसका प्रयोग बिजली के बल्ब, मोटर, घड़ियाँ, इंजन, कम्प्यूटर, रेडियो आदि बनाने में किया जाता है। ताँबा शुद्ध धातु के साथ—साथ यौगिक रूप में भी पाया जाता है।

ताँबे का विश्व वितरण– संयुक्त राज्य अमेरिका में ताँबा मुख्यत: एरिजोना, नेवादा, सोनोरा, ऊटा, मोंटाना राज्यों में पाया जाता है।

कनाडा के ओण्टारियो, क्यूबेंक, मैनीटोबा, सस्केचवान प्रान्त में पाया जाता है।

यूरोप में इण्डोनेशिया, चीन के युंसान, जेचंवान क्षेत्र, भारत के झारखण्ड, राजस्थान आदि क्षेत्र में ताँबा पाया जाता है।

अफ्रीका के प्रमुख उत्पादक क्षेत्र जाम्बिया, दक्षिण अफ्रीका, कांगो आदि हैं।

मैंगनीज– मैंगनीज एक बहुत ही उपयोगी तथा महत्त्वपूर्ण खनिज धातु है। इसका रंग भूरा होता है। इसका मुख्य उपयोग लोहे के साथ मिलाकर इस्पात बनाने के काम में किया जाता है। पॉलिश चढ़ाने, ड्राइ—बैटरी बनाने, चिकनी मिट्टी के बर्तन बनाने आदि में इसका उपयोग किया जाता है।

मैंगनीज का विश्व वितरण– पूर्व सोवियत संघ में जोर्जिया, यूक्रेन, यूरान आदि क्षेत्रों में मैंगनीज पाया जाता है।

भारत के बालाघाट, छिंदवाड़ा, क्योंझर, भण्डारा, नागपुर, सिंहभूम, बेल्लारी आदि प्रमुख क्षेत्र हैं।

अफ्रीका के गैबोन, घाना, मोरक्को, कांगों, जाम्बिया क्षेत्रों में मैंगनीज का उत्पादन किया जाता है।

चीन के प्रमुख मैंगनीज उत्पादक क्षेत्र क्यांग्सी, हुनान, क्वीचाऊ आदि हैं।

आण्विक खनिज– अणु शक्ति की प्राप्ति यूरेनियम, थोरियम खनिजों से होती है। आण्विक खनिज तभी संसाधन बन सके, जब उनके खनन, परिष्करण, विखण्डन आदि की तकनीक विकसित हो सकी।

(i) यूरेनियम– पूर्व सोवियत संघ के यूक्रेन, फरगान आदि क्षेत्र।
ऑस्ट्रेलिया में रूम बार्गल, **कनाडा** में बीवर लोज, **संयुक्त राज्य अमेरिका** के कोलेरेडो पठार, **अफ्रीका** के कांगो, **फ्रांस** में मैसिफ तथा **जापान** में टोगों क्षेत्रों में यूरेनियम पाया जाता है।

(ii) थोरियम– थोरियम का मुख्य स्रोत मोनोजाइट खनिज है, भारत के केरल, मालाबार तट, पूर्व सोवियत संघ के यूराल पर्वतीय क्षेत्र, संयुक्त राज्य अमेरिका के दक्षिण केरोलिना, नाइजीरिया, श्रीलंका, सुमात्रा आदि में थोरियम के निक्षेप पाए जाते हैं।

4. ऊर्जा के वैकल्पिक स्रोतों पर प्रकाश डालिए।

उ०– ऊर्जा के वैकल्पिक स्रोत– जहाँ एक ओर शक्ति के परम्परागत साधनों के भण्डार शीघ्रता से घटते जा रहे हैं। वहीं दूसरी ओर शक्ति की माँग में निरन्तर वृद्धि होती जा रही है। वनों का अधिकाधिक शोषण पर्यावरण प्रदूषण में वृद्धि कर रहा है। कृषि कार्यों में शक्ति की माँग निरन्तर बढ़ती जा रही है। अत: इन सभी तथ्यों पर विचार करते हुए शक्ति के ऐसे स्रोतों को खोजने की आवश्यकता है, जो कभी समाप्त न हों तथा अनवरत रूप में उनमें ऊर्जा प्राप्त होती है। ऐसे ऊर्जा स्रोतों में सौर ऊर्जा या सूर्यातप, पवन, ज्वार—भाटा, और भूतापीय शक्ति महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं, क्योंकि ये सभी सतत संसाधन हैं। जब तक ब्रह्माण्ड में सूर्य एवं पृथ्वी विद्यमान हैं, तब तक इन स्रोतों पर सरलता से निर्भर रहा जा सकता है। इन संसाधनों का विवरण निम्नलिखित है—

(i) सौर ऊर्जा– भूतल पर ऊर्जा का सर्वप्रमुख स्रोत सूर्य है। सूर्यातप के कारण ही धरातल पर जीवन का संचार हुआ है। सौर ऊर्जा का उपयोग विद्युत उत्पादन, घरों को गर्म करने, पानी गर्म करने तथा उद्योगों के संचालन में किया जा रहा है। कृत्रिम उपग्रहों तथा अन्तरिक्ष केन्द्रों के लिए ऊर्जा का एकमात्र स्रोत सौर ऊर्जा ही है। अत: सौर ऊर्जा को और अधिक व्यापक बनाने के लिए नवीन खोजों और अनुसंधानों पर बल दिया जाना चाहिए, जिससे इससे प्राप्त अधिकाधिक ऊर्जा अन्य कार्यों में भी प्रयुक्त की जा सके।

(ii) पवन ऊर्जा– पवन ऊर्जा, शक्ति का एक अक्षय स्रोत है। प्राचीन काल में इस ऊर्जा का उपयोग पालदार नौकाओं के संचालन में किया जाता था, जो समुद्री पवनों की दिशा व गति पर निर्भर करता था। इन नौकाओं का उपयोग व्यापारिक कार्यों के साथ—साथ यात्रियों के आवागमन में भी किया जाता था। अनाज पीसने के लिए मनुष्य पवन चक्कियों का उपयोग बहुत पहले से ही करता आ रहा है। नीदरलैण्ड में विद्युत उत्पादन के लिए पवन चक्कियाँ लगाई जाती हैं। वास्तव में पवन चक्कियाँ पवन के वेग से चलती हैं। अत: पवन ऊर्जा उन्हीं क्षेत्रों में कुशलता से प्राप्त की जा सकती है, जहाँ पवनें सतत रूप से तेजी से चलती रहती हैं। इसी कारण पवन चक्कियों को ऊर्जा के अन्य स्रोतों से सम्बद्ध कर दिया जाता है, जिससे पवन का वेग कम होने पर उन्हें अन्य स्रोतों से शक्ति प्राप्त हो सके।

(iii) ज्वारीय ऊर्जा– समुद्र का जल प्रतिदिन दो बार ऊपर उठता है और दो बार नीचे गिरता है। जल के ऊपर उठने को **ज्वार** और नीचे गिरने को **भाटा** कहा जाता है। ज्वारीय शक्ति, ऊर्जा का एक सम्भावित स्रोत बन सकती है। ज्वारीय ऊर्जा केन्द्रों का विकास उन समुद्री तटों पर किया जा सकता है, जहाँ ज्वार की ऊँचाई अधिक हो। इसके लिए नवीन अनुसन्धानों की आवश्यकता है, जिससे इस जल का उपयोग ऊर्जा प्राप्त करने में किया जा सके।

(iv) भूतापीय ऊर्जा– भूतापीय ऊर्जा प्राप्त करने के लिए भूगर्भ की ऊष्मा का उपयोग किया जा सकता है। इस ऊर्जा शक्ति का विकास ज्वालामुखी क्षेत्रों में ही सम्भव है। क्योंकि यहाँ गर्म जल के सोते, झरने एवं गीजर मिलते हैं। ज्वालामुखी क्षेत्रों में शीतल जल भू—पृष्ठ की दरारों के माध्यम से भूगर्भ में प्रवेश करता रहता है तथा भूगर्भ में तप्त शैलों के सम्पर्क में आकर गर्म हो जाता है। जिससे भूगर्भ में भारी मात्रा में जलवाष्प एकत्र हो जाती है। जब जलवाष्प अधिक मात्रा में एकत्र हो जाती है तो वह भूगर्भ के कमजोर क्षेत्रों से तीव्रता के साथ बाहर निकलती है। इस जलवाष्प को नियन्त्रित कर उसे ऊर्जा के स्थायी स्रोतों में परिणत किया जा सकता है। संयुक्त राज्य अमेरिका, इटली एवं न्यूजीलैण्ड में भूतापीय ऊर्जा पर आधारित विद्युत गृहों का निर्माण किया गया है।

बायोगैस– बायोगैस विभिन्न रूपों में पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध कार्बनिक अपशिष्ट से प्राप्त होने वाला वैकल्पिक ईंधन है। बायोगैस संयन्त्रों से प्राप्त होने वाली गैस में 55 से 65% तक मेथेन, 35 से 40% कार्बन डॉईऑक्साइड तथा अन्य गैसों की कुछ मात्रा होती है। पारिवारिक जरूरत के अनुसार बायोगैस संयन्त्रों को बढ़ावा देने के लिए राष्ट्रीय बायोगैस विकास परियोजना 1981–82 में शुरू की गई थी। इसका उद्देश्य गाँवों मे स्वच्छ तथा सस्ते ऊर्जा स्रोत उपलब्ध कराना, समृद्ध जैविक खाद तैयार करना, सफाई व स्वच्छता की स्थिति सुधारना और स्त्रियों को कड़ी मेहनत से मुक्ति दिलाना है। इस कार्यक्रम के अन्तर्गत के०वी०आई०सी० डिजाइन के, तैरते हुए ड्रम प्रकार के, स्थिर गुम्बद प्रकार के और रबड़युक्त नायलॉन के कपड़े से

बने तथा आसानी से ले जा सकने वाले थैलानुमा डाइजेस्टर किस्म के तीन प्रकार के डिजाइनों वाले बायोगैस संयन्त्र बनाए जा रहे हैं। खाना पकाने, रोशनी करने और उपकरणों को चलाने जैसे कई कार्यों में बायोगैस उत्कृष्ट ईंधन साबित हुई है।

❖ **मानचित्र सम्बन्धी अभ्यास कार्य**

अध्यापक की सहायता से विद्यार्थी स्वयं करें।

❖ **प्रोजेक्ट कार्य**

अध्यापक की सहायता से विद्यार्थी स्वयं करें।

इकाई-2 (ख) : मानवीय संसाधन

39 जनसंख्या- घनत्व एवं वितरण

अभ्यास

❖ **बहुविकल्पीय प्रश्न**

उ०– बहुविकल्पीय प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्य पुस्तक के पृष्ठ संख्या—347 का अवलोकन कीजिए।

❖ **अतिलघु उत्तरीय प्रश्न**

उ०– अतिलघु उत्तरीय प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्य पुस्तक के पृष्ठ संख्या—347 व 348 का अवलोकन कीजिए।

❖ **लघु उत्तरीय प्रश्न**

1. आर.टी. गिल के अनुसार जनसंख्या वृद्धि के लिए क्या कथन था?

उ०– आर.टी.गिल के अनुसार,''वास्तव में जनसंख्या वृद्धि का राष्ट्रीय उत्पादन तथा प्रति व्यक्ति आय पर अन्तिम प्रभाव धनात्मक, ऋणात्मक अथवा तटस्थ होगा। यह इस बात पर निर्भर करेगा कि जनसंख्या वृद्धि का प्रतिरूप क्या है और यह किन दशाओं में हो रहा है।''

2. जनसंख्या घनत्व के वितरण से क्या अभिप्राय है?

उ०– किसी क्षेत्र विशेष के प्रति वर्ग किमी० क्षेत्रफल में निवास करने वाले व्यक्तियों की संख्या को उस क्षेत्र का जनसंख्या घनत्व कहते हैं। सामान्यतया जनसंख्या घनत्व किसी क्षेत्र में निवास करने वाले व्यक्तियों की संख्या को उस क्षेत्र के कुल क्षेत्रफल से विभाजित करके प्राप्त किया जाता है।

$$\text{जनसंख्या का घनत्व} = \frac{\text{कुल जनसंख्या}}{\text{कुल क्षेत्रफल}}$$

इसे जनसंख्या का गणितीय घनत्व भी कहा जाता है। जनसंख्या घनत्व ज्ञात करते समय यह मान लिया जाता है कि भूमि पर जनसंख्या का वितरण समान है। जबकि पर्यावरणीय परिस्थितियों के कारण एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र की जनसंख्या के वास्तविक घनत्व में पर्याप्त अन्तर पाया जाता है। विश्व के जिन क्षेत्रों में पर्यावरणीय स्थितियाँ मानवीय विकास के अनुकूल पाई जाती हैं, वहाँ जनसंख्या का घनत्व अधिक मिलता है। इसके विपरित प्रतिकूल पर्यावरणीय परिस्थितियों वाले क्षेत्रों में मानवीय विकास के अनुकूल दशाएँ न होने के कारण जनसंख्या का घनत्व कम पाया जाता है।

3. विश्व की जनसंख्या के वितरण सम्बन्धी कुछ तथ्य बताइए।

उ०– विश्व की जनसंख्या के वितरण सम्बन्धी कुछ तथ्य निम्नलिखित हैं—

(i) विश्व में जनसंख्या का वितरण अत्यधिक असमान है।
(ii) विश्व की 90% जनसंख्या उत्तरी गोलार्द्ध में रहती है।
(iii) उत्तरी गोलार्द्ध के मध्य अक्षाशों में विश्व की 50% जनसंख्या पाई जाती है।
(iv) महाद्वीपों के सागर तटवर्ती भागों में सघन तथा अन्तर्वत्ती भागों में विरल जनसंख्या पाई जाती है।
(v) विश्व में जनसंख्या का विरल घनत्व, विशाल शुष्क प्रदेश; उच्च अक्षांशीय शीत प्रदेश तथा उष्ण आर्द्र प्रदेशों में पाया जाता है।

❖ **विस्तृत उत्तरीय प्रश्न**

1. जनसंख्या घनत्व को परिभाषित करते हुए इसके वितरण की व्याख्या कीजिए।

उ०– **जनसंख्या का घनत्व–** किसी क्षेत्र विशेष में जितने मानव निवास करते हैं उसे जनसंख्या का घनत्व कहते हैं। अन्य शब्दों में

हम कह सकते हैं कि प्रति वर्ग किमी० क्षेत्रफल में निवास करने वाले व्यक्तियों की संख्या को जनसंख्या का घनत्व कहते हैं। जनसंख्या घनत्व को निम्न सूत्र की सहायता से ज्ञात किया जा सकता है—

$$\text{जनसंख्या का घनत्व} = \frac{\text{कुल जनसंख्या}}{\text{कुल क्षेत्रफल}}$$

इसे जनसंख्या का गणितीय घनत्व भी कहा जाता है। जनसंख्या घनत्व ज्ञात करते समय यह मान लिया जाता है कि भूमि पर जनसंख्या का वितरण समान है। संयुक्त राष्ट्र विश्व जनसंख्या समंक—पत्र के अनुसार 2004 ई० में विश्व में जनसंख्या का औसत घनत्व 48 व्यक्ति प्रति वर्ग किमी० था।

जनसंख्या के घनत्व का वितरण– जनसंख्या के घनत्व की विभिन्नता के आधार पर विश्व को अग्रलिखित तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है—

(i) अधिक जनघनत्व के प्रदेश– इसके अन्तर्गत विश्व के वे भूभाग सम्मिलित किए जाते हैं, जहाँ जनघनत्व 100 व्यक्ति प्रति वर्ग किमी० से अधिक पाया जाता है। इस वर्ग के अन्तर्गत चार प्रदेशों को सम्मिलित किया जाता है—

(क) पूर्वी एशिया– इसके अन्तर्गत चीन, जापान और कोरिया सम्मिलित हैं। चीन और कोरिया में नदियों द्वारा लाई गई जलोढ़ मिट्टी द्वारा निर्मित समतल मैदानों में सघन कृषि के कारण जनघनत्व अधिक पाया जाता है। जापान में तीव्र औद्योगिकरण के फलस्वरूप जनघनत्व अधिक देखने को मिलता है।

(ख) दक्षिणी एशिया– इसके अन्तर्गत भारत, पाकिस्तान और बांग्लादेश सम्मिलित हैं। इन देशों में नदियों की उर्वर घाटियों तथा डेल्टाई प्रदेशों में पर्याप्त मात्रा में खाद्यान्न फसलों— गेहूँ, चावल एवं मोटे अनाज तथा व्यापारिक फसलों— गन्ना, चाय, जूट आदि की सघन खेती की जाती है। फलस्वरूप इन देशों में जनघनत्व भी अधिक पाया जाता है।

(ग) उत्तर–पश्चिमी यूरोप– इसमें ग्रेट ब्रिटेन, फ्रांस, बेल्जियम, नीदरलैण्ड, डेनमार्क और जर्मनी सम्मिलित हैं। इन देशों में अधिक जनघनत्व का प्रमुख कारण तीव्र औद्योगिकरण और नगरीकरण का होना है।

(घ) उत्तर–पूर्वी संयुक्त राज्य अमेरिका– इस प्रदेश का विस्तार अटलाण्टिक तट से लेकर महान झील प्रदेश तक है। तीव्र औद्योगीकरण, नगरीकरण, मत्स्य संग्रहण तथा तीव्र आर्थिक विकास के कारण यहाँ उच्च जनघनत्व पाया जाता है।

(ii) साधारण जनघनत्व के प्रदेश– इन्हें **मध्यम जनघनत्व के प्रदेश** भी कहते हैं। यहाँ जनसंख्या का घनत्व 50 से 100 व्यक्ति प्रति वर्ग किमी० के मध्य पाया जाता है। इस वर्ग में निम्नलिखित प्रदेशों को सम्मिलित किया जा सकता है—

(क) दक्षिण—पूर्वी एशिया, (ख) मध्य तथा दक्षिणी यूरोप, (ग) यूरोपीय रूस, (घ) दक्षिणी अमेरिका के मध्य अक्षांशीय प्रदेशों के तटीय मैदान तथा (ड) दक्षिण अफ्रीका के तटीय मैदान।

साधारण जनघनत्व के इन प्रदेशों में औसत उर्वर भूमि, पशुपालन व्यवसाय, कम औद्योगिक विकास तथा प्राकृतिक पर्यावरण की विषमता देखने को मिलती है, जिस कारण यहाँ मध्यम जनघनत्व पाया जाता है।

(iii) निम्न जनघनत्व के प्रदेश– इन प्रदेशों के अन्तर्गत वे भाग सम्मिलित हैं, जहाँ जनसंख्या का घनत्व 50 व्यक्ति प्रति वर्ग किमी० से भी कम पाया जाता है। विश्व के लगभग 80 प्रतिशत भूभाग पर निम्न जनघनत्व वाले प्रदेशों का विस्तार पाया जाता है। निम्नलिखित क्षेत्र विश्व में कम जनघनत्व वाले हैं—

(क) ध्रुवीय प्रदेश– अर्ण्टाकटिका, ग्रीनलैण्ड, उत्तरी रूस एवं उत्तरी कनाडा के टुण्ड्रा प्रदेश इसके अन्तर्गत सम्मिलित हैं। अत्यधिक शीत तथा वर्षभर हिमाच्छादन के कारण यहाँ बहुत ही विरल जनघनत्व पाया जाता है।

(ख) उच्च पर्वतीय एवं पठारी प्रदेश– हिमालय, रॉकी, एण्डीज तथा मध्य एशिया के उच्च पर्वतीय क्षेत्रों एवं पठारी भाग तथा तिब्बत का पठार इस प्रदेश के अन्तर्गत सम्मिलित हैं। ऊबड़—खाबड़ धरातलीय संरचना तथा जलवायु की विषम परिस्थितियों के कारण यहाँ मानव—बस्तियाँ बसाना बड़ा ही कठिन कार्य है, केवल सुगम क्षेत्रों में ही अल्प जनसंख्या निवास करती है।

(ग) शुष्क एवं उष्ण मरुस्थल– सहारा, कालाहारी, थार, अरब, गोबी, अटाकामा, सिक्यांग तथा पश्चिमी ऑस्ट्रेलिया के शुष्क एवं उष्ण मरुस्थल इसके अन्तर्गत सम्मिलित हैं। खाद्यान्नों के अभाव, पेयजल की कमी तथा जलवायु की विषमता आदि के कारण यहाँ विरल जनसंख्या निवास करती है।

(घ) विषुवतीय प्रदेश– दक्षिणी अमेरिका के अमेजन बेसिन तथा अफ्रीका के कांगों बेसिन में अस्वास्थ्यकर जलवायु, सघन वनस्पति, **टिसीटिसी** विषैली मक्खियों का भय आदि, मानवीय बसाव में बाधक है। अत: इन क्षेत्रों में बहुत कम जनसंख्या निवास करती है।

2. जनसंख्या घनत्व को प्रभावित करने वाले तथ्यों की विवेचना कीजिए।

उ०– **जनसंख्या के घनत्व को प्रभावित करने वाले कारक–** जनसंख्या घनत्व को प्रभावित करने वाले कुछ कारक निम्नलिखित हैं–

(i) **शिक्षा के केन्द्र–** जो स्थान शिक्षा तथा प्रशिक्षण के केन्द्र बन जाते हैं वहाँ भी जनसंख्या का घनत्व अधिक होता है, जैसे– दिल्ली, वाराणसी, मुम्बई आदि शहरों में इस कारण भी जनसंख्या का घनत्व अधिक है।

(ii) **अप्रवास तथा उत्प्रवास–** इनका भी जनसंख्या के घनत्व पर प्रभाव पड़ता है। भारत के विभाजन के समय बहुत से लोग पाकिस्तान से पंजाब तथा दिल्ली में आकर बस गए जिस कारण वहाँ जनसंख्या का घनत्व बढ़ गया।

(iii) **परिवहन तथा संचार की सुविधाएँ–** जिन क्षेत्रों में परिवहन तथा संचार की सुविधाएँ उपलब्ध होती हैं वे व्यापार तथा उद्योग के केन्द्र बन जाते हैं जिस कारण ऐसे क्षेत्रों में जनसंख्या का घनत्व अधिक होता है; जैसे– उत्तर प्रदेश, पश्चिम बंगाल, पंजाब आदि। इसके विपरीत, मिजोरम, जम्मू कश्मीर, अरुणाचल प्रदेश, हिमाचल प्रदेश आदि प्रदेशों में जनसंख्या का घनत्व कम है।

(iv) **शान्ति और सुरक्षा–** उन क्षेत्रों में जनसंख्या का घनत्व अधिक होता है जहाँ जीवन और सम्पत्ति अधिक सुरक्षित होती है। और शान्तिकालीन दशाएँ होती हैं। देश के सीमावर्ती क्षेत्रों में सुरक्षा की कमी के कारण जनसंख्या का घनत्व कम रहता है। इसी कारण नागालैण्ड, नेफा, जम्मू–कश्मीर आदि प्रदेशों में जनसंख्या का घनत्व कम है।

(v) **राजधानी–** जो नगर किसी देश या राज्य की राजधानी होते हैं। वहाँ जनसंख्या का घनत्व प्रायः अधिक होता है क्योंकि वहाँ कार्यालयों, संस्थाओं, व्यापार व वाणिज्य के केन्द्रों आदि की स्थापना हो जाती है; जैसे– दिल्ली, जयपुर, लखनऊ, पटना आदि शहरों में इसी कारण जनसंख्या का घनत्व अधिक है।

(vi) **धार्मिक स्थान–** धार्मिक स्थानों पर जनसंख्या का घनत्व अधिक होता है क्योंकि दूर–दूर से लोग वहाँ पर आते रहते हैं। यात्रियों की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए काफी लोग ऐसे स्थानों में रहने लगते हैं; जैसे– हरिद्वार, वाराणसी, अमृतसर आदि शहरों में इस कारण जनसंख्या का घनत्व अधिक है।

(vii) **व्यापारिक केन्द्र–** जो स्थान व्यापारिक केन्द्र बन जाते हैं वहाँ रोजगार के अवसर अधिक हो जाते हैं जिससे वहाँ जनसंख्या का घनत्व बढ़ जाता है जैसे– कानपुर, मेरठ, आगरा, वाराणसी, लुधियाना आदि शहर व्यापारिक केन्द्र हैं।

(viii) **औद्योगिक विकास–** औद्योगिक दृष्टि से विकसित क्षेत्रों में रोजगार अवसरों के अधिक होने के कारण जनसंख्या का घनत्व अधिक होता है, जैसे– कानपुर, कोलकाता, मुम्बई, अहमदाबाद आदि शहरों में बड़े–बड़े कारखानों की स्थापना होने के कारण जनसंख्या का घनत्व अधिक है।

(ix) **खनिज विकास–** जिन क्षेत्रों में खनिज सम्पत्ति अधिक पाई जाती है वहाँ अधिक लोगों को रोजगार मिल जाता है इस कारण भी झारखण्ड, ओडिशा तथा पश्चिम बंगाल में जनंसख्या का घनत्व अधिक है।

(x) **वन सम्पत्ति–** जिन क्षेत्रों में घने वन पाए जाते हैं वहाँ लोगों के रहने के लिए स्थान की कमी के कारण जनसंख्या का घनत्व कम होता है इसकी कारण असम, मेघालय, हिमाचल प्रदेश आदि में जनसंख्या का घनत्व कम है।

3. विश्व के प्रथम पंद्रह जनसंख्या वाले देशों का विवरण दीजिए।

उ०– **विश्व के प्रथम पंद्रह जनसंख्या वाले देश–** विश्व के प्रथम पंद्रह जनसंख्या वाले देशों की विवरण निम्नवत् है–

राष्ट्र	जनसंख्या	तिथि	विश्व जनसंख्या का प्रतिशत	स्त्रोत
1. चीन	1,34,73,50,000	31.12.2011	19.19%	सरकारी अनुमान
2. भारत	1,21,07,26,932	31.03.2011	17.24%	जनगणना 2011
3. संयुक्त राज्य अमेरिका	31,37,23,000	13.06.2012	4.47%	सरकारी आँकड़े
4. इण्डोनेशिया	23,76,41,326	01.05.2010	3.39%	जनगणना 2010
5. ब्राजील	19,23,76,496	01.07.2011	2.74%	सरकारी अनुमान
6. पाकिस्तान	17,98,18,000	13.06.2012	2.56%	सरकारी आँकड़े
7. नाइजीरिया	16,24,71,000	01.07.2012	2.31%	संयुक्त राष्ट्र अनुमान
8. रूस	14,31,00,000	01.04.2012	2.04%	सरकारी अनुमान
9. बांग्लादेश	14,23,19,000	15.03.2011	2.03%	जनगणना 2011
10. जापान	12,76,10,000	01.05.2012	1.82%	सरकारी अनुमान
11. मैक्सिको	11,23,36,538	12.06.2010	1.6%	जनगणना 2010
12. फिलीपीन्स	9,23,37,852	01.05.2010	1.32%	जनगणना 2010
13. वियतनाम	8,78,40,000	01.07.2011	1.25%	सरकारी अनुमान

14. इथियोपिया	8,43,20,987	01.07.2012	1.2%	सरकारी अनुमान
15. मिस्र	8,22,01,000	13.06.2012	1.17%	सरकारी आँकड़े

4. विश्व जनसंख्या वितरण के प्रतिरूप पर प्रकाश डालिए।

उ०– **विश्व जनसंख्या वितरण के प्रतिरूप–** विश्व की जनसंख्या की सबसे बड़ी कमी उसके वितरण की असमानता है। विश्व जनसंख्या वितरण के प्रमुख प्रतिमान या प्रतिरूप निम्नलिखित हैं—

(अ) अक्षांशों के आधार पर वितरण– सम्पूर्ण विश्व की कुल जनंसख्या का लगभग 90% भाग उत्तरी गोलार्द्ध और शेष 10% भाग दक्षिण गोलार्द्ध में बसा हुआ है। उत्तरी गोलार्द्ध में यदि अक्षांशीय आधार पर जनसंख्या के वितरण को देखा जाए तो वितरण और घनत्व की विषमताएँ स्पष्ट होती हैं। उदाहरणार्थ 0° और 20° उत्तर अक्षांश के मध्य, मूलत: एशिया महाद्वीप में, विश्व की लगभग 10% जनसंख्या का वास है। 20° से 40° उत्तर अक्षांश के मध्य, एशिया में ही विश्व की 50% से अधिक जनसंख्या, 40° से 60° उत्तर अक्षांशों के मध्य मुख्यत: यूरोप में, विश्व की 30% जनसंख्या और 60° से उत्तर अक्षांश से उत्तर में विश्व की मात्र 1% जनसंख्या ही निवास करती हैं।

(ब) भौगोलिक उपयुक्तता अथवा जनघनत्व के आधार पर वितरण– लोग बसाव की दृष्टि से अनुकूल और उपयुक्त स्थानों पर बसना चाहते हैं। किन्तु विश्व में उपयुक्त भू—भाग कम हैं। यही कारण है कि विश्व की आधी जनसंख्या मात्र 5 प्रतिशत से कम भू—भाग पर और शेष आधी 50 से 60 प्रतिशत क्षेत्र में बिखरी हुई है। इस आधार पर विश्व को निम्न **तीन प्रकार के प्रदेशों** में बाँटा जा सकता है—

(i) विरल जनसंख्या वाले प्रदेश– जिन क्षेत्रों में 1 से 2 व्यक्ति प्रति वर्ग किमी० रहते हैं, उन्हें 'विरल या कम जनसंख्या वाले प्रदेश' कहा जाता है। मानव निवास के लिए ऐसे अनुपयुक्त प्रदेश पृथ्वी के धरातल के तीन चौथाई भाग अर्थात 95 करोड़ वर्ग किमी० क्षेत्र को घेरे हुए हैं। इनमें निम्नलिखित चार क्षेत्र शामिल किये जाते हैं—

(क) उष्ण मरुस्थल– सहारा, कालाहारी (अफ्रीका), **अटाकामा** (द० अमेरिका) **पश्चिमी ऑस्ट्रेलिया, अरब** व **थार** (एशिया) तथा सैनोरैन मरुस्थल दुनिया के गर्म मरुस्थल है, जहाँ न्यून वर्षा होने के कारण जल की कमी रहती है। कृषि के अभाव में यहाँ जनसंख्या विरल है।

(ख) अति ठण्डे क्षेत्र– ध्रुवीय व उपध्रुवीय क्षेत्रों में तापमान अत्यन्त कम व फसलों का वर्धनकाल बहुत छोटा होता है। इन क्षेत्रों में **कनाडा** व **साइबेरिया** का उत्तरी भाग तथा **ग्रीनलैण्ड** आते हैं। दक्षिणी ध्रुव के चारों ओर **विस्तृत अंटार्कटिका महाद्वीप** तो पूर्णतया जनविहीन है।

(ग) ठण्डे मरुस्थल व उच्च पर्वतीय प्रदेश– मध्य एशिया के क्षेत्र, **गोबी** व **तकला माकन** मरुस्थल समुद्र के समकारी प्रभाव से दूर महाद्वीप के भीतरी भागों में स्थित क्षेत्र हैं। **वृष्टि–छाया** प्रदेश में स्थित इन क्षेत्रों में वर्षा न्यून व वार्षिक तापान्तर बहुत अधिक होता है। **रॉकीज, एण्डीज, हिमालय** इत्यादि उच्च पर्वतीय प्रदेशों में भी जनसंख्या विरल पाई जाती है।

(घ) विषुवतरेखीय क्षेत्र– इसमें सघन वनों से युक्त दक्षिण अमेरिका का **अमेजन बेसिन** तथा अफ्रीका का **जागर बेसिन** शामिल हैं। यहाँ सारे साल भारी वर्षा व ऊँचे तापमान पाए जाते हैं। जलवायु अस्वास्थकर है तथा वन दुर्गम व आर्थिक रूप से कम उपयोगी हैं।

(ii) सघन जनसंख्या वाले प्रदेश– सघन या अधिक जनसंख्या वाले प्रदेश वे होते हैं, जहाँ 200 से अधिक व्यक्ति प्रतिवर्ग किमी० रहते हैं। इनमें निम्नलिखित **तीन क्षेत्र** शामिल किए जाते हैं—

(क) मानसून एशिया– इसमें दक्षिण—पूर्वी चीन, भारत, इण्डोनेशिया का जावा द्वीप, बांग्लादेश, सिंगापुर व जापान प्रमुख हैं। यह मुख्यत: **नदी घाटियों** व **उपजाऊ मैदानों** का क्षेत्र है, जहाँ अनुकूल **जलवायु** व लम्बे **वर्धनकाल** के कारण वर्ष में चावल की तीन—तीन फसलें उगाई जाती हैं। भूमि की अधिक वहन क्षमता तथा भारत, चीन व जापान में बड़े पैमाने पर हुए **औद्योगीकरण** व **नगरीकरण** के कारण इस प्रदेश में जनसंख्या का भारी जमाव है।

(ख) पश्चिमी यूरोप– पश्चिमी यूरोप में **खनन** और **निर्माण** उद्योगों का विकास हुआ है। यहाँ की उत्तम जलवायु के कारण भी जनसंख्या का अधिक संकेन्द्रण पाया जाता है।

(ग) संयुक्त राज्य अमेरिका तथा कनाडा के पूर्वी भाग– संयुक्त राज्य अमेरिका के उत्तर पूर्वी और कनाडा के दक्षिण पूर्वी तटों पर जनसंख्या का भारी बसाव हुआ है। इसका प्रमुख कारण यह है कि यहाँ उद्योगों, व्यवसाय तथा नगरीकरण की प्रक्रिया तीव्र है। इन तीन प्रमुख सघन जनसंख्या वाले प्रदेशों के अतिरिक्त विश्व में कुछ अन्य छोटे—छोटे सघन जनसंख्या वाले क्षेत्र भी हैं, जैसे— नील नदी की निचली घाटी इत्यादि।

(iii) मध्यम जनसंख्या वाले प्रदेश– मध्यम या साधारण जनसंख्या के प्रदेश वे होते हैं, जहाँ 11 से 50 व्यक्ति प्रतिवर्ग

किमी० में रहते हैं। ये प्रदेश अति न्यून तथा सघन जनसंख्या वाले प्रदेशों के बीच फैले पाए जाते हैं।

(क) एशिया– पश्चिमी चीन, दक्षिणी भारत, कम्बोडिया, थाईलैण्ड व म्यांमार।

(ख) यूरोप– उत्तरी यूरोप में नार्वे, स्वीडन, डेनमार्क, एस्टोनिया, लैट्विया, लिथुआनिया, बाल्टिक गणराजय तथा रूस के उत्तरी–पश्चिमी भाग।

(ग) संयुक्त राज्य अमेरिका– संयुक्त राज्य अमेरिका के पश्चिमी तथा मध्य भागों में जनसंख्या का साधारण घनत्व पाया जाता है।

(घ) दक्षिणी गोलार्द्ध– दक्षिणी गोलार्द्ध के तीनों महाद्वीपों– अफ्रीका, दक्षिण अमेरिका तथा ऑस्ट्रेलिया में जनसंख्या का मध्यम घनत्व पाया जाता है। इनमें अफ्रीका के उत्तरी तटीय भाग, नील नदी के तटीय क्षेत्र, नाइजीरिया, दक्षिण अफ्रीका के कुछ क्षेत्र, उत्तर–पूर्वी ,ब्राजील, वेनेजुएला, मध्यवर्ती चिली सम्मिलित किए जाते हैं। ऑस्ट्रेलिया के तटीय क्षेत्रों तथा **मरे-डार्लिंग बेसिन** में भी जनसंख्या का मध्यम घनत्व पाया जाता है।

(iv) **विकासशील एवं विकसित क्षेत्रों के अनुसार वितरण–** विश्व जनसंख्या का तीन–चौथाई से ऊपर भाग (77 प्रतिशत) विकासशील क्षेत्रों, जैसे– अफ्रीका, लैटिन अमेरिका और एशिया आदि में और शेष एक चौथाई हिस्सा (23 प्रतिशत) विकसित क्षेत्रों जैसे उत्तरी अमेरिका, यूरोप, जापान, ऑस्ट्रेलिया, न्यूजीलैण्ड और पूर्व सोवियत संघ में निवास करता है। एशिया महाद्वीप में विश्व की सर्वाधिक 350 करोड़ जनसंख्या रहती है। इसके बाद अफ्रीका (72.8 करोड़), दक्षिण अमेरिका (31.9 करोड़), उत्तरी अमेरिका (29.3 करोड़) और ओशीनिया आते हैं।
विश्व की कुल जनसंख्या में विकासशील देशों का हिस्सा लगातार बढ़ रहा है। इसका प्रमुख कारण यह है कि इन देशों की जनसंख्या **जनसांखिकीय संक्रमण** की **दूसरी अवस्था** में है और वह वृद्धि के विस्फोटक दौर से गुजर रही है। सन् 1950 में विकासशील देशों का विश्व जनसंख्या में हिस्सा 70 प्रतिशत था जो वर्ष 1996 तक बढ़कर 77 प्रतिशत हो गया था। इसके विपरीत, विकसित देशों का कुल जनसंख्या में अनुपात घट रहा है क्योंकि उनमें से अधिकांश देश जनसंख्या संक्रमण के **अन्तिम चरण** में पहुँच गए हैं। इनकी जनसंख्या की वृद्धि या तो स्थिर हो गई है या फिर घट रही है।

❖ **मानचित्र सम्बन्धी अभ्यास कार्य**

अध्यापक की सहायता से विद्यार्थी स्वयं करें।

❖ **प्रोजेक्ट कार्य**

अध्यापक की सहायता से विद्यार्थी स्वयं करें।

40 बढ़ती जनसंख्या की समस्याएँ
(निरक्षरता, गरीबी, बेरोजगारी, अपराध, खाद्यान्न-आपूर्ति में कमी, कुपोषण, सामान्य परिचय)

अभ्यास

❖ **बहुविकल्पीय प्रश्न**

उ०– बहुविकल्पीय प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्य पुस्तक के पृष्ठ संख्या–351 का अवलोकन कीजिए।

❖ **अतिलघु उत्तरीय प्रश्न**

उ०– अतिलघु उत्तरीय प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्य पुस्तक के पृष्ठ संख्या–351 का अवलोकन कीजिए।

❖ **लघु उत्तरीय प्रश्न**

1. अधिक जनसंख्या की दो हानियाँ बताइए।

उ०– अधिक जनसंख्या की दो हानियाँ–

(i) अधिक जनसंख्या के कारण खाद्यान्नों की कमी हो जाती है, जिससे संतुलित भोजन न मिलने के कारण लोग कुपोषण का शिकार हो जाते हैं।

(ii) अधिक जनसंख्या के कारण आवास और बेरोजगारी का समस्या उत्पन्न हो जाती है।

2. जन्म–दर व मृत्यु–दर में अन्तर बताइए।

उ०– **जन्म–दर व मृत्यु–दर में अन्तर–** किसी क्षेत्र या देश में एक वर्ष में प्रति हजार व्यक्तियों के पीछे जन्म लेने वाले शिशुओं की

संख्या जन्म—दर कहलाती है जबकि उसी क्षेत्र में एक वर्ष में मरने वाले व्यक्तियों की संख्या मृत्यु—दर कहलाती है।

3. अप्रवास और उत्प्रवास में अन्तर बताइए।

उ०– अप्रवास और उत्प्रवास में अन्तर– जब किसी देश में लोग बाहर से आकर बसने लगते हैं तो इसे अप्रवास कहते हैं, जैसे— बांग्लादेश से लोगों का भारत में बस जाना। अप्रवास से देश की जनसंख्या में वृद्धि होती है, जबकि किसी देश से लोगों का बाहर जाकर अन्य देश में बस जाना उत्प्रवास कहलाता है, जैसे— भारत में हजारों लोगों का संयुक्त राज्य अमेरिका में बस जाना। उत्प्रवास से देश की जनसंख्या में कमी होती है।

❖ **विस्तृत उत्तरीय प्रश्न**

1. जनसंख्या सम्बन्धी प्रमुख अवधारणाएँ स्पष्ट कीजिए।

उ०– विश्व के अनेक भागों में जनसंख्या बहुत ही तीव्र गति से बढ़ती जा रही है, जबकि कुछ अन्य भागों में यह वृद्धि अत्यन्त मद या स्थिर हो गई है। ये सभी दशाएँ जनसंख्या की अनेक समस्याओं को जन्म देती हैं। विकसित देशों में जहाँ जनसंख्या वृद्धि की दर मन्द होती जा रही है, जनसंख्या में वृद्ध व्यक्तियों (आश्रितों) का अनुपात बढ़ता जा रहा है। इन वृद्ध व्यक्तियों की विभिन्न आवश्यकताओं को पूर्ण करने तथा स्वास्थ्य सम्बन्धी अन्य सुविधाएँ जुटाने पर वित्तीय अभाव की समस्याएँ बढ़ती जा रही हैं। कार्यशील जनसंख्या का अनुपात घटता जा रहा है। अत: इन देशों में अनेक उद्योगों को श्रम—शक्ति के अभाव का सामना करना पड़ रहा है।

जनसंख्या सम्बन्धी प्रमुख अवधारणाएँ– जनसंख्या सम्बन्धी कुछ प्रमुख अवधारणाएँ निम्नवत् हैं—

(i) जन्म–दर– किसी क्षेत्र या देश में एक वर्ष में प्रति हजार व्यक्तियों के पीछे जन्म लेने वाले शिशुओं की संख्या 'जन्म—दर' कहलाती है।

(ii) मृत्यु दर– किसी क्षेत्र या देश में एक वर्ष में प्रति हजार व्यक्तियों के पीछे जितने व्यक्तियों की मृत्यु होती है, वह 'मृत्यु—दर' कहलाती है।

(iii) वृद्धि दर– किसी क्षेत्र या देश में एक निश्चित अवधि में जन्म दर और मृत्यु दर में जो अन्तर होता है, उसे 'वृद्धि—दर' कहा जाता है। वृद्धि दर को प्रतिशत में व्यक्त किया जाता है। उदाहरणार्थ, किसी देश में जन्म–दर 30 और मृत्यु–दर 20 है तो वहाँ पर वृद्धि दर 20 व्यक्ति प्रति हजार होगी। इसे प्रतिशत के रूप में 2% वार्षिक कहा जाएगा।

(iv) अप्रवास– जब किसी देश में लोग बाहर से आकर बसने लगते हैं तो इसे 'अप्रवास' कहा जाता है, जैसे— बांग्लादेश से लाखों लोगों का आकर भारत में बस जाना। अप्रवास से देश की जनसंख्या में वृद्धि हो जाती है।

(v) उत्प्रवास– किसी देश से लोगों का बाहर जाकर किसी अन्य देश में जाकर बस जाने को 'उत्प्रवास' कहते हैं, जैसे— भारत से हजारों लोगों का संयुक्त राज्य अमेरिका में बस जाना।

(vi) साक्षरता– भारत में साक्षर या शिक्षित व्यक्ति 7 वर्ष से अधिक आयु वाले उस व्यक्ति को कहते हैं, जो किसी भी भाषा को पढ़ तथा लिख सकता है।

(vii) स्त्री–पुरुष अनुपात या लिंगानुपात– स्त्री—पुरुष अनुपात की गणना 1000 पुरुषों के आधार पर की जाती है। इसका अर्थ यह है कि एक हजार पुरुषों के पीछे कितनी स्त्रियाँ हैं।

(viii) जीवन की अवधि– 'जीवन की अवधि' से अभिप्राय किसी देश के निवासियों की औसत आयु से है।

2. जनसंख्या वृद्धि के कारण उत्पन्न होने वाली समस्याओं पर प्रकाश डालिए।

उ०– जनसंख्या वृद्धि के कारण उत्पन्न समस्याएँ– बढ़ती हुई जनसंख्या के कारण अनेकों समस्याएँ उत्पन्न होती हैं। संसाधनों की अपेक्षा जनसंख्या अधिक होने पर निरक्षरता, गरीबी, खाद्यान्न आपूर्ति में कमी, कुपोषण जैसी अनेकों विषम समस्याएँ उत्पन्न हो जाती हैं। कुछ प्रमुख समस्याओं का विवरण निम्नवत् है—

(i) निरक्षरता– किसी भी राष्ट्र के सामाजिक आर्थिक विकास के लिए निरक्षरता को एक अभिशाप के रूप में निरूपित किया जाता है। साक्षरता का सामाजिक एवं आर्थिक विकास पर विशेष प्रभाव पड़ता है और सामाजिक एवं आर्थिक विकास द्वारा ही राष्ट्रीय विकास का स्वरूप निर्धारित होता है। किसी राष्ट्र के साक्षरता प्रतिशत से ही वहाँ के सामाजिक व आर्थिक स्तर का निर्धारण होता है।

''साक्षरता दर कुल जनसंख्या में उस प्रतिशत को प्रदर्शित करती है। जिसमें 15 वर्ष और उससे अधिक आयु के व्यक्ति अपने दैनिक जीवन में छोटे एवं सरल कथन को समझ कर पढ़ एवं लिख सकते हैं।''

जनगणना की दृष्टि से वही व्यक्ति साक्षर माना जाता है, जो किसी भाषा को पढ़, लिख एवं समझ सकता हो।

(ii) गरीबी– विकासशील देशों में जनसंख्या की तीव्र वृद्धि तथा आय एवं जीवन—स्तर की गिरावट से आर्थिक विकास में अवरोध उत्पन्न हुआ है, जिसके परिणामस्वरूप गरीबी में वृद्धि हो रही है। जनसंख्या वृद्धि के कारण संसाधनों का बँटवारा होता है, जिससे व्यक्ति और गरीब होता जाता है और गरीबी रेखा के स्तर में वृद्धि होती जाती है।

(iii) खाद्यान्न–आपूर्ति की कमी– जनसंख्या में जिस तीव्र गति से वृद्धि हो रही है, खाद्यान्नों का उत्पादन उस गति से नहीं हो रहा है यही कारण है कि विश्व के अनेक भागों में खाद्यान्न संकट उत्पन्न हो गया है। सन् 1950 में विश्व का खाद्यान्न उत्पादन 62.4 करोड़ मीट्रिक टन था। जो 1999 में बढ़कर 204.64 करोड़ मीट्रिक टन हो गया है। इस प्रकार विश्व में प्रति व्यक्ति खाद्यान्न उपलब्धि 340 किग्रा प्रति व्यक्ति है। यद्यपि विश्व में खाद्यान्नों की उपलब्धि दर, जनसंख्या वृद्धि दर से अधिक रही है, परन्तु आज लगभग एक करोड़ व्यक्ति चिन्ताजनक कुपोषण से पीड़ित हैं। सामान्य रूप से एक व्यक्ति के समुचित विकास के लिए कम से कम 2,300 कैलोरी भोजन की आवश्यकता होती है परन्तु उसका 80 प्रतिशत से भी कम भाग ही उन्हें प्राप्त हो पा रहा है। अफ्रीकी देशों में खाद्यान्नों की कमी विकराल रूप धारण करती जा रही है। यहाँ प्रति व्यक्ति खाद्यान्नों का उपयोग मात्र 180 किग्रा ही है।

एशिया, अफ्रीका और लैटिन अमेरिका महाद्वीपों के लगभग 100 देश खाद्यान्नों का आयात करते हैं। इस निर्भरता को कम किया जाना अति आवश्यक है। विगत कुछ वर्षों से रूस भी खाद्यान्नों के अभाव से ग्रस्त है। चीन, भारत और यूरोपीय देश खाद्यान्नों के उत्पादन में आत्मनिर्भर हैं परन्तु सूखा, बाढ़ एवं अन्य प्राकृतिक आपदाओं के कारण इन देशों में भी कभी–कभी खाद्यान्न अभाव की स्थिति आ जाती है।

(iv) कुपोषण– प्रत्येक व्यक्ति को स्वस्थ रहने के लिए 2100–2400 कैलोरी भोजन की आवश्यकता होती है। खाद्य व कृषि संगठन (F.A.O.) के अनुसार सामान्य रूप से प्रति व्यक्ति की दैनिक खाद्यान्न उपलब्धि 440 ग्राम होनी चाहिए। परन्तु तीव्र गति से बढ़ती जनसंख्या के कारण संतुलित भोजन की कमी होती जा रही है। जिससे वे कुपोषण एवं शारीरिक प्रतिरोधक क्षमता कम हो जाने के कारण अनेक प्रकार की बीमारियों, शारीरिक एवं मानसिक अपंगता के शिकार हो जाते हैं इससे जन्म–दर एवं मृत्यु–दर भी प्रभावित हो रही है। कुपोषण का प्रभाव मानव की कार्यक्षमता पर भी पड़ता है जो राष्ट्रीय उत्पादकता को कम कर देती है। जिन क्षेत्रों में गरीबी है या निम्न जीवन स्तर पाया जाता है, वहाँ बीमारियों के कारण अकाल मृत्यु हो जाती है। सार्वजनिक स्वास्थ्य पर राष्ट्रीय आय का बहुत ही कम भाग व्यय किया जाता है।

(v) बेरोजगारी– जनसंख्या वृद्धि के कारण बेरोजगारी में वृद्धि हो रही है। इसका कारण यह है कि देश में पूँजीगत साधनों की कमी के कारण सभी को रोजगार उपलब्ध नहीं हो सकता है।

इनके अतिरिक्त भी निम्न समस्याएँ जनसंख्या वृद्धि के कारण उत्पन्न होती हैं—

(क) बेरोजगारी के कारण लोग अपराधों की ओर अग्रसर होते हैं और अपराधों में वृद्धि होती है।

(ख) जनसंख्या वृद्धि के कारण आवास की समस्या उत्पन्न होती है।

(ग) जनसंख्या वृद्धि के कारण महँगाई भी बढ़ती है क्योंकि जनसंख्या वृद्धि के कारण वस्तुओं की माँग बढ़ती है, जबकि उत्पादन का स्तर नहीं बढ़ पा रहा है।

(घ) जनसंख्या वृद्धि के कारण कृषि में भी कमी हो रही है क्योंकि भूमि का आवंटन बढ़ जाने के कारण कृषि योग्य भूमि कम होती जा रही है।

संक्षेप में यह कहना गलत न होगा कि यदि जनसंख्या वृद्धि की रफ्तार को शीघ्र ही न रोका गया तो यह एक ऐसा विस्फोट करेगी कि सब कुछ समाप्त हो जाएगा।

❖ **मानचित्र सम्बन्धी अभ्यास कार्य**

अध्यापक की सहायता से विद्यार्थी स्वयं करें

❖ **प्रोजेक्ट कार्य**

अध्यापक की सहायता से विद्यार्थी स्वयं करें।

41 जनसंख्या नियन्त्रण की आवश्यकता एवं अपनाए गए उपाय

अभ्यास

❖ **बहुविकल्पीय प्रश्न**

उ०– बहुविकल्पीय प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्य पुस्तक के पृष्ठ संख्या—355 का अवलोकन कीजिए।

❖ **अतिलघु उत्तरीय प्रश्न**

उ०– अतिलघु उत्तरीय प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्य पुस्तक के पृष्ठ संख्या—355 व 356 का अवलोकन कीजिए।

❖ लघु उत्तरीय प्रश्न

1. जनसंख्या वृद्धि से आपका क्या अभिप्राय है?

उ०– दिन–प्रतिदिन जन्म लेने वाले शिशुओं की संख्या तथा मृतक व्यक्तियों की संख्या के अन्तर को जनसंख्या वृद्धि कहते हैं। दूसरे शब्दों में किसी क्षेत्र या देश में एक निश्चित समय में जन्म–दर और मृत्यु–दर के अन्तर को उस क्षेत्र या देश की जनसंख्या में वृद्धि कहलाती है। उदाहरण–किसी देश में एक दिन में जन्म लेने वाले शिशुओं की संख्या 1500 तथा मृतक व्यक्तियों की संख्या 1000 है, तो उस देश में प्रतिदिन 500 की संख्या में वृद्धि होती है।

2. एच.डी. एल्डरिज के अनुसार जनसंख्या नीति का अर्थ बताइए।

उ०– **एच.डी. एल्डरिज** के अनुसार,''जनसंख्या नीति से अभिप्राय उन कानूनी प्रशासनिक कार्यक्रमों तथा अन्य सरकारी प्रयत्नों से है जिनका उद्देश्य जनसंख्या की प्रवृति तथा संरचना में राष्ट्रीय कल्याण के दृष्टिकोण से परिवर्तन करना है।''

3. सन 2000 की नई राष्ट्रीय जनसंख्या नीति क्या थी?

उ०– **सन् 2000 की नई राष्ट्रीय जनसंख्या नीति–** भारत सरकार ने 15 फरवरी, 2000 को नई राष्ट्रीय जनसंख्या नीति की घोषणा की। इस नीति के अनुसार, ''सरकार जनता द्वारा स्वेच्छा तथा बिना किसी जोर जबरदस्ती के प्रजनन तथा स्वास्थ्य रक्षा सेवाओं के प्रयोग के लिए तथा लक्ष्य मुक्त परिवार नियोजन सेवाओं को लागू करने के लिए वचनबद्ध है।''

उद्देश्य– नई राष्ट्रीय नीति के मुख्य उद्देश्य निम्नलिखित हैं–

(i) **तत्कालीन उद्देश्य–** नई नीति का तत्कालीन उद्देश्य गर्भ निरोधक साधनों की माँग को पूरा करना, स्वास्थ्य रक्षा तथा स्वास्थ्य कर्मियों की व्यवस्था करना है। इस नीति का लक्ष्य प्रजनन तथा बाल स्वास्थ्य रक्षा के लिए समन्वित जनन सेवा प्रदान करना है।

(ii) **मध्यकालीन उद्देश्य–** नई नीति का मध्यकालीन उद्देश्य अन्तर–क्षेत्रीय कार्यविधि का मजबूती से पालन करके सन् 2010 तक कुल प्रजनन दर को, जनसंख्या को स्थिर रखने की दर के बराबर करना है।

(iii) **दीर्घकालीन उद्देश्य–** इस नीति का दीर्घकालीन उद्देश्य सन् 2045 तक देश की स्थिर रहने योग्य विकास–दर, सामाजिक विकास तथा पर्यावरण संरक्षण के अनुरूप स्थित जनसंख्या के लक्ष्य को प्राप्त करना है। सन् 2045 तक जनसंख्या की वृद्धि–दर को शून्य करने का लक्ष्य तय किया गया है।

❖ विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

1. जनसंख्या नियन्त्रण की आवश्यकता स्पष्ट कीजिए।

उ०– **जनसंख्या नियन्त्रण की आवश्यकता–** सम्पूर्ण विश्व में उत्पन्न होने वाली समस्याओं का यदि अवलोकन किया जाए तो लगभग प्रत्येक समस्या का आधार जनसंख्या वृद्धि ही होगा। यही कारण है कि बढ़ती जनसंख्या को नियन्त्रित करने की बहुत आवश्यकता है। भारत के सन्दर्भ में आज जनसंख्या की समस्या सबसे जटिल है। यह समस्या मात्र भारत की नहीं वरन् एशिया के अधिकांश या समस्त विकासशील देशों की है। निम्न समस्याओं से बचने के लिए जनसंख्या नियन्त्रण की आवश्यकता है–

(i) **बेरोजगारी में वृद्धि–** भारत में जनसंख्या में तीव्र वृद्धि के कारण बेरोजगारों की संख्या निरन्तर बढ़ती गई है क्योंकि देश में पूँजीगत साधनों की कमी के कारण सभी को रोजगार नहीं दिलाया जा सका है। परिणामत: देश में शिक्षित बेरोजगारी, अदृश्य बेरोजगारी तथा अल्प–बेरोजगारी बड़े स्तर पर पाई जाती हैं, अत: जनसंख्या वृद्धि पर नियन्त्रण आवश्यक है।

(ii) **खाद्य समस्या–** स्वतन्त्रता–प्राप्ति के बाद भारत को अनेक बार विदेशों से करोड़ों रुपए के अनाज का आयात करना पड़ा है। इसके अतिरिक्त, जनसंख्या के निरन्तर बढ़ने के कारण प्रति व्यक्ति खाद्यान्न की उपलब्धि कम हुई है। इसका जनता के स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है, जिस कारण उसकी कार्यकुशलता में कमी आई है। अत: जनसंख्या वृद्धि पर नियन्त्रण की आवश्यकता है।

(iii) **कुपोषण–** प्रत्येक सामान्य व्यक्ति को स्वस्थ रहने के लिए 2100–2400 कैलोरी भोजन की आवश्यकता होती है। खाद्य तथा कृषि संगठन (F.A.O.) के अनुसार सामान्य रूप से प्रत्येक व्यक्ति को दैनिक खाद्यान्न की प्राप्ति 440 ग्राम होनी चाहिए। किन्तु गत वर्षों में भारत की जनसंख्या में तीव्र गति से वृद्धि होने के कारण देश में सन्तुलित भोजन की निरन्तर कमी होती जा रही है। इसके फलस्वरूप कुपोषण के कारण देश को निम्न समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है–

(क) कुपोषण के कारण लोगों की शारीरिक प्रतिरोधक क्षमता कम हो जाने के कारण लोग विभिन्न बीमारियों तथा शारीरिक व मानसिक अपंगता के शिकार होते जा रहे हैं।

(ख) कुपोषण लोगों की कार्यक्षमता को प्रतिकूल ढंग से प्रभावित करता है।

(ग) कुपोषण का राष्ट्रीय उत्पादकता, राष्ट्रीय आय तथा प्रति व्यक्ति आय पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है अत: जनसंख्या वृद्धि पर नियन्त्रण जरूरी है।

(iv) प्रति व्यक्ति निम्न आय– पंचवर्षीय योजनाओं के अन्तर्गत देश की राष्ट्रीय आय में निरन्तर वृद्धि हुई है किन्तु बढ़ती हुई जनसंख्या आय—वृद्धि को निगलती रही है जिस कारण देश में प्रति व्यक्ति आय का स्तर अत्यन्त निम्न है। आज भी भारत में प्रति व्यक्ति आय विश्व के लगभग 100 राष्ट्रों की प्रति व्यक्ति आय से कम है अत: जनसंख्या वृद्धि पर नियन्त्रण आवश्यक है।

(v) निर्धनता में वृद्धि– भारत की लगभग 23 करोड़ जनसंख्या गरीबी की रेखा से नीचे का जीवन व्यतीत कर रही है। आर्थिक नियोजन के 63 वर्ष पूर्ण होने के बाद भी भारतीय अर्थव्यवस्था निर्धनता के दुष्चक्र में फँसी हुई है। **मार्च 2012** में योजना आयोग द्वारा जारी किए गए निर्धनता सम्बन्धी नवीनतम आँकड़ों के अनुसार वर्ष 2011–12 में (तेन्दुलकर समिति के अनुसार) देश में कुल 21.9% (कुल 26.93 करोड़) लोग निर्धनता—रेखा से नीचे रह रहे थे। ग्रामीण क्षेत्रों में निर्धनता अनुपात 25.7% (21.65 करोड़) तथा शहरी क्षेत्रों में 13.7% (5.28 करोड़) था। अत: जनसंख्या वृद्धि पर नियन्त्रण आवश्यक है।

(vi) मकानों की समस्या– जनसंख्या में तेजी से वृद्धि के कारण भारत में मकानों की समस्या गम्भीर रूप धारण करती जा रही है। अत: जनसंख्या वृद्धि पर नियन्त्रण आवश्यक है।

(vii) कीमतों में तीव्र वृद्धि– जनसंख्या में तेजी से हो रही वृद्धि के कारण वस्तुओं की माँग भी लगातार बढ़ती जा रही है किन्तु उत्पादन में उस गति से वृद्धि नहीं हो पाई है। परिणामस्वरूप कीमत स्तर में बड़ी तेजी से वृद्धि हुई है, जिससे सामान्य जनता को अनेक कष्ट उठाने पड़ रहे हैं। अत: जनसंख्या वृद्धि पर नियन्त्रण आवश्यक है।

(viii) कृषि विकास में बाधा– जनसंख्या में तीव्र वृद्धि के कारण भूमि पर जनसंख्या का भार बढ़ता जा रहा है। परिवार के सदस्यों में वृद्धि से भूमि का उप—विभाजन तथा विखण्डन बढ़ता गया है, जिससे खेतों का आकार छोटा तथा अनार्थिक होता जा रहा है। फिर देश में भूमिहीन किसानों की संख्या बढ़ रही है। साथ ही कृषि में छिपी हुई बेरोजगारी की समस्या प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। अत: जनसंख्या वृद्धि पर नियन्त्रण आवश्यक है।

(ix) बचत तथा पूँजी निर्माण में कमी– जनसंख्या में तीव्र वृद्धि के कारण आश्रितों की संख्या बढ़ती जा रही है। भारत की जनसंख्या में 36 प्रतिशत बच्चे हैं जिनकी आयु 14 वर्ष तक है। कार्यशील जनसंख्या (कमाने वाले लोग) को अपनी आय का एक बड़ा भाग बच्चों के पालन—पोषण पर खर्च करना पड़ता है। इससे बचत घटती है, जिसका पूँजी—निर्माण पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है, पूँजी की कमी के कारण विकास—योजनाओं को पूर्ण करने में कठिनाई आती है। अत: जनसंख्या वृद्धि पर नियन्त्रण आवश्यक है।

(x) जनोपयोगी सेवाओं पर अधिक व्यय– जनसंख्या में तीव्र वृद्धि के कारण सरकार को बिजली, परिवहन, चिकित्सा, शिक्षा, जल—आपूर्ति, भवन—निर्माण आदि जनोपयोगी सेवाओं पर लगातार अधिक धनराशि व्यय करनी पड़ती है। अत: जनसंख्या वृद्धि पर नियन्त्रण आवश्यक है।

(xi) अपराधों में वृद्धि– बेरोजगार लोग अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए गलत तरीके अपनाने लगते हैं। इससे देश में चोरी, डकैती, अपहरण, राहजनी, हत्या आदि अपराधों में वृद्धि हुई है। सरकार को समाज में कानून तथा व्यवस्था बनाए रखने के लिए सुरक्षा पर अधिक धनराशि व्यय करनी पड़ती है। अत: जनसंख्या वृद्धि पर नियन्त्रण आवश्यक है।

(xii) शहरी समस्याओं में वृद्धि– जनसंख्या में तीव्र वृद्धि के कारण लोग रोजगार पाने के लिए गाँवों को छोड़कर शहरों में आ रहे हैं जिससे शहरों की जनसंख्या में तेजी से वृद्धि हुई है। इससे शहरों में भीड़—भाड़, मकानों की कमी, गन्दगी व प्रदूषण, वेश्यावृत्ति, नैतिक पतन आदि समस्याएँ तथा बुराइयाँ बढ़ती जा रही हैं। अत: जनसंख्या वृद्धि पर नियन्त्रण आवश्यक है।

2. जनसंख्या नियन्त्रण के उपायों पर प्रकाश डालिए।

उ०– जनसंख्या वृद्धि नियन्त्रण के उपाय– जनसंख्या वृद्धि के नियन्त्रण के लिए निम्नलिखित उपायों का अपनाना लाभकारी होगा—

(i) एक विवाह की अनिवार्यता– भारत एक धर्म—निरपेक्ष राष्ट्र है। इस दशा में विवाह सम्बन्धी कानून सभी धार्मिक समुदायों के लिए समान होने आवश्यक है। समुदायों में आज भी बहु विवाह का प्रचलन है। इससे परिवार में अधिक सन्तानों के जन्म को प्रोत्साहन मिलता है। पूरे प्रदेश में एक विवाह का सार्वभौमिक कानून बनाकर तथा चीन की भाँति एक दम्पत्ति को एक बच्चा की योजना को अपनाकर परिवार के आकार को सीमित रखा जा सकता है।

(ii) स्वयंसेवी संगठनों को सहायता– जनता में छोटे परिवार के लाभों का प्रचार करके तथा उन्हें परिवार नियोजन के साधनों को अपनाने का प्रोत्साहन देने में सरकारी कार्यकर्त्ताओं की तुलना में स्वयंसेवी संगठन बहुत उपयोगी भूमिका निभा सकते

हैं। इन संगठनों को आर्थिक सहायता देकर अनुकूल परिणाम प्राप्त किए जा सकते हैं।

(iii) अप्रवास पर नियन्त्रण– भारत में स्वतन्त्रता के बाद बहुत बड़ी संख्या में नेपाल, तिब्बत, बांग्लादेश, पाकिस्तान आदि देशों के लोगों ने अवैध रूप से यहाँ प्रवेश किया है। इससे भी अनेक क्षेत्रों में जनसंख्या का सन्तुलन बिगड़ने लगा। वर्तमान में एक ऐसी राष्ट्रीय नीति की आवश्यकता है, जिससे बाहर से आने वाले विस्थापित यहाँ स्थायी रूप से न बस सकें।

(iv) निरोधात्मक उपाय– जनसंख्या–वृद्धि को रोकने के लिए ऐसे उपाय भी जरूरी हैं, जिनसे अधिक बच्चों के जन्म को लोग हानिकारक समझने लगें। उदाहरण के लिए– उन व्यक्तियों को कम ब्याज वाले ऋण अथवा आर्थिक सहायता न दी जाए, जो जनसंख्या–नीति का उल्लंघन करते हों।

जनसंख्या वृद्धि विश्व के समक्ष एक विशाल समस्या के रूप में उपस्थित है, जिस पर नियंत्रण स्वास्थ्य एवं समृद्धि की दृष्टि से आवश्यक है। इसके लिए व्यापक जनसंख्या नीति को अपनाने की आवश्यकता है। यह कार्य अन्तर्राष्ट्रीय नियन्त्रण, संसाधन संरक्षण, प्रदूषण नियन्त्रण, पारिस्थितिक संतुलन स्थापित करने से ही हो सकता है।

किसी राष्ट्र के लिए वहाँ के लोग बहुमूल्य संसाधन होते हैं। एक शिक्षित एवं स्वस्थ्य जनसंख्या ही स्वस्थ्य विकासशील एवं समृद्ध समाज की स्थापना कर सकती है।

(v) शिक्षा का प्रसार– विभिन्न समाजों के अध्ययन से स्पष्ट हुआ है कि जिन समाजों में शिक्षा का स्तर जितना ऊँचा है, वहाँ जन्म–दर उतनी ही कम है। भारत में भी निरक्षर और अशिक्षित व्यक्तियों की तुलना में शिक्षित व्यक्तियों में जन्म–दर कम है। इस दृष्टिकोण से यह आवश्यक है कि सभी समुदायों में शिक्षा का अधिक से अधिक प्रसार किया जाए। यह व्यक्ति की जागरूकता को बढ़ाकर समस्या के समाधान में सहायक हो सकती है।

(vi) विवाह की आयु में वृद्धि– आज कानून के द्वारा लड़कों और लड़कियों के विवाह की न्यूनतम आयु क्रमश: 21 वर्ष तथा 18 वर्ष निर्धारित कर दी गई है, लेकिन जनसंख्या के एक बड़े भाग में बाल–विवाह का प्रचलन अभी भी बना हुआ है। जन्म दर में कमी करने के लिए बाल विवाहों पर कठोर प्रतिबन्ध लगाने के साथ–साथ न्यूनतम आयु–सीमा को भी कम–से–कम पाँच वर्ष और बढ़ाया जाना चाहिए।

(vii) परिवार नियोजन को प्रोत्साहन– सरकार द्वारा परिवार–कल्याण कार्यक्रम पर प्रचुर धनराशि व्यय की जा रही है। लेकिन इसका वास्तविक लाभ तभी मिल सकता है, जब प्रचार माध्यमों के द्वारा ग्रामीण और श्रमिक परिवार के लोगों में इसके प्रति जागरूकता पैदा की जाएगी।

3. राष्ट्रीय जनसंख्या नीति पर प्रकाश डालिए।

उ०– **राष्ट्रीय जनसंख्या नीति–** भारत के लिए अनुकूलतम जनसंख्या क्या होनी चाहिए? इस सम्बन्ध में तो निश्चित रूप से कहना कठिन है परन्तु इसमें सन्देह नहीं है कि भारत की जनसंख्या की वर्तमान वृद्धि–दर को कम करना आवश्यक है। इसके लिए जनसंख्या सम्बन्धी एक उचित नीति को अपनाना आवश्यक है। **एच०डी० एल्डरिज** के अनुसार, ''जनसंख्या नीति से अभिप्राय उन कानूनी, प्रशासनिक कार्यक्रमों तथा अन्य सरकारी प्रयत्नों से है जिनका उद्देश्य जनसंख्या की प्रवृत्ति तथा संरचना में राष्ट्रीय कल्याण के दृष्टिकोण से परिवर्तन करना है।'' भारत सरकार ने स्वतन्त्रता के पश्चात् से ही एक निश्चित जनसंख्या नीति को अपनाया है जिसका उद्देश्य जन्म–दर की वृद्धि को कम करना तथा जन साधारण के जीवन स्तर में सुधार करना है।

यद्यपि पहली पंचवर्षीय योजना से ही सरकार ने जनसंख्या–नियन्त्रण के महत्त्व को स्वीकार किया है, परन्तु वास्तव में जनसंख्या–वृद्धि को कम करने के लिए विशेष प्रयत्न पाँचवी योजना से ही प्रारम्भ किए जा सके हैं।

1976 की राष्ट्रीय जनसंख्या नीति– भारत सरकार ने एक व्यापक राष्ट्रीय जनसंख्या नीति की घोषणा 16 अप्रैल, 1976 को की थी। इस नीति का मुख्य उद्देश्य जनसंख्या–वृद्धि को सीमित रखना था। इस नीति की मुख्य विशेषताएँ निम्नलिखित थीं–

(i) जन्म-दर तथा जनसंख्या वृद्धि-दर कम करना– सन् 1976 की राष्ट्रीय जनसंख्या नीति का लक्ष्य (क) जन्म दर को सन् 1985 तक 35 प्रति हजार से कम करके 25 प्रति हजार करना था तथा (ख) जनसंख्या की वृद्धि–दर को कम करके 1.4 प्रतिशत करना था।

(ii) विवाह की न्यूनतम आयु में वृद्धि– विवाह की न्यूनतम आयु लड़कियों के लिए 15 वर्ष से बढ़ाकर 18 वर्ष तथा लड़कों के लिए 18 वर्ष से बढ़ाकर 21 वर्ष कर दी गई।

(iii) परिवार नियोजन कार्यक्रमों पर व्यय– विकास कार्यों के लिए राज्यों को केन्द्र द्वारा जो वित्तीय सहायता दी जाएगी उसका 8% उन राज्यों को परिवार नियोजन कार्यक्रमों पर व्यय करना होगा।

(iv) परिवार नियोजन को प्रोत्साहन– गरीब परिवारों को परिवार नियोजन की ओर आकर्षित करने के लिए नसबन्दी कराने वालों को दी जाने वाली मौद्रिक सहायता बढ़ा दी गई।

(v) **जनसंख्या शिक्षा को प्रोत्साहन–** जनसंख्या सम्बन्धी जानकारी बढ़ाने के लिए पाठ्य—पुस्तकों में जनसंख्या सम्बन्धी लेख होगें जिससे बच्चे आरम्भ से ही जनसंख्या को कम करने के महत्त्व को समझ सकें। परिवार नियोजन कार्यक्रम का व्यापक प्रचार किया जाएगा।

(vi) **स्त्री शिक्षा पर विशेष ध्यान–** स्त्री शिक्षा के स्तर को ऊँचा उठाने के प्रयत्न किए जाएँगे।

1977 की संशोधित जनसंख्या नीति– सरकार ने परिवार नियोजन की नीति का नाम बदलकर 'परिवार कल्याण' कर दिया था। राष्ट्रपति ने सरकार की नीति के सम्बन्ध में 28 मार्च, 1977 को लोक सभा में कहा था कि परिवार नियोजन को लागू तो किया जायेगा, किन्तु यह ऐच्छिक तौर पर होगा। सन् 1977 की जनसंख्या सम्बन्धी नीति की मुख्य विशेषताएँ निम्नलिखित थीं—

(क) परिवार नियोजन पर नि:सन्देह जोर दिया जायेगा, किन्तु यह परिवार पर निर्भर करेगा कि वह इस विषय में कौन—सा तरीका अपनाए।

(ख) बच्चों के स्वास्थ्य और माँ के स्वास्थ्य की देखभाल करने के लिए प्रबन्ध किए गए।

(ग) लड़कों और लड़कियों की विवाह आयु सीमा बढ़ा दी गई।

(घ) महिलाओं की शिक्षा के अनेक कार्यक्रमों को उच्च प्राथमिकता दी गई।

(ड) परिवार कल्याण के कार्यक्रमों को लोकप्रिय बनाने के लिए जन सम्पर्क के सारे साधनों का उपयोग केन्द्रीय तथा राज्य सरकारों के सहयोग से किया जाएगा।

(च) परिवार कल्याण के कार्यक्रमों में निजी व्यावसायिक संस्थाओं को धन लगाने पर आयकर में छूट मिलेगी।

(छ) केन्द्रीय सरकार की ओर से राज्य सरकार को दी जाने वाली धनराशि परिवार कल्याण की सफलता पर आधारित होगी।

(ज) नई नीति के अनुसार युवाओं को सामान्य शिक्षा के साथ—साथ जनसंख्या सम्बन्धी शिक्षा भी अवश्य दी जानी चाहिए।

2000 की नई राष्ट्रीय नीति– भारत सरकार ने 15 फरवरी, 2000 को नई राष्ट्रीय जनसंख्या नीति की घोषणा की। इस नीति के अनुसार, ''सरकार जनता द्वारा स्वेच्छा तथा बिना किसी जोर जबरदस्ती के प्रजनन तथा स्वास्थ्य रक्षा सेवाओं के प्रयोग के लिए तथा लक्ष्य मुक्त परिवार नियोजन सेवाओं को लागू करने के लिए वचनबद्ध है।''

उद्देश्य– नई राष्ट्रीय नीति के मुख्य उद्देश्य निम्नलिखित हैं—

(i) **तत्कालीन उद्देश्य–** नई नीति का तत्कालीन उद्देश्य गर्भ निरोधक साधनों की माँग को पूरा करना, स्वास्थ्य रक्षा तथा स्वास्थ्य कर्मियों की व्यवस्था करना है। इस नीति का लक्ष्य प्रजनन तथा बाल स्वास्थ्य रक्षा के लिए समन्वित जनन सेवा प्रदान करना है।

(ii) **मध्यकालीन उद्देश्य–** नई नीति का मध्यकालीन उद्देश्य अन्तर—क्षेत्रीय कार्यविधि का मजबूती से पालन करके सन् 2010 तक कुल प्रजनन दर को, जनसंख्या को स्थिर रखने की दर के बराबर करना है।

(iii) **दीर्घकालीन उद्देश्य–** इस नीति का दीर्घकालीन उद्देश्य सन् 2045 तक देश की स्थिर रहने योग्य विकास—दर, सामाजिक विकास तथा पर्यावरण संरक्षण के अनुरूप स्थित जनसंख्या के लक्ष्य को प्राप्त करना है। सन् 2045 तक जनसंख्या की वृद्धि—दर को शून्य करने का लक्ष्य तय किया गया है।

❖ **मानचित्र सम्बन्धी अभ्यास कार्य**

अध्यापक की सहायता से विद्यार्थी स्वयं करें

❖ **प्रोजेक्ट कार्य**

अध्यापक की सहायता से विद्यार्थी स्वयं करें।

इकाई-3 : मानचित्र कार्य

मानचित्र-अभ्यास

अभ्यास

अध्यापक की सहायता से विद्यार्थी स्वयं करें।

इकाई-1 (क) : अर्थव्यवस्था - एक अध्ययन

42 अर्थव्यवस्था का तात्पर्य एवं प्रकार

(पूँजीवादी, समाजवादी एवं मिश्रित अर्थव्यवस्था)

अभ्यास

❖ **बहुविकल्पीय प्रश्न**

उ०– बहुविकल्पीय प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्य पुस्तक के पृष्ठ संख्या—373 व 374 का अवलोकन कीजिए।

❖ **अतिलघु उत्तरीय प्रश्न**

उ०– अतिलघु उत्तरीय प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्य पुस्तक के पृष्ठ संख्या—374 का अवलोकन कीजिए।

❖ **लघु उत्तरीय प्रश्न**

1. अर्थव्यवस्था क्या है?

उ०– अर्थव्यवस्था एक ऐसी व्यवस्था है, जिसमें लोगों का जीवन—निर्वाह होता है और समस्त आर्थिक क्रियाएँ सम्पन्न होती हैं। अन्य शब्दों में हम कह सकते हैं कि ''अर्थव्यवस्था एक ऐसा ढाँचा है, जिसके अन्तर्गत किसी क्षेत्र के समाज की समस्त आर्थिक क्रियाओं का संचालन तथा नियमन होता है।''

अर्थव्यवस्था के अन्तर्गत यह निर्धारित किया जाता है कि किन वस्तुओं का उत्पादन किया जाए और किसका नहीं। इसमें सभी प्रकार के उद्योग धन्धे, कृषि, परिवहन तथा संचार सेवाएँ, बैंक, बीमा, व्यापार आदि का समाविष्ट भी किया जाता है। अत: अर्थव्यवस्था इन विविध आर्थिक क्रियाओं का योग होती है।

2. भारतीय अर्थ व्यवस्था की विशेषताएँ बताइए।

उ०– भारतीय अर्थव्यवस्था की मुख्य विशेषताएँ निम्न हैं— (i) कृषि की प्रधानता एवं ग्रामीण अर्थव्यवस्था, (ii) प्रति व्यक्ति निम्न आय स्तर, (iii) पूँजी निर्माण की निम्नदर, (iv) आर्थिक विषमता, (v) बेरोजगारी, (vi) जनसंख्या वृद्धि की तीव्र दर, (vii) ऊँची जन्म दर एवं मृत्यु दर, (viii) जनाधिक्य, (ix) तकनीकी कौशल का अभाव, (x) औद्योगिक पिछड़ापन, (xi) अल्प प्रयुक्त प्राकृतिक संशाधन, (xii) अपर्याप्त परिवहन एवं संचार साधन, (xiii) जातिवाद व रीति—रिवाजों की प्रधानता, (xiv) साक्षरता की कमी, (xv) जनकल्याण व सामाजिक सुरक्षा का अभाव, (xvi) राजनीतिक भ्रष्टाचार।

3. श्रीमती उर्सुल हिक्स के अनुसार विकसित अर्थव्यवस्था का अर्थ बताइए।

उ०– **विकसित अर्थव्यवस्था-** विकसित अर्थव्यवस्था वह अर्थव्यवस्था है जो आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न है तथा जहाँ सभी उपलब्ध मानवीय एवं प्राकृतिक संसाधनों का पूर्ण उपयोग होता है। इन देशों में राष्ट्रीय आय एवं प्रति व्यक्ति आय अधिक होती है एवं उत्पादकता का स्तर उच्च होता है। विज्ञान एवं आधुनिक तकनीकी द्वारा प्राकृतिक साधनों का समुचित उपयोग किया जाता है और इसके परिणामस्वरूप ये देश आर्थिक विकास के उच्चतम शिखर पर पहुँच चुके हैं; जैसे— संयुक्त राज्य अमेरिका, फ्रांस, ब्रिटेन, रूस, जर्मनी आदि देशों की गणना संसार के विकसित देशों में की जाती है।

श्रीमती उर्सुल हिक्स के अनुसार ''आर्थिक वृद्धि शब्द विकसित देशों के लिए लागू होता है। जहाँ पर बहुत से साधन पहले से ही ज्ञात होते हैं और वे विकसित होते हैं, जबकि विकास का सम्बन्ध अल्प—विकसित देशों से है, जहाँ बेकार साधनों के विकास एवं प्रयोग की संभावनाएँ विद्यमान होती हैं।''

4. पूँजीवादी अर्थव्यवस्था को समझाइए।

उ०– **पूँजीवादी अर्थव्यवस्था–** पूँजीवादी अर्थव्यवस्था सभी अर्थव्यवस्थाओं से अति प्राचीन है। इस अर्थव्यवस्था में उत्पादन के साधनों पर मनुष्य का स्व—अधिकार होता है और वह साधनों का प्रयोग अपने निजी लाभ के लिए करता है। पूँजीवादी अर्थव्यवस्था की कुछ परिभाषाएँ निम्नलिखित हैं—

वार्ड के अनुसार— ''पूँजीवादी अर्थव्यवस्था से अभिप्राय उस आर्थिक प्रणाली से है, जिसमें स्वतन्त्र उद्यम, प्रतिस्पर्द्धा और निजी सम्पत्ति विद्यमान हो एवं लाभ—प्राप्ति उत्पादन करने के लिये एक प्रेरणा शक्ति हो।''

लूक्स तथा हूट्स के अनुसार— ''पूँजीवादी अर्थव्यवस्था आर्थिक संगठन की एक ऐसी प्रणाली है, जिसमें प्राकृतिक तथा मनुष्य निर्मित पूँजीगत साधनों पर निजी स्वामित्व होता है और जिसका प्रयोग निजी लाभ के लिए किया जाता है।''

पीगू के अनुसार— ''एक पूँजीवादी अर्थव्यवस्था अथवा पूँजीवादी प्रणाली वह है, जिसमें उत्पादक साधनों का मुख्य भाग

पूँजीवादी उद्योग में लगा होता है। एक पूँजीवादी उद्योग वह है, जिसमें उत्पत्ति के भौतिक साधन निजी लोगों के अधिकार में होते हैं अथवा उनके द्वारा किराए पर लिए जाते हैं और उनका परिचालन इन लोगों के आदेश पर उनकी सहायता से उत्पन्न होने वाली वस्तुओं को लाभ पर बेचने के लिए किया जाता है।''

5. समाजवादी अर्थव्यवस्था के दोष बताइए।

उ०– समाजवादी अर्थव्यवस्था के दोष– समाजवादी अर्थव्यवस्था के कुछ दोष निम्नलिखित है—

(i) कुछ लोगों का तर्क है कि यह अर्थव्यवस्था अव्यावहारिक है, क्योंकि यह प्रणाली लोकतान्त्रिक सिद्धान्तों से मेल नहीं खाती है। इस अर्थव्यवस्था में लोगों को घुटन महूसस होती है।

(ii) समाजवादी अर्थव्यवस्था में उपभोक्ता की स्वतंत्रता समाप्त हो जाती है और लोगों की वही वस्तुएँ स्वीकार करनी पड़ती हैं, जो सरकार द्वारा उत्पादित की जाती हैं।

(iii) उत्पादन के साधनों का, पूर्णतया सरकार के हाथों में नियंत्रण होने से, सरकार मनमाने ढंग से कीमत निर्धारित करती है। सरकार द्वारा निश्चित ही गई कीमत को हमारे देश में प्रशासित कीमत कहा जाता है।

(iv) समाजवाद में निर्णय लेने में देरी, नौकरशाही, भ्रष्टाचार, कार्यकुशलता में कमी आदि सभी कारण उत्पादकता को कम करते हैं।

(v) इस अर्थव्यवस्था को अपनाने वाले देशों के निवासी अपनी इच्छानुसार न तो उत्पादन कर सकते हैं न उपभोग। इस प्रकार समाजवाद में व्यक्ति में स्वतन्त्रता का अभाव पाया जाता है।

6. मिश्रित अर्थव्यवस्था की कोई तीन परिभाषाएँ बताइए।

उ०– मिश्रित अर्थव्यस्था– मिश्रित अर्थव्यवस्था की तीन परिभाषाएँ निम्नलिखित है—

प्रो० सेमुअल्सन के अनुसार— ''मिश्रित अर्थव्यवस्था वह अर्थव्यवस्था है, जिसमें सार्वजनिक एवं निजी दोनों प्रकार की संस्थाओं का नियन्त्रण रहता है।''

योजना आयोग के अनुसार— '' मिश्रित अर्थव्यवस्था में निजी क्षेत्र और सार्वजनिक क्षेत्र परस्पर घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित होते हैं तथा दोनों क्षेत्र इस इकाई के दो घटकों के रूप में कार्य करते हैं।''

जे०डी० रवत्री के अनुसार— ''मिश्रित अर्थव्यवस्था एक ऐसी आर्थिक व्यवस्था है, जिसमें समुदाय के सभी वर्गों के आर्थिक कल्याण के संवर्द्धन के लिए सार्वजनिक एवं निजी क्षेत्र को विशेष भूमिकाएँ दी जाती है।''

7. मिश्रित अर्थव्यवस्था के दो दोष बताइए।

उ०– मिश्रित अर्थव्यवस्था के दो दोष निम्नलिखित हैं–

(i) इस व्यवस्था में सार्वजनिक क्षेत्र व निजी क्षेत्र दोनों का सह—अस्तित्व होता है; किन्तु दोनों में सामंजस्य स्थापित करना कठिन कार्य है। कभी—कभी तो लाभ और सार्वजनिक हित दोनों में विरोधाभास की स्थिति उत्पन्न हो जाती है।

(ii) इस प्रणाली में सदैव यह भय बना रहता है कि यह प्रणाली कभी भी स्थायी रूप नहीं ले सकेगी और ऐसा समय आ सकता है, जबकि निजी क्षेत्र प्रगति करते—करते सार्वजनिक क्षेत्र को समाप्त कर दे अथवा सार्वजनिक क्षेत्र इतना शक्तिशाली हो जाए कि वह निजी क्षेत्र को समाप्त कर दे और इस प्रणाली का रूप ही बदल जाए।

❖ विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

1. अर्थव्यवस्था की परिभाषा देते हुए विकसित एवं विकासशील अर्थव्यवस्थाओं में अन्तर स्पष्ट कीजिए।

उ०– अर्थव्यवस्था की परिभाषाएँ– विभिन्न अर्थशास्त्रियों द्वारा अर्थव्यवस्था की भिन्न—भिन्न परिभाषाएँ दी गई हैं। कुछ परिभाषाएँ निम्नलिखित हैं—

प्रो० ए०जे० ब्राउन के अनुसार— ''अर्थव्यवस्था एक ऐसी पद्धति है, जिसके द्वारा लोग अपनी जीविका प्राप्त करके अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं।''

एम० गॉटलिव के अनुसार— ''एक अर्थव्यवस्था जटिल मानव सम्बन्धों, जो वस्तुओं तथा सेवाओं की विभिन्न निजी तथा सार्वजनिक आवश्यकताओं को सन्तुष्ट करने के उद्देश्य से सीमित साधनों के प्रयोग से सम्बन्धित है, को प्रकट करने वाला एक मॉडल है।''

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर हम कह सकते हैं कि यदि अर्थव्यवस्था किसी क्षेत्र की विविध आर्थिक क्रियाओं का योग होती है तो यह उत्पादों के परस्पर सहयोग की प्रणाली भी है। अत: अर्थव्यवस्था में परस्पर समन्वय एवं सहयोग होना आवश्यक है। क्षेत्र की दृष्टि से एक अर्थव्यवस्था किसी भी एक गाँव, नगर, राज्य, देश या सम्पूर्ण विश्व की हो सकती है।

विकसित एवं विकासशील अर्थव्यवस्थाओं में अन्तर– विकसित एवं विकासशील अर्थव्यवस्थाओं में निम्न अन्तर पाए जाते हैं—

अन्तर का आधार	विकसित अर्थव्यवस्था	विकासशील अर्थव्यवस्था
(i) तकनीकी शिक्षा	तकनीकी शिक्षा का स्तर न केवल ऊँचा होता है वरन तकनीकी शिक्षा की प्रर्याप्त सुविधाएँ उपलब्ध होती है।	तकनीकी शिक्षा का अभाव होता है। जो कुछ सुविधाएँ उपलब्ध होती हैं, वे उन्नत तथा पर्याप्त नहीं होती।
(ii) बैकिंग-सुविधाएँ	इनमें बैकिंग-सुविधाएं उन्नत तथा पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध होती है।	बैकिंग-सुविधाओं की दृष्टि से ये राष्ट्र पिछड़े हुए होते हैं।
(iii) व्यापार तथा वाणिज्य	व्यापार तथा वाणिज्य दोनों विकसित तथा उन्नत अवस्था में होते हैं।	व्यापार तथा वाणिज्य दोनों कम विकसित होते हैं।
(iv) परिवहन तथा संचार सुविधाएँ	पर्याप्त तथा उच्च कोटि की परिवहन एवं संचार सुविधाएँ उपलब्ध होती हैं।	इनमें अपर्याप्त तथा निम्न कोटि की परिवहन सुविधाएँ उपलब्ध होती हैं।
(v) जनसंख्या की वृद्धि दर	जन्म-दर तथा मृत्यु-दर दोनों नीची होने के कारण जनसंख्या की वृद्धि दर कम होती है।	जन्म-दर अधिक तथा मृत्यु-दर कम होने के कारण जनसंख्या की वृद्धि दर अधिक होती है।
(vi) साक्षरता	इन राष्ट्रों में साक्षरता लगभग शत-प्रतिशत होती है।	इनमें साक्षरता का निम्न स्तर पाया जाता है।
(vii) मानवीय पूँजी	श्रमिक शिक्षित, प्रशिक्षित तथा कुशल होते हैं।	श्रमिक कम प्रशिक्षित तथा कम कार्यकुशल होते हैं।
(viii) उत्पादकता	सभी क्षेत्रों में उत्पादकता का स्तर ऊँचा होता है।	उत्पादकता का स्तर सामान्यत: निम्न होता है।
(ix) बेरोजगारी	इनमें नाममात्र की बेरोजगारी होती है। यह अल्पकालीन तथा संरचनात्मक होती है।	व्यापाक तथा दीर्घकालीन बेरोजगारी पाई जाती है। कृषि क्षेत्र में अदृश्य बेरोजगारी पाई जाती है।
(x) जीवन-स्तर	निवासियों का जीवन-स्तर ऊँचा होता है।	लोगों का जीवन-स्तर निम्न होता है।
(xi) आय तथा सम्पत्ति का विवरण	इन देशों में आय तथा सम्पत्तियों के विवरण में असमानताएँ कम होती हैं।	इनमें आय एवं सम्पत्ति के वितरण में अत्यधिक असमानताएँ पाई जाती हैं।
(xii) प्राकृतिक संसाधनों का उपयोग	इनमें प्राकृतिक संसाधनों का कुशलतम उपयोग किया जाता है।	ये राष्ट्र प्राकृतिक संसाधनों का अल्प उपयोग ही कर पाते हैं।
(xiii) कृषि	(i) केवल 2 से 5 प्रतिशत जनसंख्या कृषि में संलग्न होती है। (ii) उन्नत तथा यान्त्रिक कृषि की जाती है।	(i) कृषि प्रमुख व्यवसाय होता है। 65 से 80 प्रतिशत तक जनसंख्या कृषि में संलग्न होती है। (ii) मुख्यत: परम्परागत तथा आंशिक यान्त्रिक कृषि की जाती है।
(xiv) पूँजी निर्माण	(i) इन देशों में पूँजी निर्माण की दर ऊँची होती है। (ii) निवेश का स्तर ऊँचा होता है।	(i) इनमें पूँजी निर्माण की दर नीची होती है। (ii) निवेश का स्तर नीचा होता है।
(xv) उद्योग	(i) अधिक पूँजी उपलब्ध होने के कारण उद्योगों की प्रधानता होती है। (ii) उत्पादन-ढाँचा विशालस्तरीय होता है।	(i) पूँजी की कमी के कारण उद्योगों की कमी होती है। (ii) उत्पादन-ढाँचा लघुस्तरीय होता है।
(xvi) उत्पादन-विधि	आधुनिक उन्नत उत्पादन-विधियों का प्रयोग किया जाता है। अनुसन्धान तथा नवप्रवर्तन पर विशेष ध्यान दिया जाता है।	प्राय: पिछड़ी हुई परम्परागत उत्पादन-विधियों का प्रयोग किया जाता है। अनुसन्धान तथा नवप्रवर्तन की सम्भावनाएँ कम होती हैं।

2. उत्पादन के साधनों के स्वामित्व के आधार पर अर्थव्यवस्थाओं की विवेचना कीजिए।

उ०- **उत्पादन के साधनों के स्वामित्व के आधार पर अर्थव्यवस्थाएँ-** उत्पादन के साधनों के स्वामित्व के आधार पर अर्थव्यवस्थाएँ निम्नलिखित तीन प्रकार की होती हैं।

(अ) पूँजीवादी अर्थव्यवस्था- पूँजीवादी अर्थव्यवस्था सभी अर्थव्यवस्थाओं से अति प्राचीन है। इस अर्थव्यवस्था में उत्पादन के साधनों पर मनुष्य का स्व—अधिकार होता है और वह साधनों का प्रयोग अपने निजी लाभ के लिए करता है। पूँजीवादी

अर्थव्यवस्था की कुछ परिभाषाएँ निम्नलिखित हैं—

वार्ड के अनुसार— ''पूँजीवादी अर्थव्यवस्था से अभिप्राय उस आर्थिक प्रणाली से है, जिसमें स्वतन्त्र उद्यम, प्रतिस्पर्द्धा और निजी सम्पत्ति विद्यमान हो एवं लाभ—प्राप्ति उत्पादन करने के लिए एक प्रेरणा शक्ति हो।''

जी०डी०एच० कोल के अनुसार— ''पूँजीवाद लाभ के लिए उत्पादन की ऐसी प्रणाली है, जिसमें उत्पादन के साधनों एवं सामग्री पर निजी स्वामित्व होता है और उत्पादन मुख्यत: वेतनभोगी श्रमिकों द्वारा किया जाता है, किन्तु उत्पादित माल पर पूँजीपति का स्वामित्व होता है।''

पूँजीवादी अर्थव्यवस्था को 'स्वतन्त्र बाजार अर्थव्यवस्था' तथा 'स्वतन्त्र व्यापार प्रणाली' के नाम से भी जाना जाता है। जापान, ऑस्ट्रेलिया तथा संयुक्त राज्य अमेरिका पूँजीवादी अर्थव्यवस्था के उदाहरण हैं।

पूँजीवादी अर्थव्यवस्था की विशेषताएँ– पूँजीवादी अर्थव्यवस्था की विशेषताएँ निम्नलिखित होती हैं—

(i) पूँजीवादी प्रणाली में केन्द्रीय नियोजन का पूर्णतया अभाव होता है। असंख्य उत्पादक, विक्रेता तथा उपभोक्ता स्वतन्त्र रूप से अपने स्वहितों को आधार मानते हुए आर्थिक क्रियाएँ सम्पन्न करते हैं। आर्थिक निर्णय स्वतन्त्र रूप से लिए जाने के कारण समन्वय रहित होते हैं।

(ii) लाभार्जन की प्रेरणा पूँजीवाद का आधार स्तम्भ है। प्रत्येक व्यक्ति अपने साधनों का प्रयोग सामाजिक हित मे न करके अपने निजी लाभ के लिए करता है।

(iii) पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में मूल्य यन्त्र क्रियाशील रहता है। यह मूल्य यन्त्र ही वस्तु की उत्पादन—मात्रा, उपभोग, आय, बचत, निवेश आदि का निर्धारण करता है।

(iv) पूँजीवादी अर्थव्यवस्था के अन्तर्गत उत्तराधिकार के नियम क्रियाशील रहते हैं।

(v) पूँजीवाद में सभी व्यक्तियों को उपभोग की स्वतन्त्रता होती है। वे अपनी इच्छानुसार वस्तुओं तथा सेवाओं का उपभोग करने के लिए स्वतन्त्र होते हैं। अत: उत्पादक उन्हीं वस्तुओं का उत्पादन करते हैं, जिनकी उपभोक्ता माँग करते हैं।

(vi) पूँजीवादी आर्थिक प्रणाली में सरकार लोगों की आर्थिक क्रियाओं में कोई प्रत्यक्ष हस्तक्षेप नहीं करती है। सरकार का कार्य तो केवल आर्थिक संगठन पर बाह्य तत्त्वों के प्रभाव को रोकना और आर्थिक क्रियाओं के हानिकारक प्रभावों को नियन्त्रित करना होता है, जिससे आर्थिक स्थिरता प्राप्त की जा सके।

पूँजीवादी अर्थव्यवस्था के गुण– पूँजीवादी अर्थव्यवस्था के गुण निम्नलिखित होते हैं—

(i) पूँजी निर्माण को प्रोत्साहन– अधिकाधिक सम्पत्ति अर्जित करने के उद्देश्य से अधिकाधिक आय कमाकर बचत में वृद्धि की जाती है। बचतों का निवेश करके अधिकाधिक लाभ प्राप्त करने के प्रयास किए जाते है।

(ii) औद्योगिक विकास– पूँजीवादी प्रणाली में निवेश तथा पूँजी निर्माण की दर में वृद्धि के कारण विभिन्न प्रकार की वस्तुओं के उत्पादन में वृद्धि हेतु नए—नए कारखाने स्थापित किए जाते हैं। इसके फलस्वरूप देश में औद्योगिक विकास की प्रक्रिया तीव्र हो जाती है, जिससे रोजगार बढ़ता है।

(iii) उत्पादकता में वृद्धि– तकनीकी सुधार, नवप्रवर्तन, विशिष्टीकरण आदि के कारण पूँजीवादी व्यवस्था में उत्पादकता में निरन्तर वृद्धि होती है। साथ ही श्रमिक भी अधिक मजदूरी प्राप्त करने के लिए अपनी कार्यकुशलता में वृद्धि करता है।

(iv) योग्यतानुसार प्रतिफल– जो व्यक्ति जितना अधिक योग्य, परिश्रमी तथा निष्ठावान होता है, वह व्यक्ति उतना ही अधिक लाभान्वित होता है। आलसी, अयोग्य तथा अकर्मण्य व्यक्तियों के लिए इसमें कोई स्थान नहीं होता।

(v) उत्पादन में वृद्धि– पूँजीवादी व्यवस्था में सीमित साधनों के सर्वोत्तम प्रयोग तथा नई उत्पादन—विधियों के विकास के फलस्वरूप वस्तुओं और सेवाओं की पूर्ति में परिमाणात्मक एवं गुणात्मक दोनों ही दृष्टि से वृद्धि होती है।

(vi) वस्तुओं तथा सेवाओं में विविधता– आर्थिक स्वतन्त्रता के कारण उत्पादक अधिकाधिक लाभ कमाने के उद्देश्य से विभिन्न प्रकार की वस्तुओं तथा सेवाओं का उत्पादन करके उपभोक्ताओं को अपनी ओर आकर्षित करने का प्रयास करते हैं, जिससे उपभोक्ताओं को अधिकतम सन्तुष्टि प्राप्त होती है।

पूँजीवादी अर्थव्यवस्था के दोष– पूँजीवादी आर्थिक प्रणाली के कुछ प्रमुख दोष निम्नलिखित हैं—

(i) पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में उत्पादकों तथा उपभोक्ताओं के मध्य किसी प्रकार का तालमेल नहीं होता है।

(ii) पूँजीवादी व्यवस्था में धनी तथा निर्धन इन दो वर्गों के मध्य बढ़ती आर्थिक विषमताएँ वर्ग—संघर्ष को जन्म देती हैं।

(iii) इस व्यवस्था में उत्पादकों के कपटपूर्ण व्यवहार तथा महँगे विज्ञापनों के कारण उपभोक्ताओं का शोषण होता है।

(iv) पूँजीवाद साधनों को पूर्ण रोजगार देने मे असमर्थ रहता है। **जॉन राचित्सन** के अनुसार ''आधुनिक अर्थव्यवस्था उन लोगों को पूर्ण रोजगार नहीं दे पाती है, जो काम करने के इच्छुक होते हैं।

(v) इस प्रणाली में उत्पादक अधिकतम लाभ प्राप्त करने के लिए वस्तुओं का उत्पादन कम करके कृत्रिम (बनावटी) दुर्लभता उत्पन्न करके वस्तुओं की कीमत में वृद्धि करते हैं।

(ब) समाजवादी अर्थव्यवस्था– समाजवादी अर्थव्यवस्था के अन्तर्गत उत्पादन के साधनों पर समाज या सरकार का स्वामित्व होता है। इसमें साधनों का उपयोग सामाजिक कल्याण को ध्यान में रखते हुए किया जाता है। समाजवादी अर्थव्यवस्था की कुछ परिभाषाएँ निम्नवत हैं—

डाब के अनुसार— ''समाजवाद की आधारभूत विशेषता वर्ग—सम्बन्ध को, जो पूँजीवादी उत्पादन का आधार है, सम्पत्तिधारी वर्ग से सम्पत्ति ले लेने तथा भूमि व पूँजी को सामाजीकरण के द्वारा समाप्त कर देने से है।''

शुम्पीटर के अनुसार— ''समाजवादी अर्थव्यवस्था एक ऐसी संस्थागत व्यवस्था है, जिसमें उत्पत्ति के साधनों तथा स्वयं उत्पादन पर नियन्त्रण एक केन्द्रीय सत्ता के हाथ में होता है या जिसमें सैद्धान्तिक रूप से समाज की आर्थिक क्रियाएँ निजी क्षेत्र के अधिकार में न होकर सार्वजनिक क्षेत्र के अधिकार में होती हैं।''

मार्क्स ने अपनी विश्वविख्यात पुस्तक 'दास कैपिटल' में समाजवाद का वैज्ञानिक विश्लेषण प्रस्तुत किया है।

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि समाजवादी अर्थव्यवस्था से आशय उस अर्थव्यवस्था से है, जिसमें उत्पादन के साधनों पर समाज या सरकार का स्वामित्व होता है।

समावादी अर्थव्यवस्था की विशेषताएँ– समाजवादी अर्थव्यवस्था की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं—

(i) समाजवादी अर्थव्यवस्था में राज्य द्वारा प्रत्येक सक्षम व्यक्ति को उसकी योग्यता के अनुसार रोजगार उपलब्ध कराया जाता है, जिससे देश में बेरोजगारी समाप्त हो जाती है।

(ii) निजी सम्पत्ति, व्यक्तिगत लाभार्जन तथा उत्तराधिकार के नियमों की अनुपस्थिति के कारण समाजवादी प्रणाली में वर्ग नहीं पनप पाते तथा आर्थिक असमानताएँ न्यूनतम हो जाती हैं।

(iii) समाजवादी अर्थव्यवस्था अनिवार्य रूप से नियोजित होती है। अन्य शब्दों में कहा जा सकता है कि जो देश इस प्रणाली को अपनाते हैं, वे उपलब्ध संसाधनों के इष्टतम आवंटन और उपयोग के लिए आर्थिक नियोजन का मार्ग अपनाते हैं।

(iv) समाजवादी अर्थव्यवस्था में साधनों का बँटवारा एक पूर्व निश्चित योजना के अनुसार केन्द्रीय सत्ता द्वारा मूल्य यन्त्र की सहायता से किया जाता है तथापि मूल्य यन्त्र स्वतन्त्रतापूर्वक कार्य नहीं करता।

(v) समाजवादी प्रणाली में उत्पादन का उद्देश्य लाभ की भावना से न होकर सामाजिक कल्याण में वृद्धि करने से होता है। कीमत नीति का निर्धारण भी सामाजिक कल्याण के आधार पर किया जाता है।

समाजवादी अर्थव्यवस्था के गुण– समाजवादी अर्थव्यवस्था के प्रमुख गुण निम्नलिखित हैं—

(i) यह प्रणाली प्रत्येक व्यक्ति को विकास के समान अवसर प्रदान करती है। पूँजीवादी प्रणाली की सभी विषमताओं का इसमें निराकरण हो जाता है। हाँ विभिन्न व्यक्तियों की आय में केवल उतना ही अन्तर पाया जाता है, जितना अन्तर उनकी कार्यक्षमता एवं बौद्धिक कुशलता में होता है।

(ii) समाजवादी अर्थव्यवस्था में पराश्रयी जीवों के लिए कोई स्थान नहीं होता। समस्त आर्थिक साधनों का प्रयोग जनकल्याण के लिए होता है और प्रत्येक साधन को उसकी योग्यता, आवश्यकता एवं परिश्रम के अनुरूप पुरस्कार प्राप्त होता है।

(iii) इस प्रणाली में समाज पूँजीपति व श्रमिक, धनी व निर्धन आदि वर्गों में बँटा नहीं होता है, अत: वर्ग—संघर्ष नहीं होते और उत्पादन निर्बाध रूप से होता रहता है।

(iv) इस प्रणाली में कार्य करने की प्रेरणा पर कोई विपरीत प्रभाव नहीं पड़ता और कुशल व्यक्तियों को उपलब्ध सामाजिक सम्मानों एवं उपाधियों द्वारा सम्मानित किया जाता है।

(v) इस प्रणाली में उत्पादकता में वृद्धि होती है, व्यापार—चक्रों की समाप्ति हो जाती है, एकाधिकारी संस्थाओं का अन्त हो जाता है, आर्थिक असमानताएँ समाप्त हो जाती हैं और सम्मानपूर्वक जीने की व्यवस्था हो जाती है।

(vi) समाजवादी अर्थव्यवस्था एक नियोजित अर्थव्यवस्था होती है। सभी आर्थिक क्रियाएँ अर्थव्यवस्था के विस्तृत सर्वेक्षण के आधार पर नियोजित की जाती हैं। उत्पादन समाज की आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर किया जाता है। इसमें अपव्यय, सट्टेबाजी व अनिश्चितता को पूर्णतया समाप्त कर दिया जाता है। फलस्वरूप प्राकृतिक एवं मानवीय संसाधनों का सर्वोत्तम उपयोग सम्भव होता है।

समाजवादी अर्थव्यवस्था के दोष– समाजवादी अर्थव्यवस्था के कुछ दोष निम्नलिखित है—

(i) कुछ लोगों का तर्क है कि यह अर्थव्यवस्था अव्यावहारिक है, क्योंकि यह प्रणाली लोकतान्त्रिक सिद्धान्तों से मेल नहीं खाती है। इस अर्थव्यवस्था में लोगों को घुटन महूसस होती है।

(ii) समाजवादी अर्थव्यवस्था में उपभोक्ता की स्वतंत्रता समाप्त हो जाती है और लोगों को वही वस्तुएँ स्वीकार करनी पड़ती हैं, जो सरकार द्वारा उत्पादित की जाती हैं।

(iii) उत्पादन के साधनों का, पूर्णतया सरकार के हाथों में नियंत्रण होने से, सरकार मनमाने ढंग से कीमत निर्धारित करती है। सरकार द्वारा निश्चित ही गई कीमत को हमारे देश में प्रशासित कीमत कहा जाता है।

(iv) समाजवाद में निर्णय लेने में देरी, नौकरशाही, भ्रष्टाचार, कार्यकुशलता में कमी आदि सभी कारण उत्पादकता को कम करते हैं।

(v) इस अर्थव्यवस्था को अपनाने वाले देशों के निवासी अपनी इच्छानुसार न तो उत्पादन कर सकते हैं न उपभोग। इस प्रकार समाजवाद में व्यक्ति में स्वतन्त्रता का अभाव पाया जाता है।

(स) मिश्रित अर्थव्यवस्था– मिश्रित अर्थव्यवस्था की कुछ प्रमुख परिभाषाएँ निम्नलिखित है—

प्रो० सेमुअल्सन के अनुसार— ''मिश्रित अर्थव्यवस्था वह अर्थव्यवस्था है, जिसमें सार्वजनिक एवं निजी दोनों प्रकार की संस्थाओं का नियन्त्रण रहता है।''

योजना आयोग के अनुसार— ''मिश्रित अर्थव्यवस्था में निजी क्षेत्र और सार्वजनिक क्षेत्र परस्पर घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित होते हैं तथा दोनों क्षेत्र इस इकाई के दो घटकों के रूप में कार्य करते हैं।''

परिभाषाओं के आधार पर हम कह सकते हैं कि मिश्रित अर्थव्यस्था एक ऐसी आर्थिक प्रणाली है, जिसमें निजी क्षेत्र तथा सार्वजनिक क्षेत्र दोनों का पर्याप्त मात्रा में सह—अस्तित्व होता है, दोनों के कार्यकरण का क्षेत्र निर्धारित कर दिया जाता है, परन्तु निजी क्षेत्र की प्रमुखता रहती है। दोनों अपने—अपने क्षेत्र में मिलकर इस प्रकार कार्य करते हैं कि बिना शोषण के देश के सभी वर्गों के आर्थिक कल्याण में वृद्धि हो तथा तीव्र आर्थिक विकास प्राप्त हो सके। निजी क्षेत्र पर सरकार का समान तथा विशिष्ट नियन्त्रण बना रहता है। भारतीय अर्थव्यवस्था भी एक मिश्रित अर्थव्यवस्था है।

मिश्रित अर्थव्यवस्था की विशेषताएँ- मिश्रित अर्थव्यवस्था की विशेषताएँ निम्नलिखित हैं—

(i) मिश्रित अर्थव्यवस्था में निजी एवं सार्वजनिक क्षेत्र दोनों साथ—साथ कार्य करते हैं। सरकार द्वारा निजी उद्योग तथा सार्वजनिक उद्योगों का अलग—अलग क्षेत्र निश्चित कर दिया जाता है। इस प्रकार दोनों क्षेत्र एक—दूसरे पर निर्भर रहते हैं।

(ii) मिश्रित अर्थव्यवस्था में सरकार द्वारा एक पूर्व—निश्चित योजना के अनुसार ही अर्थव्यस्था का नियंत्रण किया जाता है और आर्थिक नियोजन के द्वारा पूर्वनिश्चित आर्थिक एवं सामाजिक उद्देश्य को प्राप्त करने का प्रयास करती है।

(iii) सार्वजनिक क्षेत्र में साधनों का बँटवारा सामाजिक कल्याण के उद्देश्य से प्राप्त करने का प्रयास करती है।

(iv) मिश्रित अर्थव्यवस्था में सरकार उद्योगों को प्रोत्साहन देने के साथ—साथ उन पर नियंत्रण रखती है और अल्पविकसित क्षेत्रों में अधिक—से—अधिक उद्योगों की स्थापना करने के लिए अनेक प्रलोभन देती है।

मिश्रित अर्थव्यवस्था के गुण– मिश्रित अर्थव्यवस्था के गुण निम्नलिखित हैं—

(1) पूँजीवाद तथा समाजवाद के मध्य सुनहरा मार्ग– मिश्रित अर्थव्यवस्था में पूँजीवाद तथा समाजवाद दोनों के गुणों का समावेश होता है जिस कारण इस आर्थिक प्रणाली को पूँजीवाद तथा समाजवाद के मध्य एक सुनहरा मार्ग माना जाता है। साथ ही मिश्रित अर्थव्यवस्था में पूँजीवाद तथा समाजवाद की बुराइयों को यथासम्भव दूर किया जाता है।

(2) पूँजीवाद के गुणों की प्राप्ति– मिश्रित अर्थव्यवस्था में पूँजीवाद की निम्न अच्छाइयों का समावेश होता है—

(i) पर्याप्त स्वतन्त्रता– लोकतन्त्रीय पद्धति पर आधारित होने के कारण मिश्रित अर्थव्यवस्था में लोगों को पर्याप्त आर्थिक तथा राजनीतिक स्वतन्त्रता प्राप्त होती है।

(ii) कार्यकुशलता में वृद्धि– निजी क्षेत्र में लाभार्जन—उद्देश्य तथा प्रतियोगिता उद्यमियों को न्यूनतम लागत पर अधिक मात्रा में अच्छी किस्म की वस्तुओं का उत्पादन करने के लिए प्रेरित करती है।

(iii) शोध तथा अनुसन्धानों को प्रोत्साहन– निजी क्षेत्र में लाभार्जन की स्वतन्त्रता तथा गलाकाट प्रतिस्पर्धा के परिणामस्वरूप शोध एवं अनुसन्धान को प्रोत्साहन मिलता है, जिसके परिणामस्वरूप न केवल उन्नत उत्पादन—विधियों की खोज की जाती है वरन् नई—नई वस्तुओं का उत्पादन किया जाता है।

(iv) कीमत संयंत्र के लाभ– इस अर्थव्यवस्था में कीमत संयंत्र भली—भाँति कार्य करता है जिससे देश की अर्थव्यवस्था के कुशल संचालन में सरकार को सुविधा हो जाती है।

(3) पूँजीवाद के दोषों का निराकरण– मिश्रित अर्थव्यवस्था के अन्तर्गत पूँजीवाद के निम्न दोषों का निवारण किया जाता है—

(i) आर्थिक विषमताओं में कमी– सरकार प्रगतिशील करारोपण तथा अन्य विभिन्न उपायों द्वारा व्यक्तिगत सम्पत्ति तथा लाभार्जन पर नियन्त्रण लगाकर आर्थिक असमानताओं को कम से कम करने का प्रयास करती है।

(ii) अपव्यय पर नियन्त्रण– मिश्रित अर्थव्यवस्था एक नियोजित अर्थव्यवस्था होती है। अत: इसमें उत्पादन—कार्यो

के दोहरेपन से उत्पन्न साधनों के अपव्यय की रोकथाम करना संभव होता है।

(iii) कुशल वितरण-प्रणाली– देश की वितरण प्रणाली पर सरकार के प्रभावी नियन्त्रण के कारण वस्तुओं का कृत्रिम अभाव उत्पन्न नहीं हो पाता।

4. **समाजवाद के लाभों की प्राप्ति–** मिश्रित अर्थव्यवस्था के अन्तर्गत समाजवाद के सभी प्रमुख लाभ प्राप्त होते हैं।
5. **समाजवाद के दोषों का निराकरण–** मिश्रित अर्थव्यवस्था के अन्तर्गत समाजवाद के प्रमुख दोषों का निराकरण कर दिया जाता है।
6. **पूँजी निर्माण को प्रोत्साहन–** मिश्रित अर्थव्यवस्था में निजी क्षेत्र को विकास करने के पर्याप्त अवसर प्राप्त होते हैं। परिणामस्वरूप बचत तथा निवेश के बढ़ने पर पूँजी निर्माण को प्रोत्साहन मिलता है।
7. **आर्थिक नियोजन के लाभ–** मिश्रित अर्थव्यवस्था एक नियोजित अर्थव्यवस्था होती है। अत: इसमें आर्थिक नियोजन के सभी लाभ प्राप्त होते हैं।
8. **तीव्र तथा सन्तुलित आर्थिक विकास–** आर्थिक नियोजन के अन्तर्गत विभिन्न क्षेत्रों के पारस्परिक सहयोग के फलस्वरूप देश का तीव्र गति से सन्तुलित आर्थिक विकास सम्भव होता है।
9. **लोचपूर्ण प्रणाली–** इस आर्थिक प्रणाली में देश की आवश्यकताओं के अनुसार सार्वजनिक तथा निजी क्षेत्रों के कार्यक्षेत्र में परिवर्तन किए जा सकते हैं। सरकार निजी क्षेत्र के किसी भी उद्योग को अपने हाथ में ले सकती है और किसी भी सरकारी उपक्रम को निजी क्षेत्र को सौंप सकती है।

मिश्रित अर्थव्यवस्था के दोष– मिश्रित अर्थव्यवस्था के कुछ दोष निम्नलिखित हैं—

(i) इस व्यवस्था में सार्वजनिक क्षेत्र व निजी क्षेत्र दोनों का सह—अस्तित्व होता है; किन्तु दोनों में सामंजस्य स्थापित करना कठिन कार्य है। कभी—कभी तो लाभ और सार्वजनिक हित दोनों में विरोधाभास की स्थिति उत्पन्न हो जाती है।

(ii) इस प्रणाली में सदैव यह भय बना रहता है कि यह प्रणाली कभी भी स्थायी रूप नहीं ले सकेगी और ऐसा समय आ सकता है, जबकि निजी क्षेत्र प्रगति करते—करते सार्वजनिक क्षेत्र को समाप्त कर दे अथवा सार्वजनिक क्षेत्र इतना शक्तिशाली हो जाए कि वह निजी क्षेत्र को समाप्त कर दे और इस प्रणाली का रूप ही बदल जाए।

(iii) इस प्रणाली के विरुद्ध यह भय बना रहता है कि यह प्रणाली धीरे—धीरे पथभ्रष्ट होकर अन्त में तानाशाही का रूप ले सकती है। इसका कारण है— राजकीय हस्तक्षेप की सीमा का सही निर्धारण न हो पाना। ऐसी स्थिति में सभी प्रकार की स्वतन्त्रताएँ स्वत: समाप्त हो जाएँगी।

(iv) मिश्रित अर्थव्यवस्था को समाजवाद और पूँजीवाद के बीच किसी भी प्रकार का समझौता समझना एक भूल है, क्योंकि इसमें न तो पूँजीवाद के लाभ प्राप्त हो पाते हैं और न ही समाजवाद के।

(v) समाजवादी विचारकों का मानना है कि मिश्रित आर्थिक प्रणाली पूँजीपतियों के प्रति सहानुभूति रखती है। अत: इस नीति के अन्तर्गत भी लोगों का शोषण बंद नहीं होगा, क्योंकि पूँजीवाद के सभी दोष इस प्रणाली में भी विद्यमान रहेंगे।

3. पूँजीवादी, समाजवादी तथा मिश्रित अर्थव्यवस्था का तुलनात्मक विश्लेषण कीजिए।

उ० पूँजीवादी, समाजवादी तथा मिश्रित अर्थव्यवस्था का तुलनात्मक विश्लेषण–

आधार	पूँजीवाद	समाजवाद	मिश्रित अर्थव्यवस्था
1. सम्पत्ति का अधिकार	व्यक्तियों को निजी सम्पत्ति रखने, प्रयोग करने तथा हस्तान्तरण करने की स्वतन्त्रता होती है।	देश की सम्पूर्ण सम्पत्ति पर राज्य का स्वामित्व होता है। अत: व्यक्तियों को निजी सम्पत्ति का अधिकार प्राप्त नहीं होता।	लोगों को निजी सम्पत्ति का सीमित अधिकार होता है। राज्य सामाजिक हित में निजी सम्पत्ति का अधिग्रहण कर सकता है।
2. आर्थिक असमानताए	निजी लाभार्जन तथा निजी सम्पत्ति के कारण आर्थिक विषमताएँ पाई जाती हैं।	उत्पादन के साधनों पर सरकारी स्वामित्व के कारण आर्थिक समानता पाई जाती है।	इसमें आर्थिक विषमताएँ होती हैं किन्तु सरकार उन्हें विभिन्न उपायों द्वारा कम करती है।
3. वर्ग–संघर्ष	इसमें पूँजीपतियों तथा श्रमिकों में वर्ग–संघर्ष पाया जाता है।	आर्थिक समानता के कारण इस व्यवस्था में वर्ग–संघर्ष नहीं पाया जाता।	इसमें वर्ग–संघर्ष, पूँजीवाद की तुलना में, सीमित मात्रा में पाए जाते हैं।
4. आर्थिक स्थिरता	इसमें व्यापार–चक्रों के आने पर आर्थिक अस्थिरता की स्थिति उत्पन्न हो जाती है।	इसमें व्यापार–चक्रों का खतरा नहीं होता जिस कारण आर्थिक स्थिरता बनी रहती है।	इसमें आर्थिक स्थिरता के लिए सरकार को प्रयास करने पड़ते हैं।

5. केन्द्रीय नियोजन	इसमें केन्द्रीय नियोजन का अभाव होता है।	इसमें केन्द्रीय नियोजन आवश्यक रूप से होता है।	इसमें केन्द्रीय नियोजन आंशिक रूप में होता है।
6. अर्थव्यवस्था का संचालन	पूँजीवादी अर्थव्यवस्था का संचालन स्वचालित 'कीमत संयंत्र' द्वारा किया जाता है।	इसमें 'कीमत संयंत्र' को केन्द्रीय सत्ता द्वारा नियन्त्रित एवं नियमित किया जाता है।	इसका संचालन नियन्त्रित कीमत संयंत्र तथा केन्द्रीय सत्ता दोनों के द्वारा किया जाता है।
7. प्रतियोगिता	इसमें गलाकाट स्वतन्त्र प्रतिस्पर्धा पाई जाती है।	इसमें स्वतन्त्र प्रतिस्पर्द्धा का अभाव होता है।	इसमें नियन्त्रित प्रतियोगिता पाई जाती है।
8. उद्देश्य	उत्पादन के साधनों का प्रयोग निजी लाभ कमाने के लिए किया जाता है।	उत्पादन के साधनों का प्रयोग सामाजिक कल्याण को अधिकतम करने हेतु किया जाता है।	निजी क्षेत्र का उद्देश्य 'लाभ कमाना' जबकि सार्वजनिक क्षेत्र का उद्देश्य 'सामाजिक कल्याण में वृद्धि' होता है।
9. व्यक्तिगत स्वतन्त्रता	इसमें व्यक्ति को व्यवसाय चुनने तथा उपभोग की पूर्ण स्वतन्त्रता होती है।	इसमें व्यक्ति को व्यवसाय चुनने तथा उपभोग की स्वतन्त्रता प्राप्त नहीं होती।	इसमें व्यक्तिगत स्वतन्त्रता को महत्त्व दिया जाता है किन्तु उसे सीमित कर दिया जाता है।
10. उत्पादन के साधनों पर स्वामित्व	इस आर्थिक प्रणाली में उत्पादन के साधनों पर निजी स्वामित्व होता है।	इस आर्थिक प्रणाली में उत्पादन के साधनों पर समाज या राज्य का स्वामित्व होता है।	इस आर्थिक प्रणाली में उत्पादन के साधनों पर सामाजिक तथा निजी दोनों प्रकार का स्वामित्व होता है।

❖ **मानचित्र कार्य**

अध्यापक की सहायता से विद्यार्थी स्वयं करें।

❖ **प्रोजेक्ट कार्य**

अध्यापक की सहायता से विद्यार्थी स्वयं करें।

43 अर्थव्यवस्था के मूल आधार

(उत्पादन, उत्पादन के साधनों में समन्वय, उपभोक्ता की अपेक्षाएँ)

<u>अभ्यास</u>

❖ **बहुविकल्पीय प्रश्न**

उ०– बहुविकल्पीय प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्य पुस्तक के पृष्ठ संख्या—379 व 380 का अवलोकन कीजिए।

❖ **अतिलघु उत्तरीय प्रश्न**

उ०– अतिलघु उत्तरीय प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्य पुस्तक के पृष्ठ संख्या—380 का अवलोकन कीजिए।

❖ **लघु उत्तरीय प्रश्न**

1. उत्पादन के साधन और साधक में अन्तर बताइए।

उ०– **उत्पादन के साधन और साधक में अन्तर–** जिन वस्तुओं और सेवाओं के सहयोग से उत्पादन होता है, उन्हें उत्पादन के साधन कहते हैं। भूमि, श्रम, पूँजी संगठन तथा उद्यम उत्पादन के साधन हैं। जबकि वे व्यक्ति जो उत्पादन के साधनों के स्वामी होते हैं तथा जो उत्पादन के साधनों को प्रदान करते हैं, उन्हें उत्पादन के साधक कहते हैं। भूमिपति, श्रमिक, पूँजीपति, संगठनकर्ता तथा उद्यमी उत्पादन के साधक हैं।

2. उत्पादन इकाई किसे कहते हैं?

उ०– **उत्पादन इकाई–** उत्पादन के विभिन्न साधनों को जो व्यक्ति, कम्पनी, संगठन, एजेंसी या सरकार एकत्रित करके उनके द्वारा विभिन्न प्रकार की वस्तुओं और सेवाओं का उत्पादन करती है या उनके मूल्य में वृद्धि की प्रक्रिया को पूर्ण करती है, उसे उत्पादन इकाई कहते हैं।

3. उत्पादन की मूल समस्याओं के केवल नाम बताइए।

उ०– उत्पादन की मूल समस्याएँ निम्नलिखित हैं—

(i) उत्पादन कैसे किया जाए?
(ii) उत्पादन किसके लिए किया जाए?
(iii) क्या तथा कितना उत्पादन किया जाए?
(iv) संसाधनों का कुशलतम प्रयोग कैसे किया जाए?
(v) आर्थिक विकास की गति को कैसे बढ़ाया जाए?

4. आर्थिक नियोजन क्या है?

उ०– **आर्थिक नियोजन–** 'मिश्रित अर्थव्यवस्था' में आर्थिक क्रियाओं का संचालन तथा आर्थिक समस्याओं का समाधान, आर्थिक नियोजन तथा नियन्त्रित कीमत संयंत्र दोनों के द्वारा किया जाता है। देश के तीव्र आर्थिक विकास हेतु **'आर्थिक नियोजन तकनीक'** को अपनाया जाता है। देश की विकास सम्बन्धी आवश्यकताओं तथा प्राथमिकताओं को ध्यान में रखकर सरकार की केन्द्रीय नियोजन सत्ता (भारत में योजना आयोग) द्वारा देश के तीव्र सन्तुलित आर्थिक विकास हेतु समयबद्ध विकास—योजनाएँ तैयार की जाती हैं। विकास—योजनाओं के अन्तर्गत सार्वजनिक तथा निजी क्षेत्रों की भूमिका निश्चित कर दी जाती है ताकि दोनों क्षेत्र निर्धारित विकास—लक्ष्यों को प्राप्त कर सकें।

5. कीमत संयंत्र किसे कहते हैं?

उ०– **कीमत संयंत्र–** मिश्रित अर्थव्यवस्था में 'कीमत संयंत्र' को स्वतन्त्रतापूर्वक कार्य नहीं करने दिया जाता। वस्तुत: इस आर्थिक प्रणाली में **'दोहरी कीमत नीति'** अपनायी जाती है। कुछ वस्तुओं की कीमतें स्वतन्त्र माँग व पूर्ति की सापेक्ष शक्तियों द्वारा निर्धारित होती हैं। कुछ आवश्यक वस्तुएँ सरकार द्वारा **राशन की दुकानों** के माध्यम से कम कीमतों पर बेची जाती हैं, जैसे— गेहूँ, चावल, चीनी, मिट्टी का तेल, सस्ता कपड़ा इत्यादि। इसके अतिरिक्त सरकार कुछ वस्तुओं की **समर्थन कीमतों** के निर्धारण द्वारा कीमतों में अत्यधिक उतार—चढ़ाव को नियन्त्रित करने का प्रयास करती है।

❖ विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

1. उत्पादन के साधनों में समन्वय पर प्रकाश डालिए।

उ०– **उत्पादन के साधनों में समन्वय–** प्रत्येक साधन का उत्पादन के कार्य में अपना एक विशेष ही महत्व होता है। उत्पादन का मुख्य आधार भूमि को माना गया है। यह कहना गलत न होगा कि भूमि के बिना किसी भी प्रकार का उत्पादन कार्य सम्भव नहीं है। इसके साथ—साथ एक महत्वपूर्ण तथ्य यह भी है कि भूमि का अस्तित्व श्रम के बिना कुछ भी नहीं है। प्राकृतिक संसाधनों में समुचित उपयोग के लिए श्रम शक्ति का होना अतिआवश्यक है। श्रम के लिए पूँजी की आवश्यकता होती है। पूँजी की सहायता से सफल उत्पादन तभी सम्भव है जबकि संगठन कुशल व सार्थक हो। अन्य शब्दों में हम कह सकते हैं कि भूमि, श्रम तथा पूँजी में सहयोग तथा समन्वय स्थापित करने के लिए संगठन की नितान्त आवश्यकता है। उत्पादन का स्तर बढ़ने पर व्यवसाय सम्बन्धी जोखिम तथा अनिश्चितता बढ़ जाती है। ऐसी अवस्था में उद्यम की उपयोगिता भी बढ़ जाती है। अत: उत्पादन का प्रत्येक साधन अपने स्थान पर महत्वपूर्ण होता है। किसी निश्चित उद्देश्य या उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए उत्पादन के विभिन्न साधनों में अनुकूलतम संयोग तथा समन्वय स्थापित करके उनसे उत्पादन करवाने का कार्य संगठनकर्ता द्वारा किया जाता है। संगठन के अभाव में उत्पादन—कार्य तथा उत्पादन के साधन अव्यवस्थित रहते हैं। इसी कारण संगठन को उत्पादन का प्राण भी कहा गया है।

2. उत्पादन की मूल समस्याओं की विवेचना कीजिए।

उ०– **उत्पादन की मूल समस्याएँ–** विभिन्न प्रकार की आर्थिक क्रियाओं के योग को अर्थव्यवस्था का नाम दिया गया है। अर्थव्यवस्था चाहे विकसित हो या फिर विकासशील, उसके पास अपने साधन होते हैं। ये साधन तो सीमित होते हैं परन्तु उसकी आवश्यकताएँ असीमित होती हैं। साधनों के सीमित होने के कारण आवश्यकताओं को भविष्य के लिए स्थगित कर दिया जाता है या फिर उन्हें छोड़ दिया जाता है। इसी चुनाव की प्रक्रिया के कारण जो समस्याएँ उत्पन्न हो जाती हैं उन्हें आधारभूत या मूलभूत आर्थिक समस्याएँ कहते हैं। प्रत्येक अर्थव्यवस्था की निम्नलिखित पाँच मूलभूत समस्याएँ होती हैं—

(i) उत्पादन कैसे किया जाए?
(ii) उत्पादन किसके लिए किया जाए?
(iii) क्या उत्पादन किया जाए तथा कितना उत्पादन किया जाए?
(iv) संसाधनों का कुशलतम प्रयोग कैसे किया जाए?
(v) आर्थिक विकास की गति को कैसे बढ़ाया जाए?

(i) उत्पादन कैसे किया जाए? प्रत्येक देश (अर्थव्यवस्था) की दूसरी मूलभूत समस्या यह होती है कि उत्पादन कैसे किया जाए। इस सम्बन्ध में मुख्य रूप से निम्न निर्णय लेने पड़ते हैं—

(क) **उत्पादन की तकनीक क्या हो?** उत्पादन के लिए **श्रम प्रधान तकनीक** अपनाई जाए अथवा **पूँजी प्रधान तकनीक** को अपनाया जाए। उदाहरणार्थ, कपड़े का उत्पादन हथकरघा से किया जाए अथवा मशीनों के द्वारा, बिजली का उत्पादन पानी से किया जाए या कोयले, परमाणु अथवा सूर्य से।

(ख) **उत्पादन का पैमाना क्या हो?** उत्पादन छोटे स्तर पर किया जाए अथवा बड़े स्तर पर। उदाहरणार्थ, उत्पादन कुटीर व लघु उद्योगों द्वारा किया जाए अथवा बड़े उद्योगों (बड़ी—बड़ी मशीनों) द्वारा।

(ग) **उत्पादन कहाँ किया जाए?** उत्पादन **पिछड़े क्षेत्र में** किया जाए या **विकसित क्षेत्र में**, उत्पादन गाँवों में किया जाए या शहरों में, उत्पादन—इकाइयाँ **कच्चे माल** के स्रोत के निकट स्थापित की जाएँ या **बाजारों** के निकट, उत्पादन **निजी क्षेत्र** में किया जाए या **सार्वजनिक क्षेत्र** में अथवा **संयुक्त क्षेत्र** में।

इस समस्या के समाधान हेतु प्रत्येक अर्थव्यवस्था को उत्पादन करने का ऐसा ढंग अपनाना चाहिए, जिससे न्यूनतम साधनों द्वारा न्यूनतम लागत पर अधिकतम वस्तुओं और सेवाओं का उत्पादन किया जा सके।

(ii) उत्पादन किसके लिए किया जाए? इस समस्या के मुख्य पहलू निम्नलिखित हैं—

(क) उत्पादन **धनी वर्ग** के लिए किया जाए या **निर्धन वर्ग** के लिए।

(ख) उत्पादन **वर्तमान पीढ़ी** के लिए किया जाए अथवा **भावी पीढ़ी** के लिए।

(ग) उत्पादन **सुरक्षा** के लिए किया जाए अथवा **समृद्धि** के लिए।

(घ) अति अल्पकाल में वस्तुओं के **वितरण** तथा **राशनिंग** की व्यवस्था कैसे की जाए।

इस समस्या के समाधान के लिए प्रत्येक देश की सरकार को ऐसी राजकोषीय नीतियाँ अपनानी चाहिए जिनसे राष्ट्रीय आय के वितरण में असमानताएँ न्यूनतम हो सकें और राष्ट्रीय उत्पादन का वितरण न्यायोचित एवं कुशल हो सके।

(iii) क्या तथा कितना उत्पादन किया जाए? प्रत्येक अर्थव्यवस्था (राष्ट्र) के सम्मुख एक समस्या यह होती है कि वह अपने सीमित साधनों से किन—किन वस्तुओं का उत्पादन करे और कितनी मात्रा में करे? इस समस्या के समाधान के लिए देश को निम्नांकित चार वर्गों की वस्तुओं के बीच चयन करना होता है—

(क) **उपभोक्ता वस्तुएँ;** जैसे— गेहूँ, चावल, चीनी, कपड़ा, चाय इत्यादि अथवा **उत्पादक वस्तुएँ;** जैसे— मशीन, औजार, ट्रैक्टर, खाद, बीज आदि।

(ख) **अनिवार्य वस्तुएँ;** जैसे— रोटी, कपड़ा, मकान, दवाइयाँ आदि अथवा **विलासिता वस्तुएँ;** जैसे— कार, आभूषण, लिपिस्टिक, एयर कण्डीशनर आदि।

(ग) **नागरिक वस्तुएँ;** जैसे— रेडियों, टेलीविजन, स्कूटर,कपड़े, जूते आदि अथवा **युद्ध-सामग्री;** जैसे— टैंक, तोप, मशीनगन, लड़ाकू विमान, गोला बारूद आदि।

(घ) **निजी वस्तुएँ;** जैसे— व्यक्तियों के मकान, कार, स्कूटर, वस्त्र आदि अथवा **सार्वजनिक वस्तुएँ;** जैसे— सड़क, पार्क, सरकारी स्कूल व अस्पताल आदि।

वास्तव में यह समस्या साधनों के आवंटन की समस्या होती है। यह निश्चित कर लेने के पश्चात कि किन वस्तुओं और सेवाओं का उत्पादन करना है, अर्थव्यवस्था को यह भी तय करना होता है कि इन वस्तुओं का कितनी मात्रा में उत्पादन करना है।

माँग तथा पूर्ति तर्क– माँग और पूर्ति दोनों पक्ष यह निश्चित करते हैं कि क्या और कितना उत्पादन किया जाए। यहाँ 'माँग' से तात्पर्य वस्तु—बाजार में उपभोक्ताओं द्वारा किसी वस्तु की माँगी जाने वाली मात्रा से है। 'पूर्ति' से आशय उत्पादन—इकाइयों द्वारा वस्तु की उत्पादित मात्रा से है। उत्पादक किसी वस्तु का उतनी मात्रा में उत्पादन करते हैं जो उन्हें सर्वाधिक लाभ प्रदान करती हैं।

(iv) साधनों का कुशलतम उपयोग कैसे किया जाए? प्रत्येक देश के सामने एक समस्या यह रहती है कि वह सीमित साधनों का प्रयोग अधिकतम कुशलता के साथ कैसे करे। अर्थात् उत्पादन के विभिन्न साधनों को विभिन्न उपयोगों और व्यवसायों में किस प्रकार बाँटा जाए ताकि उनसे अधिकतम उत्पादन प्राप्त हो सके। कई बार उत्पादन में वृद्धि करने के लिए सीमित साधनों को एक व्यवसाय से हटाकर दूसरे व्यवसाय में लगाया जाता है। दूसरे शब्दों में, अर्थव्यवस्था के सामने यह समस्या रहती है कि साधनों को कैसे पूर्ण रोजगार प्रदान किया जाए, अर्थात् साधनों की बेकारी किस प्रकार दूर की जाए। इस प्रकार यह समस्या रोजगार से सम्बन्धित है।

(v) आर्थिक विकास की गति को कैसे बढ़ाया जाए? प्रत्येक अर्थव्यवस्था उच्चतम विकास—दर प्राप्त करना चाहती है। इसके लिए उसे कई महत्वपूर्ण निर्णय लेने पड़ते हैं— बचत व निवेश दर कितनी हो? उत्पादन की नई विधियों का किस

प्रकार विकास तथा उपयोग किया जाए इत्यादि? एक अर्थव्यवस्था नई तकनीकों का प्रयोग करके तथा उत्पादन—स्तर को बढ़ाकर आर्थिक विकास की गति को तीव्र कर सकती है।

निष्कर्ष– एक अर्थव्यवस्था की मूल आर्थिक समस्या सीमित साधनों के विभिन्न प्रयोगों के बीच चयन की समस्या है। दूसरे शब्दों में, प्रत्येक अर्थव्यवस्था वैकल्पिक प्रयोग वाले सीमित साधनों और असीमित आवश्यकताओं के बीच इस प्रकार का सम्बन्ध स्थापित करना चाहती है, जिससे अधिकतम सन्तुष्टि प्राप्त हो सके और जनता का जीवन—स्तर उन्नत हो सके।

3. आर्थिक समस्या का समाधान किस प्रकार सम्भव है ? सविस्तार बताइए।

उ०– **आर्थिक समस्या का समाधान–** आर्थिक समस्याओं का समाधान निम्न प्रकार से किया जाता है—

(i) **पूँजीवाद में कीमत संयंत्र द्वारा आर्थिक समस्या का हल–** आर्थिक क्रियाओं का संचालन पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में कीमत प्रणाली द्वारा किया जाता है, इसमें केन्द्रीय सत्ता की कोई भूमिका नहीं होती है। कीमत प्रणाली की प्रकृति स्वचालित होती है। कीमत प्रणाली से आशय है कि उत्पादन, उपभोग, क्रय—विक्रय, बचत, निवेश, वितरण आदि से सम्बन्धित निर्णय बिना बाहरी हस्तक्षेप के माँग व पूर्ति की शक्तियों द्वारा कीमत व्यवहार के आधार पर लिए जाते हैं। पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में कीमत संयंत्र ही अर्थव्यवस्था के संचालन एवं समन्वय का पूरा कार्य स्वचालित रूप में करता है। उत्पादक तथा उपभोक्ता पूँजीवादी प्रणाली के दो स्वतन्त्र पक्ष होते हैं। उत्पादकों का पूर्ति पक्ष होता है तथा उपभोक्ताओं का माँग पक्ष होता है, उत्पादन का स्तर व वितरण किस प्रकार का हो, उत्पादन की मात्रा कितनी होनी चाहिए, जैसी मूलभूत समस्याओं का समाधान कीमत संयंत्र द्वारा होता है।

(ii) **मिश्रित अर्थव्यवस्था में आर्थिक समस्या का हल–** जिस अर्थव्यवस्था में पूँजीवादी तथा समाजवादी दोनों ही प्रकार की अर्थव्यवस्था के तत्वों का समावेश होता है, उसे मिश्रित अर्थव्यवस्था कहते हैं। अन्य शब्दों में हम कह सकते हैं कि मिश्रित अर्थव्यवस्था में निजी और सार्वजनिक दोनों ही क्षेत्रों का सह—अस्तित्व होता है।

(iii) **समाजवाद में आर्थिक नियोजन द्वारा आर्थिक समस्या का हल–** समाजवादी अर्थव्यवस्था में उत्पादन के साधनों पर सरकार का स्वामित्व तथा नियन्त्रण होता है। साधनों का प्रयोग सरकार द्वारा सामाजिक कल्याण में वृद्धि के लिए किया जाता है। इस प्रकार समाजवादी अर्थव्यवस्था सरकार द्वारा नियन्त्रित अर्थव्यवस्था होती है। इसमें सरकार ही उत्पादक के रूप में कार्य करती है। ऐसी अर्थव्यवस्था में उपभोक्ता स्वतन्त्र नही होते।

समाजवादी अर्थव्यवस्था में सभी महत्वपूर्ण आर्थिक निर्णय एक केन्द्रीय नियोजन सत्ता (सरकारी संस्था) द्वारा लिए जाते हैं ताकि उपलब्ध संसाधनों का अनुकूलतम उपयोग करके अधिकतम सामाजिक कल्याण प्राप्त किया जा सके। आर्थिक नियोजन द्वारा ही यह तय किया जाता है कि क्या उत्पन्न किया जाए, कितनी मात्रा में उत्पादन किया जाए, कैसे उत्पादन किया जाए, उत्पादन का वितरण किस प्रकार किया जाए इत्यादि।

4. सार्वजनिक वितरण प्रणाली पर प्रकाश डालिए।

उ०– **सार्वजनिक वितरण प्रणाली–** 'सार्वजनिक वितरण प्रणाली' से तात्पर्य एक ऐसी प्रणाली से है, जिसमें कुछ उपभोक्ता—वस्तुओं को (सामान्यतया अनिवार्य वस्तुओं) इस प्रकार वितरित किया जाता है कि वे उपभोक्ताओं को निर्धारित कीमतों पर उचित मात्रा में प्राप्त हो सकें। दूसरे शब्दों में, 'सार्वजनिक वितरण प्रणाली' एक ऐसी व्यवस्था है, जिसके अन्तर्गत दैनिक उपभोग की कुछ आवश्यक वस्तुओं को अधिक मात्रा में प्राप्त करके उचित मूल्य की दुकानों की शृंखला द्वारा उपभोक्ताओं को उपलब्ध कराया जाता है।

सार्वजनिक वितरण प्रणाली का मुख्य उद्देश्य राशन की दुकानों, उचित मूल्य की दुकनों और नियन्त्रित कीमतों की दुकानों द्वारा कम कीमतों पर गेहूँ, चावल, चीनी, खाद्य, तेल, सॉफ्ट कोक और मिट्टी का तेल जैसी अनिवार्य वस्तुएँ उपलब्ध कराना है। इस व्यवस्था को कल्याणकारी कार्यक्रम का दर्जा दिया गया है। सार्वजनिक वितरण प्रणाली गरीबों को **खाद्य सुरक्षा** प्रदान करने के लिए सरकार की आर्थिक नीति का एक प्रमुख अंग है। इसके माध्यम से सरकार देश के आर्थिक विकास को जन—कल्याण की दिशा में मोड़ सकती है।

मुख्य अंग– भारत में सार्वजनिक वितरण प्रणाली के मुख्य अंग निम्नलिखित है—

(i) उचित मूल्य या राशन की दुकानें, (ii) सहकारी उपभोक्ता भण्डार,
(iii) नियन्त्रित कपड़े की दुकानें, (iv) सॉफ्ट कोल डिपो,
(v) सुपर बाजार, (vi) मिट्टी के तेल के विक्रेता।

लक्षित सार्वजनिक वितरण प्रणाली– अत्यन्त गरीब परिवारों को न्यूनतम मात्रा में अनाज उपलब्ध कराने की पक्की व्यवस्था के रूप में भारत सरकार ने जून, 1997 में 'लक्षित सार्वजनिक वितरण प्रणाली' प्रारम्भ की। यह प्रणाली बी०पी०एल०और ए०पी०एल० परिवारों के लिए द्विटायर आर्थिक सहायता प्राप्त कीमत निर्धारण संरचना का अनुपालन

करती है। इस व्यवस्था के अन्तर्गत बी०पी०एल० परिवारों को विशेष कार्ड जारी किए जाते हैं और उन्हें अत्यधिक सब्सिडी प्राप्त कीमतों पर खाद्यात्र बेचे जाते हैं किन्तु ए०पी०एल० परिवारों के लिए आवंटन केन्द्रीय पूल में स्टॉक की उपलब्धता के आधार पर किए जाते हैं।

सरकार का अनुमान है कि इससे गरीबी—रेखा से नीचे रहने वाले (बी०पी०एल०) लगभग छ: करोड़ परिवार लाभान्वित होंगे।

सार्वजनिक वितरण प्रणाली के दोष– भारत की सार्वजनिक वितरण प्रणाली के प्रमुख दोष निम्नांकित हैं—

(i) **वस्तुओं का अपर्याप्त स्टॉक–** उचित मूल्यों की दुकानों पर अनिवार्य वस्तुओं का पर्याप्त स्टॉक नहीं रहता।

(ii) **चोरी से विक्रय–** वस्तुओं को चोरी से खुले बाजार में बेच दिया जाता है।

(iii) **सरकारी तन्त्र में व्याप्त दोष–** सरकारी तन्त्र में भ्रष्टाचार, लालफीताशाही तथा अफसरशाही का बोलबाला रहता है।

(iv) **सीमति क्षेत्र में लागू–** इस व्यवस्था का सुदूर ग्रामीण क्षेत्रों तक विस्तार नहीं किया जा सका है।

सुधार के लिए सुझाव– सार्वजनिक वितरण प्रणाली में सुधार के लिए निम्नलिखित उपाय किए जा सकते हैं—

(i) **विभिन्न क्रियाओं में समन्वय–** इस प्रणाली के माध्यम से प्रदान की जाने वाली वस्तुओं के उत्पादन, प्राप्ति, संग्रहण तथा वितरण सम्बन्धी क्रियाओं में कारगर समन्वय स्थापित किया जाए।

(ii) **वस्तुओं के पर्याप्त भण्डार–** वस्तुओं के पर्याप्त बफर स्टॉक बनाए जाएँ।

(iii) **नियमित पूर्ति–** वस्तुओं की पूर्ति नियमित रूप से की जाए।

(iv) **वितरण–लागत में कमी–** वस्तुओं की वितरण—लागत को न्यूनतम करने के सभी सम्भव उपाय किए जाएँ।

(v) **समय–समय पर निरीक्षण–** इस व्यवस्था के कार्यकरण का समय—समय पर समुचित निरीक्षण किया जाए।

(vi) **सहकारी संस्थाओं को सुदृढ़ करना–** विपणन सहकारी समितियों तथा सहकारी उपभोक्ता भण्डारों को सुदृढ़ किया जाए।

(vii) **प्रणाली का अछूते क्षेत्रों में विस्तार–** इस प्रणाली का देश के दूरस्थ तथा पिछड़े क्षेत्रों में विस्तार किया जाए।

❖ **मानचित्र कार्य**

अध्यापक की सहायता से विद्यार्थी स्वयं करें।

❖ **प्रोजेक्ट कार्य**

अध्यापक की सहायता से विद्यार्थी स्वयं करें।

44 भारतीय अर्थव्यवस्था की मूल प्रवृतियाँ
(आर्थिक, सामाजिक एवं राजनीतिक)

अभ्यास

❖ **बहुविकल्पीय प्रश्न**

उ०– बहुविकल्पीय प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्य पुस्तक के पृष्ठ संख्या—385 का अवलोकन कीजिए।

❖ **अतिलघु उत्तरीय प्रश्न**

उ०– अतिलघु उत्तरीय प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्य पुस्तक के पृष्ठ संख्या—385 का अवलोकन कीजिए।

❖ **लघु उत्तरीय प्रश्न**

1. **भारत की अर्थव्यवस्था का संक्षिप्त परिचय दीजिए।**

उ०– भारतीय अर्थव्यवस्था वर्तमान समय में एक अल्पविकसित अर्थव्यवस्था है। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि भारतीय जनसंख्या का एक बड़ा भाग दीनता की अवस्था में अपना जीवन व्यतीत कर रहा है। भारत में निर्धनता का रोग तीव्र होने के साथ—साथ चिरस्थायी भी है। भारत में प्रचुर मात्रा में प्राकृतिक संसाधन मौजूद हैं, फिर भी हम अल्पविकसित हैं। क्षेत्रफल की दृष्टि से भारत का विश्व में सातवाँ स्थान है तथा जनसंख्या की दृष्टि से दूसरा। भारत के पास संसार के कुल भू—क्षेत्र का 2.4 प्रतिशत भाग है। भारत की जनसंख्या सन् 2011 की जनगणना के अनुसार 121.7 करोड़ है। भारत विश्व के 2.4% क्षेत्र पर संसार की 1.5% आय के द्वारा 17.5% जनसंख्या को पोषित कर रहा है।

2. भारत का परम्परागत समाज कैसा है?

उ०– भारत का परम्परागत समाज– भारत के परम्परावादी समाज में जातिवाद, भाग्यवादिता, विभिन्न सामाजिक प्रथाएँ एवं कुरातियाँ, अन्धविश्वास आदि बुरी तरह से व्याप्त हैं। जिनका आर्थिक विकास पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है। अधिकांश भारतवासी विशेषकर ग्रामीण क्षेत्रों के निवासी सामाजिक रीति–रिवाजों (मृतक भोज, विवाह पर बड़ी दावतें आदि) को निभाने, आभूषणों की खरीद आदि अनुत्पादक कार्यों पर सामर्थ्य से भी अधिक धनराशि खर्च कर डालते हैं और प्राय: ऋणग्रस्त ही बने रहते हैं।

3. भारत की जलवायु संक्षेप में बताइए।

उ०– भारत की जलवायु– भारत के विभिन्न स्थानों पर भिन्न–भिन्न जलवायु पाई जाती है। मार्सडैन के अनुसार–'विश्व की समस्त जलवायु भारत में मिल जाती है।' उत्तरी भारत में जलवायु गर्मियों में अधिक गर्म और सर्दियों में अधिक ठण्डी होती है। दक्षिणी भारत में तापमान प्राय: ऊँचा रहता है और इसलिए अपेक्षाकृत कम सर्दी पड़ती है। समुद्री किनारों पर बसे क्षेत्रों में जलवायु शीतोष्ण रहती है। वर्षा की दृष्टि से भारत में अत्यधिक वर्षा वाले क्षेत्र, न्यूनतम वर्षा वाले क्षेत्र, अधिक वर्षा वाले क्षेत्र तथा कम वर्षा वाले क्षेत्र पाए जाते है। भारत में जलवायु की विविधता के कारण ही विभिन्न प्रकार की वनस्पति, पशु तथा खनिज व कृषि पदार्थ पाए जाते हैं।

❖ विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

1. भारतीय अर्थव्यवस्था की मूलभूत विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।

उ०– भारतीय अर्थव्यवस्था की मूलभूत विशेषताएँ या लक्षण– योजना काल में भारतीय अर्थव्यवस्था के स्वरूप में कुछ मूलभूत परिवर्तन हुए हैं, जिनके आधार पर भारतीय अर्थव्यवस्था को विकासोन्मुख कहा जाता है। संक्षेप में भारतीय अर्थव्यवस्था की प्रमुख मूलभूत विशेषताएँ या लक्षण निम्नलिखित हैं–

(अ) आर्थिक विशेषताएँ–

(i) भारतीय अर्थव्यवस्था कृषि प्रधान है। यहाँ की कुल श्रम शक्ति का लगभग 63.7% भाग कृषि कार्य में संलग्न है। इसके अतिरिक्त राष्ट्रीय आय में प्राथमिक क्षेत्र का योगदान भी लगभग 28% है। यह स्थिति देश में पिछड़ेपन का प्रतीक है।

(ii) एक कृषि प्रधान देश होते हुए भी भारत में कृषि उत्पादकता का स्तर निम्न है। यहाँ प्रति एकड़ तथा प्रति व्यक्ति दोनों ही रूपों में उत्पादकता का स्तर अत्यन्त निम्न है। इसके मुख्य कारण हैं– खेतों का उपविभाजन एवं अपखण्डन, दोषपूर्ण भूमि–व्यवस्था, कृषि यन्त्रीकरण का अभाव, समुचित खाद, बीज एवं सिंचाई सुविधाओं का अभाव तथा सहकारी आन्दोलन की धीमी प्रगति आदि।

(iii) विश्व के विकसित राष्ट्रों की तुलना में भारत में प्रति व्यक्ति आय का स्तर बहुत कम है। 'विश्व बैंक रिपोर्ट', 2010 के अनुसार भारत की प्रति व्यक्ति आय केवल 1070 डॉलर वार्षिक है। भारत की तुलना में प्रति व्यक्ति आय का स्तर स्विट्जरलैण्ड में 93 गुना, अमेरिका में 67 गुना, जापान में 75 गुना और इंग्लैण्ड में 50 गुना है।

(iv) भारत में पूँजी का अभाव है और पूँजी निर्माण की दर निम्न है। इसका मूल कारण बचत क्षमता, बचत संस्थाओं एवं विनियोग प्रेरणाओं की कमी है। पूँजी का अभाव ही हमारी निर्धनता का मूल कारण है।

(v) भारत में आय एवं सम्पत्ति के असमान वितरण के कारण पर्याप्त आर्थिक विषमताएँ विद्यमान हैं। भारतीय अर्थव्यवस्था लोकतान्त्रिक व्यवस्था है। परन्तु फिर भी यह व्यवस्था पूर्णतया आर्थिक विषमता को दूर करने में सफल नहीं हुई है। दूसरी पंचवर्षीय योजना के अनुसार समाजवादी समाज की स्थापना के लक्ष्य को स्वीकार करने के बाद भी इस दिशा में कोई विशेष प्रगति दिखाई नहीं देती। राष्ट्रीय न्यादर्श सर्वेक्षण के अनुसार 39% ग्रामीण जनसंख्या के पास ग्रामीण परिसम्पत्ति का केवल 5% भाग है, जबकि दूसरी ओर 8% परिवारों के पास कुल ग्रामीण परिसम्पत्ति का 46% भाग विद्यमान है।

(vi) भारतीय समाज अभी भी परम्परावादी है। भाग्यवादिता, जातिवाद एवं रीति–रिवाजों के प्रति अन्धविश्वास देश के आर्थिक विकास में अवरोध उत्पन्न करते हैं। प्रदर्शन प्रभाव अपव्यय को प्रोत्साहित करता है। सामाजिक संस्थाएँ एवं धार्मिक मूल्य अकर्मण्यता को आश्रय देते हैं।

(vii) देश में जन कल्याण एवं सामाजिक सुरक्षा सम्बन्धी सुविधाओं का समुचित विकास नहीं हुआ है।

(viii) परिवहन एवं संचार अपर्याप्त एवं अविकसित हैं।

(ix) राजनीतिक स्थायित्व का अभाव है तथा प्रशासनिक अकुशलता एवं भ्रष्टाचार का बोलबाला है।

(x) देश में योग्य, कुशल एवं दूरदर्शी साहसियों (उद्यमियों) का अभाव है। यह देश के आर्थिक विकास में एक महत्त्वपूर्ण बाधा है, क्योंकि साहसी वर्ग ही उत्पादन कार्य को संचालित करता है।

(xi) भारतीय अर्थव्यवस्था की मुख्य जनांकिकीय विशेषताएँ निम्नांकित हैं–

(क) भारत में जनसँख्या वृद्धि की दर अत्यधिक ऊँची (1.93%) है।
(ख) 2011की जनगणना के अनुसार भारत में जन्म दर तथा मृत्यु दर क्रमश: 22.5 प्रति हजार तथा 7.2 प्रति हजार है।
(ग) भारत में जनाधिक्य की स्थिति पाई जाती है।
(घ) जीवन प्रत्याशी निम्न (लगभग 65 वर्ष) है।

(xii) यद्यपि भारत वन, खनिज व शक्ति के साधनों की दृष्टि से एक सम्पन्न देश है, तथापि इनका उचित रूप से दोहन नहीं हो पाया है। भूगर्भ अनुसन्धानों की कमी के कारण भूगर्भ में छिपे अनेक संसाधनों की जानकारी ही नहीं है। उपर्युक्त उपसंरचना के अभाव में ये साधन अभी भी अल्प—प्रयुक्त पड़े हैं।

(xiii) भारतीय अर्थव्यवस्था आर्थिक दुष्चक्रों में फँसी है, जिससे विकास मार्ग में अनेक प्रकार की बाधाएँ उत्पन्न हो जाती हैं। लोगों की निर्धनता उनके और अधिक निर्धन होने का कारण बन गई है।

(xiv) वर्ष 1972–73 व 1976–77 को छोड़कर भारत का विदेशी व्यापार निरन्तर प्रतिकूल रहा है। इससे देश में विदेशी विनियम का संकट उत्पन्न हो गया है। विदेश व्यापार की प्रतिकूलता का मुख्य कारण आयातों का निर्यात से अधिक होना है।

(xv) प्राविधिक ज्ञान एवं अनुसन्धान का आर्थिक विकास में विशेष महत्त्व है। परन्तु देश में अभी तक उनका उचित एवं पर्याप्त विकास नहीं हो पाया है। कृषि उद्योग एवं सेवा क्षेत्र में निम्न उत्पादकता का प्रमुख कारण उत्पादन क्षेत्र में पिछड़ी तकनीक का प्रयोग ही है।

(xvi) आर्थिक समृद्धि के लिए आधारभूत उद्योगों का विकास एक अनिवार्यता है। भारत में उपभोक्ता उद्योगों का तो तेजी से विकास हुआ है लेकिन पूँजीगत व आधारभूत उद्योग अभी भी समुचित रूप से विकसित नहीं हो पाए हैं। आयोजन की अवधि में जो थोड़ी बहुत वृद्धि हुई है, उसने निरन्तर बढ़ती जनसंख्या को आत्मसात् कर लिया है।

(xvii) भारत में व्यापक बेरोजगारी, अर्द्ध—बेरोजगारी एवं अदृश्य बेरोजगारी विद्यमान है। योजना काल में बेरोजगारी में निरन्तर वृद्धि हुई है। बेरोजगार व्यक्तियों की निरन्तर बढ़ती जनसंख्या, प्रति व्यक्ति उत्पादकता एवं आय के स्तर को कम करती है।

उपर्युक्त विशेषताएँ मूलत: विकासशील अर्थव्यवस्था की हैं। अत: भारत की गणना विश्व के विकासशील देशों में ही की जाती है।

(ब) सामाजिक विशेषताएँ– प्रमुख सामाजिक विशेषताएँ निम्नांकित हैं—

(i) परम्परागत समाज– भारत के परम्परावादी समाज में जातिवाद, भाग्यवादिता, विभिन्न सामाजिक प्रथाएँ एवं कुरातियाँ, अन्धविश्वास आदि बुरी तरह से व्याप्त हैं। जिनका आर्थिक विकास पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है। अधिकांश भारतवासी विशेषकर ग्रामीण क्षेत्रों के निवासी सामाजिक रीति—रिवाजों (मृतक भोज, विवाह पर बड़ी दावतें आदि) को निभाने, आभूषणों की खरीद आदि अनुत्पादक कार्यों पर सामर्थ्य से भी अधिक धनराशि खर्च कर डालते हैं और प्राय: ऋणग्रस्त ही बने रहते हैं।

(ii) साक्षरता का निम्न स्तर– सन् 2011 की जनगणना के अनुसार, भारत में साक्षरता का प्रतिशत 73.0% है। इस प्रकार अभी भी लगभग 27% लोग निरक्षर हैं। महिला साक्षरता का प्रतिशत 64.6% जबकि पुरुष साक्षरता का 80.9% है। इसके विपरीत, अधिकांश विकसित देशों में लगभग शत—प्रतिशत साक्षरता पाई जाती है। भारत में साक्षरता की कमी के कारण विकास—मार्ग में कई सामाजिक अवरोधक कार्यशील हैं।

(iii) स्त्रियों का निम्न स्थान– भारत में पर्दा—प्रथा, निरक्षरता, बाल—विवाह, बहु—विवाह, दहेज—प्रथा आदि सामाजिक कुरीतियों के कारण कार्यशील जनसंख्या के रूप में नारी का प्रतिशत अपेक्षाकृत कम है।

(स) राजनीतिक विशेषताएँ– अधिकांश अल्प—विकसित राष्ट्रों में निम्न राजनीतिक लक्षण पाए जाते हैं—

(i) राजनीतिक अधिकारों से अनभिज्ञता– शिक्षा की कमी के कारण अल्प—विकसित राष्ट्रों की जनता में राजनीतिक जागरूकता नहीं पाई जाती। फिर इन राष्ट्रों की अधिकांश जनता, अत्यधिक निर्धन होने के कारण, अपनी अनिवार्य—आवश्यकताओं की सन्तुष्टि में ही लगी रहती है। अपने राजनीतिक अधिकारों के बारें में सोचने के लिए उसे समय ही नहीं मिलता।

(ii) प्रशासनिक अकुशलता– इन देशों में योग्य, कुशल एवं ईमानदार प्रशासकों का अभाव है। अनेक देशों में भ्रष्टाचार तथा लालफीताशाही चरम सीमा पर है। इन देशों के राजनेता भी भ्रष्टाचार में बुरी तरह से लिप्त हैं। राजनीतिक भ्रष्टाचार में निरन्तर वृद्धि के कारण इन देशों में अनेक विकास योजनाओं को कार्यान्वित किए जाने के बाद भी उन्हे पूर्ण नहीं किया जा सका है।

(iii) दुर्बल राष्ट्र– ये राष्ट्र कई दृष्टि से निर्बल होते हैं— (क) इनमें आधुनिक अस्त्र—शास्त्रों से सुसज्जित सैन्य—व्यवस्था का अभाव होता है, जिस कारण इनमें विदेशी आक्रमण का भय बना रहता है। (ख) इन राष्ट्रों की आन्तरिक

सुरक्षा—व्यवस्था भी अत्यन्त दुर्बल होती है। जिस कारण कुछ राष्ट्रों में आतंकवादियों तथा अराजकतवादियों को बल मिला है। (ग) ऐसे राष्ट्रों में राजनीतिक अस्थिरता के कारण कभी भी सरकारों का तख्ता पलट जाता है।

2. सिद्ध कीजिए ''भारत एक धनी देश है, परन्तु यहाँ के निवासी निर्धन हैं।''

उ०– **भारत एक धनी देश है परन्तु यहाँ के निवासी निर्धन हैं–** किसी भी देश की आर्थिक, सामाजिक एवं भौतिक वृद्धि वहाँ पर उपलब्ध प्राकृतिक साधनों की प्रचुरता तथा उनके समुचित विदोहन पर निर्भर करती है। भारतीय अर्थव्यवस्था के स्वरूप के सम्बन्ध में अर्थशास्त्रियों के विचारों में एक प्रकार का विरोधाभास दिखाई देता है। भारत में प्राकृतिक एवं मानवीय संसाधनों के सन्दर्भ में यह कथन काफी महत्वपूर्ण है— ''भारत एक धनी देश है, जिसमें निर्धन लोग निवास करते हैं।''

इस कथन का प्रथम भाग देश के प्राकृतिक एवं मानवीय संसाधनों की प्रचुरता एवं समृद्धता को दर्शाता है, जबकि दूसरा भाग भारतीय नागरिकों की निम्न आय, निम्न जीवन स्तर एवं अन्धविश्वास को प्रकट करता है।

'भारत एक धनी देश है' इसका अर्थ यह है कि भारत में प्रचुर मात्रा में प्राकृतिक एवं मानवीय संसाधन पाए जाते हैं। दूसरे शब्दों में, भारत को प्रकृति ने पर्याप्त प्राकृतिक संसाधन प्रदान किए हैं। यहाँ भाषा, जाति एवं धार्मिक विश्वासों का संगम ही नहीं पाया जाता अपितु पर्याप्त मात्रा में उर्वर भूमि, भौगोलिक अनुकूलता, उत्तम जलवायु, सदावाहिनी नदियाँ, वन, खनिज एवं पशु की अपार—सम्पदा है। इसी कारण भारत को सोने की चिड़िया कहा जाता रहा है। भारत की सम्पन्नता को निम्न तथ्यों द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है—

(i) भौगोलिक स्थिति– भारत उत्तरी तथा पूर्वी गोलार्द्ध के मध्य में बसा हुआ है। भौगोलिक दृष्टि से इसकी स्थिति अच्छी है। इसके तीन ओर समुद्र है तथा उत्तर में हिमालय पहाड़ है। हिन्द महासागर से उठने वाली हवाएँ हिमालय पर्वत की श्रेणियों से टकराकर उत्तर—पूर्वी भारत में वर्षा करती है। भारत सभी मुख्य व्यापारिक मार्गों का संगम है तथा वायु परिवहन की दृष्टि से भी भारत की स्थिति लाभप्रद है। ये अनुकूल भौगोलिक दशाएँ भारत के अन्तराष्ट्रीय व्यापार में सहायक हैं।

(ii) जलवायु– भारत के विभिन्न स्थानों पर भिन्न—भिन्न जलवायु पाई जाती है। **मार्सडैन** के अनुसार—'विश्व की समस्त जलवायु भारत में मिल जाती है।' उत्तरी भारत में जलवायु गर्मियों में अधिक गर्म और सर्दियों में अधिक ठण्डी होती है। दक्षिणी भारत में तापमान प्राय: ऊँचा रहता है और इसलिये अपेक्षाकृत कम सर्दी पड़ती है। समुद्री किनारों पर बसे क्षेत्रों में जलवायु शीतोष्ण रहती है। वर्षा की दृष्टि से भारत में अत्यधिक वर्षा वाले क्षेत्र, न्यूनतम वर्षा वाले क्षेत्र, अधिक वर्षा वाले क्षेत्र तथा कम वर्षा वाले क्षेत्र पाये जाते है। भारत में जलवायु की विविधता के कारण ही विभिन्न प्रकार की वनस्पति, पशु तथा खनिज व कृषि पदार्थ पाए जाते हैं।

(iii) उर्वर भूमि एवं मिट्टी– भारतीय भूमि कृषि की दृष्टि से अत्यधिक उपजाऊ है। यह अनेक नदियों से सिंचित है। भारत में सात प्रकार की मिट्टियाँ पाई जाती हैं— (क) दोमट मिट्टी, (ख) लाल मिट्टी, (ग) काली मिट्टी, (घ) लैटराइट मिट्टी, (ड) ट्रैप मिट्टी, (च) हिमालय प्रदेश की मिट्टी, (छ) मरुस्थलीय मिट्टी। काली मिट्टी भिन्न—भिन्न प्रकार की फसलों के लिए उपयुक्त है। काली मिट्टी कपास की फसल के लिए प्रसिद्ध है। लैटराइट मिट्टी में चाय, रबड़, कहवा आदि लगाए जाते हैं। इस प्रकार प्रकृति ने भारत को विभिन्न फसलों के लिए भिन्न—भिन्न प्रकार की भूमि प्रदान की है।

(iv) महान हिमालय– भारत के उत्तर में हिमालय पर्वत स्थित है। यह जलवायु को नियन्त्रित करता है तथा देश की पहरेदारी करता है। इससे भारत की सदावाहिनी नदियाँ निकलती हैं जो वर्ष भर जल—पूर्ति करती हैं। यहाँ पर पाए जाने वाले वन भारत के निवासियों को बहुमूल्य लकड़ी, जड़ी—बूटी, फल आदि प्रदान करते हैं।

(v) वन सम्पदा– भारत में वन सम्पदा देश के 633.4 लाख हेक्टेअर क्षेत्र में पाई जाती है। जो देश के कुल क्षेत्रफल का 19.27 प्रतिशत है। वनों से बहुमूल्य लकड़ी, जड़ी—बूटी, खाद, गोंद, कत्था, लाख आदि प्राप्त होता है। वन अनेक उद्योगों—दियासलाई, कागज, प्लाईवुड, पेंट व वार्निश, फर्नीचर, लाख आदि का आधार है।

(vi) खनिज सम्पदा– भारत में खनिज संसाधन प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हैं। भारत में लोहा, कोयला, अभ्रक, मैंगनीज, बॉक्साइट, जिप्सम, चूना, पत्थर आदि के पर्याप्त भण्डार हैं। भारत का विश्व में अभ्रक उत्पादन में प्रथम तथा मैंगनीज में तृतीय स्थान है। यहाँ लोहा व कोयला पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध हैं। यहाँ अणुशक्ति के विकास के लिए आवश्यक खनिज पदार्थ यूरेनियम और थोरियम भी उपलब्ध हैं।

(vii) जल–भण्डार– भारत में हिमालय पर्वत से सदावाहिनी नदियाँ निकलती हैं जिनमें वर्ष भर जल भरा रहता है। नदियों पर बाँध बनाकर सिंचाई की जाती है और जल—विद्युत् बनाई जाती है। भारत में पर्याप्त जल भण्डार होने से कृषि उत्पादन में वृद्धि हुई है और देश का औद्योगिक विकास हुआ है।

(viii) पशु सम्पदा– भारत में विश्व के सबसे अधिक पशु पाए जाते हैं। यहाँ विश्व के लगभग 35 प्रतिशत पशु पाए जाते हैं। पशु कृषि कार्य में सहायक होते हैं। पशुओं से दूध, घी, मांस, खाद, ईंधन, चमड़ा, ऊन आदि प्राप्त होते हैं। पशुओं पर डेयरी, ऊन, चमड़ा, मांस आदि अनेक उद्योग आधारित हैं। पशुओं से 8 प्रतिशत राष्ट्रीय आय प्राप्त होती है।

(ix) शक्ति के साधन– भारत में शक्ति के साधन कोयला, पेट्रोलियम पदार्थ, विद्युत् गैस तथा अणु शक्ति पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध हैं। यहाँ कोयले के पर्याप्त भण्डार हैं। पेट्रोलियम पदार्थों के उत्पादन में भारत में निरन्तर वृद्धि हो रही है। देश में विद्युत् उत्पादन क्षमता बढ़ रही है, विद्युत् उत्पादन में विदेशी एवं निजी कम्पनियाँ प्रवेश कर रही हैं। अणु शक्ति के विकास के लिए थोरियम व यूरेनियम उपलब्ध हैं।

(x) जनशक्ति– भारत का जनशक्ति में विश्व में दूसरा स्थान है। यहाँ की जनसंख्या सन् 2011 की जनगणना के अनुसार 121.7 करोड़ है। यदि देश की श्रम शक्ति का उचित उपयोग कर लिया जाए तो देश का विकास हो जाएगा।

'यहाँ के निवासी निर्धन हैं' भारत प्राकृतिक संसाधनों के दृष्टिकोण से एक धनी देश है, परन्तु प्राकृतिक साधनों का उचित विदोहन नहीं हो पाने के कारण यहाँ के निवासी निर्धन हैं। भारत के निवासियों के निर्धन होने का अनुमान निम्न तथ्यों से लगाया जा सकता है—

(क) प्रति व्यक्ति निम्न आय– भारत में प्रति व्यक्ति आय बहुत कम है। सन् 2005 में भारत की प्रति व्यक्ति आय 720 डॉलर थी। कुछ देशों को छोड़कर भारत की प्रति व्यक्ति आय विश्व में न्यूनतम है। इस कारण यहाँ के निवासी निर्धन हैं। संयुक्त राज्य अमेरिका की प्रति व्यक्ति आय भारत की प्रति व्यक्ति आय से 71 गुना तथा स्विट्जरलैण्ड की लगभग 86 गुना अधिक थी।

(ख) कृषि की प्रधानता– भारत कृषि प्रधान देश है। यहाँ कार्यशील जनसंख्या का बहुत बड़ा भाग कृषि में लगा हुआ है। भारत में सन् 1998 के आँकड़ों के अनुसार कृषि में कार्यशील जनसंख्या का 61 प्रतिशत भाग लगा है, जबकि अमेरिका में 2 प्रतिशत, इंग्लैण्ड में 3 प्रतिशत तथा जापान में 5 प्रतिशत व्यक्ति कृषि व्यवसाय में लगे हुए हैं। कृषि का भारत की राष्ट्रीय आय में योगदान सन् 1950–51 से 1960–61 की समयावधि में 53 से 55 प्रतिशत था, जो अब घटकर लगभग 27.5 प्रतिशत रह गया है। भारत कृषि प्रधान देश है, परन्तु कृषि उत्पादकता विकसित देशों की तुलना में बहुत कम होने के कारण यहाँ के निवासी निर्धन हैं।

(ग) जनसंख्या का अधिक भार– भारत में भूमि पर जनसंख्या का भार अधिक है। भारत के पास विश्व के कुल भू—क्षेत्र का 2.4 प्रतिशत भाग है, परन्तु यहाँ की जनसंख्या विश्व की कुल जनसंख्या का लगभग 16 प्रतिशत है।

(घ) बेरोजगारी– भारत में व्यापक बेरोजगारी एवं अल्प बेरोजगारी विद्यमान है। एक अनुमान के अनुसार 2003 के अन्त तक भारत में 3 करोड़ से भी अधिक व्यक्ति बेरोजगार थे।

(ड) न्यून उपभोग– आर्थिक सर्वेक्षण के अनुसार भारत में वर्तमान समय में एक व्यक्ति को वर्ष में 9.2 किलो तेल, 1.4 किलो वनस्पति, 15.6 किलो चीनी, 30.6 मीटर कपड़ा तथा घरेलू उपभोग के लिए 67.8 किलो वाट बिजली उपलब्ध होती है। यह अन्य देशों की तुलना में बहुत कम है।

(च) विदेशी ऋण– भारत ऋणी देश है। भारत पर विदेशी ऋण और ब्याज के भुगतान का भार निरन्तर बढ़ता ही जा रहा है। यह भारत की निर्धनता का प्रतीक है।

(छ) शिक्षा का निम्न स्तर– शिक्षा एवं साक्षरता की दृष्टि से भी भारत पिछड़ा है। सन् 2011 की जनगणना के अनुसार भारत में 73% साक्षरता है। इस प्रकार अभी भी लगभग 27% व्यक्ति निरक्षर हैं। यहाँ पर महिला साक्षरता का प्रतिशत 64.6% तथा पुरुष साक्षरता का प्रतिशत 80.9% है। इसके विपरित अधिकांश विकसित देशों में लगभग शत—प्रतिशत साक्षरता है।

(ज) व्यापक निर्धनता– देश में व्यापक स्तर पर निर्धनता व्याप्त है। आज भी देश की लगभग 26.12 प्रतिशत जनसंख्या निर्धनता से नीचे जीवन व्यतीत कर रही है। गाँवों में अधिकांश मकान कच्चे हैं तथा परिवहन के साधनों का अभाव है। बेरोजगारी की व्यापकता इस निर्धनता को बढ़ा रही है।

(झ) निम्न स्वास्थ्य स्तर– भारतवासियों का स्वास्थ्य स्तर निम्न है। भारत में औसत आयु केवल 62 वर्ष है। जबकि विकसित देशों में यह 70–80 वर्ष है। इसके अतिरिक्त शिक्षा एवं मातृत्व—मृत्यु दर ऊँची है तथा उन्हें पौष्टिक भोजन नहीं मिल पाता।

❖ मानचित्र कार्य

अध्यापक की सहायता से विद्यार्थी स्वयं करें।

❖ प्रोजेक्ट कार्य

अध्यापक की सहायता से विद्यार्थी स्वयं करें।

45 भारतीय अर्थव्यवस्था के क्षेत्र
(स्वामित्व तथा व्यवसाय के अनुसार)

अभ्यास

❖ **बहुविकल्पीय प्रश्न**

उ०– बहुविकल्पीय प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्य पुस्तक के पृष्ठ संख्या—388 का अवलोकन कीजिए।

❖ **अतिलघु उत्तरीय प्रश्न**

उ०– अतिलघु उत्तरीय प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्य पुस्तक के पृष्ठ संख्या—389 का अवलोकन कीजिए।

❖ **लघु उत्तरीय प्रश्न**

1. वर्तमान भारतीय अर्थव्यवस्था का संक्षिप्त परिचय दीजिए।

उ०– वर्तमान समय में भारत अपने प्राकृतिक संसाधनों के प्रयोग के आधार पर विकास की ओर अग्रसर है, अत: हम कह सकते हैं कि भारतीय अर्थव्यवस्था मूलत: एक विकासशील अर्थव्यवस्था है। पिछले कुछ वर्षो में भारतीय अर्थव्यवस्था एक बड़े सार्वजनिक क्षेत्र वाली मिश्रित अर्थव्यवस्था के रूप में विकसित हुई है। भारतीय अर्थव्यवस्था के संरचनात्मक स्वरूप को भली—भाँति समझने के लिए इसके क्षेत्रीय विभाजन का ज्ञान अतिआवश्यक है।

2. निजी एवं सार्वजनिक क्षेत्रों की विशेषताएँ बताइए।

उ०– **निजी क्षेत्र की प्रमुख विशेषताएँ–** निजी क्षेत्र की निम्नलिखित विशेषताएँ होती हैं—

(i) निजी इकाइयों को क्रय—विक्रय में सामान्यतया बाजार की स्पर्धा का सामना करना पड़ता है।
(ii) निजी क्षेत्र में उद्यमों या उद्योगों पर निजी स्वामित्व होता है।
(iii) निजी इकाइयाँ उत्पादक क्रियाएँ निजी लाभ के उद्देश्य से करती हैं।
(iv) निजी इकाइयों के कार्यकलापों पर सरकार आवश्यकतानुसार नियन्त्रण स्थापित करती है।

सार्वजनिक क्षेत्र की विशेषताएँ– सार्वजनिक क्षेत्र की विशेषताएँ निम्नलिखित हैं—

(i) सरकारी उपक्रमों का संचालन समाज के व्यापक हितों के संरक्षण के लिए किया जाता है, इससे आम आदमी का शोषण नहीं होता है।
(ii) ये अधिकांश बड़े पैमाने के उद्योग—धन्धे हैं, जहाँ निजी क्षेत्र द्वारा बड़ी मात्रा में पूँजी एकत्र करना संभव नहीं होता है।

3. शहरी क्षेत्रों से क्या अभिप्राय है?

उ०– शहरी क्षेत्रों में नगर व कस्बे शामिल किए जाते हैं। शहरी क्षेत्रों के लोंगों का मुख्य व्यवसाय उद्योग तथा सेवाएँ हैं। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि देश का द्वितीयक एवं तृतीयक क्षेत्र मुख्यत: इसी शहरी क्षेत्र से जुड़ा है। भारत का शहरी क्षेत्र ग्रामीण क्षेत्र की अपेक्षा उन्नत एवं विकसित है। शहरी क्षेत्रों में आधारित संरचना: जैसे— बैंकिंग, बीमा, परिवहन, संचार विद्युत आदि अधिक विकसित हैं। जबकि ग्रामीण क्षेत्रों में यह अवसंरचना या तो पूर्ण रूप से अनुपस्थित है या फिर अपनी शैशवावस्था में है।

❖ **विस्तृत उत्तरीय प्रश्न**

1. भारतीय अर्थव्यवस्था के क्षेत्रों का वर्गीकरण कीजिए।

उ०– **भारतीय अर्थव्यवस्था के क्षेत्र–** भारतीय अर्थव्यवस्था को निम्न तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है—

(अ) स्वामित्व के आधार पर
(ब) व्यवसाय और उत्पादक क्रियाओं के आधार पर
(स) निवास के आधार पर

(अ) स्वामित्व के आधार पर– स्वामित्व के आधार पर भारतीय अर्थव्यवस्था को निम्न भागों में विभक्त किया गया है—

(i) निजी क्षेत्र– निजी क्षेत्र से अर्थ ऐसी संस्थाओं से है, जिनका स्वामित्व सरकारी नहीं होता है। निजी क्षेत्र के व्यक्तिगत उत्पादक अपनी आर्थिक क्रियाओं के द्वारा जनता को वस्तुएँ एवं सेवाएँ प्रदान करते हैं और लाभ प्राप्त करते हैं; जैसे— मित्तल स्टील, बाटा शू कम्पनी, रिलायन्स पेट्रोलियम लिमिटेड आदि।

निजी क्षेत्र की प्रमुख विशेषताएँ- निजी क्षेत्र की निम्नलिखित विशेषताएँ होती हैं—

(क) निजी इकाइयों को क्रय—विक्रय में सामान्यतया बाजार की स्पर्धा का सामना करना पड़ता है।
(ख) निजी क्षेत्र में उद्यमों या उद्योगों पर निजी स्वामित्व होता है।

(ग) निजी इकाइयाँ उत्पादक क्रियाएँ निजी लाभ के उद्देश्य से करती हैं।

(घ) निजी इकाइयों के कार्यकलापों पर सरकार आवश्यकतानुसार नियन्त्रण स्थापित करती है।

(ii) सार्वजनिक क्षेत्र– सार्वजनिक क्षेत्र से अर्थ ऐसी संस्थाओं से है, जिनका स्वामित्व, प्रबन्ध एवं नियन्त्रण सरकार के पास होता है। इस क्षेत्र का मौलिक उद्देश्य नियोजन के अनुरूप देश में अध:संरचना का निर्माण व उत्पादकीय क्रियाएँ सम्पादित करना है।

सार्वजनिक क्षेत्र की विशेषताएँ– सार्वजनिक क्षेत्र की विशेषताएँ निम्नलिखित हैं—

(क) सरकारी उपक्रमों का संचालन समाज के व्यापक हितों के संरक्षण के लिए किया जाता है, इससे आम आदमी का शोषण नहीं होता है।

(ख) ये अधिकांश बड़े पैमाने के उद्योग—धन्धे हैं, जहाँ निजी क्षेत्र द्वारा बड़ी मात्रा में पूँजी एकत्र करना संभव नहीं होता है।

(iii) मिश्रित क्षेत्र– मिश्रित क्षेत्र का तात्पर्य लोक एवं निजी क्षेत्र के सह—अस्तित्व से है। यह व्यवस्था लोक क्षेत्र एवं निजी क्षेत्र के बीच की एक साझेदारी है। इसके पीछे कारण हैं। एक ओर जहाँ सरकार वित्तीय साधन उपलब्ध होने के उपरान्त भी उद्यमों का प्रबन्ध करने में समर्थ नहीं है और वहीं दूसरी ओर निजी क्षेत्र प्रबंधकीय क्षमता होने के उपरांत पर्याप्त वित्तीय विनियोजन करने की स्थिति में नहीं हैं। अत: एक मध्य मार्ग यह है कि दोनों व्यवस्थाओं का मिश्रण कर दिया जाए तो आवश्यक औद्योगिक प्रगति सम्भव हो सकती है। इसी आधार पर मिश्रित क्षेत्र की विचारधारा का जन्म हुआ। इण्डोगल्फ फर्टिलाइजर कम्पनी, कोचीन तेल शोधक कारखाना, मद्रास (चेन्नई) उर्वरक निगम औद्योगिक कम्पनी आदि इसके उदाहरण हैं।

(ब) व्यवसाय और उत्पादक क्रियाओं के आधार पर– व्यवसाय और उत्पादक क्रियाओं के आधार पर भारतीय अर्थव्यवस्था को निम्न तीन भागों में विभक्त किया गया है—

(i) प्राथमिक क्षेत्र– इस क्षेत्र में कृषि व उससे सम्बन्धित क्रियाओं; जैसे— पशुपालन, मुर्गी—पालन, वन—उद्योग, खनन आदि को शामिल किया जाता है।

(ii) द्वितीयक क्षेत्र– इस क्षेत्र में निर्माण एवं विनिर्माण को व छोटे—बड़े उद्योगों की क्रियाओं को शामिल किया जाता है; जैसे— विद्युत उत्पादन, गैस उत्पादन, जलपूर्ति व अन्य निर्माण उद्योगों को शामिल किया जाता है।

(iii) तृतीयक क्षेत्र या टरशियरी क्षेत्र– इस क्षेत्र में सेवाओं को शामिल किया जाता है; जैसे— परिवहन, संचार, व्यापार, बीमा, बैंकिंग आदि।

(स) निवास के आधार पर– निवास के आधार पर भारतीय अर्थव्यवस्था को निम्न दो क्षेत्रों में विभाजित किया जाता है—

(i) ग्रामीण क्षेत्र– ग्रामीण क्षेत्रों में गाँवों को शामिल किया जाता है। इस क्षेत्र का मुख्य व्यवसाय कृषि एवं पशुपालन है। भारत की लगभग तीन—चौथाई जनसंख्या गाँवों में निवास करती है। देश का प्राथमिक क्षेत्र इसी ग्रामीण क्षेत्र से जुड़ा हुआ है। यह क्षेत्र भारत की राष्ट्रीय आय में बहुत व्यापक स्तर पर अपना योगदान देता है।

(ii) शहरी क्षेत्र– शहरी क्षेत्रों में शहर व कस्बे शामिल किए जाते हैं। शहरी क्षेत्रों के लोगों का मुख्य व्यवसाय उद्योग तथा सेवाएँ हैं। अन्य शब्दों में हम कह सकते हैं कि देश का द्वितीयक एवं तृतीयक क्षेत्र मुख्यत: इसी शहरी क्षेत्र से जुड़ा है। भारत का शहरी क्षेत्र ग्रामीण क्षेत्र की तुलना में उन्नत तथा विकसित है। शहरी क्षेत्रों में आधारित संरचना: जैसे— बैंकिंग, बीमा, परिवहन, संचार, विद्युत आदि अधिक विकसित हैं जबकि ग्रामीण क्षेत्रों में यह अवसंरचना या तो पूर्ण रूप से अनुपस्थित है या फिर अपनी शैशवावस्था में है।

2. सन् 1950 से लेकर अब तक भारत की राष्ट्रीय आय में विभिन्न क्षेत्रों का योगदान सारणी के माध्यम से समझाइए।

उ०– भारतीय राष्ट्रीय आय में विभिन्न क्षेत्रों का प्रतिशत योगदान–

वर्ष	प्राथमिक क्षेत्र	द्वितीयक क्षेत्र	तृतीय क्षेत्र
1950-1951	61.0	14.5	24.5
1960-1961	56.6	17.0	26.4
1970-1971	48.5	20.6	30.9
1980-1981	41.8	21.6	36.6
1990-1991	33.0	27.0	40.0
1999-2000	27.5	24.6	47.9
2001-2002	27.2	23.7	49.1
2011-2012	14.0	27.0	59.0

उपर्युक्त सारणी से स्पष्ट है कि भारत आर्थिक विकास के मार्ग पर अग्रसर है, फिर भी अभी भारत की अर्थव्यवस्था एक अल्प-विकसित अर्थव्यस्था है।

3. **भारतीय अर्थव्यवस्था में विभिन्न क्षेत्रों के महत्व एवं पारस्परिक सम्बन्धों पर प्रकाश डालिए।**

उ०– **भारतीय अर्थव्यवस्था में विभिन्न क्षेत्रों का महत्त्व व पारस्परिक सम्बन्ध–** भारतीय अर्थव्यवस्था में सभी क्षेत्रों का महत्त्व है क्योंकि अर्थव्यवस्था के सभी क्षेत्र एक दूसरे से सम्बन्धित होते हैं और परस्पर निर्भर भी। एक क्षेत्र का विकास दूसरे के विकास पर निर्भर करता है। अर्थव्यवस्था में विभिन्न क्षेत्रों की पारस्परिक निर्भरता को स्पष्ट करने वाले बिन्दु हैं।

(i) **निजी एवं सार्वजनिक क्षेत्र–** निजी क्षेत्र व सार्वजनिक क्षेत्र दोनों का अपना—अपना महत्त्व है। इसलिए आज भी भारतीय अर्थव्यवस्था में दोनों क्षेत्र पाए जाते है। निजी क्षेत्र पूँजीवादी अर्थव्यवस्था को दर्शाता है, तो सार्वजनिक क्षेत्र समाजवादी अर्थव्यवस्था को। अत: दोनों अर्थव्यवस्थाओं के लाभों को पाने के लिए भारत में निजी एवं सार्वजनिक क्षेत्रों के सह—अस्तित्व वाली मिश्रित अर्थव्यवस्था को अपनाया गया है। निजी क्षेत्र में लाभ की प्रेरणा अधिक कार्य करने के लिए प्रेरित करती है तो सार्वजनिक क्षेत्र दुर्लभ उद्योगों की स्थापना में सहयोग देता है।

उत्पादकता का अर्थ– एक निश्चित समयावधि में उत्पादन के किसी एक साधन की वस्तुओं तथा सेवाओं को उत्पन्न करने की क्षमता को उत्पादकता कहते हैं।

उत्पादकता के प्रकार– उत्पादकता निम्नलिखित दो प्रकार की होती है—

(क) भौतिक उत्पादकता– जब उत्पादन के किसी साधन की उत्पादकता उसके द्वारा उत्पन्न वस्तुओं तथा सेवाओं के रूप में मापी जाती है तो उसे भौतिक उत्पादकता कहते हैं; जैसे— एक कुम्हार द्वारा एक दिन में मिट्टी के तीन बर्तन बनाना।

(ख) आय उत्पादकता– जब किसी साधन की भौतिक उत्पादकता को मौद्रिक रूप में मापते हैं तो उसे आय उत्पादकता कहते हैं; जैसे— एक कुम्हार ने दिन में 800 रुपए के बर्तन बनाए।

(ii) **प्राथमिक, द्वितीयक व तृतीयक क्षेत्र–** एक देश के विकास के लिए तीन क्षेत्रों की उपस्थिति महत्त्वपूर्ण है। तीनों क्षेत्रों को विकसित किए बिना देश का आर्थिक विकास नहीं हो सकता। प्राथमिक क्षेत्र में कृषि एवं सम्बन्धित क्रियाएँ आती हैं जबकि द्वितीयक क्षेत्र में निर्माण एवं विनिर्माण की क्रियाएँ अर्थात् कारखानों में वस्तु निर्माण की क्रियाएँ व तृतीयक क्षेत्र दोनों के लिए सेवाएँ प्रदान करता है। प्राथमिक क्षेत्र द्वितीयक क्षेत्र को कच्चा माल देता है वही द्वितीयक क्षेत्र प्राथमिक क्षेत्र को कृषि उपकरण, खाद, कीटनाशक, आदि प्रदान करता है। इसी प्रकार तृतीयक क्षेत्र की सेवाओं को विकसित किए बिना प्राथमिक एवं द्वितीयक क्षेत्रों की आर्थिक क्रियाएँ बढ़ाई नहीं जा सकती हैं। इस प्रकार ये तीनों क्षेत्र ही पारस्पारिक रूप से सम्बन्धित और एक—दूसरे पर निर्भर हैं।

(iii) **ग्रामीण व शहरी क्षेत्र–** ग्रामीण क्षेत्र एक देश की रीढ़ की हड्डी होते हैं। इन क्षेत्रों में कच्चा माल कृषि के माध्यम से पैदा किया जाता है, जो शहरी क्षेत्र के उद्योगों को उत्पादन करने के लिए भेजा जाता है। इसी प्रकार खाद्य प्रदार्थ भी ग्रामीण क्षेत्र में ही पैदा होते हैं। इस प्रकार ग्रामीण क्षेत्र व शहरी क्षेत्र एक—दूसरे पर निर्भर हैं और एक—दूसरे की आवश्यकता की पूर्ति करते हैं।

इस प्रकार स्पष्ट है कि एक देश के आर्थिक विकास के लिए सभी क्षेत्रों का विकास आवश्यक है। इसका कारण यह है कि सभी क्षेत्र एक—दूसरे से सम्बन्धित और परस्पर निर्भर हैं।

निष्कर्ष– किसी भी देश के आर्थिक विकास के कारण उस देश के क्षेत्र व आकार में परिवर्तन होता जाता है किन्तु इससे क्षेत्र के विकास में महत्व कम नही होता। संक्षेप में यह कहना गलत न होगा कि देश के तीव्र आर्थिक विकास के लिए सभी क्षेत्रों में उच्च उत्पादकता के लक्ष्य को प्राप्त करना आवश्यक है।

❖ **मानचित्र कार्य**

अध्यापक की सहायता से विद्यार्थी स्वयं करें।

❖ **प्रोजेक्ट कार्य**

अध्यापक की सहायता से विद्यार्थी स्वयं करें।

46 सुविकसित सामाजिक एवं आर्थिक विकास

अभ्यास

❖ **बहुविकल्पीय प्रश्न**

उ०– बहुविकल्पीय प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्य पुस्तक के पृष्ट संख्या—393 का अवलोकन कीजिए।

❖ **अतिलघु उत्तरीय प्रश्न**

उ०– अतिलघु उत्तरीय प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्य पुस्तक के पृष्ट संख्या—393 व 394 का अवलोकन कीजिए।

❖ **लघु उत्तरीय प्रश्न**

1. राष्ट्र के सुविकसित सामाजिक एवं आर्थिक विकास से आप क्या समझते हैं?

उ०– **सुविकसित सामाजिक एवं आर्थिक विकास–** किसी भी राष्ट्र की सुदृढ़ स्थिति एवं अस्तित्व का निर्णय वहाँ की सुदृढ़ एवं सुचारु अर्थव्यवस्था के अनुसार किया जाता है। यदि किसी देश के अधिकांश क्षेत्रों का विकास हुआ है तो इसे उस राष्ट्र की अर्थव्यवस्था का विकास माना जाता है। इसके विपरीत किसी राष्ट्र में शिक्षा की अव्यवस्था, सुनियोजित बाजार की अव्यवस्था, अकुशल श्रमिकों की वृद्धि, पूँजी का अभाव, संसाधनों का अनुपयोग आदि कारकों को निम्न कोटि की अर्थव्यवस्था का संकेतक माना जाता है।

इसी प्रकार हमारे राष्ट्र की विकास भी समाज में रहने वाले हम सभी व्यक्तियों पर निर्भर करता है एवं हमारा विकास तभी संभव है, जब हमारा राष्ट्र अथवा हमारी अर्थव्यवस्था विकसित होगी। एक विकसित अर्थव्यवस्था के फलस्वरूप निम्नलिखित घटक भी स्वतः विकासशील होंगे— (i) श्रम की परिपक्वता (ii) बाजार का विस्तार (iii) संसाधनों का बेहतर उपयोग (iv) पूँजी में वृद्धि (v) राष्ट्र का समग्र विकास

2. एक विकसित अर्थव्यवस्था से राष्ट्र को क्या लाभ हैं?

उ०– आर्थिक विकास की आधारभूत संरचना के मजबूत होने से किसी भी राष्ट्र के प्रत्येक क्षेत्र का समग्र विकास होता है। यदि राष्ट्र की अर्थव्यवस्था के विकास का आधार दृढ़ होता है, तब इसका सीधा प्रभाव राष्ट्र में उपलब्ध सरकारी एवं गैर—सरकारी दोनों क्षेत्रों पर पड़ता है। यदि किसी भी राष्ट्र में नवीन व्यवसायों के लिए पर्याप्त अवसर उपलब्ध कराए जाएँ तो समाज के प्रत्येक नागरिक की आय में वृद्धि होगी व आय में वृद्धि होने से हमारे जीवन का स्तर बेहतर होगा। इन परिस्थितियों में हम किसी भी समस्या का समाधान सरलता से कर सकते हैं।

3. अवसंरचना से क्या अभिप्राय है?

उ०– अवसंरचना या आधारभूत संरचना से अभिप्राय उन सुविधाओं , क्रियाओं तथा सेवाओं से है, जो किसी अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों के संचालन तथा विकास में सहायक होती हैं। ये समाज के दैनिक जीवन में भी अत्यन्त सहायक होती है।

4. सामजिक विकास को प्रभावित करने वाले संकेतकों को संक्षेप में समझाइए।

उ०– राष्ट्र कर अर्थव्यवस्था को प्रभावित करने वाले सामाजिक विकास के मुख्य संकेतक निम्नलिखित हैं—

(i) शिक्षा, प्रशिक्षण एवं अनुसन्धान, (ii) स्वास्थय, (iii) आवास, (iv) जीवन—प्रत्याशा, (v) नागरिक सुविधाएँ, (vi) सुरक्षा एवं संरक्षा, (vii) शांतिपूर्ण जीवनयापन की सुविधाएँ, (viii) उपभोक्ता शिक्षा (सार्वजनिक वितरण प्रणाली सहित), (ix) परिवहन।

5. भारतीय शिक्षा को तीन भागों में विभाजित किया गया है, इन तीन भागों के नाम बताइए तथा इनमें आपस में क्या अन्तर है?

उ०– भारतीय शिक्षा को निम्न तीन भागों में विभाजित किया गया है—

(i) प्राथमिक शिक्षा, (ii) माध्यमिक शिक्षा, (iii) उच्च शिक्षा एवं शोध

प्राथमिक शिक्षा सभी के लिए आवश्यक है, जिसमें व्यक्ति को पढ़ना, लिखना और साधारण हिसाब की जानकारी दी जाती है। माध्यमिक शिक्षा में व्यक्ति को शिक्षा एवं प्रशिक्षण देकर उसकी कार्यकुशलता में वृद्धि की जाती है। जबकि उच्च शिक्षा एवं शोध में न्यूनतम लागत पर अधिकतम एवं उच्च कोटि का उत्पादन करना सम्मिलित है।

6. स्वास्थ्य सेवाओं से क्या अभिप्राय है? उपचारात्मक एवं निरोधात्मक स्वास्थ्य सेवाओं में अन्तर बताइए।

उ०– किसी भी देश के आर्थिक विकास के लिए वहाँ के नागरिकों का स्वस्थ होना अत्यन्त आवश्यक है। स्वस्थ जीवन आर्थिक कुशलता को प्रोत्साहित करता है एवं आर्थिक कुशलता का प्रत्यक्ष सम्बन्ध राष्ट्र के आर्थिक विकास से होता है। इसी उद्देश्य की

पूर्ति के लिए प्रत्येक देश में स्वास्थ्य सम्बन्धी सेवाओं के ढाँचे का निर्माण किया जाता है और इन सेवाओं से लाभ अर्जित करने के लिए हमें इनके प्रति जागरूक रहना चाहिए। इसके लिए हमें सर्वप्रथम यह निश्चित करना होगा कि हम किनके लिए किस प्रकार की सुविधाएँ प्रदान करें। इसी उद्देश्य की प्राप्ति के लिए स्वास्थ्य सम्बन्धी सेवाओं को दो वर्गों में विभाजित किया गया है—

(i) उपचारात्मक स्वास्थ्य सेवाएँ– किसी भी बीमारी के व्यापक रूप से फैलने से पूर्व ही उसकी रोकथाम के उपायों सम्बन्धी सेवाओं को उपचारात्मक सेवाओं में सम्मिलित किया जाता है।

(ii) निरोधात्मक स्वास्थ्य सेवाएँ– इसके अन्तर्गत अस्पताल आधारित स्वास्थ्य सुविधाओं के विकास एवं समुदाय आधारित स्वास्थ्य सेवाओं के विकास पर ध्यान केन्द्रित किया जाता है। भारत में अस्पताल आधारित स्वास्थ्य सेवाएँ अभी तक केवल बड़े शहरों में ही उपलब्ध हैं तथा जो महँगे उपकरण एवं दवाइयाँ अधिक निवेश चाहते हैं, उनकी भी हमारे देश में कमी है। अत: राष्ट्र की अर्थव्यवस्था के विकास के लिए सरकार को इस ओर ध्यान केन्द्रित करना चाहिए।

7. जीवन प्रत्याशा से आप क्या समझते हैं?

उ०– जीवन प्रत्याशा से अभिप्राय किसी व्यक्ति की अनुमानित आयु से होता है। एक विकसित राष्ट्र में नागरिकों की आयु अविकसित राष्ट्र की अपेक्षा अधिक होती है। क्योंकि उसे उचित खान—पान, श्रेष्ठ जीवन—स्तर, स्वास्थ्य एवं चिकित्सा सुविधाओं की प्राप्ति एवं उनका उचित उपयोग, सुव्यवस्थित आवासीय सुविधाएँ, स्वास्थ्यवर्द्धक वातावरण आदि सुविधाओं की प्राप्ति होती है। यह सभी घटक जीवन प्रत्याशा की दर के वृद्धि के कारण होते हैं, जो राष्ट्र की अर्थव्यवस्था के विकास में मुख्य योगदान प्रदान करती है।

8. उपभोक्ता शिक्षा से आप क्या समझते हैं तथा उपभोक्ताओं को क्या-क्या अधिकार प्राप्त हैं?

उ०– उपभोक्ता शिक्षा उपभोक्ताओं को शोषण के विरुद्ध जागरूक बनाती है। उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम के अन्तर्गत उपभोक्ताओं के अनुचित व्यवहारों के विरुद्ध संरक्षण प्रदान किया जाता है। उपभोक्ता शिक्षा के अन्तर्गत उपभोक्ताओं को उत्पादक द्वारा किए जाने वाले अनुचित व्यापार—व्यवहारों के विरोध में क्या करना चाहिए—इसकी जानकारी प्रदान की जाती है। औद्योगिक क्रान्ति एवं बाजार में उत्पादनों के मध्य उत्पन्न प्रतिस्पर्द्धा के परिणामस्वरूप दिन—प्रतिदिन नए—नए उत्पादन बाजार में आते हैं। उत्पादकों द्वारा इन उत्पादनों के बिक्री संवर्द्धन के लिए आकर्षक विज्ञापनों का प्रयोग किया जाता है, जिनसे आकर्षित होकर उपभोक्ता स्वयं वस्तु की गुणवत्ता एवं श्रेष्ठता का अनुमान लगा पाने में असक्षम रहता है, जिसके परिणामस्वरूप उत्पादक उनका शोषण करने (कम नाप—तौल, अधिक कीमत, घटिया वस्तु आदि के रूप में)में सफल हो जाते हैं। इन सभी से उपभोक्ता के बचाव हेतु उन्हें उपभोक्ता शिक्षा की जानकारी दी जाती है तथा उन्हें किसी विज्ञापन की ओर प्रेरित न होकर स्वयं उत्पादन—योग्य वस्तु की गुणवत्ता की जाँच करने की ओर भी प्रेरित किया जाता है। इसी कारण 'उपभोक्ता कौशल का विकास' सामाजिक अवसंरचना का एक महत्त्वपूर्ण अंग है।

(i) शोषण के विरुद्ध संरक्षण का अधिकार।
(ii) स्वास्थ्य एवं सुरक्षा के संरक्षण का अधिकार।
(iii) वस्तुओं/सेवाओं के गुण, कार्य निष्पादन के स्तर, वस्तु के सम्भावित पार्श्व प्रभाव आदि के बारे में जानकारी प्राप्त करने का अधिकार।
(iv) उत्पादकों एवं वितरकों को शिकायत सुनाने का अधिकार।
(v) अन्याय, हानि, अत्याचार आदि का प्रतिकार करने का अधिकार।
(vi) विविध प्रकार की वस्तुओं में से सर्वोत्तम वस्तु का चयन करने का अधिकार।

9. सार्वजनिक वितरण प्रणाली से आप क्या समझते हैं? इसके प्रमुख अंग कौन-कौन से हैं?

उ०– सार्वजनिक वितरण प्रणाली– सार्वजनिक वितरण प्रणाली से आशय उस प्रणाली से है, जिसके अन्तर्गत उत्पादित वस्तुओं को उपभोक्ता तक एक निश्चित मूल्य एवं एक निश्चित मात्रा में उपलब्ध कराया जाता है। यह प्रणाली एक ऐसी संरचना को स्पष्ट करती है, जिसके अन्तर्गत दैनिक उपभोग की कुछ विशिष्ट मदों की अधिक प्राप्ति करके उचित मूल्यों की दुकानों की शृंखला द्वारा उन्हें उपभोक्ताओं को उपलब्ध कराया जाता है। भारत में सार्वजनिक वितरण प्रणाली के मुख्य अंग निम्नलिखित हैं—

(i) उचित मूल्य या राशन की दुकानें
(ii) सहकारी उपभोक्ता भण्डार
(ii) नियन्त्रित कपड़े की दुकानें
(iv) सॉफ्ट कोल डिपो
(iii) सुपर बाजार
(vi) मिट्टी के तेल के विक्रेता

10. परिवहन से आप क्या समझते हैं? इसे कितने भागों में बाँटा गया है?

उ०– परिवहन– एक अर्थव्यवस्था में परिवहन सेवाओं का स्वरूप उस राष्ट्र की कार्यशील प्रणाली पर निर्भर करता है। यदि ग्रामीण समुदाय पूर्णरूप से आत्मनिर्भर है तो वह अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति पास के ही बाजार से करने में सक्षम रहते हैं। परन्तु औद्योगीकरण के कारण उत्पादित वस्तुओं को दूर भेजा जाता है और कच्चा माल दूर से मँगाना पड़ता है, जिसके लिए मोटर, बस, ट्रक, रेल, हवाई जहाज आदि साधनों का बड़े पैमाने पर इस्तेमाल किया जाता है।

परिवहन के साधनों को चार भागों में बाँटा गया है—

(i) रेल परिवहन, (ii) सड़क परिवहन, (iii) जल परिवहन, (iv) वायु परिवहन।

❖ **विस्तृत उत्तरीय प्रश्न**

1. राष्ट्र के सुविकसित सामाजिक एवं आर्थिक विकास से आप क्या समझते हैं? इससे प्रभावित होने वाले घटकों को भी विस्तारपूर्वक बताइए।

उ०– **सुविकसित सामाजिक एवं आर्थिक विकास–** किसी भी राष्ट्र की सुदृढ़ स्थिति एवं अस्तित्व का निर्णय वहाँ की सुदृढ़ एवं सुचारु अर्थव्यवस्था के अनुसार किया जाता है। यदि किसी देश के अधिकांश क्षेत्रों का विकास हुआ है तो इसे उस राष्ट्र की अर्थव्यवस्था का विकास माना जाता है। इसके विपरीत किसी राष्ट्र में शिक्षा की अव्यवस्था, सुनियोजित बाजार की अव्यवस्था, अकुशल श्रमिकों की वृद्धि, पूँजी का अभाव, संसाधनों का अनुपयोग आदि कारकों को निम्न कोटि की अर्थव्यवस्था का संकेतक माना जाता है।

इसी प्रकार हमारे राष्ट्र का विकास भी समाज में रहने वाले हम सभी व्यक्तियों पर निर्भर करता है एवं हमारा विकास तभी संभव है, जब हमारा राष्ट्र अथवा हमारी अर्थव्यवस्था विकसित होगी। एक विकसित अर्थव्यस्था के फलस्वरूप निम्नलिखित घटक भी स्वत: विकासशील होंगे—

(i) श्रम में परिपक्वता– श्रम की परिपक्वता से अभिप्राय राष्ट्र के व्यक्तियों की कार्यकुशलता में वृद्धि से होता है। जब किसी राष्ट्र की अर्थव्यवस्था के आधारभूत क्षेत्र विकसित होते हैं तो श्रम के बेहतर एवं अधिक अवसर सुलभ हो जाते हैं। जिसके परिणामस्वरूप वहाँ के श्रम में परिपक्वता अर्थात् कार्य कुशलता में वृद्धि होती है, जिसका प्रभाव राष्ट्र की उत्पादन एवं उत्पादकता क्षमता की वृद्धि पर होता है।

(ii) बाजार का विस्तार– अर्थव्यवस्था के विकास एवं उत्पादकता में वृद्धि के कारण उन्नत यातायात एवं संचार के साधनों की आवश्यकता होती हैं। एक कुशल राष्ट्र इन क्षेत्रों के विकास के साथ—साथ बाजार के विस्तार के लिए भी उत्तरदायी होता है। बाजार के विस्तार से हम उत्पादित वस्तुओं का निर्यात सुविधापूर्वक कर सकते हैं एवं बाजार के विस्तार के फलस्वरूप ही हम आयात की गई वस्तुओं को भी प्राप्त करते हैं।

(iii) संसाधनों का बेहतर उपयोग– भारत जैसी अर्थव्यवस्था में प्राकृतिक संसाधनों की प्रचुर मात्रा है। आर्थिक विकास के कारण कुशल श्रमिक उत्पादकता में वृद्धि के लिए अपने राष्ट्र में उपलब्ध प्राकृतिक संसाधनों का उचित उपयोग किया जाता है।

(iv) पूँजी में वृद्धि– किसी भी राष्ट्र का आर्थिक विकास तभी सम्भव है, जब वहाँ पूँजी की पर्याप्त मात्रा हो, क्योंकि पूँजी ही आर्थिक विकास एवं अर्थव्यवस्था का आधारभूत ढाँचा होती है। पूँजी की उपलब्धता के आधार पर ही राष्ट्र में व्यवसाय करने के नवीन अवसर सुलभ हो जाते हैं। आधारभूत ढाँचे की स्थापना एवं पूँजी में वृद्धि हेतु आवश्यक धन की प्राप्ति सरकार, वाणिज्य बैंकों, विकास बैंकों, विश्व बैंक आदि के द्वारा करती है।

(v) राष्ट्र का समग्र विकास– आर्थिक विकास की आधारभूत संरचना के मजबूत होने से किसी भी राष्ट्र के प्रत्येक क्षेत्र का समग्र विकास होता है। यदि राष्ट्र की अर्थव्यवस्था के विकास का आधार दृढ़ होता है, तब इसका सीधा प्रभाव राष्ट्र में उपलब्ध सरकारी एवं गैर—सरकारी दोनों क्षेत्रों पर पड़ता है। यदि किसी भी राष्ट्र में नवीन व्यवसायों के लिए पर्याप्त अवसर उपलब्ध कराए जाएँ तो समाज के प्रत्येक नागरिक की आय में वृद्धि होगी व आय में वृद्धि होने से हमारे जीवन का स्तर बेहतर होगा। इन परिस्थितियों में हम किसी भी समस्या का समाधान सरलता से कर सकते हैं।

2. अर्थव्यवस्था के संकेतकों से क्या अभिप्राय है? सामाजिक विकास के संकेतकों का विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिए।

उ०– **अर्थव्यवस्था के संकेतक–** जिस प्रकार किसी घर का विकास उस घर में रहने वाले लोगों पर निर्भर करता है, उसी प्रकार एक राष्ट्र का विकास वहाँ के समाज के व्यक्तियों पर निर्भर करता है। यदि समाज के प्रत्येक व्यक्ति का समग्र विकास होगा तथा वह अन्य व्यक्तियों के विकास में भी सहायता करेगा, तभी राष्ट्र का विकास सम्भव होगा। अत: अर्थव्यवस्था की संरचना के दो प्रमुख ढाँचे हैं— (i) सामाजिक ढाँचा तथा (ii) आर्थिक ढाँचा।

समाज में रहने वाले सभी नागरिक आर्थिक क्रिया करके अर्थव्यवस्था के विकास में सहयोग करते हैं। आर्थिक घटक उत्पादकता द्वारा अर्थव्यवस्था की पूँजी बढ़ाकर उसके विकास में सहयोग करते हैं।

सामाजिक विकास के संकेतक– राष्ट्र की अर्थव्यवस्था को प्रभावित करने वाले सामाजिक विकास के मुख्य संकेतक अग्रलिखित हैं—(i) शिक्षा, प्रशिक्षण एवं अनुसन्धान, (ii) स्वास्थ्य, (iii) आवास, (iv) जीवन प्रत्याशा, (v) नागरिक सुविधाएँ, (vi) सुरक्षा एवं संरक्षा, (vii) शांतिपूर्ण जीवनयापन की सुविधाएँ, (viii) उपभोक्ता शिक्षा (सार्वजनिक वितरण प्रणाली सहित), (ix) परिवहन।

(i) शिक्षा, प्रशिक्षण एवं अनुसन्धान– राष्ट्र की अर्थव्यवस्था के विकास में शिक्षा का उल्लेखनीय योगदान होता है। शिक्षा प्रत्यक्ष रूप से किसी वस्तु के आर्थिक उत्पादन से सम्बन्ध नहीं रखती है, परन्तु यह वस्तुओं का उत्पादन करने के लिए व्यक्तियों को सक्षम बनाती है। शिक्षा के माध्यम से ही व्यक्ति अपनी कार्य कुशलतापूर्वक में वृद्धि करता है तथा उत्पादकता

में वृद्धि करने में सफल होता है। शिक्षा ही मनुष्यों के बौद्धिक एवं मानसिक विकास में सहायक होती है। यह मनुष्य को गुणवत्ता सुधार की प्रेरणा देती है, व्यक्ति को सत्य एवं नैतिकता के मार्ग पर चलने का प्रशिक्षण देती है और उसकी सोच में व्यापक बदलाव लाकर उसकी समझ के दायरे को बढ़ाती है। अत: शिक्षा पर निवेश करने से हमें भविष्य में आर्थिक रूप से अच्छे परिणाम प्राप्त होते हैं। इसी कारण ''शिक्षा पर किए गए निवेश को मानवीय पूँजी निर्माण'' कहा जाता है।

कृत्रिम संसाधनों के पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध न होने के कारण प्रत्येक व्यक्ति को उत्पादन कार्य में कुशल बनाना कठिन है, किन्तु असम्भव नहीं। इसी कारण शिक्षा पर निवेश हमें उपलब्ध संसाधनों के अनुरूप ही करना होगा। इस दृष्टि से भारतीय शिक्षा को निम्नलिखित तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है—

(क) प्राथमिक शिक्षा– प्राथमिक शिक्षा वह शिक्षा होती है, जिसकी जानकारी प्रत्येक छोटे—बड़े व्यक्ति को होनी आवश्यक है। इसमें पढ़ना, लिखना और साधारण हिसाब की जानकारी को सम्मिलित किया जाता है। प्राथमिक शिक्षा की जानकारी के अभाव में किसी भी व्यक्ति अथवा बालक का पूर्ण विकास असम्भव है। यही कारण है कि भारत में प्रारम्भिक शिक्षा प्रदान करना सरकार का संवैधानिक उत्तरदायित्व माना गया है और पंचवर्षीय योजनाओं में इस पर मुख्य रूप से बल दिया गया है। प्रारम्भिक अथवा प्राथमिक शिक्षा को 'आधारभूत शिक्षा' भी कहा जाता है।

(ख) माध्यमिक शिक्षा– प्रारम्भिक शिक्षा के साथ—साथ प्रत्येक व्यक्ति को इस शिक्षा के उपयोग के लिए प्रशिक्षण भी प्रदान किया जाना चाहिए, जिससे उनकी कार्यकुशलता में वृद्धि हो सके। उचित शिक्षा एवं प्रशिक्षण देकर व्यक्ति के कौशल को और अधिक बढ़ाया जा सकता है और इस प्रकार उसकी उत्पादन क्षमता में भी वृद्धि होगी। इस प्रकार प्रशिक्षण प्रदान करने के लिए सरकार द्वारा उचित प्रशिक्षण संस्थानों की स्थापना की जानी चाहिए। औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थान इस दिशा में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं।

(ग) उच्च शिक्षा एवं शोध– उच्च शिक्षण एवं शोध संस्थानों में प्रायोगिक शिक्षा पर अत्यधिक ध्यान दिया जाता है। इन शोध संस्थानों में उत्पादन पद्धति एवं उत्पादित वस्तु में गुणात्मक एवं संख्यात्मक सुधार लाने के लिए प्रतिदिन नवीन शोध व अनुसंधान किए जाते हैं। न्यूनतम लागत पर अधिकतम तथा उच्च कोटि का उत्पादन किस प्रकार संभव है? यह प्रत्येक अनुसंधान का उद्देश्य होना चाहिए।

अर्थव्यवस्था में उच्च शिक्षा में लगाए गए साधनों के विस्तार के स्थान पर हमें शिक्षा के सुदृढ़ीकरण, प्रशिक्षण एवं शोध में सुधार लाने की ओर अपना ध्यान केन्द्रित करना चाहिए, अन्यथा बेरोजगारी की समस्या और अधिक व्यापक हो जाएगी।

(ii) स्वास्थ्य– किसी भी देश के आर्थिक विकास के लिए वहाँ के नागरिकों का स्वस्थ होना अत्यन्त आवश्यक है। स्वस्थ जीवन आर्थिक कुशलता को प्रोत्साहित करता है एवं आर्थिक कुशलता का प्रत्यक्ष सम्बन्ध राष्ट्र के आर्थिक विकास से होता है। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए प्रत्येक देश में स्वास्थ्य सम्बन्धी सेवाओं के ढाँचे का निर्माण किया जाता है और इन सेवाओं से लाभ अर्जित करने के लिए हमें इनके प्रति जागरूक रहना चाहिए। इसके लिए हमें सर्वप्रथम यह निश्चित करना होगा कि हम किनके लिए किस प्रकार की सुविधाएँ प्रदान करें। इसी उद्देश्य की प्राप्ति के लिए स्वास्थ्य सम्बन्धी सेवाओं को दो वर्गों में विभाजित किया गया है—

(क) उपचारात्मक स्वास्थ्य सेवाएँ– किसी भी बीमारी के व्यापक रूप से फैलने से पूर्व ही उसकी रोकथाम के उपायों सम्बन्धी सेवाओं को उपचारात्मक सेवाओं में सम्मिलित किया जाता है।

(ख) निरोधात्मक स्वास्थ्य सेवाएँ– इसके अन्तर्गत अस्पताल आधारित स्वास्थ्य सुविधाओं के विकास एवं समुदाय आधारित स्वास्थ्य सेवाओं के विकास पर ध्यान केन्द्रित किया जाता है। भारत में अस्पताल आधारित स्वास्थ्य सेवाएँ अभी तक केवल बड़े शहरों में ही उपलब्ध हैं तथा जो महँगे उपकरण एवं दवाइयाँ अधिक निवेश चाहते हैं, उनकी भी हमारे देश में कमी है। अत: राष्ट्र की अर्थव्यवस्था के विकास के लिए सरकार को इस ओर ध्यान केन्द्रित करना चाहिए।

(iii) आवास– जिस प्रकार बढ़ती जनसंख्या राष्ट्र की प्रगति में रुकावट उत्पन्न करती है, उसी प्रकार बढ़ती जनसंख्या के अनुरूप आवास उपलब्ध कराना भी राष्ट्र की प्रगति में एक बड़ा अवरोधक है। आवास मनुष्य के आर्थिक कल्याण के स्तर को निश्चित करता है। भारत सरकार आवास योजनाओं के माध्यम से इस समस्या की गंभीरता को कम करने का पूर्णरूप से प्रयास कर रही है। आवास राष्ट्र की अर्थव्यवस्था की सामाजिक संरचना का अंग होता है। आवासीय सुविधा की व्यवस्था हेतु सस्ती दरों पर बैंक द्वारा ऋण भी उपलब्ध कराया जाता है। सस्ते आवासों के निर्माण हेतु राज्य सरकारें, केन्द्र सरकारों से सहायता भी लेती हैं। यही कारण है कि आज विभिन्न आय वर्गों के लिए, सभी सुविधाओं से युक्त आवास लोगों को उपलब्ध हो रहे हैं। यही कारण है कि सुनियोजित आर्थिक—क्रिया द्वारा हमारी अर्थव्यवस्था निरन्तर विकसित हो रही है।

(iv) जीवन प्रत्याशा– जीवन प्रत्याशा से अभिप्राय किसी व्यक्ति की अनुमानित आयु से होता है। एक विकसित राष्ट्र में

नागरिकों की आयु अविकसित राष्ट्र की अपेक्षा अधिक होती है। क्योंकि उसे उचित खान—पान, श्रेष्ठ जीवन—स्तर, स्वास्थ्य एवं चिकित्सा सुविधाओं की प्राप्ति एवं उनका उचित उपयोग, सुव्यवस्थित आवासीय सुविधाएँ, स्वास्थ्यवर्द्धक वातावरण आदि सुविधाओं की प्राप्ति होती है। यह सभी घटक जीवन प्रत्याशा की दर के वृद्धि के कारण होते हैं, जो राष्ट्र की अर्थव्यवस्था के विकास में मुख्य योगदान प्रदान करती है।

(v) **नागरिक सुविधाएँ–** किसी भी समाज का विकास तभी सम्भव है, जब उसमें रहने वाले नागरिकों को उचित सुविधाएँ प्राप्त हों। इन सुविधाओं के अन्तर्गत उपर्युक्त सभी सुविधाओं के साथ—साथ यातायात की सुविधा, उचित पक्की सड़कों की व्यवस्था, बाजार की उपलब्धता, स्वच्छ पानी की व्यवस्था, दूरसंचार हेतु डाक, तार, टेलीफोन की सुविधा, पर्याप्त रोजगार, गाँव, मुहल्लों एवं बस्तियों की सुरक्षा आदि का होना भी आवश्यक है। तभी समाज को बनाने वाले सभी नागरिक सामाजिक विकास में सहायता प्रदान करने में सक्षम होंगे।

(vi) **सुरक्षा व संरक्षा–** इसी प्रकार से सुरक्षा व संरक्षा सामाजिक संरचना का प्रमुख अंग है। अगर समाज में किसी प्रकार की संरक्षा एवं सुरक्षा की व्यवस्था न हो तो निश्चित रूप से आर्थिक क्रिया भी प्रभावित होगी। सुरक्षा की दृष्टि से ही गाँव से लेकर बड़े—बड़े शहरों तक में चौकीदार से लेकर थानेदार, एस०पी०, एस०एस०पी०, आई०जी०, डी०आई०जी० आदि की व्यवस्था होती है।

(vii) **शान्तिपूर्ण जीवन–यापन–** अर्थव्यवस्था की सामाजिक संरचना में शान्तिपूर्ण जीवन—यापन एक महत्त्वपूर्ण घटक है। नागरिक शान्तिपूर्ण जीवन—यापन तभी कर सकता है, जब उसे आवश्यक व्यवस्थाएँ उपलब्ध हों। इन व्यवस्थाओं में—खाने—पीने, पहनने—रहने के अलावा मनोरंजन, खेल—कूद, सांस्कृतिक पहलू आदि हैं। इनके अतिरिक्त प्रति व्यक्ति आय, राष्ट्रीय आय एवं इस आय की समान वितरण व्यवस्था सबसे महत्त्वपूर्ण हैं। यद्यपि शासन द्वारा इन व्यवस्थाओं पर विशेष ध्यान दिया जा रहा है, किन्तु आज भी देखा जा रहा है कि समाज में कुछ वर्ग अधिक धनाढ्य हैं तथा जनसंख्या का एक बहुत बड़ा भाग गरीबी रेखा से नीचे जीवन—यापन कर रहा है। इन परिस्थितियों में आर्थिक क्रिया—कलाप प्रभावित होते हैं।

(viii) **उपभोक्ता शिक्षा (सार्वजनिक वितरण प्रणाली सहित)–** उपभोक्ता शिक्षा एवं सार्वजनिक वितरण प्रणाली दोनों एक—दूसरे से जुड़े हुए हैं। दोनों का ही उद्देश्य समाज को अर्थात् उपभोक्ताओं को शोषण के विरुद्ध जागरूक करना है। इस उद्देश्य को समझने के लिए पहले इन दोनों के विषय में समझना आवश्यक हैं—

सामान्य उपभोक्ता शिक्षा– बढ़ती महँगाई तथा आय के संसाधनों में कमी, यह एक साधारण उपभोक्ता को कम गुणवान तथा थोड़ी मात्रा में वस्तुओं का उपभोग करने के लिए मजबूर करती है। ऐसी अवस्था में यदि कोई उपभोक्ता अच्छी वस्तुओं का उपभोग करना चाहता भी है, तो उत्पादक अपनी विक्रय कला तथा विज्ञापन के माध्यम से उसे ठगने का प्रयास करते हैं। इससे बचाव के लिए उपभोक्ता को अपने अधिकारों की भली भाँति रूप से जानकारी होना आवश्यक है। उपभोक्ता को निम्नलिखित अधिकार प्राप्त होते हैं—

(i) शोषण के विरुद्ध संरक्षण का अधिकार।
(ii) स्वास्थ्य एवं सुरक्षा के संरक्षण का अधिकार।
(iii) वस्तुओं/सेवाओं के गुण, कार्य निष्पादन के स्तर, वस्तु के सम्भावित पार्श्व प्रभाव आदि के बारे में जानकारी प्राप्त करने का अधिकार।
(iv) उत्पादकों एवं वितरकों को शिकायत सुनाने का अधिकार।
(v) अन्याय, हानि, अत्याचार आदि का प्रतिकार करने का अधिकार।
(vi) विविध प्रकार की वस्तुओं में से सर्वोत्तम वस्तु का चयन करने का अधिकार।

उपभोक्ता शिक्षा उपभोक्ताओं को शोषण के विरुद्ध जागरूक बनाती है। उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम के अन्तर्गत उपभोक्ताओं के अनुचित व्यवहारों के विरुद्ध संरक्षण प्रदान किया जाता है। उपभोक्ता शिक्षा के अन्तर्गत उपभोक्ताओं को उत्पादक द्वारा किए जाने वाले अनुचित व्यापार—व्यवहारों के विरोध में क्या करना चाहिए—इसकी जानकारी प्रदान की जाती है। औद्योगिक क्रान्ति एवं बाजार में उत्पादनों के मध्य उत्पन्न प्रतिस्पर्द्धा के परिणामस्वरूप दिन—प्रतिदिन नए—नए उत्पादन बाजार में आते हैं। उत्पादकों द्वारा इन उत्पादनों के बिक्री संवर्द्धन के लिए आकर्षक विज्ञापनों का प्रयोग किया जाता है, जिनसे आकर्षित होकर उपभोक्ता स्वयं वस्तु की गुणवत्ता एवं श्रेष्ठता का अनुमान लगा पाने में असक्षम रहता है, जिसके परिणामस्वरूप उत्पादक उनका शोषण करने (कम नाप—तौल, अधिक कीमत, घटिया वस्तु आदि के रूप में)में सफल हो जाते हैं। इन सभी से उपभोक्ता के बचाव हेतु उन्हें उपभोक्ता शिक्षा की जानकारी दी जाती है तथा उन्हें किसी विज्ञापन की ओर प्रेरित न होकर स्वयं उत्पादन—योग्य वस्तु की गुणवत्ता की जाँच करने की ओर भी प्रेरित किया जाता है। इसी कारण 'उपभोक्ता कौशल का विकास' सामाजिक अवसंरचना का एक महत्त्वपूर्ण अंग है।

उपभोक्ताओं को संरक्षण प्रदान करने के लिए भारत में 'उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम—1986' लागू किया गया है। इसके

अतिरिक्त विभिन्न वस्तुओं व व्यवहारों से सम्बन्धित 30 अधिनियम कार्यशील हैं। उपभोक्ताओं की शिकायतों के निस्तारण के लिए जिला, राज्य एवं राष्ट्रीय स्तर पर 'उपभोक्ता फोरम' गठित किए गए हैं।

सार्वजनिक वितरण प्रणाली– सार्वजनिक वितरण प्रणाली से आशय उस प्रणाली से है, जिसके अन्तर्गत उत्पादित वस्तुओं को उपभोक्ता तक एक निश्चित मूल्य एवं एक निश्चित मात्रा में उपलब्ध कराया जाता है। यह प्रणाली एक ऐसी संरचना को स्पष्ट करती है, जिसके अन्तर्गत दैनिक उपभोग की कुछ विशिष्ट मदों की अधिक प्राप्ति करके उचित मूल्यों की दुकानों की शृंखला द्वारा उन्हें उपभोक्ताओं को उपलब्ध कराया जाता है। भारत में सार्वजनिक वितरण प्रणाली के मुख्य अंग निम्नलिखित हैं—

(i) उचित मूल्य या राशन की दुकानें
(ii) सहकारी उपभोक्ता भण्डार
(iii) नियन्त्रित कपड़े की दुकानें
(iv) सॉफ्ट कोल डिपो
(v) सुपर बाजार
(vi) मिट्टी के तेल के विक्रेता

सार्वजनिक वितरण प्रणाली में भी वितरक उपभोक्ताओं का शोषण करते हैं। इस प्रणाली के अन्तर्गत इस शोषण के विरोध के रूप में अग्रलिखित सुझाव दिए गए हैं—

(i) सार्वजनिक वितरण के माध्यम से दी जाने वाली वस्तुओं के उत्पादन, प्राप्ति तथा संग्रहण व वितरण में उचित समन्वय स्थापित किया जाना चाहिए।
(ii) वस्तुओं की पूर्ति को नियमित रूप से बनाए रखा जाए।
(iii) पर्याप्त मात्रा में वस्तुओं के बफर स्टॉक का निर्माण किया जाए।
(iv) इस प्रणाली को देश के पिछड़े व दूरस्थ क्षेत्रों में फैलाया जाए।
(v) कार्य प्रणाली का ठीक प्रकार से निरीक्षण किया जाए।
(vi) वितरण लागत को न्यूनतम करने के लिए सभी सम्भव उपाय किए जाएँ।
(vii) उपभोक्ता व विपणन सहकारी समितियों को सुदृढ़ किया जाए।
(viii) सतर्कता विभाग द्वारा इन दुकानों पर अचानक निरीक्षण किया जाए, ताकि वितरण में अनियमितताओं को कम किया जा सके।

(ix) परिवहन– एक अर्थव्यवस्था में परिवहन सेवाओं का स्वरूप उस राष्ट्र की कार्यशील प्रणाली पर निर्भर करता है। यदि ग्रामीण समुदाय पूर्णरूप से आत्मनिर्भर है तो वह अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति पास के ही बाजार से करने में सक्षम रहते हैं। परन्तु औद्योगीकरण के कारण उत्पादित वस्तुओं को दूर भेजा जाता है और कच्चा माल दूर से मँगाना पड़ता है, जिसके लिए मोटर, बस, ट्रक, रेल, हवाई जहाज आदि साधनों का बड़े पैमाने पर इस्तेमाल किया जाता है।

परिवहन के साधनों को चार भागों में बाँटा गया है—

(क) रेल परिवहन, (ख) सड़क परिवहन, (ग) जल परिवहन, (घ) वायु परिवहन।

3. शिक्षा, स्वास्थ्य तथा आवास की अवसंरचना का महत्व बताइए।

उ०– उत्तर के लिए विस्तृत उत्तरीय प्रश्न संख्या—2 के उत्तर का अवलोकन कीजिए।

4. सार्वजनिक वितरण प्रणाली से आप क्या समझते हैं? यह किस प्रकार उपभोक्ता शिक्षा से सम्बन्धित है?

उ०– उत्तर के लिए विस्तृत उत्तरीय प्रश्न संख्या—2 के उत्तर का अवलोकन कीजिए।

5. अर्थव्यवस्था की संरचना से आप क्या समझते हैं? इसके सामाजिक विकास को प्रभावित करने वाले संकेतकों के महत्व को भी बताइए।

उ०– अर्थव्यवस्था की संरचना– 'अर्थव्यवस्था' आर्थिक प्रणाली का यह स्वरूप है जिसके माध्यम से किसी क्षेत्र के लोगों को रोजगार के अवसर तथा जीवन—निर्वाह के साधन उपलब्ध होते हैं ताकि आवश्यकताओं की पूर्ति हो सके। दूसरे शब्दों में 'अर्थव्यवस्था' ऐसा ढ़ाँचा है। जिसके अन्तर्गत किसी क्षेत्र के समाज की समस्त आर्थिक क्रियाओं का संचालन तथा नियमन किया जाता है। इस दृष्टि से अर्थव्यवस्था किसी क्षेत्र की विविध आर्थिक क्रियाओं का योग होती है। अतः अर्थव्यवस्था की संरचना के अन्तर्गत सभी प्रकार के उद्योग धन्धे, कल करखाने, कृषि खाने, परिवहन तथा संचार सेवाएँ, कार्यशालाएँ, बैंक, बीमा, व्यापार, व्यवसायिक संस्थान, कार्यालय आदि शामिल किए जाते हैं। क्षेत्र की दृष्टि से एक अर्थव्यवस्था किसी भी एक गाँव, नगर, राज्य, देश अथवा सम्पूर्ण विश्व का हो सकती है।

अर्थव्यवस्था के सामाजिक विकास को प्रभावित करने वाले संकेतकों के महत्त्व– इसके लिए विस्तृत उत्तरीय प्रश्न संख्या—2 के उत्तर का अवलोकन करें।

❖ **मानचित्र कार्य**

अध्यापक की सहायता से विद्यार्थी स्वयं करें।

❖ **प्रोजेक्ट कार्य**

अध्यापक की सहायता से विद्यार्थी स्वयं करें।

47 आर्थिक विकास के संकेतक

अभ्यास

❖ **बहुविकल्पीय प्रश्न**

उ०– बहुविकल्पीय प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्य पुस्तक के पृष्ठ संख्या—402 का अवलोकन कीजिए।

❖ **अतिलघु उत्तरीय प्रश्न**

उ०– अतिलघु उत्तरीय प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्य पुस्तक के पृष्ठ संख्या—402 व 403 का अवलोकन कीजिए।

❖ **लघु उत्तरीय प्रश्न**

1. परिवहन से क्या आशय हैं? भारत में परिवहन के कौन-कौन से साधन हैं?

उ०– परिवहन– परिवहन से आशय मनुष्य अथवा सम्पत्ति का एक स्थान से दूसरे स्थान को संचलन अथवा गमनागमन से है। परिवहन का प्रमुख उद्देश्य मनुष्यों को एक स्थान से दूसरे स्थान तक ले जाना तथा वस्तुओं अथवा माल को उत्पादित स्थान से उस स्थान तक ले जाना जहाँ उपयोग के लिए उनकी आवश्यकता है तथा जहाँ उनका रूप परिवर्तन करके उपभोक्ता के लिए उपयोगी बनाया जाता है।

दूसरे शब्दों में परिवहन से तात्पर्य उन सभी साधनों की सेवाओं से है जिनका प्रयोग वस्तुओं, प्राणियों और समाचारों को एक स्थान से दूसरे स्थान को भेजने में किया जाता है।

भारत में चार प्रकार के परिवहन संसाधन हैं—

(i) सड़क परिवहन संसाधन
(ii) रेल परिवहन संसाधन
(iii) जल परिवहन संसाधन
(iv) वायु परिवहन संसाधन

2. सड़क एवं जल परिवहन की समस्याओं को संक्षेप में बताइए।

उ०– सड़क परिवहन की समस्याएँ– सड़क परिवहन की प्रमुख समस्याएँ निम्नलिखित हैं—

(i) सड़कों को बनाने में निम्न स्तरीय माल प्रयोग किए जाने के कारण वह बहुत जल्दी खराब हो जाती हैं, जिससे यात्रियों को असुविधा होती है।
(ii) सड़कों की मरम्मत एवं देख—रेख का महँगा व्यय।
(iii) सड़कों एवं पुलों का अभाव
(iv) अनुज्ञा—पत्र देने में विलम्ब, अफसरशाही का बोलबाला एवं भ्रष्टाचार।
(v) सार्वजनिक एवं निजी मोटर क्षेत्र में प्रतियोगिता।
(vi) दोषपूर्ण प्रशासन।

जलपरिवहन की समस्याएँ– जल परिवहन की प्रमुख समस्याएँ निम्नलिखित हैं—

(i) जल परिवहन की गति धीमी होती है।
(ii) भयानक तूफान जन—धन को हानि पहुँचाते है।
(iii) जल परिवहन की सुविधा केवल तटवर्ती क्षेत्रों में ही उपलब्ध हो सकती है।
(iv) जल—मार्गो का स्वरूप सामयिक है। अधिक ठण्डे प्रदेशों में शीत ऋतु में जल मार्ग बर्फ से ढ़क जाते हैं, वर्षा ऋतु में बाढ़ आ जाती है।
(v) जल परिवहन सेवा में लोचता का पूर्ण अभाव है।

3. अन्तर्देशीय एवं जहाजरानी जल परिवहन में अन्तर स्पष्ट करते हुए उनके बारे में बताइए।

उ०– अन्तर्देशीय एवं जहाजरानी जल परिवहन में अन्तर– अन्तर्देशीय जल परिवहन से आशय ऐसे परिवहन से है, जिसमें परिवहन केवल एक देश की सीमाओं तक ही सीमित रहता है, जबकि जहाजरानी परिवहन से आशय ऐसे परिवहन से है, जिसके अन्तर्गत एक देश का जहाज विश्व के सभी जल मार्गो पर चलने के लिए स्वतन्त्र है।

भारतीय अर्थव्यवस्था में अन्तर्देशीय जल परिवहन का विशेष स्थान है। देश के महत्वपूर्ण औद्योगिक केन्द्रों की स्थापना एवं उनका विकास आन्तरिक जल परिवहन द्वारा ही सम्भव हुआ है। भारतीय जहाजरानी का विश्व में 16वाँ स्थान है। वर्तमान में देश में 83 जहाजरानी कम्पनियाँ कार्यरत हैं।

4. अन्तराष्ट्रीय भारतीय वायु निगम के विषय में संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

उ०– **अन्तर्राष्ट्रीय भारतीय वायु निगम–** इसे एयर इण्डिया के नाम से भी जाना जाता है। यह भारत की अन्तर्राष्ट्रीय विमान सेवा है। इसका मुख्यालय मुम्बई में है। हवाई अड्डों में दिल्ली, मुम्बई, कोलकाता, चेन्नई, तिरुवनन्तपुरम के हवाई अड्डों को सम्मिलित किया जाता है।

1 मार्च, 2007 में इण्डियन एयर लाइन्स एवं एयर इण्डिया को एक ही एयर लाइंस बनाने के प्रस्ताव को स्वीकृति प्रदान की गई है। 30 मार्च, 2007 को नेशनल एविएशन कम्पनी ऑफ इण्डिया (भारतीय राष्ट्रीय उड्डयन कम्पनी) नामक एक नवीन कम्पनी का गठन किया गया है। इसका मुख्यालय भी मुम्बई में ही स्थित है। इस एयरलाइन्स का ब्राण्ड नाम 'एयर इण्डिया' ही रखा गया है।

5. आर्थिक विकास में जल–विद्युत का क्या महत्त्व है?

उ०– आर्थिक विकास में जल—विद्युत का महत्व निम्नलिखित है—

(i) जल शक्ति प्राकृतिक है तथा नदियों एवं झरनों में अनवरत रूप से जल प्रवाह होता रहता है।
(ii) ऐसे औद्योगिक केन्द्र जिनमें ताप की अधिक आवश्यकता होती है, उनमें जलविद्युत अत्यधिक उपयोगी प्रमाणित हुआ है।
(iii) इसकी उत्पादन लागत विद्युत के स्रोतों से उत्पादन की अपेक्षा कम है।
(iv) इसके कारण औद्योगिकीकरण में प्रगति हुई है।
(v) जलशक्ति के विकास के लिए बहुत सी परियोजनाएँ संचालित की जा रही हैं, इनके विकास के साथ ही सिंचाई, नौका—वहन, बाढ़ नियन्त्रण, भू—संरक्षण, वनारोपण, मत्स्य पालन आदि में भी वृद्धि हो रही है।
(vi) घरेलू क्षेत्रों में भी अधिक उपयोगी है तथा अस्वास्थ्यकर प्रभावों से भी मुक्त है।

6. बहु–उद्देशीय परियोजना से आप क्या समझते हैं? भारत की प्रमुख नदी घाटी परियोजनाओं के नाम भी बताइए।

उ०– भारत में मुख्यत: सिंचाई परियोजनाएँ बहु—उद्देशीय होती हैं, जिन्हें बहु—उद्देशीय परियोजना के नाम से जाना जाता है, इनका निर्माण एक से अधिक समस्याओं के समाधान हेतु किया जाता है। इन्हें 'बहुमुखी योजनाएँ' भी कहा जाता है।

भारत की कुछ प्रमुख नदी घाटी परियोजनाएँ एवं उनकी नदी तथा राज्य निम्नलिखित हैं—

	नदी	**राज्य**	**परियोजना**
(i)	सतलज	पंजाब	भाखड़ा—नांगल परियोजना
(ii)	महानदी	उड़ीसा (ओडिशा)	हीराकुण्ड परियोजना
(iii)	कृष्णा	आन्ध्र प्रदेश	नागार्जुन परियोजना
(iv)	कोयना	महाराष्ट्र	कोयना परियोजना
(v)	भागीरथी	उत्तराखण्ड	टिहरी बाँध परियोजना

7. भारतीय रिजर्व बैंक के प्रमुख कार्य बताइए।

उ०– भारतीय रिजर्व बैंक के प्रमुख कार्य निम्नलिखित हैं—

(i) यह 1 रुपए के नोट को छोड़कर अन्य सभी नोटों का निर्गमन करता है।
(ii) यह सरकार के बैंक एवं सलाहकार दोनों के रूप में कार्य करता है।
(iii) यह अन्य बैंकों पर भी नियन्त्रण रखता है।
(iv) यह विनिमय दर को भी संतुलित रखता है।
(v) यह मुद्रा में साख को नियन्त्रित करता है।
(vi) यह कृषि एवं औद्योगिक वित्त में भीं सहायता प्रदान करता है।

8. व्यापारिक बैंक से आप क्या समझते हैं? इसके प्रमुख कार्यों का भी संक्षेप में वर्णन कीजिए।

उ०– **व्यापारिक बैंक–** जो बैंक आन्तरिक व्यापार के लिए व्यापारियों को अल्पकालीन ऋण की सुविधा प्रदान करते हैं, उन्हें व्यापारिक बैंक कहते हैं। ये सभी बैंक भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा संचालित किए जाते हैं। अब तक 20 बड़े बैंकों का राष्ट्रीयकरण किया जा चुका है।

व्यापारिक बैंकों के प्रमुख कार्य निम्नलिखित हैं—

(i) व्यापारियों एवं अन्य व्यवसायियों को ऋण की सुविधा प्रदान करना।
(ii) ग्राहकों को लॉकर्स की सुविधा प्रदान करना।
(iii) ग्राहकों के एजेण्ट के रूप में कार्य करना।
(iv) ग्राहकों को धन के हस्तान्तरण की सुविधा प्रदान करना।
(v) चालू खाते, सावधि जमा खाते तथा बचत खाते में जमा पर रुपया प्राप्त करना।
(vi) व्यवसायिक व वित्तीय आँकडों को संग्रहित करना तथा उन्हें प्रकाशित करना।

(vii) ग्राहकों के लिए आर्थिक सलाहकार के रूप में कार्य करना।

9. देशी बैंकर तथा व्यापारिक बैंक में क्या अन्तर है?

उ०– देशी बैंकर के रूप में एक व्यक्ति अथवा कोई भी संस्था कार्यरत हो सकती हैं। इनका प्रमुख कार्य ग्राहकों को ऋण प्रदान करना, ऋण स्वीकार करना है। ये व्यक्तियो को घरेलू तथा व्यापारिक दोनों उद्देश्यों के लिए ऋण प्रदान करते हैं। इनके ऊपर बैंक के कोई सिद्धान्त लागू नहीं होते हैं जबकि व्यापारिक बैंक व्यापारियों को अल्पकालीन ऋण की सुविधा प्रदान करते हें। इनका कार्य ग्राहकों को लॉकर्स की सुविधा प्रदान करना, धन स्थानान्तरण की सुविधा प्रदान करना तथा आर्थिक सलाहकार के रूप में कार्य करना आदि हैं। व्यापारिक बैंक भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा संचालित किए जाते हैं।

❖ **विस्तृत उत्तरीय प्रश्न**

1. अर्थव्यवस्था के आर्थिक विकास से आप क्या आशय है?

उ०– अर्थव्यवस्था का आर्थिक विकास– 'आर्थिक विकास' की नपे–तुले शब्दों में परिभाषा देना सरल नहीं है क्योंकि इस अवधारणा की पृथक–पृथक समय पर भिन्न–भिन्न परिभाषाएँ दी गई हैं। वैसे अर्थशास्त्रियों ने आर्थिक विकास की मुख्यतया निम्न तीन आधारों पर परिभाषाएँ दी हैं–

(i) राष्ट्रीय आय का आधार– इस आधार पर आर्थिक विकास एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा किसी देश में दीर्घकाल तक वास्तविक राष्ट्रीय आय (उत्पादन) में वृद्धि होती है।

मायर और बाल्डविन के शब्दों में, ''आर्थिक विकास एक प्रक्रिया है जिसके द्वारा एक अर्थव्यवस्था की वास्तविक राष्ट्रीय आय में दीर्घकाल तक वृद्धि होती है।'' इस दृष्टि से आर्थिक विकास से अभिप्राय किसी देश में दीर्घकाल तक वस्तुओं तथा सेवाओं में होने वाली वास्तविक वृद्धि से है।

(ii) प्रति व्यक्ति वास्तविक आय का आधार– इस दृष्टि से आर्थिक विकास वह प्रक्रिया है जिसके फलस्वरूप किसी अर्थव्यवस्था में प्रति व्यक्ति वस्तुओं तथा सेवाओं के उत्पादन में निरन्तर दीर्घकाल तक वृद्धि होती है।

प्रो० पीटरसन के अनुसार, ''आर्थिक विकास से अभिप्राय यह है कि दीर्घकाल तक प्रति व्यक्ति वास्तविक उत्पादन में वृद्धि हो तथा अर्थव्यवस्था की वस्तुओं तथा सेवाओं के उत्पादन करने की क्षमता में वृद्धि हो।''

(iii) आर्थिक कल्याण का आधार– इस दृष्टि से आर्थिक विकास एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके परिणामस्वरूप राष्ट्रीय आय तथा प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि के साथ–साथ जीवन–स्तर, जीवनोपयोगी सुविधाओं, शिक्षा, चिकित्सा, स्वास्थ्य आदि में सुधार होता है, अर्थात् आर्थिक विकास से देश का सर्वागीण विकास होता है तथा सामाजिक कल्याण में वृद्धि होती है।

कोलिन क्लार्क के शब्दों में, ''आर्थिक विकास से अभिप्राय आर्थिक कल्याण में होने वाली वृद्धि से है।''

प्रो० ओकन और रिचर्डसन के अनुसार, ''आर्थिक विकास भौतिक कल्याण में निरन्तर एवं दीर्घकालीन सुधार है, जिसे हम वस्तुओं तथा सेवाओं के बढ़ते प्रवाह के रूप में परिलक्षित हुआ समझ सकते हैं।''

सन्तुलित परिभाषा– 'आर्थिक विकास' एक ऐसी सतत प्रक्रिया है जिसके द्वारा किसी देश की राष्ट्रीय आय, प्रति व्यक्ति वास्तविक आय तथा जीवन–स्तर एवं भौतिक कल्याण में दीर्घकालीन वृद्धि होती है।

2. परिवहन एवं संचार तन्त्र से आप क्या समझते हैं? परिवहन के साधनों का भी वर्णन कीजिए।

उ०– परिवहन– 'परिवहन' संस्कृत भाषा की 'वह' धातु से बना है जिसका अर्थ माल को खींचकर अथवा सिर या कन्धे पर लादकर एक स्थान से दूसरे स्थान को ले जाने से है। परिवहन के वर्तमान अर्थ में वे सभी शीघ्रगामी साधन या ढ़ंग परिवहन के अन्तर्गत आ जाते हैं जो मनुष्यों एवं वस्तुओं को एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाने के लिए प्रयोग में लाए जाते हैं। दूसरे शब्दों में, **'परिवहन' से तात्पर्य उन सभी साधनों की सेवाओं से है जिनका प्रयोग वस्तुओं, प्राणियो और समाचारों को एक स्थान से दूसरे स्थान को भेजने में किया जाता है।**

संचार–तन्त्र- 'संचार' का शाब्दिक अर्थ है– विचारों, तथ्यों, सूचनाओं आदि को जानना तथा समझना। 'संचार' से तात्पर्य बोलकर या लिखकर अथवा संकेतिक भाषा में विचारों, सूचनाओं एवं तथ्यों का आदान–प्रदान है। 'संचार–तन्त्र' से अभिप्राय उन साधनों तथा व्यवस्थाओं से है जिनके द्वारा व्यक्ति अपने मौखिक तथा लिखित विचारों तथा सन्देंशों को देश–विदेश में रह रहे व्यक्तियों के पास पहँचा सकते हैं।

परिवहन के साधन–

(i) स्थल परिवहन– स्थल परिवहन में उन सभी परिवहन–साधनों को शामिल किया जाता है जिनके वाहनों का पथ पृथ्वी–तल अर्थात् भूमि पर होता है। स्थल परिवहन के साधनों में व्यक्तियों, पशुओं, यान्त्रिक शक्ति आदि के द्वारा खींचे जाने वाले ठेले व गाड़ी, मोटर, ट्रक, स्कूटर, साइकिल, रिक्शा, रेलगाड़ी आदि को शामिल किया जाता है।

(ii) जल परिवहन– वे सभी साधन जिन्हें जल में जल–शक्ति अथवा यान्त्रिक शक्ति की सहायता से चलाया जाता है 'जल–परिवहन के साधन' कहलाते हैं। इनमें नदियों व नहरों में चलने वाली नावें व स्टीमर तथा समुद्रों मे ं चलने वाले

बड़े जलयान, छोटे स्टीमर आदि को शामिल किया जाता है।

(iii) वायु परिवहन– वायु परिवहन वैज्ञानिक युग का एक आश्चर्यजनक आविष्कार है। परिवहन के इस तीव्रगामी साधन ने मानव की 'समय' व 'दूरी' की समस्या के समाधान में अद्वितीय योग प्रदान किया है।

(iv) यातायात के नए साधन– परिवहन अथवा यातायात के कुछ नए साधन निम्न प्रकार से हैं—

(क) रज्जु पथ– पहाड़ी, बीहड़ तथा ऊबड़—खाबड़ क्षेत्रों में, जहाँ परिवहन के अन्य साधन उपलब्ध नहीं है, वहाँ रज्जु पथ द्वारा व्यक्तियों तथा माल को एक स्थान से दूसरे स्थान को भेजा जाता है। इस साधन का प्रयोग चाय व खानों के क्षेत्रों, पुल व बाँध बनाने तथा उनसे सम्बन्धित साम्रगी पहुँचाने में किया जाता है। वैसे ऐसे मार्गों का अति सीमित प्रयोग होता है।

(ख) नल परिवहन– खनिज तेल के कुओं से तेलशोधक कारखानों तक तेल पहँचाने का यह एक सुगम उपाय है। भारत के असम राज्य में पाइप लाइन बिछाकर तेल की खनिज तेल—क्षेत्रों से तेलशोधक कारखानों तक पहुँचाने का कार्य किया जा रहा है।

3. रेल परिवहन, जल परिवहन, सड़क परिवहन, वायु परिवहन के साधनों का महत्त्व एवं सीमाओं का वर्णन कीजिए।

उ०– रेल परिवहन का महत्त्व–

(i) रेल परिवहन के माध्यम से ही राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार को प्रोत्साहन मिला है।
(ii) व्यापार के क्षेत्र का विस्तार हुआ है, जिससे उपभोक्ताओं को उत्पादित वस्तु समय पर तथा उचित मात्रा में प्राप्त हो जाती है।
(iii) रेलों से व्यापारिक प्रतिस्पर्द्धा तीव्र हुई है, जिसके परिणामस्वरूप व्यापारिक क्षेत्र में संयोजन को बल मिलता है।
(iv) रेल परिवहन के माध्यम से रोजगार के अवसरों में वृद्धि हुई है।
(v) कृषि एवं औद्योगिक उत्पादनों में वृद्धि हुई है।
(vi) विदेशी विनियोगों में प्रगति हुई है।
(vii) शासन व्यवस्था को केन्द्रित करने में रेल परिवहन ने अत्यधिक योगदान प्रदान किया है।
(viii) समाज में आपसी सम्बन्ध सुदृढ़ हुए हैं तथा मानवीय दृष्टिकोण विस्तृत हुआ है।
(ix) सामाजिक कल्याण की सुविधाएँ शीघ्रतापूर्वक दूरस्थ क्षेत्रों तक पहुँचने में सक्षम हुई हैं।

प्रत्येक वस्तु के दो पहलू होते हैं— एक अच्छा एवं एक बुरा।

रेल परिवहन की सीमाएँ– रेल परिवहन की उपयोगिता के साथ—साथ इससे कुछ समस्याएँ भी उत्पन्न हुई हैं, जो निम्नलिखित हैं—

(i) छोटे गाँवों, कस्बों में रेल परिवहन का विकास सम्भव नहीं हो सका है।
(ii) सेवाओं का निम्न स्तर।
(iii) क्षमता का अपूर्ण उपयोग।
(iv) बिना टिकट यात्रा की समस्या।
(v) रेल दुर्घटनाएँ
(vi) शक्ति के साधनों की कमी
(vii) अत्यधिक भीड़ की समस्या।

जल परिवहन का महत्त्व–

(i) जलमार्ग प्रकृति प्रदत्त होते हैं। इनके भरण—पोषण एवं निर्माण पर बहुत कम व्यय होता है।
(ii) बर्फीले स्थानों, पहाड़ी ढालों और सघन वनों में जलमार्ग ही परिवहन का एकमात्र साधन होते हैं।
(iii) थोक माल की ढुलाई के लिए जल परिवहन सर्वाधिक सस्ता, सुविधाजनक एवं उपयुक्त साधन है।
(iv) अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की दृष्टि से जल यातायात का विशेष महत्त्व है।
(v) जलमार्गों का विध्वंस नहीं होता है, अत: सुरक्षा की दृष्टि से अधिक महत्त्वपूर्ण हैं।

जल परिवहन की सीमाएँ– जल परिवहन की मुख्य सीमाएँ निम्नांकित हैं—

(i) जल वाहन की चाल बहुत धीमी होती है।
(ii) नदियाँ बहुधा ढेढ़ी—मेढ़ी बहती हैं और जल्दी—जल्दी अपना मार्ग बदलती रहती हैं। फलस्वरूप किन्हीं दो स्थानों के बीच की दूरी बढ़ जाती है।
(iii) जलमार्गों का स्वरूप सामयिक है। अधिक ठण्डे प्रदेशों में शीत ऋतु में जलमार्ग बर्फ से ढक जाते हैं, वर्षा ऋतु में बाढ़ आ जाती है और ग्रीष्म ऋतु में जल सूख जाता है।
(iv) भयानक तूफान जन—धन को हानि पहुँचाते हैं।

(v) जलमार्ग के यातायात में जोखिम का अंश बहुत अधिक रहता है।
(vi) जलमार्ग की सेवा पूर्ण नहीं होती। यह केवल एक बन्दरगाह से दूसरे बन्दरगाह तक सीमित रहती है।
(vii) जलयान की सेवा में लोचकता का पूर्ण अभाव होता है।
(viii) नदियों का जल सभी जगह समान रूप से गहरा नहीं होता जिसके कारण नावों को चलाने में बाधा उत्पन्न होती है।
(ix) जल परिवहन की सुविधा केवल तटवर्ती क्षेत्रों में ही उपलब्ध हो सकती है।

सड़क परिवहन का महत्त्व– भारतीय अर्थव्यवस्था में सड़क परिवहन का परिवहन प्रणाली में एक विशेष महत्त्व है, इसे निम्नलिखित तथ्यों के माध्यम से स्पष्ट किया जा सकता है—

(i) सड़कों के माध्यम से ग्रामीण जनता भी शहरों के सम्पर्क में सुगमता से आ जाती है।
(ii) अधिकांश माल का स्थानान्तरण सड़कों द्वारा ही होता है, इसलिए मूल्यों में समन्वय बनाए रखने का श्रेय सड़क परिवहन को जाता है।
(iii) विस्तृत एवं गहन खेती का ग्रामीण क्षेत्रों में विस्तार सड़क परिवहन की ही देन है।
(iv) सड़कों के विकास के कारण ही वस्तुओं की उत्पादन क्षमता में वृद्धि हुई है।
(v) सड़कों के विकास के कारण अकाल जैसी समस्याओं में कमी हुई है।
(vi) कच्चे माल को कारखानों तक पहुँचाने तथा वहाँ से तैयार माल को उपभोक्ताओं व विक्रेताओं तक पहुँचाने में सड़क परिवहन का विशेष महत्त्व है।
(vii) सड़क परिवहन के कारण रोजगार अवसरों में वृद्धि हुई है।
(viii) पक्की सड़कों के माध्यम से माल लाने व ले जाने में न केवल संचालन व्यय, अपितु समय की भी बचत होती है।
(ix) सड़कें बिजली, टेलीफोन के तार एवं पानी के नलों के लिए आवश्यक मार्ग प्रदान करती हैं।

सड़क परिवहन की सीमाएँ– सड़क परिवहन की प्रमुख सीमाएँ निम्नलिखित हैं—

(i) सड़क बनाने में निम्न स्तरीय माल का प्रयोग किए जाने के कारण वह बहुत जल्दी खराब हो जाती है, जिससे यात्रियों को असुविधा होती है।
(ii) सडकों एवं पुलों का अभाव
(iii) अनुज्ञा—पत्र देने में विलम्ब, अफसरशाही का बोलबाला।
(iv) सार्वजनिक एवं निजी मोटर क्षेत्र में प्रतियोगिता।
(v) दोषपूर्ण प्रशासन।

वायु परिवहन का महत्व–

(i) परिवहन के दूसरे साधनों की अपेक्षा वायुयान की चाल अधिक होती है।
(ii) वायुयान द्वारा फोटोग्राफी करना सरल है।
(iii) विमान द्वारा कीटनाशक, दवाइयों का छिड़काव करने से फसलों की रक्षा होती है।
(iv) वायुयान की सहायता से देश के किसी भी भाग में फैले उपद्रव को नियन्त्रित किया जा सकता है।
(v) वायु यातायात के माध्यम से औद्योगिकीकरण में प्रगति हुई है।
(vi) बहुमूल्य धातुओं का हस्तान्तरण सरल एवं जोखिम रहित होता है।
(vii) वन अथवा जंगलों में आग लग जाने पर विमान की सहायता से इसे शीघ्र बुझाया जा सकता है।
(viii) यह बाजार के विस्तार में सहायता प्रदान करता है।
(ix) वायुयान का मार्ग प्राकृतिक होता है।

वायु परिवहन की सीमाएँ–

(i) विदेशों से वायुयानों का आयात होने के कारण अत्यधिक व्यय होता है।
(ii) वायुयान से परिवहन करने का व्यय अत्यधिक होता है।
(iii) विदेशी विमान कम्पनियाँ अपेक्षाकृत अधिक तथा अच्छी सेवाएँ एवं सुविधा प्रदान करती हैं, जिससे भारतीय वायुसेवा का प्रभाव तथा आकर्षण कम हो जाता है।
(iv) वायुयान निगम के कर्मचारी समय—समय पर हड़ताल करते रहते हैं, जिस कारण यात्रियों को असुविधा होती है।
(v) भारत के हवाई अड्डे आधुनिक सुविधाओं से परिपूर्ण नहीं हैं।

4. सिंचाई के साधनों के विषय में विस्तृत टिप्पणी कीजिए।

उ०– **सिंचाई के प्रमुख साधन–** भारत में सिंचाई के मुख्य साधन निम्नलिखित हैं—

(i) कुएँ– कुएँ सिंचाई का एक प्राचीनतम स्रोत हैं। भूमिगत जल का सिंचाई के लिए प्रयोग कुओं द्वारा ही किया जाता है। हमारे देश में लगभग एक करोड़ कुएँ हैं। भारत में कुओं द्वारा सिंचाई उत्तर प्रदेश, पंजाब, हरियाणा, बिहार, राजस्थान, तमिलनाडु, महाराष्ट्र, गुजरात तथा मध्य प्रदेश में की जाती है।

(ii) ट्यूबवेल– ट्यूबवेल अथवा नलकूप सिंचाई के नवीनतम साधनों में से एक है। भारत में लगभग 8% कृषि योग्य भूमि नलकूपों द्वारा ही सींची जाती है। पश्चिमी उत्तर प्रदेश में मुख्यत: ट्यूबवेल अथवा नलकूपों से ही सिंचाई कार्य किया जाता है।

(iii) तालाब– तालाब सिंचाई के प्राचीन एवं महत्त्वपूर्ण साधन हैं। भारत में लगभग 13% कृषि कार्य में तालाबों द्वारा ही सिंचाई की जाती है। दक्षिण भारत में कृषि का मुख्य साधन तालाब हैं। तालाबों द्वारा सिंचाई महाराष्ट्र, तमिलनाडु, आन्ध्र प्रदेश, पश्चिम बंगाल, दक्षिणी बिहार, मध्य प्रदेश तथा दक्षिण—पूर्वी राजस्थान में की जाती है।

दक्षिणी भारत में गहरी नदियों एवं तालाबों से ऊँची भूमि तक जल नलकूपों अथवा पम्प सेटों द्वारा पहुँचाया जाता है। इसे लिफ्ट सिंचाई करना कहते हैं।

(iv) नहरें– भारत में कृषि योग्य भूमि के लगभग 48 % भाग पर सिंचाई नहरों के माध्यम से की जाती है। नहरें दो प्रकार की होती हैं—

(क) नित्यवाही नहरें, (ख) अनित्यवाही नहरें।

नित्यवाही नहरों में पूरे वर्ष जल का बहाव रहने के कारण इनसे कभी भी सिंचाई की जा सकती है, जबकि अनित्यवाही नहरों में केवल सीमित अवधि के लिए जल होने के कारण उनसे सीमित समय में ही कृषि सिंचाई कार्य का किया जा सकता है।

नहरों द्वारा सिंचाई उत्तर प्रदेश, पंजाब, हरियाणा, बिहार, राजस्थान, पश्चिम बंगाल, आन्ध्र प्रदेश, महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश एवं तमिलनाडु आदि राज्यों में की जाती है। पंजाब एवं पश्चिमी उत्तर प्रदेश में मुख्यत: सिंचाई नहरों द्वारा ही की जाती है। भारत में सिंचाई के लिए विभिन्न परियोजनाएँ चलाई जा रही हैं। इन परियोजनाओं को तीन श्रेणियों में बाँटा गया है जो निम्नलिखित हैं—

(i) बड़ी सिंचाई परियोजनाएँ
(ii) मध्यम सिंचाई परियोजनाएँ
(iii) लघु सिंचाई परियोजनाएँ

भारत में मुख्यत: सिंचाई परियोजनाएँ बहु—उद्देशीय होती हैं, जिन्हें बहु—उद्देशीय परियोजना के नाम से जाना जाता है, इनका निर्माण एक से अधिक समस्याओं के समाधान हेतु किया जाता है। इन्हें 'बहुमुखी योजनाएँ' भी कहा जाता है। इनका मुख्य उद्देश्य निम्नलिखित हैं—

(i) जल—विद्युत का उत्पादन करना।
(ii) जल—परिवहन में वृद्धि करना।
(iii) नवीन उद्योगों का विकास करना।
(iv) सिंचाई को नवीन दिशा प्रदान करना।
(v) बाढ़ आदि से देश की रक्षा करना।
(vi) दलदली क्षेत्रों को सुखाकर कृषि योग्य क्षेत्र का विस्तार करना।
(vii) वृक्षारोपण कर स्वच्छ जलवायु में वृद्धि करना।
(viii) मत्स्य पालन को प्रोत्साहित करना।
(ix) अकाल एवं सूखे का समाधान करना।

भारत की कुछ प्रमुख नदी घाटी परियोजनाएँ एवं उनकी नदी तथा राज्य निम्नलिखित हैं—

	नदी	**राज्य**	**परियोजना**
(i)	सतलज	पंजाब	भाखड़ा—नांगल परियोजना
(ii)	महानदी	उड़ीसा (ओडिशा)	हीराकुण्ड परियोजना
(iii)	कृष्णा	आन्ध्र प्रदेश	नागार्जुन परियोजना
(iv)	कोयना	महाराष्ट्र	कोयना परियोजना
(v)	भागीरथी	उत्तराखण्ड	टिहरी बाँध परियोजना

5. बहु–उद्देशीय परियोजनाओं से आप क्या समझते हैं? इसके प्रमुख उद्देश्य तथा प्रमुख नदी घाटी परियाजनाओं के नाम बताइए।

उ०– उत्तर के लिए विस्तृत उत्तरीय प्रश्न संख्या—4 के उत्तर का अवलोकन कीजिए।

6. मौद्रिक एवं वित्तीय संस्थाओं से आप क्या समझते हैं? वस्तु विनिमय को परिभाषित करते हुए उसके दोष भी बताइए।

उ०– **मौद्रिक एवं वित्तीय संस्थाएँ–** वित्तीय संस्थाओं के बारे में जानने से पूर्व साख के बारे में जानते हैं, क्योंकि साख प्रदान करने वाली संस्थाएँ ही वित्तीय संस्थाएँ कहलाती हैं।

जब कोई क्रेता कोई वस्तु नकद न खरीदकर, उधार खरीदना चाहता है और विक्रेता उसे उधार माल खरीदने की अनुमति प्रदान कर देता है। इस अनुमति अथवा विक्रेता द्वारा क्रेता पर दिखाए गए इस विश्वास को ही साख कहते हैं। भारतीय अर्थव्यवस्था में बैंकिंग प्रणाली साख का प्रमुख स्रोत है। बैंक साख का निर्माण कर सकते हैं और अपनी जमाओं से कई गुणा अधिक उधार दे सकते हैं। साख प्रदान करने वाली संस्थाएँ वित्तीय संस्थाएँ कहलाती हैं। भारत में दो प्रकार की वित्तीय संस्थाएँ हैं—

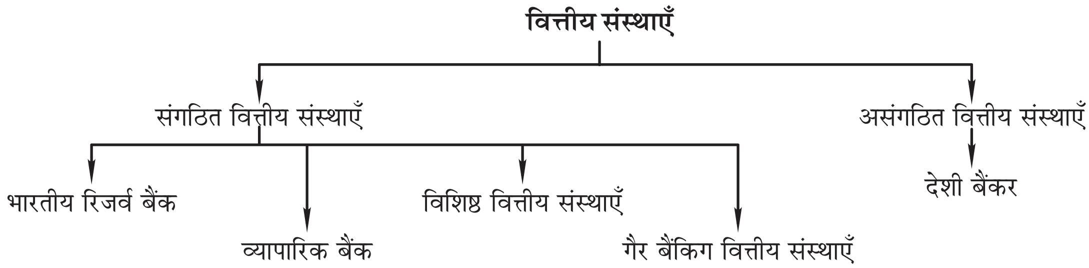

आधुनिक युग में हम सभी जानते हैं कि मुद्रा का मानव जीवन में क्या महत्त्व है। मुद्रा के संचालन और प्रबन्धन हेतु संस्थागत ढ़ाँचे की आवश्यकता प्रत्येक राष्ट्र को पड़ती है। ऐसे ढ़ाँचे को हम मौद्रिक ढ़ाँचा कहते हैं। मौद्रिक ढ़ाँचा मुद्रा एवं साख को नियन्त्रित करने वाली संस्था है।

वस्तु–विनिमय– अर्थव्यवस्था के आर्थिक ढाँचे में मुद्रा का एक विशिष्ट स्थान है। वस्तुओं एवं सेवाओं के विनिमय का माध्यम 'मुद्रा' ही होती है। मुद्रा का उत्पादन तब तक असम्भव है, जब तक वस्तुओं तथा सेवाओं का उत्पादन न किया गया हो। मुद्रा का उत्पादन अर्थव्यवस्था में वस्तुओं एवं सेवाओं के विनिमय के लिए किया जाता है। मुद्रा ''वस्तु—विनिमय'' की कठिनाइयों को दूर करती है।'' वस्तु विनिमय से आशय ''एक वस्तु का किसी अन्य वस्तु अथवा सेवा से आदान—प्रदान करने से है। इसे ''प्रत्यक्ष विनिमय'' भी कहा जाता है।

प्रो० जेवन्स के अनुसार, ''अपेक्षाकृत कम आवश्यक वस्तु से अधिक आवश्यक वस्तु का आदान—प्रदान ही वस्तु—विनिमय है।''

वस्तु–विनिमय प्रणाली की कठिनाइयाँ– वस्तु—विनियम की प्रमुख कठिनाइयाँ जिन्हें मुद्रा द्वारा दूर किया गया है, निम्नलिखित हैं—

(i) वस्तु—विनिमय उन्हीं व्यक्तियों के मध्य सम्भव है, जिन्हें एक—दूसरे की वस्तुओं की आवश्यकता होती है।

(ii) विनिमय में वस्तुओं के विनिमय के लिए मापन की कोई दर निश्चित नहीं होती, जिस कारण मूल्य मापक के विनिमय का अनुपात मनमाने ढंग से होता है।

(iii) बहुत—सी वस्तुएँ ऐसी होती हैं, जिनका विभाजन नहीं किया जा सकता; जैसे— भेड़, बकरी आदि। इन वस्तुओं का विभाजन होने पर इनकी उपयोगिता समाप्त हो जाती है।

(iv) वस्तु—विनिमय में वस्तुओं को ही धन संचय करने के लिए प्रयोग किया जाता है। तथा वस्तुएँ नाशवान होती हैं, जिस कारण उनका अधिक समय तक संचय नहीं किया जा सकता।

(v) परिवहन के साधनों के अभाव के कारण वस्तुओं के स्थानान्तरण में कठिनाई आती है एवं अचल सम्पत्ति का स्थानान्तरण तो असम्भव ही होता है।

(vi) वस्तु विनिमय प्रणाली में विनिमय मुख्यत: उधार, लेन—देन के रूप में किया जाता है।

❖ **मानचित्र कार्य**

अध्यापक की सहायता से विद्यार्थी स्वयं करें।

❖ **प्रोजेक्ट कार्य**

अध्यापक की सहायता से विद्यार्थी स्वयं करें।

48 विकास की दृष्टि से विश्व में भारत की स्थिति

अभ्यास

❖ **बहुविकल्पीय प्रश्न**

उ०– बहुविकल्पीय प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्य पुस्तक के पृष्ठ संख्या—407 का अवलोकन कीजिए।

❖ **अतिलघु उत्तरीय प्रश्न**

उ०– अतिलघु उत्तरीय प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्य पुस्तक के पृष्ठ संख्या—407 का अवलोकन कीजिए।

❖ **लघु उत्तरीय प्रश्न**

1. ''भारत एक विकासशील अर्थव्यवस्था है।'' इस विषय पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

उ०– **भारत—एक विकासशील अर्थव्यवस्था के रूप में–** भारतीय अर्थव्यवस्था एक विकासशील अर्थव्यवस्था है तथा यह विकास की ओर निरन्तर प्रगतिशील है। कृषि—उद्योग, परिवहन, विनियोग, औद्योगिक क्षेत्र आदि सभी क्षेत्रों में परिवर्तन एवं विकास दिखाई देता है। भारत ने आयात एवं निर्यात व्यापार में भी प्रगति की है तथा पड़ोसी देशों से अपने सामाजिक एवं आर्थिक दोनों ही सम्बन्ध मजबूत किए हैं। आज भारत एक प्रमुख औद्योगिक देश के रूप में उभरकर सामने आया है। अब भारत में प्रत्येक प्रकार की परिष्कृत उपभोक्ता एवं पूँजीगत वस्तुओं का उत्पादन किया जाता है तथा औद्योगिक क्रान्ति के फलस्वरूप इन सभी उद्योगों में नवीन तकनीकी का भी प्रयोग हो रहा है। वर्तमान समय में भारत की काफी आर्थिक प्रगति हुई है, जिसके कुछ संकेत निम्नलिखित हैं—

(i) नियोजित मिश्रित अर्थव्यवस्था (ii) राष्ट्रीय आय एवं प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि (iii) बचत एवं पूँजी निर्माण में वृद्धि (iv) उद्योग एवं सेवा क्षेत्र का महत्वपूर्ण सहयोग (v) कृषि क्षेत्र का विकास (vi) औद्योगिक विकास (vii) यातायात एवं संचार साधनों का विकास (viii) मुद्रा एवं साख व्यवस्था (ix) परमाणु शक्ति एवं अन्तरिक्ष विज्ञान में प्रगति (x) विकास के क्षेत्र में प्रगति (xi) सामाजिक सेवाओं का विस्तार।

देश में प्रशिक्षित श्रमिकों, तकनीकी विशेषज्ञों, वैज्ञानिकों, अनुसन्धानकर्ताओं, प्रशासकों व प्रबन्धकों आदि में उल्लेखनीय वृद्धि हुई है। वर्तमान समय में भारतीय आर्थिक ही नहीं सामाजिक विकास की ओर भी अग्रसर हैं। रूढ़िवादिता, बाल—विवाह, पर्दा—प्रथा, छुआछूत आदि बुराईयाँ धीरे—धीरे कम हुई हैं तथा देशवासियों ने विकास के अनुरूप अपने को ढालने का प्रयास किया है। इस प्रकार भारत एक विकासशील अर्थव्यवस्था के पथ पर प्रगतिशील है।

2. अन्तरिक्ष की दुनिया में भारत के बढ़ते कदमों पर टिप्पणी लिखिए।

उ०– **अन्तरिक्ष की दुनिया में भारत के बढ़ते कदम–** 19 अप्रैल, 1975 में स्वदेश निर्मित उपग्रह आर्यभट्ट के प्रक्षेपण के साथ अपने अन्तरिक्ष सफर की शुरूआत करने वाले इसरो की यह सफलता भारत के अन्तरिक्ष में बढ़ते वर्चस्व की तरफ इशारा करती है। 22 अक्तूबर, 2008 **मून मिशन** की सफलता के बाद इसरो का लोहा पूरी दुनिया मान चुकी है। चन्द्रमा पर पानी की खोज का श्रेय भी चन्द्रयान—1 को ही मिला। भविष्य में इसरो उन सभी ताकतों को और भी टक्कर देने जा रहा है, जो साधनों की बहुलता के चलते प्रगति कर रहे हैं। लेकिन भारत के पास प्रतिभाओं की बहुलता है।

3. भारत को नियोजित मिश्रित अर्थव्यवस्था क्यों कहा जाता है?

उ०– मिश्रित अर्थव्यवस्था के अन्तर्गत सार्वजनिक एवं निजी क्षेत्रों को कार्य करने का समान अधिकार होता है। स्वतन्त्रता के बाद भारत के तीव्र विकास हेतु मिश्रित आर्थिक प्रणाली पर आधारित आर्थिक नियोजन का मार्ग चुना गया। 1 अप्रैल, 1951 से भारतीय अर्थव्यवस्था नियोजित अर्थव्यवस्था के रूप में कार्य कर रही है। भारत की प्रगति में सार्वजनिक एवं निजी दोनों ही उद्योगों का पूर्ण सहयोग है इसलिए भारत को नियोजित मिश्रित अर्थव्यवस्था कहा जाता है।

❖ **विस्तृत उत्तरीय प्रश्न**

1. विकास की दृष्टि से विश्व में भारत की स्थिति का विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिए।

उ०– **विकास की दृष्टि से विश्व में भारत की स्थिति–** भारत की प्राचीन स्थिति को ध्यान में रखते हुए अगर भारत की वर्तमान स्थिति पर दृष्टि डालें तो औद्योगिक एवं सामाजिक दोनों ही क्षेत्रों में भारत ने उच्च कोटि की प्रगति की है। किसी भी देश की वर्तमान स्थिति में सबसे महत्त्वपूर्ण उपलब्धि उस देश का विकास है तथा विकास तभी सम्भव है, जब सम्पूर्ण समाज उस देश के विकास में सहायता प्रदान करे। हमारे देश की आबादी में 35 वर्ष से कम उम्र के लोगों की संख्या 75 प्रतिशत है, अत: यहाँ सबसे बड़ी मात्रा में युवा कार्यबल हैं, जो प्रत्येक स्थिति में देश के विकास में सहायता प्रदान कर रहा है तथा देश भी इन्हें शिक्षा

तथा प्रशिक्षण देने के लिए हर सम्भव प्रयास कर रहा है, जिससे ये मानव संसाधन प्रशिक्षित होकर देश के विकास में भागीदार बन सकें। भारत एक कृषि प्रधान देश है, इसी कारण खाद्यान्न उत्पादन के क्षेत्र में भारत आत्मनिर्भर है तथा औद्योगिक क्रान्ति के फलस्वरूप विश्व के औद्योगिक क्षेत्रों में इसका पाँचवा स्थान है। आज भारत विश्व में ही नहीं अपितु अन्तरिक्ष के क्षेत्र में भी प्रगति कर रहा है, जिसके लिए यहाँ पर अनेक अन्तरिक्ष सम्बन्धित कार्यक्रम चलाए जा रहे हैं। पूर्व सोवियत संघ, अमेरिका, फ्रांस, चीन, जापान के बाद भारत अन्तरिक्ष कार्यक्रम का सफल क्रियान्वन करने वाला छठाँ देश है। भारतीय मूल के लोग अन्य देशों में जाकर वहाँ पर भी अपने देश का नाम ऊँचा कर रहे हैं। आज भारत अपनी लगभग 54 करोड़ युवा शक्ति के साथ विश्व के विभिन्न देशों में रह रहे भारतीय मूल के लगभग 20 करोड़ लोगों से जुड़ा हुआ है। भारत की प्रगति को देखकर ही विश्व के अन्य देशों द्वारा भी भारत में अनुसन्धान एवं विकास केन्द्रों की स्थापना की जा रही है। जिसके परिणामस्वरूप भारत के अन्य देशों के साथ सम्बन्ध और अधिक मजबूत हो रहे हैं। सभी भारतीयों की आर्थिक एवं सामाजिक दशा में सुधार के लिए भारतीय सरकार द्वारा अनेक योजनाएँ बनाई जा रही हैं। 12 वीं पंचवर्षीय योजना में समावेशी विकास के अन्तर्गत समाज के सभी वर्गों को साथ लेकर देश के विकास में उनका सहयोग सुनिश्चित किया गया है। सरकार देश के किसानों और कामगारों के कल्याण को बढ़ावा देने और उद्यमियों, व्यापारियों, वैज्ञानिकों, इंजीनियरों एवं समाज के अन्य उत्पादकों की वृद्धि करने के साथ—साथ 9% की वार्षिक वृद्धि दर का लक्ष्य प्राप्त करने के लिए प्रतिबद्ध है।

भारत का क्षेत्रफल की दृष्टि से विश्व में सातवाँ स्थान है। इसका तटीय क्षेत्र लगभग 7600 किमी० तक फैला हुआ है। इस समुद्री क्षेत्र के सारे जलीय संसाधनों पर भारत का पूर्ण रूप से अधिकार है। इन संसाधनों के माध्यम से अनेक व्यक्तियों को रोजगार के साधन उपलब्ध हुए है, जिससे भारत के आर्थिक विकास में दृढ़ता आती है। हिन्द महासागर के शीर्ष पर स्थित होने के कारण भारत को पूरब व पश्चिम से जोड़ने वाले जलमार्ग एवं वायुमार्ग दोनों पर नियन्त्रण है, यह भी भारत के आर्थिक विकास में सहायता प्रदान करता है। यूरोप एवं मध्य—पूर्व से चीन, जापान, इण्डोनेशिया, ऑस्ट्रेलिया एवं न्यूजीलैण्ड जाने वाले वायुयान अधिकांशत: ईंधन तथा यात्रियों के कारण दिल्ली, मुम्बई, कोलकाता अथवा चेन्नई के अन्तर्राष्ट्रीय हवाई अड्डों का उपयोग करते हैं। ईंधन की दृष्टि से भारत के पास कोयले का पर्याप्त भण्डार है, जो भविष्य में लगभग 300 वर्षों तक पर्याप्त है, परन्तु इसके सही उपयोग की आवश्यकता है। भारत एशिया एवं अफ्रीका जैसे महाद्वीपों के विकासशील देशों के मध्य स्थित है, इसी कारण यह उनके औद्योगिक, आर्थिक एवं सामाजिक क्षेत्र में विकास के लिए सहायता प्रदान करता है। भारत की अर्थव्यवस्था विश्व की पाँचवी सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था है। उत्तरोतर बढ़ता विदेशी मुद्रा का भण्डार एवं तकनीकी कुशलता के क्षेत्र में विश्वस्तरीय मान्यता के बल पर भारत विश्व में अपनी एक अलग पहचान बना चुका है। भारतीय अर्थव्यवस्था के विकास में कुछ क्षेत्र अत्यधिक तीव्रता से अपने विकास का परिणाम देकर सहायता प्रदान कर रहे हैं। इसका प्रत्यक्ष उदाहरण भारतीय सॉफ्टवेयर उद्योगों की सफलता है। बड़ी संख्या में भारतीय सॉफ्टवेयर कम्पनियों ने अन्तर्राष्ट्रीय गुणवत्ता प्रमाणन प्राप्त कर लिया है तथा अधिकांश बहुराष्ट्रीय विकास अनुसन्धान केन्द्र भारत में स्थापित हैं।

इस प्रकार आर्थिक विकास भारत को प्रगति की ओर ले जा रहा है। भारत में साक्षरता का प्रतिशत 74.04 है। जीवन प्रत्याशा 63.4 वर्ष है। क्रय शक्ति तुल्यता पर भारत में प्रति व्यक्ति आय ₹ 33, 731 है।

विकास की दृष्टि से विश्व में भारत की स्थिति– 'विकास' शब्द से आशय उन्नति, प्रगति, कल्याण एवं बेहतर जीवन की अभिलाषा से है। कोई समाज विकास के बारे में यह स्पष्ट करता है कि समाज के लिए समग्र रूप से उसकी दृष्टि क्या है और उसे प्राप्त करने का सर्वोत्तम उपाय क्या है? अर्थव्यवस्था की दृष्टि से 'विकास' शब्द का प्रयोग समाज के आधुनिकीकरण तथा आर्थिक विकास की दर में वृद्धि के लिए किया जाता है।

वर्तमान समय में भारत विकास की ओर प्रगतिशील है, जिस कारण इसकी गणना विश्व के प्रमुख देशों में की जाती है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् भारत में शिक्षा, उद्योग, विज्ञान आदि सभी क्षेत्रों में प्रशंसनीय प्रगति हुई है। भारत में प्राकृतिक संसाधन, पूँजी निर्माण, तकनीकी व नवाचार, सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक संस्थाएँ, विदेशी सहायता एवं अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की दशा विश्व के अन्य देशों से उत्तम है।

चुनौतियाँ भी कम नहीं– अन्तरिक्ष अनुसंधान के क्षेत्र में हम लगातार प्रगति कर रहे हैं, लेकिन अभी भी हम पूरी तरह से आत्मनिर्भर नहीं हो पाए हैं। अभी भी हमें विदेशों से ट्रांसपॉडर लीज पर लेने पड़ रहे हैं। इसरो को पीएसएलवी दूरसंवेदी उपग्रहों के प्रक्षेपण में दक्षता है, लेकिन संचार उपग्रहों के प्रक्षेपण के मामले में हम अभी आत्मनिर्भर नहीं हो पाए हैं। इसी वजह से हमें जीसेट—10 का प्रक्षेपण विदेशी रॉकेट से कराना पड़ रहा है। क्रायोजेनिक तकनीकी के परिप्रेक्ष्य में पूर्ण सफलता न मिलने के कारण भारत इस मामले में आत्मनिर्भर नहीं हो पाया है, जबकि प्रयोगशाला स्तर पर क्रायोजेनिक इंजन का सफलतापूर्वक परीक्षण किया जा चुका है, लेकिन स्वदेशी क्रायोजेनिक इंजन की सहायता से लॉन्च किए गए प्रक्षेपण यान जीएसएलवी की असफलता के बाद इस पर सवालिया निशान लगा हुआ है। स्वदेशी क्रायोजेनिक इंजन के विकास में बहुत देरी हो रही है। वर्ष 2010 में जीएसएलवी के दो अभियान विफल हो गए थे। अन्तरिक्ष में लंबे समय तक टिकने के लिए हमें इस दिशा में अभी बहुत काम करना है। अन्तरिक्ष अब बहुत महत्त्वपूर्ण हो गया है और हमारा निकटतम प्रतिद्वंद्वी चीन कई मामलों में हमसे बहुत

आगे चल रहा है। चीनी रॉकेट नौ टन का पेलोड़ ले जा सकते हैं लेकिन भारतीय रॉकेट अभी 2.5 टन से अधिक भार नहीं ले जा सकते। इसलिए इस दिशा में लगातार कार्य करने की आवश्यकता है। अन्तरिक्ष के उपयोग को लेकर भारत का थोड़ा अलग एजेंडा है। इसरो के आधिकारिक आँकड़ों के मुताबिक, भारत के पास 21 उपग्रह हैं। इनमें से 10 संचार और 4 तस्वीर लेने की क्षमता से लैस निगरानी करने वाले उपग्रह हैं। बाकी सात भू—पर्यवेक्षण उपग्रह (अर्थ ऑब्जर्वेशन सैटेलाइट)हैं। इनका इस्तेमाल दोहरे उद्देश्यों के लिए किया जा सकता है। ये रक्षा उद्देश्यों के लिए भी प्रयोग में आ सकते हैं।

2. देश के समक्ष विकासशील अर्थव्यवस्था के रूप में कौन–कौन सी चुनौतियाँ हैं?

उ०– विकासशील अर्थव्यवस्था के रूप में देश के समक्ष चुनौतियाँ–

(i) हमारी अर्थव्यवस्था के लिए पहली चुनौती यह है कि देश में इस वक्त बजट घाटा सकल घरेलू आय के प्रतिशत के रूप में काफी बढ़ गया है। राजनीति से प्रेरित लोकलुभावन वादों के कारण उस पर अंकुश लगाना कठिन हो रहा है।

इस बजट घाटे का असर मुद्रास्फीति पर तो पड़ेगा ही अन्ततोगत्वा बजट को संतुलन करने के लिए जनहित की कई महत्त्वपूर्ण योजनाएँ स्थागित करनी भी पड़ सकती है। इससे साधारणजन की क्षमता और आय पर विपरीत प्रभाव पड़ना अवश्यम्भावी है।

इसलिए अब यह आवश्यक हो गया है कि सरकार को अनुपयोगी, लोकलुभावन घोषणाओं पर लगाम लगानी चाहिए और बजट को संतुलित करने के लिए ठोस प्रयत्न करने चाहिए।

(ii) दूसरी चुनौती केन्द्र और राज्यों में बढ़ते हुए व्यापारिक ऋण की समस्या है। यद्यपि बजट को संतुलित रखने के लिए और व्यापारिक ऋण की हद बाँधने के लिए कई प्रस्ताव पारित किए गए हैं, जिनमें से कइयों को कानूनी दर्जा भी दे दिया गया है। फिर भी केन्द्र और राज्यों की सरकारें निरंतर बाजार से बड़े ऋण ले रही हैं और इसके कारण केन्द्र और राज्य के बजटों का बड़ा भाग ब्याज चुकाने में ही खर्च हो रहा है।

(iii) तीसरी चुनौती उद्योगों की मंद विकास गति है। केन्द्र और राज्य सरकारें देश और विदेश से बड़े उद्योगपतियों को बुलाकर उनसे निवेश की अपेक्षा कर रही हैं। **मेक इन इण्डिया** के तहत बड़े उद्योगों को कई सुविधाएँ और प्रलोभन देकर हर राज्य आमंत्रित कर रहा है।

अधिकतर बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ और देश के बड़े उद्योगपति भी, भारत में सस्ता उत्पादन कर विदेश में निर्यात करने की रणनीति पर काम कर रहे हैं। परंतु हकीकत में देश से औद्योगिक निर्यात बहुत कम हो पाया है, क्योंकि विश्वभर में औद्योगिक पदार्थों की माँग कम हो रही है। फलस्वरूप अनेक प्रलोभनों के बाद भी औद्योगिक उत्पादन में आशातीत वृद्धि नहीं हो पा रही है।

इस नीति की दूसरी कमी यह है कि बहुत कम प्रमाण में रोजगार सृजन किया जा रहा है, जो भारत जैसे देश में जहाँ दिनोदिन बढ़ती हुई संख्या में युवा रोजगार की तलाश में है, एक संकट पैदा कर सकता है। स्पष्टत: जब तक छोटे और मझले उद्योगों को भी उतना ही प्रोत्साहन नहीं दिया जाएगा, जितना कि बड़े उद्योगों को मिल रहा है, भारत की अर्थव्यवस्था की यह कमजोरी दूर नहीं हो पाएगी।

(iv) चौथी चुनौती जो सबसे गंभीर है, वह कृषि उत्पादन में आया हुआ स्थगन है। पिछले तीन वर्षों में कृषि में दो—तीन प्रतिशत की वृद्धि भी नहीं हो रही है। इसका सीधा असर किसानों पर पड़ रहा है, क्योंकि उनकी आय बढ़ नहीं पा रही है।

खेती के उत्पादन में वृद्धि के लिए अब तक किए गए निवेश का पूरा लाभ किसानों को नहीं मिल रहा है। मसलन, सिंचाई पर खर्च की गई रकम के प्रमाण में सिंचित क्षेत्र की वृद्धि नहीं है और जिसे हम सिंचित क्षेत्र कहते हैं, वहाँ भी सिंचाई के स्रोतों की फसल में पानी देने की क्षमता कम है।

इसी प्रकार कृषि प्रौद्योगिकी की उपलब्धियों की बार—बार घोषणा की जाती है परंतु अब तक किसी भी बड़ी फसल में चमत्कारिक वृद्धि नहीं हुई है।

छोटे किसानों की बदहाली और बड़ी संख्या में हो रही किसानों की आत्महत्या स्पष्ट करती है कि इस क्षेत्र में हमारी नीतियाँ सफल नहीं हो पा रही हैं। वैश्विक मंदी का मुकाबला करने और सतत आर्थिक विकास करने में हम तभी सक्षम होंगे, जब ऊपर बताई गई कमजोरियों को दूर कर सकेंगे।

❖ **मानचित्र कार्य**

अध्यापक की सहायता से विद्यार्थी स्वयं करें।

❖ **प्रोजेक्ट कार्य**

अध्यापक की सहायता से विद्यार्थी स्वयं करें।

प्रोजेक्ट कार्य एवं आंतरिक मूल्यांकन
(मासिक परीक्षण)

प्रोजेक्ट–1
आन्तरिक मूल्यांकन (मासिक परीक्षण) हेतु प्रश्न

1. भारत में सल्तनत काल के कितने राजवंशों ने शासन किया? उनके नाम लिखिए।

उ०– भारत में सल्तनत काल के पाँच राजवंशों ने शासन किया। उनके नाम शासनकाल सहित निम्नलिखित हैं—
गुलाम वंश (1206–1290 ई०), खिलजी वंश (1290–1320 ई०), तुगलक वंश (1320–1414 ई०), सैयद वंश (1414–1451 ई०), तथा लोदी वंश (1451–1526 ई०)।

2. मुगलकाल का संस्थापक कौन था? मुगलकाल की स्थापत्य कला कैसी थी?

उ०– मुगलकाल का संस्थापक बाबर था। मुगलकाल स्थापत्य कला के चरमोत्कर्ष का युग था। आगरा का ताजमहल, लाहौर का किला, जामा मस्जिद, फतेहपुर सीकरी का बुलन्द दरवाजा, पंचमहल, शेख सलीम चिश्ती का मकबरा, सिकन्दरा में अकबर का मकबरा, जोधाबाई का महल, नगीना मस्जिद दीवाए—ए—खास, दीवान—ए—आम आदि भव्य इमारतें मुगलकाल की स्थापत्य कला के उत्कृष्ट उदाहरण हैं।

3. कुतुबुद्दीन ऐबक किस वंश का शासक था? उसके द्वारा बनवाई गई दो इमारतों के नाम बताइए।

उ०– 'कुतुबुद्दीन ऐबक' गुलाम वंश का शासक था। 'कुव्वत—उल—इस्लाम' तथा 'अढाई दिन का झोपड़ा' नामक मस्जिदें बनवाईं।

4. शाहजहाँ के काल में स्थापत्य कला कैसी थी? उसके द्वारा निर्मित प्रमुख इमारतों के नाम लिखिए।

उ०– शाहजहाँ का काल स्थापत्य कला का चरमोत्कर्ष का युग था। उसके समय में भवन—निर्माण कला में शिल्प तथा सामग्री दोनों ही दृष्टिकोणों से परिपक्वता एवं सौन्दर्य दिखाई पड़ता था। दिल्ली का लाल किला, दीवान—ए—खास, दीवाए—ए—आम, जामा-मस्जिद, आगरा की मोती मस्जिद, आगरा का ताजमहल, मयूर सिंहासन आदि शाहजहाँ द्वारा निर्मित प्रमुख इमारतें हैं।

5. मुगलकाल की मुख्य उपलब्धियों का वर्णन कीजिए।

उ०– मुगलकाल में समाज में शान्ति, समृद्धि एवं सुव्यवस्था थी। मुगलकाल साहित्य उन्नति का स्वर्ण युग था। इस काल की तुजुके बाबरी, हुमायूँनामा, अकबरनामा, आइने अकबरी, पद्मावत, रामचरित्र मानस, सूर सागर आदि प्रमुख ऐतिहासिक ग्रन्थों की रचना की गई। शिक्षा, स्थापत्य कला, चित्रकला संगीत आदि क्षेत्रों में महान उपलब्धियाँ हासिल की गईं।

प्रोजेक्ट–2
आन्तरिक मूल्यांकन (मासिक परीक्षण) हेतु प्रश्न

1. लोकतान्त्रिक व्यवस्था में जनसाधारण राजनीतिक दलों के विषय मे क्या राय रखता है?

उ०– लोकतान्त्रिक व्यवस्था में जन साधारण राजनीतिक दलों के विषय में अपनी खराब राय रखते हैं। अपनी लोकतान्त्रिक व्यवस्था और राजनीतिक जीवन की ही बुराई के लिए वे दलों को ही जिम्मेदार मानते हैं। सामाजिक और राजनीतिक विभाजनों के लिए भी दलो को ही दोषी माना जाता है।

2. राजनीतिक दल से क्या आशय है?

उ०– **राजनीतिक दल से आशय–** राजनीतिक दल को लोगों के एक ऐसे संगठित समूह के रूप में समझा जा सकता है, जो चुनाव लड़ने और सरकार में राजनीतिक सत्ता हासिल करने के उद्देश्य से काम करता है। समाज के सामूहिक हित को ध्यान में रखकर यह समूह कुछ नीतियाँ और कार्यक्रम तय करता है। सामूहिक हित एक विवादास्पद विचार है। इसे लेकर सबकी राय अलग-अलग होती है। इसी आधार पर दल लोगों को यह समझाने का प्रयास करते हैं कि उनकी नीतियाँ औरों से बेहतर हैं। वे लोगों का समर्थन पाकर चुनाव जीतने के बाद उन नीतियों को लागू करने का प्रयास करते हैं।

राजनीतिक दल के तीन प्रमुख हिस्से हैं—

नेता, सक्रिय सदस्य, अनुयायी या समर्थक।

3. राजनीतिक दलों के कोई पाँच कार्य लिखिए?

उ०– राजनीतिक दलों के पाँच कार्य निम्नलिखित हैं—

(i) दल चुनाव लड़ते हैं। अधिकांश लोकतान्त्रिक देशों में चुनाव राजनीतिक दलों द्वारा प्रत्याशी घोषित किए गए उम्मीदवारों के बीच लड़ा जाता है।

(ii) दल अलग-अलग नीतियों और कार्यक्रमों को मतदाताओं के सामने रखते हैं और मतदाता अपनी पसन्द की नीतियाँ और कार्यक्रम चुनते हैं।

(iii) दल देश के कानून-निर्माण में निर्णायक भूमिका निभाते हैं। कानूनों पर औचारिक बहस होती है और उन्हें विधायिका में पास करवाना पड़ता है। विधायिका के अधिकतर सदस्य किसी-न-किसी दल के सदस्य होते हैं। इस कारण वे अपने दल के नेता के निर्देश पर फैसला करते हैं।

(iv) दल ही सरकार बनाते और चलाते हैं।

(v) चुनाव हारने वाले दल शासक दल के विरोधी पक्ष की भूमिका निभाते हैं। सरकार की गलत नीतियों और असफलताओं की आलोचना करने के साथ वह अपनी अलग राय भी रखते हैं।

4. भारतीय लोकतन्त्र में राजनीतिक दलों की भूमिका के पक्ष में तर्क दीजिए।

उ०– राजनीतिक दलों का उदय प्रतिनिधित्व पर आधारित लोकतान्त्रिक व्यवस्था के उभार के साथ जुड़ा है। बड़े समाजों के लिए प्रतिनिधित्व आधारित लोकतंत्र की जरूरत होती है। भारत भी ऐसा ही लोकतंत्र है, इसीलिए यहाँ राजनीतिक दलों की महत्वपूर्ण भूमिका हैं। जब समाज बड़े और जटिल हो जाते हैं, तब उन्हें विभिन्न मुद्दों पर अलग-अलग विचारों को समेटने और सरकार की नजर में लाने के लिए किसी माध्यम या एजेंसी की जरूरत होती है। विभिन्न जगहों से आए प्रतिनिधियों को साथ करने की जरूरत होती है, ताकि एक जिम्मेवार सरकार का गठन हो सके। उन्हें सरकार का समर्थन करने या उस पर अंकुश रखने, नीतियाँ बनवाने और नीतियों का समर्थन अथवा विरोध करने के लिए उपकरणों की जरूरत होती है। प्रत्येक प्रतिनिधि—सरकार की ऐसी जो भी जरूरतें होती हैं, राजनीतिक दल उनको पूरा करते हैं। इस तरह हम कह सकते हैं कि राजनीतिक दल लोकतन्त्र की एक अनिवार्य शर्त हैं अथवा भारतीय लोकतंत्र में राजनीतिक दलों की महत्वपूर्ण भूमिका है।

5. भारतीय लोकतन्त्र में राजनीतिक दलों की भूमिका के विपक्ष में तर्क दीजिए।

उ०– **भारतीय लोकतन्त्र में राजनीतिक दलों की भूमिका के विपक्ष में तर्क–** भारतीय लोकतंत्र में बहुदलीय पद्धति के आधार पर संसदीय लोकतंत्रात्मक व्यवस्था को अपनाया गया है। संसदीय शासन व्यवस्था में सरकार का गठन दलीय व्यवस्था के आधार पर किया जाता है। जिस राजनीतिक दल को लोकसभा में स्पष्ट बहुमत प्राप्त होता है, उसे राष्ट्रपति द्वारा सरकार बनाने का निमन्त्रण दिया जाता है। इस स्थिति में भारत में राजनीतिक दलों की भूमिका में निम्नलिखित दोष उत्पन्न हो जाते हैं—

(i) सरकार की अस्थिरता (ii) सशक्त विरोधी दल का अभाव (iii) शासन की नीतियों में अनिश्चितता (iv) निर्बल कार्यपालिका (v) शासन की कार्यकुशलता में कमी (vi) शासन-व्यवस्था में अनेक विकृतियाँ (vii) जनता पर चुनावों के खर्चों का भार।

प्रोजेक्ट–3
आन्तरिक मूल्यांकन (मासिक परीक्षण) हेतु प्रश्न

1. यातायात किसे कहते हैं?

उ०– किसी भी देश या स्थान से वस्तुओं एवं व्यक्तियों के एक स्थान से दूसरे स्थन पर आवागमन को परिवहन अथवा यातायात कहते हैं।

2. यातायात के साधनों की आवश्यकता हमें क्यों है?

उ०– यातायात के साधनों की प्रमुख रूप से आवश्यकता व्यक्तियों एवं तैयार माल को एक स्थान से दूसरे स्थान तक ले जाने के लिए होती है। किसी देश अथवा प्रदेश की औद्योगिक तथा व्यापारिक प्रगति के लिए भी यातायात के साधनों की परम आवश्यकता होती है।

3. संचार का क्या अर्थ है?

उ०– सन्देंशों और समाचार को एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुँचाने को संचार कहते हैं। जिन माध्यमों के द्वारा सन्देशों व समाचारों को दूसरों तक पहुँचाया जाता हैं, उन्हें संचार के साधन कहते हैं। डाक—तार सेवाएँ, रेडिया, दूरदर्शन, समाचार—पत्र व पत्रिकाएँ, ई—मेल, फैक्स, कम्प्यूटर, मोबाइल तथा उपग्रह सेवाएँ संचार के प्रमुख साधन हैं।

4. संचार के साधनों की आवश्यकता क्यों है?

उ०– **संचार-साधनों की आवश्यकता–** संचार—साधनों की आवश्यकता निम्न प्रकार है—

(i) संचार के साधनों में रेडियो व दूरदर्शन देशवासियों का मनोरंजन करने के साथ—साथ उन्हें शिक्षा भी देते हैं।

(ii) संचार के साधन सामाजिक बुराइयों को दूर करने में सहायक होते हैं। ये जनता को जागरूक बनाने में सबसे प्रभावी माध्यम होते हैं।

(iii) संचार के साधनों से मौसम सम्बन्धी भविष्यवाणी प्रसारित की जाने लगी है, जिससे कृषि, यातायात व अन्य क्षेत्रों में होने

वाली क्षति कम हो गई है।

(iv) संचार के साधनों द्वारा पिछड़े क्षेत्रों के आर्थिक विकास में सहायता मिलती है।

(v) संचार के साधन व्यापार एवं वाणिज्य के विकास में सहायक हैं।

(vi) संचार के साधनों द्वारा लोगों को आर्थिक व वैज्ञानिक प्रगति की जानकारी मिलती है। इससे वैज्ञानिक एवं तकनीकी ज्ञान का प्रसार होता है।

5. यातायात के दो साधनों के तथा संचार के दो साधनों के नाम बताइए।

उ०– **यातायात के दो साधन–** रेलगाड़ी, वायुयान।
संचार के दो साधन– मोबाइल, दूरदर्शन।

प्रोजेक्ट–3
आन्तरिक मूल्यांकन (मासिक परीक्षण) हेतु प्रश्न

1. जीवनयापन के लिए अर्थ अर्थात् धन किस प्रकार आवश्यक है?

उ०– धन का उपयोग अर्थव्यवस्था में वस्तुओं एवं सेवाओं के विनिमय के लिए किया जाता है। इस प्रकार, अर्थ विनिमय का माध्यम बन जाता है और जीवनयापन हेतु जो भी आवश्यक वस्तुएँ एवं सेवाएँ समाज में उपलब्ध है, उनका बिना अर्थ के प्राप्त होना सम्भव नहीं है। इसीलिए अर्थ की जीवनयापन में महत्त्वपूर्ण भूमिका है। अर्थ सामान्य क्रय शक्ति का भी रूप है। समाज इसी रूप में इसे स्वीकार करता है। इसका प्रयोग विनिमय—क्रिया को प्रत्येक व्यक्ति के लिए सुविधाजनक बनाना है। अर्थ का स्वरूप चाहे सोने के सिक्कों के रूप में हो या कागज के नोटों के रूप में, यह भविष्य के लिए एवं जीवन को सुचारु रूप से चलाने के लिए अति आवश्यक है। इसी रूप में अर्थ को भविष्य के लिए मूल्य के संग्रह के रूप में भी प्रयोग किया जा सकता है। अत: जीवनयापन हेतु और विनिमय को सुविधाजनक बनाने के लिए मुद्रा, मूल्य—मापक व अर्थ—संचय का कार्य करती है। हम हम सकते हैं कि अर्थ भावी भुगतानों का आधार है तथा जीवनयापन के लिए महत्वपूर्ण अंग भी है।

2. अर्थ का महत्त्व स्पष्ट कीजिए।

उ०– उत्तर के प्रश्न संख्या—1 के उत्तर का अवलोकन कीजिए।

3. अर्थ के अभाव में आने वाली कठिनाइयों का उल्लेख कीजिए।

उ०– **अर्थ के अभाव में आने वाली कठिनाइयाँ–** अर्थ के अभाव का दूसरा नाम निर्धनता है। निर्धनता अपने साथ अनेक कठिनाइयों एवं समस्याओं को साथ लेकर आती है। अर्थ के अभाव में सामान्य जीवन जी पाना भी बहुत कठिन है, क्योंकि निर्धनता, बेरोजगारी, भूमिहीनता एवं परिवार के आकार बड़े होने के कारण आती है। अर्थ के अभाव में व्यक्ति कोई भी व्याापार या उद्योग नहीं कर सकता। अर्थ के बिना निरक्षरता भी आ जाती है, क्योंकि बिना धन के उच्च शिक्षा प्राप्त करना आज के परिवेश में सम्भव नहीं है। खराब स्वास्थ्य एवं कुपोषण जैसी परिस्थिति भी बिना धन की स्थिति में सामने आकर खड़ी हो जाती है, क्योंकि बिना अर्थ के व्यक्ति अपने स्वास्थ्य एवं शरीर की रक्षा नहीं कर सकता। अत: अर्थ के अभाव में उपर्युक्त कठिनाइयाँ एवं समस्याएँ मनुष्य के सामने उपस्थित हो जाती हैं। आज लाखों लोग गरीबी रेखा से नीचे जीवनयापन कर रहे हैं तथा अनेक कठिनाइयों और समस्याओं का दंश झेल रहे हैं। इन लोगों को दयनीय निर्धनता से बाहर निकालना स्वतंत्र भारत की सबसे बड़ी चुनौतियों में से एक है। महात्मा गाँधी हमेशा इस पर बल दिया करते थे कि भारत सही अर्थों में तभी स्वतंत्र होगा, जब यहाँ का सबसे निर्धन व्यक्ति भी मानवीय व्यथा से मुक्त होगा।

4. अर्थ के अभाव में आने वाली कठिनाइयों को दूर करने के उपाय लिखिए।

उ०– **अर्थ के अभाव में आने वाली कठिनाइयों को दूर करने के उपाय–** अर्थ के अभाव अर्थात् गरीबी के कारण आने वाली कठिनाइयों एवं समस्याओं को दूर करने के मुख्य तीन उपाय इस प्रकार हैं—

(i) औद्योगीकरण पर जोर– आज औद्योगीकरण पर अधिक बल देने की आवश्यकता है जिससे कि नए—नए रोजगार उत्पन्न हो सकें और अधिक—से—अधिक लोगों को काम—धन्धा मिल सके। इससे लोगों को अर्थ का अभाव नहीं होगा और जीवनयापन करने में कठिनाइयों का सामना नहीं करना पड़ेगा।

(ii) कृषि क्षेत्र में प्रगति– कृषि के क्षेत्र में अभी और प्रगति करने की आवश्यकता है। जहाँ कृषि में आधुनिक ढंग अपनाने की आवश्यकता है, वहाँ इस बात की भी आवश्यकता है कि भूमि उसी व्यक्ति को मिले जो स्वयं खेती करने वाला हो। कृषि योग्य भूमि को कुछ ही हाथों में एकत्रित नहीं होने देना चाहिए।

(ii) शिक्षा के प्रसार पर जोर– शिक्षा सभी रोगों की दवा है। शिक्षा के प्रसार के बिना गरीबी और बेकारी को कभी दूर नहीं किया जा सकता। इतना अवश्य है कि शिक्षा पद्धति को सस्ता बनाना होगा, ताकि हर कोई शिक्षा प्राप्त करके अपने ज्ञान

चक्षु खोल सके और गरीबी तथा बेकारी को दूर कर सके।

5. सरकार की वर्तमान निर्धनता- निरोधी रणनीति कितने कारकों पर निर्भर है? उनके नाम बताइए।

उ०– सरकार की वर्तमान निर्धनता—निरोधी रणनीति दो कारकों पर निर्भर है—

(i) आर्थिक संवृद्धि को प्रोत्साहन (ii) लक्षित निर्धनता—विरोधी कार्यक्रम

परिशिष्ट

अनुभाग-दो (नागरिक जीवन) की इकाई–1 (ख) 'भारत में लोकतंत्र' के अन्तर्गत क्रम (iv) के पश्चात् क्रम (v) पर संघ लोक सेवा आयोग व राज्य लोक सेवा आयोग का संक्षिप्त परिचय पाठ्यक्रम में सम्मिलित किया गया है। इस पर आधारित अभ्यास प्रश्नों का हल।

अभ्यास

❖ **बहुविकल्पीय प्रश्न**

उ०– बहुविकल्पीय प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्य—परिशिष्ट पुस्तिका के पृष्ठ संख्या—20 का अवलोकन कीजिए।

❖ **अतिलघु उत्तरीय प्रश्न**

उ०– अतिलघु उत्तरीय प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्य—परिशिष्ट पुस्तिका के पृष्ठ संख्या—20 व 21 का अवलोकन कीजिए।

❖ **लघु उत्तरीय प्रश्न**

1. संघ लोक सेवा आयोग के सदस्यों की संख्या तथा नियुक्ति के बारे में संक्षेप में बताइए।

उ०– **सदस्यों की संख्या तथा नियुक्ति–** संविधान के अनुच्छेद 315 से अनुच्छेद 323 तक संघ लोक सेवा आयोग तथा प्रान्तों के लोक सेवा आयोगों के संगठन तथा कार्यों आदि का विस्तृत वर्णन किया गया है। मूल संविधान के अनुसार संघ लोक सेवा आयोग में एक अध्यक्ष तथा 7 सदस्यों की व्यवस्था की गई थी। सदस्यों की संख्या राष्ट्रपति की इच्छा पर निर्भर करती है तथा अध्यक्ष व सदस्यों की नियुक्ति राष्ट्रपति ही करता है। आयोग के कम—से—कम आधे सदस्य भारत के या राज्य सरकार के अधीन 10 वर्ष तक उच्च सरकारी पद पर कार्यरत रह चुके हों। वर्तमान समय में संघ लोक सेवा आयोग में एक अध्यक्ष और 10 अन्य सदस्य हैं। स्वतन्त्र भारत का संघ लोक सेवा आयोग दिल्ली में स्थित है।

2. संघ लोक सेवा आयोग के सदस्यों की कार्यावधि के बारे में बताइए।

उ०– संघ लोक सेवा आयोग के सदस्यों की नियुक्ति 6 वर्ष के लिए होती है। किन्तु यदि कोई सदस्य इससे पूर्व ही 65 वर्ष की आयु पूर्ण कर लेता है तो अपना पद त्यागना पड़ता है। इसके अतिरिक्त उच्चतम न्यायालय के परामर्श पर राष्ट्रपति इन्हें पद्च्युत भी कर सकता है।

3. राज्य लोक सेवा आयोग के किन्ही दो कार्यों का वर्णन कीजिए।

उ०– राज्य लोक सेवा आयोग के दो कार्य निम्नलिखित हैं—

(i) वार्षिक रिपोर्ट तैयार करना– आयोग की वार्षिक रिपोर्ट का विशेष महत्त्व होता है। इस रिपोर्ट में आयोग आगामी वर्ष के अपने विस्तृत कार्यक्रम का विवरण देता है तथा उन बिन्दुओं को भी स्पष्ट करता है, जिन्हें राज्य सरकार ने अस्वीकार कर दिया हो। इस रिपोर्ट को आयोग राज्यपाल के समक्ष प्रस्तुत करता है। राज्यपाल इस विवरण—पत्र को राज्य के विधानमंडल के समक्ष प्रस्तुत करता है। इससे यह ज्ञात हो जाता है कि राज्य सरकार आयोग की संस्तुतियों को किस सीमा तक स्वीकार करने के लिए सहमत हैं, जिससे आयोग अपने कार्यक्रम को निश्चित रूप देने में सफल होता है।

(ii) परामर्श देने का कार्य– राज्य लोक सेवा आयोग सरकार के अन्तर्गत कर्मचारियों की नियुक्ति, स्थानान्तरण, पदोन्नति, अनुशासन एवं अन्य अनेक क्षेत्रों में भी सरकार को परामर्श देता है। राज्यपाल द्वारा भेजे गए अन्य किसी मामले के सम्बन्ध में भी राज्य लोक सेवा आयोग परामर्श देता है।

4. राज्य लोक सेवा आयोग के सदस्यों का कार्यकाल कितना होता है?

उ०– संघ लोक सेवा आयोग की भाँति राज्य लोक सेवा आयोग के सदस्यों की नियुक्ति 6 वर्ष के लिए होती है। यदि कोई सदस्य 6 वर्ष की कार्यावधि से पूर्व 62 वर्ष की आयु पूर्ण कर लेता है, तो उस स्थिति में उसे 6 वर्ष से पूर्व ही अपना पद त्यागना पड़ता है। इसके अतिरिक्त दुराचाराभियोग के आधार पर राज्यपाल किसी सदस्य को पदच्युत करने का अधिकार रखता है। यदि कोई सदस्य इस पद पर रहते हुए अन्य किसी सेवा में संलग्न हो जाए दिवालिया या मानसिक दोषयुक्त घोषित हो जाए तो उसे 6 वर्ष की अवधि से पूर्व पदच्युत किया जा सकता है।

❖ **विस्तृत उत्तरीय प्रश्न**

1. संघ लोक सेवा आयोग का गठन किस प्रकार होता है? इसके क्या-क्या कार्य हैं?

उ०– संघ लोक सेवा आयोग का गठन– संविधान ने सम्पूर्ण भारत के लिए एक संघ लोक सेवा आयोग की व्यवस्था की है। इसके संगठन के संबंध में निम्नलिखित तथ्य उल्लेखनीय हैं—

(i) सदस्यों की संख्या तथा नियुक्ति– संविधान के अनुच्छेद 315 से अनुच्छेद 323 तक संघ लोक सेवा आयोग तथा प्रान्तों के लोक सेवा आयोगों के संगठन तथा कार्यों आदि का विस्तृत वर्णन किया गया है। मूल संविधान के अनुसार संघ लोक सेवा आयोग में एक अध्यक्ष तथा 7 सदस्यों की व्यवस्था की गई थी। सदस्यों की संख्या राष्ट्रपति की इच्छा पर निर्भर करती है तथा अध्यक्ष व सदस्यों की नियुक्ति राष्ट्रपति ही करता है। आयोग के कम—से—कम आधे सदस्य भारत के या राज्य सरकार के अधीन 10 वर्ष तक उच्च सरकारी पद पर कार्यरत रह चुके हों। वर्तमान समय में संघ लोक सेवा आयोग में एक अध्यक्ष और 10 अन्य सदस्य हैं। स्वतंत्र भारत का संघ लोकसेवा आयोग दिल्ली में स्थित है।

(ii) योग्यता– साधारण योग्यताओं के अतिरिक्त संघ लोक सेवा आयोग का सदस्य बनने के लिए आयु 65 वर्ष से कम होनी चाहिए।

(iii) सदस्यों की कार्यावधि– संघ लोक सेवा आयोग के सदस्यों की नियुक्ति 6 वर्ष के लिए होती है। किन्तु यदि कोई सदस्य इससे पूर्व ही 65 वर्ष की आयु पूर्ण कर लेता है तो उसे अपना पद त्यागना पड़ता है। इसके अतिरिक्त उच्चतम न्यायालय के परामर्श पर राष्ट्रपति इन्हें पदच्युत भी कर सकता है।

(iv) वेतन– संघ लोक सेवा आयोग के सदस्य भयमुक्त होकर निष्पक्षता के साथ कार्य कर सके, इसीलिए इन्हें सब प्रकार से पूर्णत: स्वतंत्र रखा जाता है।

संघ लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष को ₹90,000 तथा अन्य सदस्यों को ₹80,000 मासिक वेतन मिलता है।

संघ लोक सेवा आयोग के कार्य– संघ लोक सेवा आयोग अनेक मत्त्हत्वपूर्ण कार्यों का सम्पादन करता है। यह देश के लिए योग्य, परिश्रमी एवं ईमानदार व्यक्तियों का चयन कर सरकारी विभागों में कार्य करने हेतु उपलब्ध कराता है। इसके प्रमुख कार्य निम्नलिखित हैं—

(क) प्रतियोगी परीक्षाओं द्वारा सरकारी पदों के लिए योग्य व्यक्तियों का चयन करना– संघ लोक सेवा आयोग का प्रमुख कार्य केंद्रीय सेवाओं अर्थात् असैनिक पदों के लिए योग्य व्यक्तियों का चयन करना है। इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु यह अनेक प्रतियोगिताएँ अथवा प्रतियोगी परीक्षाएँ आयोजित करता है। संघ लोक सेवा आयोग प्रतिवर्ष सिविल सेवा परीक्षा का आयोजन भी करता है, जिसके अन्तर्गत भारतीय प्रशासनिक सेवा (IAS), भारतीय विदेश सेवा (IFS), भारतीय पुलिस सेवा (IPS), भारतीय राजस्व सेवा (IRS) आदि महत्वपूर्ण सेवाओं के लिए नियुक्तियाँ की जाती हैं।

(ख) परामर्श देना– संघ लोक सेवा आयोग शासन को कर्मचारियों की नियुक्ति की विधि अनुशासन, पदोन्नति, स्थानान्तरण एवं अन्य विविध विषयों में परामर्श देता है। यह राष्ट्रपति द्वारा भेजे गए अन्य किसी मामले के संबंध में भी परामर्श देता है।

(ग) क्षतिपूर्ति की सिफारिश करना– संघ लोक सेवा आयोग सरकारी कर्मचारियों की किसी प्रकार की शारीरिक या मानसिक क्षति हो जाने पर संघ सरकार को उनकी क्षतिपूर्ति का परामर्श देता है और उससे सिफारिश भी करता है।

(घ) वार्षिक विवरण तैयार करना– संघ लोक सेवा आयोग को अपने कार्यों से संबंधित एक वार्षिक रिपोर्ट (प्रतिवेदन) राष्ट्रपति के समक्ष प्रस्तुत करनी पड़ती है। यदि सरकार इस आयोग द्वारा की गई रिपोर्ट की कोई संस्तुति नहीं मानती है तो राष्ट्रपति इसका कारण रिपोर्ट में लिख देता है और इसके उपरान्त संसद इस पर विचार करती है। इस रिपोर्ट का लाभ यह है कि इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि किन विभागों में इस आयोग ने कितनी नियुक्तियाँ की हैं। आयोग अपने प्रतिवेदन में आयोग को सुदृढ़ करने संबंधी सुझाव भी दे सकता है।

(v) लोक सेवाओं का संरक्षण करना– यह उन लोक सेवकों की अपील भी सुनता है, जो इसके समक्ष अपने हितों तथा अधिकारों की सुरक्षा तथा शिकायत को दूर करने के लिए अपील करते हैं। यह इनकी शिकायतों को दूर करने के लिए सरकार को उचित सलाह देता है। सरकार प्राय: इसकी सलाह को मान भी लेती है। इसलिए इसको लोकसेवकों का संरक्षक कहा जाता है।

(vi) राज्यों की सहायता– यदि संघ लोक सेवा आयोग से कोई दो या दो से अधिक राज्य मिली—जुली भर्ती की योजनाओं को बनाने तथा उनको लागू करने की प्रार्थना करें, जिनके लिए विशेष योग्य उम्मीदवारों की आवश्यकता हो, तो संघ लोक सेवा आयोग उन विषयों में राज्य की सहायता करेगा।

(vii) छात्रवृत्तियों के लिए उम्मीदवारों का चयन– भारत सरकार योग्यता के आधार पर कुछ छात्रवृत्तियाँ प्रदान करती है, जिनके लिए योग्य उम्मीदवारों का चयन संघ लोक सेवा आयोग द्वारा किया जाता है।

(viii) संसद द्वारा प्रदत्त अधिकार– संसद को यह शक्ति भी प्राप्त है कि वह संघ क्षेत्र की नगरपालिकाओं, नगर निगम तथा सार्वजनिक संस्थाओं के उच्च कर्मचारियों की नियुक्ति के विषय में संघ लोक सेवा आयोग को सिफारिश का अधिकार प्रदान कर दे।

2. राज्य लोक सेवा आयोग के गठन एवं कार्यों को विस्तृत रूप में लिखिए।

उ०– **राज्य लोक सेवा आयोग का गठन–** भारतीय संविधान में प्रत्येक राज्य के लिए पृथक राज्य लोक सेवा अयोग की व्यवस्था की गई है। इनके संगठन के सम्बन्ध में निम्नलिखित तथ्य उल्लेखनीय हैं—

(i) सदस्यों की संख्या एवं नियुक्ति– राज्य लोक सेवा आयोग के सदस्यों की संख्या को निश्चित करने का अधिकार राज्य के राज्यपाल में निहित है। राज्य लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष एवं अन्य सदस्यों को राज्यपाल ही नियुक्त करता है। किन्तु इस आयोग के आधे सदस्य ऐसे होते हैं, जो कम-से-कम 10 वर्ष तक सरकारी पद पर कार्य कर चुके हों। वर्तमान समय में उत्तर प्रदेश के लोक सेवा आयोग में एक अध्यक्ष और पाँच अन्य सदस्य हैं। उत्तर प्रदेश का राज्य लोक सेवा आयोग इलाहाबाद में स्थित है।

(ii) कार्यकाल– संघ लोक सेवा आयोग की भाँति राज्य में भी लोक सेवा आयोग के सदस्यों की नियुक्ति 6 वर्ष के लिए होती है। किन्तु यदि 6 वर्ष से पूर्व कोई सदस्य 62 वर्ष की आयु पूरी कर लेता है तो उस स्थिति में उसे 6 वर्ष से पूर्व ही अपना पद त्यागना पड़ता है। सेवानिवृत्ति आयु के संबंध में संघ लोक सेवा आयोग के सदस्यों एवं उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों की स्थिति भी समान है। इसी प्रकार राज्य लोक सेवा आयोग के सदस्यों और उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की स्थिति समान है। इसके अतिरिक्त दुराचाराभियोग के आधार पर राज्यपाल किसी सदस्य को पदच्युत करने का अधिकार रखता है, किन्तु उसका अपराध उच्चतम न्यायालय द्वारा सही सिद्ध होने पर ही ऐसा किया जा सकता है। यदि कोई पदाधिकारी इस पद पर रहते हुए किसी अन्य सेवा में संलग्न हो जाए, दिवालिया घोषित हो जाए या मानसिक दोषयुक्त हो जाए तो इन सभी स्थितियों में ऐसे सदस्य को पदच्युत किया जा सकता है।

(iii) सदस्यों का वेतन– राज्य लोक सेवा आयोग के सदस्यों का वेतन प्रत्येक राज्य में राज्यपाल द्वारा निर्धारित किया जाता है।

राज्य लोक सेवा आयोग के कार्य–

(i) सदस्यों की संख्या एवं नियुक्ति– आयोग की वार्षिक रिपोर्ट का विशेष महत्त्व होता है। इस रिपोर्ट में आयोग आगामी वर्ष के अपने विस्तृत कार्यक्रम का विवरण देता है तथा उन बिन्दुओं को भी स्पष्ट करता है, जिन्हें राज्य सरकार ने अस्वीकार कर दिया हो। इस रिपोर्ट को आयोग राज्यपाल के समक्ष प्रस्तुत करता है। राज्यपाल इस विवरण—पत्र को राज्य के विधानमंडल के समक्ष प्रस्तुत करता है। इससे यह ज्ञात हो जाता है कि राज्य सरकार आयोग की संस्तुतियों को किस सीमा तक स्वीकार करने के लिए सहमत है, जिससे आयोग अपने कार्यक्रम को निश्चित रूप देने में सफल होता है।

(ii) परामर्श देने का कार्य– राज्य लोक सेवा आयोग सरकार के अन्तर्गत कर्मचारियों की नियुक्ति, स्थानान्तरण, पदोन्नति, अनुशासन एवं अन्य अनेक क्षेत्रों में भी सरकार को परामर्श देता हैं। राज्यपाल द्वारा भेजे गए अन्य किसी मामले के संबंध में भी राज्य लोक सेवा आयोग परामर्श देता है।

(iii) क्षतिपूर्ति की सिफारिश करना– यदि किसी कर्मचारी को सरकारी पद पर कार्यरत रहते समय किसी प्रकार की शारीरिक या मानसिक क्षति हो जाती है तो सरकार के कर्मचारी को कितनी धनराशि देनी चाहिए या अपने पद से संबंधित किसी विषय पर सरकार के विरुद्ध लड़े गए मुकदमे में, जिसे वह जीत चुका है, कितनी धनराशि मिलनी चाहिए आदि इसी प्रकार के अनेक विषयों से संबंधित बिन्दुओं पर आयोग सरकार को परामर्श देता है। अत: यह निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि राज्य लोक सेवा आयोग अनेक रूपों में महत्वपूर्ण संगठन है।

(iv) प्रतियोगी परीक्षाओं द्वारा योग्य व्यक्तियों का चयन करना– राज्य लोक सेवा आयोग का प्रमुख कार्य अनेक प्रतियोगी परीक्षाएँ आयोजित कर योग्य व्यक्तियों का राज्य सरकार की सेवा के लिए चयन करना होता है। कुछ पदों के लिए लिखित तथा मौखिक दोनों ही परीक्षाएँ अनिवार्य होती हैं। कुछ पद ऐसे भी होते हैं, जिनके लिए साक्षात्कार के आधार पर सीधी भर्ती की जाती है।

परिशिष्ट

अनुभाग-चार (आर्थिक विकास) की इकाई–2 'भारतीय अर्थव्यवस्था के संकेतक' के अन्तर्गत क्रम (iii) 'आर्थिक विकास के संकेतक' की पाठ्यवस्तु में निम्नलिखित को सम्मिलित किया गया है–

❑ किसी राष्ट्रीयकृत अथवा प्राईवेट बैंक में बचत खाता खोलने एवं उसके परिचलन की जानकारी

❑ चेकों के प्रकार और डेबिट एवं क्रेडिट कार्ड परिचलन का सामान्य ज्ञान

अभ्यास

❖ **बहुविकल्पीय प्रश्न**

उ०– बहुविकल्पीय प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्य—परिशिष्ट पुस्तिका के पृष्ठ संख्या—28 का अवलोकन कीजिए।

❖ **अतिलघु उत्तरीय प्रश्न**

उ०– अतिलघु उत्तरीय प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्य—परिशिष्ट पुस्तिका के पृष्ठ संख्या—28 का अवलोकन कीजिए।

❖ **लघु उत्तरीय प्रश्न**

1. बैंक में खाता खोलने के क्या लाभ हैं?

उ०– बैंक में खाता खोलने के निम्नलिखित लाभ हैं—

(i) अपनी आय को सुरक्षित रूप से रखने की सुविधा

(ii) बचत राशि पर ब्याज प्राप्त करना

(iii) तृतीय पक्ष से खाते में जमा राशि प्राप्त करना (चेक, बैंक ड्राफ्ट, नकद या ऑनलाइन के जरिए)

(iv) शुल्क, बिल आदि का भुगतान करना (अर्थात् एलआइसी प्रीमियम, रेल टिकट बुकिंग आदि)

2. बैंक में खाता खोलने के लिए आवश्यक दस्तावेज कौन-कौन से हैं?

उ०– **बैंक खाता खोलने के लिए आवश्यक दस्तावेज–** बैंक खाता खोलने के लिए निम्नलिखित दस्तावेजों की आवश्यकता होती है—

(i) भरा हुआ आवेदन पत्र (आवेदन पत्र बैंक शाखा से प्राप्त किया जा सकता है।)

(ii) पासपोर्ट आकार के दो रंगीन फोटो

(iii) मतदाता पहचान पत्र या आधार कार्ड की छायाप्रति

(iv) निवास प्रमाण पत्र की छायाप्रति

इनके अतिरिक्त निम्नलिखित की भी आवश्यकता है—

❖ ₹1000 नकद राशि के रूप में (लेकिन यह प्रत्येक बैंक में अलग—अलग होती है और कुछ स्थितियों में शून्य बैलेंस खाते भी खोले जाते हैं, जिसके लिए निर्धारित मानकों का पालन करना होता है।)

3. चैक क्या है?

उ०– **चैक–** चैक खाताधारक को दिया जाने वाला वह भुगतान का साधन है, जिससे ग्राहक किसी अगले व्यक्ति को अपने खाते से डायरेक्ट कैश न देकर भुगतान कर सकता है।

चैक में आप जिसे पैसे दे रहे हैं, उसका नाम लिखना होता है। वह किसी व्यक्ति का नाम भी हो सकता है या किसी फर्म का, चैक में आपको यह भी भरना होता है कि आप कितने पैसे उस व्यक्ति को दे रहे हैं (शब्द और संख्या में), कब दे रहे हैं (दिनांक).......... और अंत में आपको हस्ताक्षर करना पड़ता है। आपका चेक लेकर व्यक्ति अपने खाते में डाल देता है और आपने जितनी धनराशि का उसे भुगतान किया था, उतनी राशि उसके खाते में स्थानान्तरित हो जाती है। संक्षेप में कह सकते हैं कि चैक बिना कैश का भुगतान है।

4. आगे की तारीख वाला चैक क्या होता है?

उ०– **आगे की तारीख वाला चैक–** आगे की तिथि में भुगतान वाला चेक एक ऐसा क्रॉस किया हुआ बेयरर चैक होता है, जिसमें आगे की तिथि अंकित की जाती है। इसका अर्थ यह हुआ है कि इस चैक का भुगतान अंकित तिथि या उसके बाद हो सकता है।

5. क्रॉस्ड चैक क्या होता है?

उ०– **क्रॉस्ड चेक–** क्रॉस्ड चेक किसी विशेष व्यक्ति या संस्था के नाम से लिखा जाता है और ऊपर बायीं ओर दो समानांतर लाइनें खींच दी जाती हैं, जिनके बीच '& CO' or 'Account Payee' or 'Not Negotiable' लिखा या नहीं भी लिखा जा सकता है। इस चेक से नकद निकासी नहीं होती और संबंधित राशि केवल नामित व्यक्ति/संस्था के खातों में स्थानान्तरित हो सकती है।

6. डेबिट कार्ड की लेन-देन प्रक्रिया कितने प्रकार से हो सकती?

उ०– मौजूदा समय में डेबिट कार्ड की लेन—देन प्रक्रिया तीन तरह से होती है: ऑनलाइन डेबिट (पिन डेबिट के रूप में भी जाना जाता है), ऑफलाइन डेबिट (हस्ताक्षर डेबिट के रूप में भी जाना जाता है) और इलेक्ट्रॉनिक पर्स कार्ड सिस्टम। ध्यान देने की बात यह है कि एक भौतिक कार्ड में ऑनलाइन डेबिट कार्ड, ऑफलाइन डेबिट कार्ड और इलेक्ट्रॉनिक पर्स कार्ड के कार्य शामिल हैं।

7. क्रेडिट कार्ड की तुलना में डेबिट कार्ड से होने वाले नुकसान कौन-कौन से हैं?

उ०– नकद या क्रेडिट कार्ड की तुलना में डेबिट कार्ड के कई नुकसान हैं—

(i) कई व्यापारी भूलवश से ऐसा विश्वास करते हैं कि डेबिट कार्ड (या नंबर) पेश किए जाने पर सहमति के बगैर उस तारीख में आदाता का नाम, रकम और मुद्रा के अपनी बकाया रकम को ग्राहक के खाते से लिया जा सकता है। इस प्रकार जमा से अधिक रुपया निकालने, सीमा पार कर जाने पर दंड शुल्क लगाया जाता है। इस पर भी रकम उपलब्ध न होने पर नामंजूरी या ओवरड्राफ्ट और कुछ बैंकों द्वारा लेन—देन को अस्वीकार कर दिया जाता है।

(ii) कुछ देशों को डेबिट कार्ड, क्रेडिट कार्ड की तुलना में निम्न स्तर का सुरक्षा संरक्षण देते हैं। उपयोगकर्ताओं के पिन की चोरी करने का काम हस्ताक्षर आधारित क्रेडिट लेन—देन के बजाय स्किमिंग उपकरण के जरिए पिन इनपुट से आसानी से पूरा किया जा सकता है। बहरहाल, क्रेडिट लेन—देन की तरह ही पिन इनपुट डेबिट लेन—देन के साथ भी स्किमिंग उपकरण के जरिए उपोगकर्ताओं के पिन कोड की चोरी आसानी से हो सकती है और जिस तरह चोर हस्ताक्षर—आधारित डेबिट लेन—देन का उपयोग करता है, उतनी ही आसानी से हस्ताक्षर—आधारित क्रेडिट लेन—देन की भी करता है।

(iii) कई जगहों में, कानून धोखाधड़ी से उपभोक्ता की सुरक्षा क्रेडिट कार्ड की तुलना में कम करता है, जबकि क्रेडिट कार्ड के धारक धोखाधड़ी से क्रेडिट कार्ड से किए गए न्यूनतम रकम की लेन—देन के लिए कानूनी तौर पर जिम्मेदार होता है, जिसे अकसर बैंक द्वारा अनदेखा कर दिया जाता है लेकिन धोखाधड़ी से किए गए डेबिट लेन—देन के लिए उपभोक्ता सैकड़ों डॉलर या फिर धोखाधड़ी की पूरी रकम का देनदार हो सकता है। डेबिट कार्ड के साथ छूट प्राप्त करने का पात्र बनने के क्रम में बैंक को उपभोक्ता द्वारा धोखाधड़ी की सूचना देने के लिए कम समय (आमतौर पर दो दिन) होता है, जबकि क्रेडिट कार्ड के मामले में यह समय 60 दिनों का हो सकता है। एक चोर, जो पिन के साथ डेबिट कार्ड प्राप्त कर लेता है या क्लोन कर लेता है, उपभोक्ता का पूरा बैंक खाता साफ करने में सक्षम हो सकता है और उपभोक्ता को किसी तरह की मदद नहीं मिलेगी।

❖ विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

1. क्रेडिट कार्ड क्या होता है? इसकी विशेषताएँ एवं प्रयोगकर्ता द्वारा ध्यान रखने योग्य बातों को लिखिए।

उ०– **क्रेडिट कार्ड–** क्रेडिट कार्ड या उधार कार्ड एक छोटा प्लास्टिक कार्ड है, जो एक विशिष्ट भुगतान प्रणाली के उपयोगकर्ताओं को जारी किए जाते हैं। इस कार्ड के द्वारा धारक इस वादे के साथ वस्तुएँ और सेवाएँ खरीद सकते हैं कि बाद में वो इन वस्तुओं और सेवाओं का भुगतान करेगा। कार्ड का जारीकर्ता, कार्ड के द्वारा उपभोक्ता को उधार की सीमा देता है जिसके अन्तर्गत एक उपयोगकर्ता खरीदी हुई वस्तुओं के भुगतान के लिए पैसे प्राप्त कर सकता है और नकद भी निकाल सकता है। क्रेडिट कार्ड आज के दौर में दैनिक आवश्यकता बन गया है। खरीदारी से लेकर कई जरूरी कार्यों में लोग क्रेडिट कार्ड का प्रयोग करते हैं लेकिन एक तरफ जहाँ यह सुविधा कई अर्थों में लोगों के लिए लाभप्रद है, तो इसके कई नुकसान भी देखने में आ रहे हैं। क्रेडिट कार्ड का गलत तरीके से प्रयोग जैसे मामले आए दिन समाचारों में होते हैं। जब कार्ड से भुगतान करते हैं, तो उसका अभिलेख कहीं न कहीं तो एकत्रित होता ही है। यह ईडीपी प्रासेसिंग द्वारा होता है।

क्रेडिट कार्ड की विशेषताएँ–

(i) बकाया राशि हस्तांतरण सुविधा– कुछ ग्राहक क्रेडिट कार्ड को अल्पकाल के लिए ऋण की सुविधा के तौर पर लेते हैं। जब ग्राहक एक क्रेडिट कार्ड से ऋण का बोझ नहीं सँभाल पाता, तो वह अपने ऋण अन्य कार्ड में हस्तांतरित कर देता है। इसलिए बकाया राशि के हस्तांतरण की सुविधा आवश्यक है।

(ii) ब्याज दर– यदि क्रेडिट कार्ड के बिल का भुगतान समय से नहीं किया जाता तो बैंक बकाया राशि पर ब्याज दर लगाती है। यदि अल्पकालिक ऋण के तौर पर क्रेडिट ले रहे हैं तो ब्याज दर का अवश्य ध्यान रखना चाहिए। प्राय: यह दर 1.33 से 3.15 प्रतिशत प्रति महीने की दर से बदलती रहती है और यह विभिन्न क्रेडिट कार्ड पर निर्भर करता है।

(iii) ऋणावधि– सामान्यतया बैंक 21 से 52 दिनों की ऋण अवधि प्रदान करते हैं। यह क्रेडिट कार्ड के प्रकार और लेने—देन की तारीख पर निर्भर करता है। यदि ब्याज दर के बिना ऋण अवधि रहेगी तो उतना ही ज्यादा दिनों तक बिना ब्याज भरे राशि का भुगतान करना पड़ेगा।

(iv) ऋण सीमा– ऋण सीमा क्रेडिट कार्ड से खर्च की जाने वाली अधिकतम राशि होती है। यह प्रयोक्ता की आय पर निर्भर करता है, जो कि बैंक क्रेडिट कार्ड देते समय पूछता है। ऐसा माना जाता है कि जितनी ज्यादा ऋण सीमा उतना ही बेहतर। लेकिन जब तक क्रेडिट कार्ड प्रयोग नहीं करते, यह सलाह बेकार है। इसके अलावा कार्ड खो जाने की स्थिति में

उच्च—सीमा घातक भी हो सकती है।

(v) ग्राहक सेवा– कुछ वर्ष पूर्व बैंक और क्रेडिट कार्ड के लिए ग्राहक सेवा उतनी विकसित नहीं थी। लेकिन आजकल ग्राहक सेवा सबसे महत्वपूर्ण है। इसलिए बेहतर रिश्ते वाले बैंक से क्रेडिट कार्ड लेना ज्यादा फायदेमंद होता है।

(vi) इनामी अंक और नकदी वापसी– सभी बैंक ग्राहकों को इनामी अंक (क्रेडिट पाइंट) या नकद वापसी (कैश बैक) देकर आकर्षित करने का प्रयास करते हैं। इसलिए जो ग्राहक नियमित तौर पर क्रेडिट कार्ड प्रयोग करते हैं, उन्हें इस योजना में शामिल होना चाहिए।

(vii) खरीदारी की सुविधा– एक अच्छा क्रेडिट कार्ड वहीं है जो देश के साथ—साथ विदेशों के दुकानदारों द्वारा भी स्वीकार्य हो। अधिकांश आउटलेट से संबंधित, छूट की सुविधा और खरीदारी की सुविधाओं से युक्त क्रेडिट कार्ड बेहद फायदेमंद रहता है। इसमें पेट्रोल पम्प पर सरचार्ज से मुक्ति और बिल के भुगतान की आसान सुविधाएँ भी शामिल होनी चाहिए।

क्रेडिट कार्ड के प्रयोगकर्ता द्वारा ध्यान रखने योग्य बातें–

(i) भुगतान इतिहास– क्रेडिट कार्ड सीमा तय करने में उपयोक्ता का क्रेडिट कार्ड इतिहास महत्वपूर्ण होता है। क्रेडिट कार्ड का भुगतान देर से करना या ओवरड्राफ्ट होना, खतरे की घंटी हो सकता है। यदि बैंक यह महसूस करता है कि उपयोक्ता उसके लिए ऐसे ग्राहक हैं, जिनका क्रेडिट रिकॉर्ड बेहतर नहीं है तो वह क्रेडिट कार्ड सीमा को कम भी कर सकता है।

जब ग्राहक किसी उत्पाद या सुविधा के लिए कार्ड द्वारा भुगतान करता है, तो कार्ड की जानकारी मैनुअल प्रविष्टि, कार्ड इंप्रिंटर, प्वांइट ऑफ सेल र्मिनल, वर्चुअल टर्मिनल में रिकॉर्ड हो जाती हैं। उसके बाद भुगतान का सत्यापन किया जाता है। फिर विक्रेता/दुकानदार को भुगतान प्राप्त होता है। कार्डधारक खरीदारी के लिए भुगतान करता है, फिर व्यापारी अधिग्राहक को ट्रांजेक्शन जमा (सब्मिट) करता है। इसके बाद ग्राहक के सत्यापित करने के बाद ही लेन—देन (ट्रांजेक्शन) हो जाता है। इसके बाद बारी आती है बैचिंग की। ट्रांजेक्शन के अधिकृत होने के बाद यह बैच के रूप में स्टोर हो जाता है। अधिग्राहक कार्ड एसोसिएशन के द्वारा जत्थे (बैच) के रूप में ट्रांजेक्शन भेजता है। एक बार अधिग्राहक को जब यह पैसा मिल जाता है, तब दुकानदार को पैसा प्राप्त होता है। आजकल कई क्रेडिट कार्ड कंपनियों ने मोबाइल फोन के जरिए भी क्रेडिट कार्ड का काम चलाने का प्रावधान किया है। उनके अनुसार ये लेन—देन पूरी तरह सुरक्षित है और इसके लिए एक पिन संख्या की आवश्यकता होती है।

क्रेडिट कार्ड लेते समय बहुत सी बातों का ध्यान रखना चाहिए, जो क्रेडिट कार्ड को एक अच्छा सेवक बनाती हैं व उपयोक्ता को समस्याओं में फँसने से बचाती हैं। इसके लिए क्रेडिट कार्ड की शर्तें व नियम बहुत ध्यानपूर्वक पढ़ने चाहिए।

(ii) क्रेडिट तथा डेबिट कार्ड/एटीएम कार्ड के इस्तेमाल में अपनाए जाने वाले उपाय–

- ❑ जब कभी भी आपको बैंक से कोई कार्ड प्राप्त हो तो आप यह सुनिश्चित कर लें कि वह लिफाफा पूरी तरह से सील हो और उस पर किसी प्रकार का फाड़ने या चिपकाने का निशान न हो।
- ❑ जैसे ही बैंक से आपको कार्ड मिल जाए तुरंत आप उस पर अपना हस्ताक्षर कर दें।
- ❑ कार्ड के आखिरी तीन नम्बर को कवर करने की कोशिश करें।
- ❑ अकाउंट के लेन—देन विवरण की जानकारी लेने के लिए अपने फोन नम्बर को रजिस्टर्ड करा लें।
- ❑ तुरंत पिन नम्बर बदल दें।

(iii) शॉपिंग मॉल तथा रेस्त्रां में क्रेडिट/डेबिट कार्ड का सुरक्षित इस्तेमाल

- ❑ आपका वेंडर कैसे कार्ड स्वाइप करता है, इस पर हमेशा अपनी नजर रखें।
- ❑ हमेशा ध्यान दें कि ट्रांजैक्शन आपकी मौजूदगी में हो।
- ❑ कभी किसी खाली क्रेडिट कार्ड रसीद पर अपना हस्ताक्षर न करें। खाली स्थान पर एक लाइन खींच लें ताकि वहां किसी प्रकार की अतिरिक्त जानकारी न लिखी जा सके।
- ❑ रेस्त्रां/शॉपिंग मॉल में प्रस्तुत किए गए किसी सर्वे फॉर्म में आप अपनी निजी जानकारी न भरें।

(iv) इंटरनेट पर क्रेडिट/डेबिट कार्ड का सुरक्षित प्रयोग– ट्रांजैक्शन तथा शॉपिग के लिए सदैव सुरक्षित वेबसाइट का इस्तेमाल करें।

(v) ऋण– प्राय: लोग बिना पर्याप्त कारण ही ऋण लोन ले लेते हैं। यह उनके क्रेडिट कार्ड इतिहास पर बड़ा फर्क डालता है। बहुत अधिक ऋण लेना एक बेहतर तरीका नहीं कहा जा सकता। वित्तीय योजनाकारों के अनुसार यदि किसी व्यक्ति का 60 प्रतिशत वेतन ऋण चुकाने में व्यय हो जाता है तो इसका अर्थ यह है कि वह खतरे की सीमा में है। यदि उन्होंने इतना ज्यादा ऋण ले रखा है, जिसे वे सहजता से चुका नहीं सकते तो बैंक ये मान सकता है कि उनको बहुत ज्यादा क्रेडिट लिमिट देना जोखिमपूर्ण होगा।

(vi) क्रेडिट इतिहास– उपयोक्ता के लिए मात्र ये ही आवश्यक नहीं है कि वे क्रेडिट कार्ड का भुगतान समय से करते हैं। उसका

प्रयोग बेहतर तरीके से करते हैं बल्कि यह भी बेहद आवश्यक है कि अन्य बैंक जिनसे उनका किसी तरह का व्यावहारिक संबंध हो। क्रेडिट अंक के मामले में एक ऋण दूसरे को प्रभावित करता है। कई बैंक ग्राहकों को पोर्टफालियो रिव्यू रिपोर्ट का टूल प्रदान करते हैं। यह उन्हें पहचानने में मदद करता है कि कौन डिफाल्टर है। ऐसे में यदि उपयोक्ता क्रेडिट कार्ड के ऋण का भुगतान तो समय से करते हैं, लेकिन कार लोन का भुगतान समयानुसार नहीं करते हैं तो यह उनके लिए नकारात्मक सिद्ध हो सकता है। लोन को नियमित रूप से चुकाने के बावजूद उधार लेने पर भी नियंत्रण रखना होगा।

(vii) क्रेडिट रिपोर्ट जाँच– उपयोक्ता को चाहिए कि वे अपनी क्रेडिट रिपोर्ट को जाँचते रहे। शेष राशि को जमा कर देने का अर्थ यह है कि उनका ऋण बंद हो गया। इस समय ये भी पूरी तरह से जाँच लेना चाहिए कि उनका ऋण खाता औपचारिक रूप से बंद हो गया। इसके साथ ही यह भी ध्यान रखना चाहिए कि क्रेडिट सीमा कम हो सकती है, यदि—

- ❑ क्रेडिट कार्ड के बिल को समय से नहीं चुकाते हैं।
- ❑ सीमा से ज्यादा उधार लेते हैं।
- ❑ दी गई क्रेडिट सीमा का प्रयोग नहीं करते हैं।
- ❑ क्रेडिट रिपोर्ट में कमियाँ दिख रही हैं, जो क्रेडिट अंक कम करती है।

2. डेबिट कार्ड क्या होता है? भुगतान प्रक्रिया के आधार पर यह कितने प्रकार का होता है?

उ०– **डेबिट कार्ड–** डेबिट कार्ड बैंक कार्ड या चेक कार्ड या विकलन पत्रक के नाम से जाना जाता है। यह एक प्लास्टिक कार्ड है, जो खरीददारी करते समय भुगतान की वैकल्पिक पद्धति प्रदान करता है। कार्यात्मक रूप से, इसे इलेक्ट्रानिक्स चेक कहा जा सकता है, क्योंकि पैसे बैंक खाते से या तो सीधे निकाले जा सकते हैं या शेष राशि कार्ड के जरिए भी निकाली जा सकती है। कुछ मामलों में, कार्ड को खास तरह से केवल इंटरनेट के लिए इस तरह डिजाइन किया जाता है कि भौतिक रूप से कोई कार्ड होता ही नहीं है।

डेबिट कार्ड का उपयोग कुछ देशों में व्यापक हो चुका है और इसने चेक की जगह ले ली है तथा कुछ मामलों में बड़ी मात्रा में नकदी का लेन-देन भी होता है। क्रेडिट कार्ड की तरह डेबिट कार्ड का उपयोग टेलीफोन और इंटरनेट के जरिए खरीददारी के लिए भी होता है। लेकिन क्रेडिट कार्ड की राशि वाहक के द्वारा बाद की तारीख में भुगतान करने के बजाए वाहक के बैंक खाते से स्थानांतरित होती हैं।

डेबिट कार्ड की सहायता से आप तुरंत नकदी निकाल सकते हैं, क्योंकि यह एटीएम (ATM) कार्ड और चेक गारंटी कार्ड की तरह प्रयुक्त होता है। जहाँ ग्राहक खरीदारी के साथ-साथ नकदी भी निकाल सकते हैं, वहाँ व्यापारी अपने ग्राहक को 'कैशबैक'/'कैश आउट' की सुविधाएँ देने की पेशकश कर सकता है।

भुगतान प्रक्रिया के आधार पर डेबिट के प्रकार–

हालाँकि बहुत सारे डेबिट कार्ड 'वीसा कार्ड' या 'मास्टर कार्ड' ब्रांड के होते हैं। इसके अलावा भी बहुत तरह के डेबिट कार्ड होते हैं। ये सभी केवल देश या क्षेत्र विशेष में स्वीकार्य हैं। उदाहरण के लिए, स्विच (अब माइस्ट्रो) और सोलो यूनाइटेड किंगडम में, इंटरैक कनाडा में, कार्टे ब्लू फ्रांस में, लेजर आयरलैंड में, EC इलेक्ट्रॉनिक चेक जर्मनी में और एफ्टपोस (EFTPOS) कार्ड ऑस्ट्रेलिया और न्यूजीलैंड में। सीमा पार अनुकूलता की जरूरत और हाल ही में यूरो के आगमन से इनमें से बहुत सारे कार्डों (जैसे स्विट्जरलैंड के 'EC डाइरकी', ऑस्ट्रिया के 'बैंकोमैटकास' और यूनाइटेड किंगडम के स्विच) के नेटवर्क को अंतर्राष्ट्रीय पहचान मिली है। डेबिट कार्ड पद्धति अपने ऑपरेटरों को ग्राहकों की खरीदारी की निगरानी करते हुए अपने उत्पाद पैकेज का और भी प्रभावशाली तरीके से उपयोग करने की अनुमति देती है। इन पद्धतियों का एक उदाहरण एम्बेड इंटरनेशनल द्वारा ECS है।

प्रीपेड डेबिट कार्ड– प्रीपेड डेबिट कार्ड, रिलोडेबल डेबिट कार्ड या रिलोडेबल प्रीपेड कार्ड भी कहलाता है। इसका उपयोग अकसर आवर्ती भुगतान के लिए किया जाता है। भुगतानकर्ता कार्डधारक के कार्ड में धन डाल देता है। प्रीपेड डेबिट कार्ड या तो ऑफलाइन डेबिट पद्धति में उपयोग किए जाते हैं या ऑनलाइन डेबिट पद्धति धन का उपयोग करने के लिए किए जाते हैं। विशेष रूप से US आधारित कंपनियाँ विदेश में बहुत ही बड़ी संख्या में भुगतान प्राप्तकर्ता के लिए प्रीपेड डेबिट कार्ड पर बगैर देर किए और अंतर्राष्ट्रीय चेक के लिए शुल्क जोड़े या बैंक हस्तांतरण के बगैर अंतर्राष्ट्रीय भुगतान वितरण की अनुमति देती हैं। वेब—आधारित सेवा, जैसे स्टॉक फोटोग्राफी वेबसाइट (आईस्टॉकफोटो), आउटसोर्सड सेवाएँ (ओडेस्क) और संबद्ध नेटवर्क (मीडियाविच) सभी ने अपने योगदानकर्ताओं / स्वतंत्र योगदानकर्ताओं / विक्रेताओं के लिए प्रीपेड डेबिट कार्ड की पेशकश करने की शुरूआत कर दी है।

ऑनलाइन डेबिट कार्ड– ऑनलाइन डेबिट कार्ड के हर लेन—देन पर इलेक्ट्रॉनिक अनुज्ञप्ति की जरूरत होती है और डेबिट उपयोगकर्ता के खाते में तुरंत दिखाई देता है। हो सकता है, लेन—देन पर्सनल आईडेंटिफिकेशन नंबर (PIN) अनुज्ञप्ति पद्धति से अतिरिक्त सुरक्षित हो और कुछ ऑनलाइन कार्ड को हरेक लेन—देन में ऐसी अनुज्ञप्ति की जरूरत होती है। स्वचालित टेलर मशीन (ATM) कार्डों में अनिवार्य रूप से यह जरूरी है। ऑनलाइन डेबिट कार्ड के उपयोग में एक दिक्कत यह है कि इसमें

प्वाइंट ऑफ सेल (POS) में इलेक्ट्रॉनिक अनुज्ञप्ति उपकरण जरूरी है और कभी—कभी पिन नंबर डालने के लिए एक अलग पिनपैड की जरूरत होती है। हालाँकि बहुत सारे देशों में यह हर तरह के कार्ड के जरिए लेन—देन में आम होता जा रहा है। कुल मिलाकर ऑनलाइन डेबिट को इसकी सुरक्षित अनुज्ञप्ति पद्धति और लाइव स्थिति के कारण ऑफलाइन डेबिट कार्ड से कहीं ज्यादा श्रेष्ठ माना जाता है, जो केवल ऑनलाइन डेबिट कार्ड के मामलें में लेन—देन पर प्रक्रमण विलंबन के साथ समस्याओं का निदान कर देता है।

इलेक्ट्रॉनिक पर्स कार्ड– इलेक्ट्रॉनिक पर्स पद्धति पर आधारित स्मार्ट कार्ड (जिसमें इसका मूल्य कार्ड चिप पर ही संग्रहित होता है, खाते के रिकॉर्ड पर दर्ज नहीं होता, इसीलिए नेटवर्क कनेक्टिविटी की जरूरत के बगैर मशीन कार्ड को स्वीकार कर लेता है) का उपयोग पूरे यूरोप में 1990 के दशक के मध्य से हो रहा है। उल्लेखनीय रूप से जर्मनी (गेल्डकार्टे), ऑस्ट्रिया (क्विक), नीदरलैंड (चिपनिच), बेल्जियम और स्विट्जरलैंड (कैश) में, ऑस्ट्रिया और जर्मनी में, सभी वर्तमान बैंक कार्ड अब इलेक्ट्रॉनिक पर्स पद्धति में शामिल हो गए हैं।

ऑफलाइन डेबिट– ऑफलाइन डेबिट पद्धति पर आधारित कार्डों में प्रमुख क्रेडिट कार्डों (जैसे वीसा या मास्टर कार्ड) या प्रमुख डेबिट कार्डों (जैसे यूनाइटेड किंगडम और दूसरे देशों में माइस्टरो, लेकिन संयुक्त राज्य अमेरिका में नहीं) का लोगो होता है और ब्रिकी के समय क्रेडिट कार्ड की तरह (भुगतानकर्ता के हस्ताक्षर के साथ) इसका इस्तेमाल होता है। इस तरह के डेबिट कार्ड में दैनिक सीमा हो सकती है और/या जिससे धन निकाला जाता है, उस चालू/जाँच खाते की शेष रकम के बराबर एक अधिकतम सीमा हो सकती है। ऑफलाइन डेबिट कार्ड से किए गए लेन—देन में उपयोगकर्ता के शेष खाते में इसका प्रभाव दिखने में 2–3 दिन लग जाते हैं। कुछ देशों, कुछ बैंकों और व्यापारी सेवा संगठनों में 'क्रेडिट' या ऑफलाइन डेबिट लेन—देन अंकित मूल्य के परे क्रेता की लागत के बगैर लेन—देन होता है, जबकि 'डेबिट' या ऑनलाइन डेबिट लेन—देन के लिए एक छोटा—सा शुल्क माँगा जा सकता है (हालाँकि यह अकसर खुदरा विक्रेता द्वारा समाविष्ट कर लिया जाता है)। अन्य अंतर इस प्रकार हैं कि डेबिट क्रेता डेबिट खरीदारी की रकम के अतिरिक्त नकद भी निकाल सकता है (बशर्ते व्यापारी इस काम का समर्थन करता है तो), व्यापारी के नजरिए से, 'क्रेडिट' (ऑफलाइन) डेबिट लेन—देन की तुलना में ऑनलाइन डेबिट लेन—देन पर व्यापारी छोटी—सी रकम का भुगतान करता है।

3. चैक से क्या तात्पर्य है? विस्तारपूर्वक समझाइए?

उ०– चेक एवं उसके प्रकार– चेक खाताधारक को दिया जाने वाला वह भुगतान का साधन है, जिससे ग्राहक किसी अगले व्यक्ति को अपने खाते से डायरेक्ट कैश न देकर भुगतान कर सकता है।

चेक में आप जिसे पैसे दे रहे हैं, उसका नाम लिखना होता है। वह किसी व्यक्ति का नाम भी हो सकता है या किसी फर्म का, चेक में आपको यह भी भरना होता है कि आप कितने पैसे उस व्यक्ति को दे रहे हैं (शब्द और संख्या में), कब दे रहे हैं (दिनांक)........... और अंत में आपको हस्ताक्षर करना पड़ता है। आपका चेक लेकर व्यक्ति अपने खाते में डाल देता है और आपने जितनी धनराशि का उसे भुगतान किया था, उतनी राशि उसके खाते में स्थानान्तरित हो जाती है।

संक्षेप में कह सकते हैं कि चेक बिना कैश का भुगतान है, जैसे इलेक्ट्रॉनिक ट्रान्सफर।

चेकों का वर्गीकरण– स्थान के आधार पर

(i) **स्थानीय चेक–** यदि किसी शहर का चेक उसी शहर में ही Clear हो तो इसे स्थानीय चैक कहते हैं। ऐसे चेक को लेकर केवल उसी शहर की संबंधित ब्रांच में जाना पड़ेगा। यदि उसे शहर से बाहर Clear करवाया जाता है तो उसके लिए अलग से पैसे लगते हैं।

(ii) **आउटस्टेशन चेक–** यदि स्थानीय चेक को शहर से बाहर ले जाकर Clear कराया जाए तो वह चेक आउटस्टेशन चेक कहलाता है, जिसके लिए बैंक निर्धारित शुल्क लेता है।

(iii) **एट पार चेक–** यह ऐसा चेक है, जो पूरे देश में संबंधित बैंक की सभी ब्रांचों में स्वीकार्य है और खास बात यह है कि बाहर की ब्रांचों में इसे Clear करने के दौरान अतिरिक्त प्रभार नहीं लगता।

चेकों का वर्गीकरण– मूल्य के आधार पर

(iv) **साधारण मूल्य वाले चेक–** 1 लाख से कम मूल्य वाले चेक साधारण मूल्य वाले चेक (नॉर्मल वैल्यू चेक) कहलाते हैं।

(v) **ऊँचे मूल्य वाले चेक–** 1 लाख से ऊपर वाले चेक ऊँचे मूल्य वाले चेक (हाई वैल्यू चेक) कहलाते हैं।

(vi) **उपहार चेक–** अपने प्रियजनों को उपहारस्वरूप दिए जाने वाले चेक उपहार चेक (गिफ्ट चेक) कहलाते हैं। उपहार चेकों की राशि ₹100 से लेकर ₹10,000 तक हो सकती है।

चेकों का वर्गीकरण– गारंटी भुगतान के आधार पर

(i) **सेल्फ चेक–** सेल्फ चेक वह होता है, जिसे खाताधारक स्वयं भुगतान के लिए प्रस्तुत करता है। इसमें भुगतान पाने वाले के नाम की जगह 'Self' लिखा होता है। इसका भुगतान उसी ब्रांच में होता है, जिसमें उस खाता—धारक का खाता होता है।

(ii) पीछे की तारीख वाला चेक– इस चेक में बैंक में प्रस्तुत करने के पहले की तिथि होती है। यह चेक अंतिम तिथि से तीन माह के पूरा होने तक भुनाया जा सकता है।

(iii) काल बाधित चेक– हर चेक को उसमें अंकित तिथि के तीन माह के अन्दर—अन्दर भुनाने का नियम है। यदि यह तिथि पार हो जाती है, तो यह काल बाधित चेक कहलाता है, जो बैंक के द्वारा स्वीकार नहीं किया जाता है।

(iv) आगे की तारीख वाला चेक– आगे की तिथि में भुगतान वाला चेक एक ऐसा क्रॉस किया हुआ बेयरर चेक होता है, जिसमें आगे की तिथि अंकित की जाती है। इसका अर्थ यह हुआ है कि इस चेक का भुगतान अंकित तिथि या उसके बाद हो सकता है।

चेक के अन्य प्रकार

(i) खुला चेक– खुला चेक वह चेक होता है, जिसे बैंक में प्रस्तुत कर काउंटर पर ही नकद प्राप्त किया जा सकता है। Clearance के लिए आपको इंतजार करने की जरूरत नहीं है। खुले चेक को धारण करने वाला व्यक्ति काउंटर पर जाकर, चेक दिखाकर पैसे ले सकता है या अपने अकाउंट में पैसे को ट्रान्सफर कर सकता है या चेक के पीछे हस्ताक्षर करके किसी अन्य व्यक्ति को प्राधिकृत कर सकता है।

(ii) बेयरर चेक– बेयरर चेक वह चेक है, जो खाताधारक का कोई भी प्रतिनिधि बैंक में जाकर भुना सकता है, प्रतिनिधि को चेक देते समय चेक के पीछे हस्ताक्षर करने की आवश्यकता नहीं होती एवं मात्र चेक दे देने से निकासी हो जाती है। ये चेक जोखिमपूर्ण भी हो सकते हैं।

(iii) क्रॉस्ड चेक– क्रॉस्ड चेक किसी विशेष व्यक्ति या संस्था के नाम से लिखा जाता है और ऊपर बायीं ओर दो समानांतर लाइनें खींच दी जाती हैं, जिनके बीच '& CO' or 'Account Payee' or 'Not Negotiable' लिखा या नहीं भी लिखा जा सकता है। इस चेक से नकद निकासी नहीं होती और संबंधित राशि केवल नामित व्यक्ति/संस्था के खातों में स्थानान्तरित हो सकती है।

(iv) आदेश चेक– इस चेक में 'Bearer' शब्द को काट दिया जाता है और उसके स्थान पर 'Order' लिख दिया जाता है। इसमें खुले चेक की तरह चेक से अपने अकाउंट में पैसे को ट्रान्सफर कर सकता है या चेक के पीछे हस्ताक्षर करके किसी अन्य व्यक्ति को प्राधिकृत कर सकता है।